एम.ए. उत्तरार्द्ध

राजनीति विज्ञान, चतुर्थ प्रश्नपत्र

अंतर्राष्ट्रीय विधि

(INTERNATIONAL LAW)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Dhananjay Verma
   Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Amar Nayak
   Associate Professor
   Govt. S.N.G. (PG) Autonomous College, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Bhavana Bhadoriya
   Professor
   Govt. Hamidia College, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. L.P. Jharia
   Director
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. Dhananjay Verma
   Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Amar Nayak
   Associate Professor
   Govt. S.N.G. (PG) Autonomous College,
   Bhopal (M.P.)

6. Dr. Bhavana Bhadoriya
   Professor
   Govt. Hamidia College, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITER

Amitabh Chaudhary, Former Faculty, Mahalaxmi Group of Institutions, Meerut

Units: (1-5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

अंतर्राष्ट्रीय विधि

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति, स्रोत एवं विषय; अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि – अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय विधि के मध्य संबंध पर सिद्धांत – अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय विधि के मध्य संबंधों के विषय पर राज्यों के व्यवहार	**इकाई 1** : अंतर्राष्ट्रीय विधि : प्रकृति, स्रोत तथा विषय **(पृष्ठ 3–34)**
इकाई–2 राज्य के लिए अनिवार्य अर्हताएं – राज्यों के विविध प्रकार – राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य; राज्यों एवं सरकार की मान्यता – राज्यों की मान्यता – सरकार की मान्यता; राज्यों की समानता – राज्यों की समानता के सिद्धांत की अर्थवत्ता – राज्यों का महासंघ तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि; राज्यों का अधिकार क्षेत्र – राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता : अर्थ एवं सीमाएं – राज्य अधिकारिता के स्वरूप; राज्य उत्तराधिकार – राज्य उत्तराधिकार के स्वरूप एवं सिद्धांत – राज्य उत्तराधिकार के परिणाम	**इकाई 2** : राज्यों और सरकार की मान्यता **(पृष्ठ 35–118)**
इकाई–3 हस्तक्षेप : प्रकार एवं मानवीय आधार – हस्तक्षेप के प्रकार – मानवीय आधार पर हस्तक्षेप; राज्य का उत्तरदायित्व – राज्य उत्तरदायित्व : प्रविधि एवं प्रकार – राज्य उत्तरदायित्व के परिणाम; राज्य क्षेत्र का अधिग्रहण तथा हानि – राज्य क्षेत्रअर्जन प्रक्रिया – राज्य क्षेत्रअधिग्रहण से हानि; खुला समुद्र – खुले समुद्र की स्वतंत्रताएं – अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तल क्षेत्र/प्राधिकरण	**इकाई 3** : हस्तक्षेप **(पृष्ठ 119–160)**
इकाई–4 तटस्थता की संकल्पना एवं विकास – राष्ट्र संघ की प्रसंविदा के अधीन तटस्थता – तटस्थ राज्यों के कर्तव्य एवं अधिकार – तटस्थता के प्रकार; व्यक्तिगत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि, राष्ट्रीयता, विदेशी या अन्यदेशीय, प्रत्यर्पण – व्यक्तिगत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि – राष्ट्रीयता – विदेशी या अन्यदेशीय – प्रत्यर्पण; राजनयिक राजदूत तथा वाणिज्य–दूत (कौंसल) – राजनयिक दूतों का वर्गीकरण – राजनयिक उन्मुक्तियां – वाणिज्य–दूत (कौंसल)	**इकाई 4** : तटस्थता **(पृष्ठ 161–204)**
इकाई–5 संधियाँ और अंतर्राष्ट्रीय आचरण – संधियों के प्रकार – संधियों के कुछ सामान्य सिद्धांत – अन्य अंतर्राष्ट्रीय आचरण; 1949 के जिनेवा सम्मेलन; अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान; राज्यों के मध्य मतभेद निबटाने हेतु युद्ध के अतिरिक्त उपाय; युद्ध सम्बन्धी विधि, जल, थल व वायु युद्ध सम्बन्धी विधि, युद्ध बंदियों व अन्य बंदियों (बीमार तथा घायल) के साथ व्यवहार, नाकाबंदी, विनिषिद्ध माल, युद्ध अपराध	**इकाई 5** : संधियाँ तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय आचरण **(पृष्ठ 205–246)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 अंतर्राष्ट्रीय विधि : प्रकृति, स्रोत तथा विषय **3–34**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति, स्रोत एवं विषय
  1.2.1 अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति
  1.2.2 अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्रोत
  1.2.3 अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय
1.3 अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि
  1.3.1 अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय विधि के मध्य संबंध पर सिद्धांत
  1.3.2 अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय विधि के मध्य संबंधों के विषय पर राज्यों के व्यवहार
1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.5 सारांश
1.6 मुख्य शब्दावली
1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 राज्यों और सरकार की मान्यता **35–118**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 राज्य के लिए अनिवार्य अर्हताएं
  2.2.1 राज्यों के विविध प्रकार
  2.2.2 राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य
2.3 राज्यों एवं सरकार की मान्यता
  2.3.1 राज्यों की मान्यता
  2.3.2 सरकार की मान्यता
2.4 राज्यों की समानता
  2.4.1 राज्यों की समानता के सिद्धांत की अर्थवत्ता
  2.4.2 राज्यों का महासंघ तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि
2.5 राज्यों का अधिकार क्षेत्र
  2.5.1 राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता : अर्थ एवं सीमाएं
  2.5.2 राज्य अधिकारिता के स्वरूप
2.6 राज्य उत्तराधिकार
  2.6.1 राज्य उत्तराधिकार के स्वरूप एवं सिद्धांत
  2.6.2 राज्य उत्तराधिकार के परिणाम
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 हस्तक्षेप **119–160**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 हस्तक्षेप : प्रकार एवं मानवीय आधार
  3.2.1 हस्तक्षेप के प्रकार
  3.2.2 मानवीय आधार पर हस्तक्षेप
3.3 राज्य का उत्तरदायित्व
  3.3.1 राज्य उत्तरदायित्व : प्रविधि एवं प्रकार
  3.3.2 राज्य उत्तरदायित्व के परिणाम
3.4 राज्य क्षेत्र का अधिग्रहण तथा हानि
  3.4.1 राज्य क्षेत्रअर्जन प्रक्रिया
  3.4.2 राज्य क्षेत्रअधिग्रहण से हानि
3.5 खुला समुद्र
  3.5.1 खुले समुद्र की स्वतंत्रताएं
  3.5.2 अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तल क्षेत्र/प्राधिकरण
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 तटस्थता **161–204**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 तटस्थता की संकल्पना एवं विकास
  4.2.1 राष्ट्र संघ की प्रसंविदा के अधीन तटस्थता
  4.2.2 तटस्थ राज्यों के कर्तव्य एवं अधिकार
  4.2.3 तटस्थता के प्रकार
4.3 व्यक्तिगत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि, राष्ट्रीयता, विदेशी या अन्यदेशीय, प्रत्यर्पण
  4.3.1 व्यक्तिगत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि
  4.3.2 राष्ट्रीयता
  4.3.3 विदेशी या अन्यदेशीय
  4.3.4 प्रत्यर्पण
4.4 राजनयिक राजदूत तथा वाणिज्य–दूत (कौंसल)
  4.4.1 राजनयिक दूतों का वर्गीकरण
  4.4.2 राजनयिक उन्मुक्तियां
  4.4.3 वाणिज्य–दूत (कौंसल)
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 संधियाँ तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय आचरण 205–246

5.0 परिचय

5.1 उद्देश्य

5.2 संधियाँ और अंतर्राष्ट्रीय आचरण

- 5.2.1 संधियों के प्रकार
- 5.2.2 संधियों के कुछ सामान्य सिद्धांत
- 5.2.3 अन्य अंतर्राष्ट्रीय आचरण

5.3 1949 के जिनेवा सम्मेलन

5.4 अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान

5.5 राज्यों के मध्य मतभेद निबटाने हेतु युद्ध के अतिरिक्त उपाय

5.6 युद्ध सम्बन्धी विधि, जल, थल व वायु युद्ध सम्बन्धी विधि, युद्ध बंदियों व अन्य बंदियों (बीमार तथा घायल) के साथ व्यवहार, नाकाबंदी, विनिषिद्ध माल, युद्ध अपराध

5.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

5.8 सारांश

5.9 मुख्य शब्दावली

5.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

5.11 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक '*अंतर्राष्ट्रीय विधि*' विश्वविद्यालय द्वारा दूरस्थ शिक्षा हेतु निर्धारित एम.ए. (राजनीति विज्ञान) उत्तरार्द्ध के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है।

जैसा कि आप जानते ही हैं कि स्थानीय व प्रादेशिक स्तर से लेकर क्रमशः राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर राजनीति का स्तर उत्तरोत्तर अधिक महत्वपूर्ण व जटिलतर होता जाता है। राष्ट्रीय संविधान के समान यद्यपि किसी स्थिर अन्तर्राष्ट्रीय संविधान की स्थिति नहीं है तथापि सम्पूर्ण विश्व समय-समय पर स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय विधि-विधान के तन्त्र से मुक्त भी नहीं रह सकता। जो राष्ट्र अथवा शासक इन विधियों का सम्मान नहीं करते उन्हें प्रायः इसके गंभीर परिणाम भी भुगतने पड़ते हैं। कुवैत पर अतिक्रमण करने वाले ईराक और ईराक के शासक सद्दाम हुसैन के पतन का उदाहरण बहुत पुराना नहीं है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय विधियों को गहनता से जानना राजनीति विज्ञान के प्रत्येक छात्र के लिए अपरिहार्य है।

प्रस्तुत पुस्तक में अंतर्राष्ट्रीय विधि से संबद्ध विषयों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक इकाई के आरंभ में विषय विश्लेषण से पूर्व उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच-बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता परखने हेतु प्रश्न दिए गए हैं। प्रस्तुत पुस्तक में अंतर्राष्ट्रीय विधि से संदर्भित अहम विषयों का सांगोपांग समायोजन किया गया है।

अध्ययन की सुविधा के लिए पुस्तक को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार है-

पहली इकाई में अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति, स्रोत, अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि के मध्य संबंध से संबंधित सिद्धांत तथा राज्यों के व्यवहार का अध्ययन किया गया है जिसे छात्र उपयोगी पाएंगे।

दूसरी इकाई राज्य के लिए अनिवार्य अर्हताओं, राज्यों के विविध प्रकार, राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य एवं सरकार की मान्यताओं जैसे महत्वपूर्ण विषयों के साथ-साथ राज्यों की समानता के सिद्धांत की अर्थवत्ता, राज्यों के महासंघ तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के संदर्भ में राज्यों के अधिकार क्षेत्र, इसका अर्थ एवं सीमाएं, राज्य अधिकारिता का स्वरूप, राज्य उत्तराधिकार तथा इसके स्वरूप और सिद्धांत एवं राज्य उत्तराधिकार के परिणामों का भी विस्तार से वर्णन करती है।

तीसरी इकाई में अंतर्राष्ट्रीय विधि में हस्तक्षेप, इसके प्रकार, राज्य के उत्तरदायित्व तथा संबंधित पक्षों के अलावा राज्य क्षेत्र का अधिग्रहण, क्षेत्र अर्जन प्रक्रिया इसकी हानियां, खुला समुद्र तथा इसकी स्वतंत्रताएं एवं अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तल क्षेत्र/प्राधिकरण से संबंधित विविध पक्षों का विश्लेषण किया गया है।

चौथी इकाई में छात्र अंतर्राष्ट्रीय विधि में तटस्थता की संकल्पना एवं विकास, राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा के अधीन तटस्थता, तटस्थ राज्यों के कर्तव्य एवं अधिकार, तटस्थता के प्रकार, व्यक्तिगत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि, राष्ट्रीयता, विदेशी या अन्यदेशीय प्रत्यर्पण,

राजनयिक, राजदूत तथा कॉन्सुल का अर्थ और उनमें अंतर, राजनयिक दूतों का वर्गीकरण, राजनयिक उन्मुक्तियां आदि विषयों का अध्ययन कर पाएंगे।

टिप्पणी

पांचवी इकाई में संधियों के विभिन्न प्रकारों एवं पक्षों का अध्ययन किया गया है जिसके अंतर्गत संधियों के कुछ सामान्य सिद्धांत, अंतर्राष्ट्रीय आचरण, 1949 के जिनेवा सम्मेलन की अनुशंसाओं के अनुरूप अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान, युद्ध संबंधी विधि, जल, थल व वायु संबंधी विधि, युद्ध बंदियों, बीमार तथा घायल युद्धबंदियों के उपचार, नाकाबंदी एवं निषिद्ध युद्ध अपराध आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

पाठ्यपुस्तक की भाषा को सरलतम रखते हुए यह ध्यान रखा गया है कि छात्रों को उक्त विषयों का सम्यक् ज्ञान हो सके। इन इकाइयों के अध्ययन से विद्यार्थी इन विषयों से भली-भांति अवगत हो सकेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र-छात्राओं की जिज्ञासा को शांत कर उनका ज्ञानवर्धन करने में सफल होगी।

इकाई 1 अंतर्राष्ट्रीय विधि : प्रकृति, स्रोत तथा विषय

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति, स्रोत एवं विषय
  1.2.1 अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति
  1.2.2 अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्रोत
  1.2.3 अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय
1.3 अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि
  1.3.1 अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय विधि के मध्य संबंध पर सिद्धांत
  1.3.2 अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय विधि के मध्य संबंधों के विषय पर राज्यों के व्यवहार
1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.5 सारांश
1.6 मुख्य शब्दावली
1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

1.0 परिचय

अंतर्राष्ट्रीय विधि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की सामान्य संरचना का एक विशिष्ट भाग है। एक अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के लिए प्रतिक्रियात्मक परिकल्पना करने में, राज्य सामान्यतः प्रासंगिक अंतर्राष्ट्रीय कानूनों पर विचार करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि के उल्लंघन पर काफी ध्यान दिया जाता है। राज्य सामान्यतः यह सुनिश्चित करने के लिए सावधान रहते हैं कि उनके कार्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों तथा सिद्धांतों के अनुरूप हों, क्योंकि अन्यथा कार्य करने पर अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा उसको नकारात्मक रूप से लिया जाएगा। अंतर्राष्ट्रीय कानूनों के नियमों को सम्भवतः ही कभी सैन्य साधनों या आर्थिक प्रतिबंधों का उपयोग करके लागू किया जाता है। इसके विपरीत यह प्रणाली पारस्परिकता या प्रबुद्ध आत्म–हित की भावना पर स्थापित है।

अंतर्राष्ट्रीय नियमों का उल्लंघन करने वाले राज्यों को विश्वसनीयता में पतन का सामना करना पड़ता है जो उनके अन्य राज्यों के साथ भविष्य के संबंधों में पूर्वाग्रह पैदा कर सकता है। इस प्रकार, एक राज्य द्वारा अपने लाभ के लिए एक संधि का उल्लंघन अन्य राज्यों को अन्य संधियों को भंग करने के लिए प्रेरित कर सकता है तथा इस तरह मूल उल्लंघनकर्ता को हानि पहुंचा सकता है। इसके अलावा, सामान्यतः यह अनुभव किया जाता है कि लगातार नियम उल्लंघन उन मूल्यों को खतरे में डालते हैं जो व्यवस्था द्वारा राज्यों के समुदाय, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों तथा अन्य भागीदारों में उत्पन्न किए जाते हैं।

ये मूल्य अंतर्राष्ट्रीय मामलों में निश्चितता, पूर्वानुमानशीलता तथा सामान्य उद्देश्य की भावना पर आधारित होते हैं जो सभी अंतर्राष्ट्रीय भागीदारों द्वारा स्वीकार किए गए

तथ्यों के एक समूह के अस्तित्व में होने से प्राप्त होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि अंतर्राष्ट्रीय विचार–विमर्श के लिए एक ढांचा तथा प्रक्रियाओं का एक समूह प्रदान करती है, साथ ही इसे समझने के लिए यह अवधारणाओं का एक सामान्य समूह भी प्रदान करती है।

प्रस्तुत इकाई में हम अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति, इसके स्रोत, विषय, अंतर्राष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि का स्तरीय अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- अंतर्राष्ट्रीय कानून की प्रकृति से अवगत हो पाएंगे;
- अंतर्राष्ट्रीय कानून के स्रोत एवं विषय को समझ पाएंगे;
- अंतर्राष्ट्रीय कानून और राष्ट्रीय कानून का विश्लेषण कर पाएंगे।

1.2 अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति, स्रोत एवं विषय

अंतर्राष्ट्रीय विधि (कानून) की प्रकृति, इसके स्रोत और तत्संदर्भित विषय इस प्रकार विवेचित किए जा सकते हैं–

1.2.1 अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति

अंतर्राष्ट्रीय विधि को राष्ट्रों के मध्य समझौतों तथा संधियों की एक ऐसी प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जाता है जो यह नियंत्रित करता है कि राष्ट्र किस प्रकार अन्य देशों, अन्य देशों के नागरिकों तथा अन्य राष्ट्रों के व्यवसायों के साथ व्यवहार करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि में मुख्य रूप से दो श्रेणियां होती हैं।

निजी अंतर्राष्ट्रीय विधि

यह निजी संस्थाओं, जैसे लोगों या निगमों के मध्य विवादों से संबंधित है, जिनका एक से अधिक राष्ट्रों से सार्थक संबंध होता है। उदाहरण के लिए, एक भारतीय निगम, यूनिलीवर कंपनी के स्वामित्व वाले औद्योगिक संयंत्रों से नेपाल के हेटुडा में जहरीली गैस के रिसाव से उत्पन्न मुकदमे को निजी अंतर्राष्ट्रीय विधि का मामला माना जाएगा।

सार्वजनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि

यह राष्ट्रों के मध्य संबंधों से संबद्ध है। इनमें अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार के मानक, समुद्र की विधि, आर्थिक विधि, राजनयिक विधि, पर्यावरण विधि, मानवाधिकार विधि तथा मानवीय विधि सम्मिलित हैं। सार्वजनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि के कुछ सिद्धांत संधियों की शृंखला में लिखित या 'संहिताबद्ध' हैं, किन्तु अन्य सिद्धांत कहीं पर भी लिखित नहीं हैं। इन्हें 'प्रथागत' कानूनों के रूप में जाना जाता है तथा इन्हें राष्ट्र निष्क्रिय रहकर सहमति प्रदान करते हैं।

चूंकि अधिकांश अंतर्राष्ट्रीय विधि संधियों द्वारा शासित होती हैं, इसलिए विधि को प्रवर्तित करना सामान्यतः व्यक्तिगत रूप से देशों पर निर्भर होता है। तथापि कुछ अंतर्राष्ट्रीय संगठन हैं जो कुछ संधियों को प्रवर्तित करते हैं। इसका सबसे उल्लेखनीय उदाहरण संयुक्त राष्ट्र है, जिसमें कुल 193 सदस्य देश हैं।

टिप्पणी

यह प्रश्न सदैव उत्पन्न होता है कि अपने प्रस्तावकों तथा विरोधियों के विचारों का सामंजस्य कैसे स्थापित किया जाए। विवाद विधि की परिभाषा पर निर्भर करता है, जिसे कोई भी चुन सकता है। ऑस्टिन अंतर्राष्ट्रीय विधि को वास्तविक विधि के रूप में स्वीकार नहीं करते। हॉलैंड इसे विधि के रूप में अस्वीकार करते हैं, क्योंकि इसे एक संप्रभु राजनीतिक प्राधिकरण द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है। इन लेखकों के लिए, विधि का अर्थ एक विधि प्रदानकर्ता तथा उसे लागू करने में सक्षम एक संस्था से होता है। इस प्रकार, जो अंतर्राष्ट्रीय विधि को राष्ट्रीय या नगरपालिका विधि के मानदंडों पर मापते हैं, उनका मानना है कि केंद्रीकृत विधायिका, कार्यकारी तथा न्यायिक प्राधिकरण की अनुपस्थिति ने इसे वास्तविक विधि के रूप में अयोग्य घोषित कर दिया है।

ओपेंहिम की विधि की परिभाषा बहुत सीमा तक इस विवाद का एकमात्र प्रभावशाली समाधान प्रदान करती है। ओपेंहिम विधि को एक समुदाय के भीतर मानव आचरण के लिए नियमों के एक निकाय के रूप में परिभाषित करते हैं, जो इस समुदाय की आम सहमति से अपनी शक्ति द्वारा लागू की जाती है। राष्ट्रों के समूहों को एक अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के रूप में माना जा सकता है, जहां अंतर–देशीय आचरण को संचालित करने के लिए कुछ नियम विकसित किए गए हैं तथा इन नियमों के आवेदन को अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की सहमति से अनुमोदित किया जाता है।

बेंथम की उत्कृष्ट परिभाषा के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय विधि राज्यों के मध्य संबंधों को नियंत्रित करने वाले नियमों का एक संग्रह है। यह इस बात का प्रतीक है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि इतनी अधिक विकसित हो चुकी है कि यह मूल परिभाषा आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि के सबसे गतिशील तथा महत्वपूर्ण तत्वों में से दो – व्यक्तियों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, का लोप करती है। इसके अतिरिक्त, अंतर्राष्ट्रीय विधि को केवल नियमों के संग्रह के रूप में देखना सही नहीं है; बल्कि, यह तेजी से परिष्कृत संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं के साथ ही साथ एक तेजी से विकसित होने वाला, नियमों तथा प्रभावशाली – हालांकि सीधे तौर पर बाध्यकारी न होने वाला – सिद्धांतों, प्रथाओं तथा दावों का संकलन है।

अपने व्यापक अर्थों में अंतर्राष्ट्रीय विधि अंतर्राष्ट्रीय कर्ताओं, अर्थात मुख्य रूप से संप्रभु राज्यों को, बल्कि उन्नति करते हुए अंतर्राष्ट्रीय संगठनों तथा कुछ व्यक्तियों को भी, पद्धति, तंत्र तथा एक सामान्य वैचारिक भाषा के साथ–साथ मानक दिशा–निर्देश प्रदान करती है। युद्ध, शांति तथा कूटनीति के प्रतिष्ठित प्रश्नों से आगे बढ़ते हुए मानव अधिकारों, आर्थिक तथा व्यापार के मुद्दों, अंतरिक्ष विधि तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को सम्मिलित करने के कारण, अंतर्राष्ट्रीय विधि से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित विषयों तथा कर्ताओं के स्तर में पर्याप्त रूप से विस्तार हुआ है। यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय विधि एक विधिक व्यवस्था है न कि एक नैतिक व्यवस्था, किन्तु यह नैतिक सिद्धांतों तथा प्रसंगों से महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित है, विशेषकर मानव अधिकारों के क्षेत्र में।

अंतर्राष्ट्रीय विधि अंतर्राष्ट्रीय शिष्टाचार, जिसमें राज्यों द्वारा शिष्टाचार, जैसे कि समुद्र में विदेशी युद्धपोतों के झंडे की सलामी के लिए विधिक रूप से गैर–बाध्यकारी प्रथाओं को सम्मिलित किया जाता है, से भिन्न है। इसके अतिरिक्त, अंतर्राष्ट्रीय विधि या सार्वजनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि का अध्ययन, कानूनों के टकराव या निजी अंतर्राष्ट्रीय विधि के क्षेत्र से अलग है, जोकि विभिन्न देशों की नगरपालिका विधि, (जिसको

अंतर्राष्ट्रीय विधिवक्ता राज्यों की घरेलू विधि कहते हैं) जिसमें विदेशी तत्व अंतर्ग्रस्त हैं, से संबद्ध है। इसलिए, अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति तथा विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर विचार किया जाना चाहिए–

• प्रकृति में सार्वभौमिक

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय विधि केवल संकीर्ण परिधि से नहीं घिरी है, वरन यह व्यापक क्षेत्रों तक विस्तारित है। इसको भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में, जैसे कि कभी अंतर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में तथा कभी–कभी व्यक्तिगत रूप में, लागू किया जाता है। यह पर्यावरण, मौसम, ब्रह्मांड, समुद्र तथा महासागरों तक भी विस्तारित है, राज्य की सीमा के बाहर भी, इसलिए यह एक सार्वभौमिक विधि है। यह सभी पर समान रूप से लागू होती है।

• प्राकृतिक विधि

अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति प्राकृतिक विधि के समान है। इस विधि को ज्ञान की सहमति से तैयार किया गया है तथा यह सभी पर लागू होती है। हालांकि, जो इस विधि का उल्लंघन करता है, उसे दंड नहीं मिलता है, किन्तु उसको किसी भी प्रकार के संहार की क्षतिपूर्ति वहन करनी होती है। यह विधि किसी विशेष सिद्धांत की विधि नहीं है, बल्कि सभी के लिए समान है। कोई भी अपनी सीमाओं से बाहर जाकर बच नहीं सकता।

• राज्यों की सहमति द्वारा विकसित

अंतर्राष्ट्रीय विधि, राज्यों की सहमतिपूर्ण इच्छा तथा राज्यों के मध्य प्रथागत व्यवहारों की क्रमिक प्रक्रिया का परिणाम है। लगभग सभी राज्य समझौते, अनुसमर्थन, परिग्रहण तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुमोदन से बाध्य हैं।

• दृष्टिकोण पर कोई एकरूपता नहीं

लंबे समय से, इस बारे में विवाद था कि क्या अंतर्राष्ट्रीय विधि वास्तव में एक विधि है, या यह नैतिकता की एक शाखा है या यह एक कमजोर विधि है या न्यायशास्त्र का एक लुप्तप्राय बिंदु भी है। जॉन ऑस्टिन कहते हैं कि शीर्षक विधि का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय विधि के लिए नहीं होना चाहिए क्योंकि इसमें विधि जारी करने का कोई अधिकार नहीं है, प्रतिबंधों से समर्थित नहीं है तथा इसकी व्याख्या करने के लिए कोई न्यायालय भी नहीं है।

हॉलैंड का तर्क है कि यह न्यायशास्त्र का एक लुप्त बिंदु है क्योंकि इसका नियम अनिश्चित तथा अस्पष्ट है, जिसे लागू करने तथा व्याख्या करने के लिए कोई प्राधिकरण नहीं है तथा संयुक्त राष्ट्र चार्टर अनुछेद 2 (7) कहता है कि एक राज्य के साथ सामान्य रूप से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। कुछ अन्य विद्वान इन विचारों का खंडन करते हैं तथा इसे एक विधि के रूप में, किन्तु राज्य की विधि की तुलना में कमजोर रूप में स्वीकार करते हैं। वर्तमान संदर्भ में यह अंतिम दृष्टिकोण सत्य माना जाता है।

• संधियों तथा रीति–रिवाजों का संयोजन

संधियों तथा रीति–रिवाजों के ऐसे विभिन्न संयोजन हैं जो अंतर्राष्ट्रीय विधि को आधार प्रदान करते हैं। प्रमुख संधियां हैं – वेस्टफेलिया की संधि (1648), अमेरिकन

डिक्लेरेशन ऑफ़ इंडिपेंडेंस (1776), फ्रैंच डिक्लेरेशन ऑफ़ मैन एंड द सिटीजन (1789), वियना एक्ट (1815), पेरिस घोषणा (1856), हेग अभिसमय (1899 व 1907), वर्सेल्स की संधि (1919), राष्ट्र संघ की प्रसंविदा (1919), लोकार्नो संधि (1925), पेरिस संधि (1928), जिनेवा अभिसमय (1929), संयुक्त राष्ट्र चार्टर (1945) आदि।

टिप्पणी

• पांच सिद्धांतों पर आधारित

मुख्य रूप से अंतर्राष्ट्रीय विधि पांच सिद्धांतों पर आधारित है। संप्रभु समानता, पैक्टा सनट सर्वंडा (संधियों को अच्छे विश्वास में रखा जाना चाहिए)। अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान, बल का उपयोग न करना तथा हस्तक्षेप न करना इसके आधार हैं।

• विभिन्न विद्वानों का योगदान

विभिन्न समय काल में ऐसे विभिन्न विद्वान हुए हैं, जो अंतर्राष्ट्रीय विधि के विकास में अपने विचारों को समर्पित किए हैं। योगदान करने वाले कुछ विद्वानों के नाम नीचे दिए गए हैं–

प्रकृतिवादी– फ्रांसिस्को डी विक्टोरिया, रोमन (1483–1556), फ्रांसिस्को सुआरेज़, स्पेन (1548–1617), जेंटिली, इटली (1552–1608), ह्यूगो ग्रोशियस, डच (1583–1645), सैमुअल प्यूफेन्डर्फ, जर्मन (1632–1694) आदि।

प्रत्यक्षवादी – बीनकरशोएयक, डच (1673–1743), वट्टल, स्विस, (1714–67), जेरेमी बेंथम, इंग्लैंड (1748–1832), जॉन ऑस्टिन, इंग्लैंड (1890–1859) आदि।

• अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को विनियमित करने का मुख्य उद्देश्य

शक्तिशाली अंतर–राज्य संबंध बनाने, मानव संबंधों के खिलाफ गतिकानूनों को नियंत्रित करने, शांतिपूर्ण वातावरण बनाए रखने, मानव समुदाय में समानता स्थापित करने तथा मानव समाज में विद्यमान सभी प्रकार के भेदभावों को समाप्त करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का विनियमितीकरण आवश्यक होता है।

• द्विध्रुवी प्रणाली के अंत के बाद प्रतिमान बदलाव

समाजवादियों तथा पूंजीवादी खंड के मध्य शीत युद्ध की समाप्ति के बाद, अंतर्राष्ट्रीय विधि को अर्थव्यवस्था, लोकतंत्रीकरण, सुशासन, शरणार्थी समाधान, मानवाधिकार, निजीकरण, सत्ता में समावेश, उदारीकरण, सहकारिता आदि पर वैश्वीकरण की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने के लिए आरामदायक वातावरण मिला।

• बल नहीं सहमति विधि का आधार है

अंतर्राष्ट्रीय विधि को बलपूर्वक नहीं बनाया गया है तथा न ही किसी तीव्र दबाव के कारण व्यवहार में लाया गया है। यह विधि उन राष्ट्रों के बीच समझौतों और संधियों द्वारा बनाई गई है जो इस बात को नियंत्रित करते हैं कि कैसे राष्ट्र अन्य राष्ट्रों के साथ सहभागिता करते हैं।

यह विधि सकारात्मक सोच, ज्ञान तथा अच्छे कौशल का परिणाम है जो हमेशा सहमति के सकारात्मक पक्ष में होता है दूसरों को नियंत्रित करने के लिए नहीं। इस विधि को मूल रूप से कड़ाई से नियंत्रित करने तथा यहां तक कि विधि का उल्लंघन करने वालों को दंड देने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए बनाया गया है, किन्तु अंतर्राष्ट्रीय

विधि को प्राकृतिक विधि के अर्थ में कार्यान्वित किया जाता है जो अच्छे ज्ञान तथा कौशल के साथ सकारात्मक दृष्टिकोण में बनाई जाती है।

• राष्ट्र की विधि

टिप्पणी

व्यापक संदर्भ में, राष्ट्रों की विधि प्रथागत अंतर्राष्ट्रीय विधि की समानार्थक बन गई है, जो उन नियमों के निकाय का वर्णन करती है जो अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में राष्ट्रों द्वारा विधिक बाध्यता तथा पारस्परिक संबद्धता की भावना से सार्वभौमिक रूप से पालन करते हैं, या उनको स्वीकार करते हैं। यह सुनिश्चित करने में कि क्या एक नियम प्रथागत अंतर्राष्ट्रीय विधि का एक मानक गठित करता है, न्यायालयों ने न्यायविदों के कार्यों, सार्वजनिक विधि पर आत्मस्वीकृत लेखन या राष्ट्रों के सामान्य प्रचलन तथा प्रथाओं द्वारा या उस विधि को मान्यता देने तथा लागू करने वाले न्यायिक निर्णयों द्वारा पारंपरिक रूप से परामर्श किया है।

विधि के नियमों के निर्धारण के लिए सहायक साधन के रूप में अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्रोतों में सामान्य रूप से अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय सम्मिलित होते हैं, चाहे वे सामान्य हों या प्रतियोगी राज्यों द्वारा स्पष्ट रूप से मान्यता प्राप्त नियमों को स्थापित करने वाले। उन अंतर्राष्ट्रीय विधि के सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत मानदंडों में व्याप्त कहे जा सकने वाले सिद्धांतों की सूची, जोकि संपूर्ण नहीं है, में समुद्री डकैती, दास व्यापार, विमान पर हमले या अपहरण, नरसंहार तथा युद्ध अपराधों के खिलाफ अभियोग, भी सम्मिलित हैं।

• विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी द्वारा अधिक गतिशील

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के तीव्रता से विकास के साथ विश्व एक छोटे से क्षेत्र में परिवर्तित हो गया है, किन्तु अंतर्राष्ट्रीय विधि के कार्य–क्षेत्र तथा विषय–वस्तु में काफी वृद्धि हुई है। इस संदर्भ में, अंतर्राष्ट्रीय विधि को युद्ध की संभावना, आव्रजन के अतिप्रवाह, शरणार्थी संकट, हाशिए के समुदायों के अधिकार, विश्व व्यापार, संपत्ति के अधिकार आदि से संबंधित नई चुनौतियों का सामना करना चाहिए। इसलिए यह समय तथा चुनौतियों की गति के साथ अधिक गतिशील है।

• अंतर्राष्ट्रीय विधि के लक्ष्य में सार्वभौमिक न्याय

लक्ष्य को पूरा करने के लिए, यह मानवीय गतिकानूनों को तीन प्रकार से विनियमित करता है– निषेधात्मक, आदेशात्मक तथा अनुज्ञात्मक। इसके उल्लंघन पर दंड का प्रावधान होता है। कोई भी राज्य शांति तथा नूरमबर्ग सिद्धांतों, नरसंहारों तथा नस्लीय भेदभाव के लिए गतिकानूनों, मानवाधिकारों के खिलाफ कार्य सरीखे गतिकानूनों को निषिद्ध नहीं कर सकता है। सभी राज्यों को अनिवार्य रूप से निषेधात्मक, आदेशात्मक तथा अनुज्ञात्मक कार्यों का पर्यवेक्षण करना चाहिए।

• नगरपालिका विधि से कमजोर विधि

अंतर्राष्ट्रीय विधि में नियम अनिश्चित तथा अस्पष्ट होते हैं। विधि को जारी करने, लागू करने तथा उसकी व्याख्या करने के लिए कोई प्राधिकरण नहीं होता। विधिक कार्य का कोई विकेंद्रीकरण नहीं होता। यह शक्तियों से प्रभावित होती है। राज्यों की संप्रभुता होती है। प्रभावी प्रतिबंधों से समर्थित नहीं होती।

1.2.2 अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्रोत

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय विधि उन मानदंडों से संबंधित है जो राज्यों के आचरण तथा उनके मध्य संबंधों को नियंत्रित करते हैं। यह कहना उचित नहीं है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि की पहुंच राज्यों के अधिकारों तथा दायित्वों से आगे नहीं है। यह मान्यता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत व्यक्तियों को भी दायित्व वहन करना पड़ सकता है, जबकि निगमों को भी अछूता नहीं छोड़ा गया है। इसके अतिरिक्त, पिछली सदी में, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने अंतर्राष्ट्रीय विधि के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। फिर भी, अंतर्राष्ट्रीय विधि के मुख्य विषय राज्य ही हैं।

विधि की किसी भी व्यवस्था में स्रोत होने चाहिए। उदाहरण के लिए, इजरायल के विधि में, अन्य स्रोतों के साथ–साथ, नेसेट विधान (विधान के समूह), सरकारी नियम तथा न्यायिक मिसालें भी विधि के बाध्यकारी स्रोतों के रूप में कार्य करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय में, जबकि मुख्य स्रोत स्पष्ट हैं किन्तु उनकी पहचान करने की प्रक्रिया कभी–कभी अधिक जटिल होती है।

अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्रोतों का सबसे अधिक स्वीकृत कथन अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की संविधि के अनुच्छेद 38 (1) में देखा जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय संविधि बहुत सीमा तक अंतर्राष्ट्रीय न्याय के स्थायी न्यायालय (अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का पूर्ववर्ती) की संविधि की प्रस्तुति है। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय संविधि के अनुच्छेद 38 (1) के अनुसार–

न्यायालय, जिसका कार्य ऐसे विवादों को अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार तय करना है जोकि उसके समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं, लागू करेगा–

क) अंतर्राष्ट्रीय अभिसमयों को, चाहे सामान्य हो या विशेष, जोकि प्रतिभागी राज्यों द्वारा स्पष्ट रूप से मान्यता प्राप्त नियमों को स्थापित करते हों;

ख) अंतर्राष्ट्रीय प्रथाओं को, विधि के रूप में स्वीकार किए गए एक सामान्य व्यवहार के साक्ष्य के रूप में;

ग) सभ्य राष्ट्रों द्वारा मान्यता प्राप्त विधि के सामान्य सिद्धांत;

घ) अनुच्छेद 59 के प्रावधानों के अधीन, न्यायिक निर्णय तथा विभिन्न राष्ट्रों के सबसे योग्य प्रचारकों की शिक्षाएं विधि के नियमों के निर्धारण के लिए सहायक साधन के रूप में।

जैसा कि देखा जा सकता है, अंतर्राष्ट्रीय विधि में तीन प्राथमिक स्रोत हैं– संधि, प्रथा तथा विधि के सामान्य सिद्धांत। इनके अतिरिक्त, दो सहायक स्रोत हैं जो प्राथमिक स्रोतों से प्राप्त मानदंडों की पहचान करने में सहायता कर सकते हैं– न्यायिक निर्णय तथा सबसे योग्य प्रचारकों की शिक्षाएं, अर्थात अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख विद्वान।

संधि

संधियों की विधि पर चर्चा को समाप्त करने का सबसे सामान्य तथा उपयोगी बिंदु संधियों की विधि पर वियना अभिसमय (कन्वेंशन) है। यह एक संधि को 'राज्यों के मध्य

लिखित रूप में संपन्न तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा शासित एक अंतर्राष्ट्रीय समझौते', के रूप में परिभाषित करता है।

तदनुसार, वियना कन्वेंशन एक संधि को एक साधन के रूप में स्वीकृत करने के लिए तीन तत्वों के अस्तित्व में होने की मांग करता है– (1) एक लिखित समझौता, (2) राज्यों के मध्य, तथा (3) अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा शासित।

टिप्पणी

वास्तविकता में, संधि बनाने के लिए पूर्व दो मानदंड अनिवार्य नहीं हैं। राज्यों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के मध्य तथा स्वयं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के मध्य भी एक संधि पर सहमति हो सकती है। इसके अतिरिक्त, प्रथागत अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत, संधि लिखित रूप में होने की आवश्यकता नहीं है। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि संधि लेख–पत्र को विभिन्न नामों से संबोधित किया जा सकता है (जैसे कि समझौते, चार्टर, सम्मेलन, वाचा, विधान तथा अन्य) तथा विभिन्न रूपों में पाया जा सकता है।

संधियां प्रायः राज्यों के मध्य विवादों के केंद्र में होती हैं तथा ये विवाद प्रायः निर्वचन के प्रश्नों के आसपास घूमते हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि में संधि निर्वचन के प्रयोजनों के लिए निर्धारित नियम अंतर्विष्ट हैं – तथापि इनका यथावत अर्थ असहमति के अधीन है, जोकि वियना कन्वेंशन के लेख 31–32 में निहित है। संधि निर्वचन का उद्देश्य अपने प्रारूपक के आशय की पहचान करना है, तथापि अंतर्राष्ट्रीय विधि यह मानता है कि संधि का निर्वचन समय के साथ विकसित हो सकता है यदि उसके पक्षकार इस प्रकार अभिप्रेत हों। संधि के निर्वचन का मूल नियम यह है कि संधि का निर्वचन, संधि की शर्तों को उनके संदर्भ में तथा उसकी विषय–वस्तु और उद्देश्य के प्रकाश में प्रदान किए जाने वाले सामान्य अर्थों के अनुसार सद्भावना पूर्वक किया जाना चाहिए। निर्वचन प्रथमतया संधि के लेखन पर आधारित होना चाहिए।

केवल यह तथ्य कि एक राज्य एक संधि में सम्मिलित हो गया, उसको अनिवार्य रूप से अनंत काल के लिए नहीं बांध सकता। उदाहरण के लिए, एक राज्य एक संधि को समाप्त कर सकता है यदि परिस्थितियों में अप्रत्याशित मौलिक परिवर्तन हुआ है, जिसने नितांत रूप से मूल दायित्व की प्रकृति को बदल दिया हो, जिसकी संधि के पक्षकारों द्वारा कल्पना की गई थी।

प्रथा

जैसा कि अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय संविधि में स्पष्ट है, प्रथागत अंतर्राष्ट्रीय विधि में दो तत्व सम्मिलित हैं– राज्य साधन तथा यह विश्वास कि इस तरह के साधन को राज्य की विधि के रूप में बाध्य किया जाता है। उत्तरवर्ती मानदंड लैटिन अभिव्यक्ति ओपिनिओ ज्यूरिस द्वारा जाना जाता है।

निम्नलिखित विश्लेषण इन दो मानदंडों के अर्थ पर आधारित है–

- **राज्य व्यवहारिता**

राज्य व्यवहारिता राज्य के किसी भी अधिकारी या अंग के व्यवहारिता से संबद्ध होता है। इसके अलावा, राज्य व्यवहारिता क्या आकार ग्रहण करेगा इसकी सीमाएं कम ही हैं। राज्य व्यवहारिता में, परस्पर, राज्यों के भौतिक कार्य व उसके अधिकारियों द्वारा किए गए कथन सम्मिलित हो सकते हैं तथा राज्य व्यवहारिता राज्य के विधान व उसके न्यायालयों के न्यायिक निर्णयों में भी पाई जा सकती है।

फिर भी, यह कहना निरर्थक होगा कि केवल राज्य व्यवहारिता, यह मानते हुए कि वह विधिक अभिमत की सहवर्ती है, प्रथा बना सकती है। अतएव, एक इस प्रकार की सीमा होनी चाहिए जिसको कि एक प्रथागत अंतर्राष्ट्रीय नियम बनने के लिए यथेष्ट, पर्याप्त रूप से सुदृढ़ होने के क्रम में एक व्यवहारिता को पार करना आवश्यक हो। इस कारण से राज्य व्यवहारिता को कई तत्वों द्वारा चिन्हित किया जाता है जो यह आकलन करने में सहायता कर सकते हैं कि क्या एक प्रथागत मानदंड विकसित हुआ है। व्यवहार सुसंगत होना चाहिए, सामान्य संख्या में राज्यों द्वारा भाग लिया जाना चाहिए तथा निश्चित अवधि का होना चाहिए।

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय को असायलम मामले (Asylum case) में स्थिरता के प्रश्न को संबोधित करना पड़ा था, जिसमें पेरू सरकार के एक राजनीतिक प्रतिद्वंदी – हया डे ला टोरे (Haya de la Torre) – के सम्बंध में कोलंबिया तथा पेरू के मध्य विवाद अंतर्ग्रस्त था, जिन्होंने पेरू में कोलंबिया के दूतावास में शरण मांगी थी। कोलंबिया ने तर्क दिया था कि प्रथागत अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत पेरू का दायित्व था कि वह डे ला टोरे को कोलंबिया में स्वतंत्र रूप से प्रविष्ट करने की अनुमति दे। इस तर्क को अस्वीकार करते हुए, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने कथन किया कि राज्य व्यवहारिता 'स्थिर तथा एक समान' होनी चाहिए। अर्थात राज्यों को एक निश्चित व्यवहारिता में यत्र–तत्र नहीं वरन निरंतर रूप से अंतर्ग्रस्त होना चाहिए। न्यायालय ने असायलम मामले (Asylum case) में राज्य व्यवहारिता की जांच की तथा उन राज्यों की व्यवहारिता में एक असंगति पाई, जो डे ला टोरे जैसी स्थितियों में शरण चाहने वालों को विमुक्त मार्ग प्रदान करते थे।

इस संबंध में, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि न्यायालय ने इस प्रश्न को भी संबोधित किया कि क्या एक क्षेत्रीय प्रथा अस्तित्व में थी, जो डे ला टोरे जैसे शरण चाहने वालों के सुरक्षित मार्ग की अनुमति देने के लिए एक राज्य को बाध्य करती थी। न्यायालय ने इस संभावना को भी अनिवार्य रूप से ध्यान में रखते हुए अस्वीकार कर दिया कि किसी राज्य को क्षेत्रीय प्रथा से बाध्य होने के लिए, विशेष रूप से विकासशील मानदंडों को स्वीकार करना होगा।

प्रथा विकसित करने के लिए सम्मिलित होने वाले राज्यों की आवश्यक संख्या के लिए व्यवहारिता व्यापक होनी चाहिए। हालांकि राज्यों द्वारा इसे सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किए जाने की आवश्यकता नहीं है। प्रथा बनने के लिए एक निश्चित व्यवहारिता में शामिल होने के लिए आवश्यक राज्यों की सटीक संख्या विषय–वस्तु के संबंध में भिन्न हो सकती है। हालांकि प्रायः यह एक बहुत ही जटिल प्रश्न होता है, किन्तु कुछ निश्चित साधन हैं जो सहायक हो सकते हैं। एक प्रथागत मानदंड के विकास का आकलन करने में, उन राज्यों की व्यवहारिता पर विशेष जोर दिया जाता है जो एक मानदंड के विकास से सबसे अधिक प्रभावित होंगे। उदाहरण के लिए, सशस्त्र संघर्ष के विधि के संबंध में, एक प्रथागत नियम के विकास के आकलन में इस विषय पर इज़राइल की व्यवहारिता और रुख की परीक्षा आवश्यक रूप से सम्मिलित होगी, साथ ही साथ, अन्य राज्यों की जो प्रायः सशस्त्र संघर्ष में अंतर्ग्रस्त रहते हैं, जैसे संयुक्त राज्य, रूस, यूनाइटेड किंगडम व अन्य। बाह्य अंतरिक्ष से संबंधित कई अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों के संबंध में, अनिवार्य रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत

संघ ही थे जो अपनी निर्मिति में सुसंगत थे। इसके अतिरिक्त, एक राज्य, जो एक विकासशील मानदंड के सामने केवल मौन व्यक्त करता है, को इसके निर्माण में सम्मत या राज़ी होना माना जा सकता है, किन्तु यह केवल तभी होगा जब प्रचलित परिस्थितियों में उस राज्य से प्रतिक्रिया की अपेक्षा की गई होगी।

टिप्पणी

प्रथागत नियम के विकास के लिए आवश्यक समय की मात्रा को आवश्यक माना जाता है, किन्तु इसके लिए कोई विशिष्ट समय निर्धारित नहीं है जो व्यतीत होना चाहिए।

भिन्न–भिन्न प्रकार के व्यवहार भिन्न–भिन्न महत्व रखते हैं। इसके अलावा, एक उच्च श्रेणी के राज्य अधिकारी द्वारा किए गए एक कृत्य में प्रायः निम्न श्रेणी वाले व्यक्ति द्वारा किए गए व्यवहार से अधिक विधिक महत्व होगा।

• ओपिनियो ज्यूरिस (Opinio Juris)

स्पष्ट भाषा में, अभिव्यक्ति, 'ओपिनियो ज्यूरिस' अंग्रेजी में शब्द 'धारणा' के रूप में अनुवादित होती है जोकि कभी–कभी विधि के रूप में जानी जाती है। तथापि प्रथा के इस तत्व को अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय संविधि की भाषा के अनुसार समझना अधिक उचित है– 'विधि के रूप में स्वीकार किया गया।' सामान्यता राज्यों को प्रथा को विधिक रूप से बाध्यकारी रूप में स्वीकार करना चाहिए। ओपिनियो जूरिस को विभिन्न स्रोतों से धारित किया जा सकता है जिनमें राज्य अपने विधिक विचार व्यक्त कर सकता है।

विधि के सामान्य सिद्धांत

'सभ्य राष्ट्रों द्वारा मान्यता प्राप्त विधि के सामान्य सिद्धांत' सम्भवतः अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय संविधि के अनुच्छेद 38 (1) में निर्धारित स्रोतों में से अस्पष्ट हैं। यह विषय 'सभ्य देशों' शब्द के औपनिवेशिक अर्थ के कारण विवाद से भी ग्रस्त है, हालांकि अब यह मान्यता है कि परिभाषा के इस हिस्से का कोई महत्व नहीं है। किसी भी स्थिति में, विधि के इस स्रोत का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि जब अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के स्थायी न्यायालय को विद्यमान अंतर्राष्ट्रीय विधि के आधार पर किसी मामले को स्थगित करना होगा, तो उसमें रिक्तपूर्ण कमियां नहीं होंगी। इस स्रोत में राज्यों के आंतरिक कानूनों में पाए जाने वाले सामान्य सिद्धांत शामिल हैं। इसमें सद्भाव, विबंधन और यह कि 'कोई भी अपने स्वयं के मुकदमे में न्यायाधीश नहीं हो सकता है' जैसे सिद्धांत शामिल होंगे।

एक दृष्टिकोण यह है कि इस स्रोत में अंतर्राष्ट्रीय विधि के सामान्य सिद्धांत भी सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिए, हाल ही में तिमोर–लेस्ते तथा ऑस्ट्रेलिया के मध्य अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष लाया गया एक विवाद, ऑस्ट्रेलियाई अधिकारियों द्वारा एक तिमोर–लेस्ते विधिक सलाहकार से संबंधित दस्तावेजों को यह दावा करते हुए जब्त करने के संबंध में था, कि सुरक्षा उद्देश्यों के लिए कार्रवाई आवश्यक थी। तिमोर–लेस्ते ने तर्क दिया कि इसमें उसकी विधिक सलाहकार–ग्राहक गोपनीयता का उल्लंघन किया गया। अनंतिम उपायों के चरण में, न्यायालय ने इस अधिनियम को प्रथम दृष्टया अवैध माना। ऐसा करने में, न्यायालय ने – इस गोपनीयता के संबंध में राज्यों की आंतरिक विधि का संदर्भ लेने के बजाय – संप्रभु समानता के अंतर्राष्ट्रीय विधि के सामान्य सिद्धांतों तथा विवादों के शांतिपूर्ण निबटान को संदर्भित किया।

न्यायालय ने ऑस्ट्रेलिया के कार्यों को इन सिद्धांतों के विपरीत माना। तथापि, अधिमान्य दृष्टिकोण यह है कि जब न्यायालय अंतर्राष्ट्रीय विधि के सामान्य सिद्धांतों को लागू करता है, तो यह केवल प्रथागत या संधि मानदंडों को सिद्धांतों के रूप में प्रस्तुत करते हुए लागू करता है।

न्यायिक निर्णय तथा सबसे उच्च गुणवत्ता वाले प्रचारक

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय या घरेलू न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों के मध्य आधिकारिक तौर पर कोई पदानुक्रम नहीं है। सामान्यतः यह माना जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के मूल तत्व का निर्धारण करने में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय इन सब में सबसे अधिक आधिकारिक है।

न्यायिक निर्णयों पर विचार करते समय राष्ट्रीय न्यायालय की भूमिका एक विशिष्ट स्थिति का आनंद लेती है। न्यायालय न केवल उसकी निर्णय विधि के सहायक स्रोतों का गठन करते हैं, बल्कि वास्तव में जब वह अपने निर्णय प्रस्तुत करते हैं तो राज्य व्यवहार तथा ओपिनियो जूरिस में भी व्यस्त होते हैं।

विद्वानों से समाविष्ट अंतर्राष्ट्रीय निकायों का विशेष महत्व है। इनमें से प्रमुख हैं– अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग (International Law Commission) तथा संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार समिति (United Nations Human Rights Committee)। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि तथापि अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय विद्वानों का उद्धरण करने से विरत रहता है, किन्तु उसने अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग का नियमित रूप से उद्धरण किया है।

साम्य (Equity)

अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्रोत के रूप में 'साम्य' शब्द का प्रयोग विधि के स्थापित नियमों की निष्पक्षता, युक्तियुक्तता तथा नीति को ध्यान में रखकर किया जाता है। साम्य का उल्लेख अंतर्राष्ट्रीय विधि की संविधि में विधि निरूपणकारी अभिकरण के रूप में भी नहीं किया गया है, क्योंकि इसको सम्मिलित किए जाने से न्यायालय को असीमित अधिकार प्राप्त हो जाते। वास्तव में साम्य को न्यायालय द्वारा प्रयोग में नहीं लाया जाता। इसके आधार पर किसी भी मामले को निर्णीत नहीं किया जाता तथा इसलिए इसको अंतर्राष्ट्रीय विधि का स्रोत नहीं कहा जा सकता, किंतु इसके उपरांत भी इसका अत्याधिक महत्व है, विशेषकर जहां नियम सरलता से उपलब्ध नहीं होते हैं।

विधिक नियम के अभाव में न्यायालय न्याय तथा साम्य के सामान्य सिद्धांतों के आधार पर विनिश्चय करने के लिए बाध्य हो जाते हैं, क्योंकि इन सिद्धांतों में साम्यपूर्ण परिणाम उत्पन्न करने की क्षमता है। साम्य की अवधारणा रोमन विधि के एक्स एको इट बोनो पर की अवधारणा से भिन्न है। एक्स एको इट बोनो पर के आधार पर की गई अवधारणा मैत्रीपूर्ण निबटान में समझौता, समाधान तथा विधायन को सम्मिलित करती है। संविधि के अनुच्छेद 38(2) के अंतर्गत यह प्रावधान है कि यदि किसी मामले में राज्य पक्षकार अपनी सम्मति दे देते हैं तो न्यायालय एक्स एको इट बोनो पर के आधार पर निर्णय दे सकता है। अर्थात न्यायालय किसी विवाद का निबटारा अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम के अनुसार नहीं बल्कि न्याय व युक्तियुक्तता के आधार पर कर सकता है।

साम्य की भूमिका पर डायवर्सन ऑफ वाटर फ्रॉम द म्युज (Diversion of Water from the Meuse) के वाद में न्यायमूर्ति अंजिलोट्टी तथा न्यायमूर्ति हडसन द्वारा अपने विसम्मतकारी निर्णयों में विचार प्रकट किए गए थे। न्यायमूर्ति अंजिलोट्टी का विचार था

टिप्पणी

कि यह सिद्धांत 'इतना न्यायसंगत, साम्यपूर्ण तथा सार्वभौमिक रूप से मान्य है कि इसे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में लागू किया जाना चाहिए। यह सभ्य राष्ट्रों द्वारा विधि के उन सामान्य सिद्धांतों में से एक है, जिसे संविधि के अनुच्छेद 38 के अनुसार न्यायालय प्रयोग करता है।' नॉर्थ सी कॉन्टिनेंटल के मामले (North Sea Continental case) तथा बार्सिलोना ट्रैक्शन वाद – द्वितीय मामला (Barcelona Traction case – Second Phase) में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने साम्य के सिद्धांत पर पूर्ण ध्यान दिया था। वर्तमान समय में साम्य के नियम अंतर्राष्ट्रीय विधि के भाग नहीं हैं तथा ये विधि के स्रोत भी नहीं हैं, किन्तु कई नियम, जो पहले साम्य के नियम थे, समय के बीतने के साथ रूढ़िगत नियमों में परिवर्तित हो गए हैं।

महासभा के संकल्प

संयुक्त राष्ट्र की महासभा के संकल्प विधिक प्रकृति के नहीं होते। इसलिए ये राज्यों पर बाध्यकारी नहीं होते। ये अपने सदस्यों पर किसी भी विधिक बाध्यता को सृजित नहीं करते, चाहे वे एकमत से या बहुमत से स्वीकार किए गए हों या इनके विषय सभी राज्यों के समान हित के विषय हों। इसके उपरांत भी यदि संकल्प निर्विरोध हो या सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से स्वीकार किया गया हो तथा यदि किसी संकल्प को बाद के कई संकल्पों में दोहराया गया हो, तो इसे अर्थहीन नहीं समझना चाहिए। रोसलीन हिग्गिंस (Roslyn Higgins) ने प्रतिपादित किया है कि ऐसे संकल्पों का संचयी प्रभाव (cumulative effect) सामान्य रूढ़िगत विधि के समान प्रतीत होता है। उनके अनुसार समान विषय के संकल्प को पुनः–पुनः दोहराने से तथा भारी बहुमत प्राप्त करने से ओपिनियो ज्यूरिस (Opinio Juris) का सृजन होता है।

वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियमों को सृजित करने में महासभा के संकल्पों की सक्षमता के संबंध में पश्चिमी राज्यों तथा तीसरे विश्व के देशों में वैचारिक भिन्नता है। पश्चिमी राज्य इस विचार के हैं कि रूढ़िगत नियम के सृजन के तत्व के रूप में संकल्पों का विचारण इस शर्त पर किया जा सकता है कि वे राज्यों के समान अभ्यास द्वारा सम्पुष्ट किए जाते हैं, जबकि तीसरे विश्व के देश इस मत के हैं कि ये संकल्प अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की इच्छा को अभिव्यक्त करते हैं। इसलिए स्वयं रूढ़ि के निर्माण तथा विधि के सामान्य सिद्धांत की घोषणा के लिए सक्षम हैं। यह माना जाता है कि महासभा के संकल्पों की प्रवृत्ति अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियम की प्रकृति को अर्जित करने की रही है। यह रूढ़ि के आवश्यक तत्वों, जैसे व्यापकता तथा निरंतरता, को पूर्ण करती है। इसकी समतावादी प्रकृति, इसके बहुमत आधार तथा इसके लोकतांत्रिक उद्‌गम के कारण यह माना जाता है कि महासभा में स्वीकृत संकल्प वर्तमान समय की आवश्यकता के प्रत्युत्तर में अंतर्राष्ट्रीय विधि के विस्तार के लिए पर्याप्त प्रत्याभूति पेश करते हैं। ये विधि के उत्तरोत्तर विकास के लिए आधार प्रदान करते हैं। महासभा द्वारा स्वीकार किए गए संकल्पों के माध्यम से जिन सिद्धांतों ने अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियमों की प्रास्थिति अर्जित की है, उनमें से कुछ के उदाहरण हैं– अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में बल के प्रयोग या धमकी को प्रतिषिद्ध करना, आत्म–रक्षा का अधिकार तथा आत्मनिर्णय का अधिकार, महत्वपूर्ण विधि निर्माणी स्रोतों पर स्थाई प्रभुत्व संपन्नता की घोषणा 1962, बाह्य अंतरिक्ष की खोज एवं प्रयोग में राज्यों

के क्रियाकलापों को शासित करने वाले विधिक सिद्धांतों की घोषणा 1963, मैत्रीपूर्ण संबंध घोषणा 1970 तथा आक्रमण को परिभाषित करने वाला संकल्प 1974।

महासभा विधि निर्माण के कार्य को दो प्रकार से करती है– प्रथम, यह स्वयं अंतर्राष्ट्रीय अनुबंधों को करती है और उन्हें राज्यों के समक्ष, सामान्य संधि निर्माणकारी प्रथा के अनुसार हस्ताक्षर तथा अनु समर्थन के लिए रखती है। मानव अभिसमय 1949, अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार प्रसंविदा 1966, अंतर्राष्ट्रीय शिशु अधिकार अभिसमय 1989 और कई निरस्त्रीकरण ऐसी संधियों के उदाहरण हैं। दूसरे, महासभा अपने सहायक विधि निर्मात्री निकायों जैसे अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग और संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विधि आयोग के माध्यम से संधि करती है। संधि प्रारूपित करने वाले इन निकायों को विधि निर्मित करने के लिए महासभा द्वारा विषय दिए जाते हैं तथा वे दिए गए विषयों पर अपनी वार्षिक रिपोर्ट देते हैं। उक्त दोनों ढंगों से महासभा द्वारा निर्मित विधि का पर्याप्त महत्व है और इन्हें राज्यों द्वारा उचित रूप से मान्यता दी गई है। ये ऐसे नियम हैं जिन पर विधि आधारित करते समय अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को ध्यान में रखना चाहिए।

टिप्पणी

एक उत्कृष्ट सूची

अंतर्राष्ट्रीय विधि के विशाल बहुमत को प्रावरित करते हुए, यह तर्क दिया जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय संविधि का अनुच्छेद 38 (1) वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय विधिक मानदंडों की एक विस्तृत सूची को प्रतिबिंबित नहीं करता है। विधि का एक अतिरिक्त स्रोत है जिसके लिए तर्क दिया जा सकता है, कि वह राज्यों की एकतरफा कार्रवाई है। ऐसा तब होता है जब राज्य का कोई वरिष्ठ अधिकारी राज्य की एक विशेष बाध्यता से बाध्य होने की इच्छा व्यक्त करते हुए लिखित या मौखिक रूप में घोषणा करता है।

इसके अतिरिक्त, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के उदय के साथ, 'गौण' मानदंडों की पर्याप्त मात्रा सृजित की गई है। इनमें से सबसे उल्लेखनीय संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के कुछ संकल्प हैं जो संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्यों के लिए बाध्यकारी हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्राथमिक स्रोतों से भिन्न है, क्योंकि गौण नियमों की बाध्यकारी प्रकृति उन संधियों से व्युत्पन्न होती है, जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का निर्माण किया है।

एक अनुक्रम

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय संविधि के अनुच्छेद 38(1) के प्रारूपकों ने अलग–अलग स्रोतों के मध्य कोई पदानुक्रम बनाने का आशय नहीं किया, जबकि उल्लेखित पदानुक्रम में केवल तार्किक पदानुक्रम का वर्णन किया गया जिसमें ये स्रोत न्यायाधीश के मस्तिष्क में आएंगे। तथापि, मानदंडों के मध्य संघर्ष को सुलझाने के कई तरीके हैं। जब दो मानदंड संघर्षरत हों, तब यह निर्धारित करने का एक तरीका, कि कौन से मानदंड को दूसरे का स्थान लेना चाहिए, विधि के सामान्य सिद्धांतों का उल्लेख करना है, जैसे कि यह नियम कि एक अधिक विशिष्ट मानदंड एक अधिक सामान्य मानदंड का स्थान लेता है।

पदानुक्रम का एक कथित स्रोत जस कोगेंस (jus cogens) मानदंड है– एक अनुल्लंघनीय (peremptory) मानदंड जो अन्य सभी मानदंडों को प्रतिस्थापित करता

है। तथापि ऐसा कोई सरल मानदंड नहीं है, जिसके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय विधि के एक सामान्य नियम में जस कोजेंस के लक्षण होने की पहचान की जा सके। वे मानदंड जिन्हें ज्यूस कॉगेंस के रूप में मान्यता दी गई है तथा जिनके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्य नियमों को, उनके साथ संघर्ष में आने पर, प्रतिस्थापित कर दिया जाता है, के अंतर्गत यातना–निषेध तथा नरसंहार–निषेध सम्मिलित है।

टिप्पणी

1.2.3 अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय

अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय या अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति उन इकाइयों को कहा जाता है जो अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व को धारण करते हैं। अतः अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व को धारण करना यह निश्चित करने में निर्णायक होता है कि कौन–सी इकाई अंतर्राष्ट्रीय विधि का विषय है। किसी इकाई को अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व उस समय प्राप्त होता है जब वह अंतर्राष्ट्रीय अधिकारों तथा कर्तव्यों को धारण करने में सक्षम होती है तथा उसमें अंतर्राष्ट्रीय दावा करके अपने अधिकारों को बनाए रखने की क्षमता होती है।

ओपन हाइम के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति वह है, जो अंतर्राष्ट्रीय विधि में विधिक व्यक्तित्व धारण करता है अर्थात वह जो अंतर्राष्ट्रीय विधि का इस प्रकार विषय है कि वह स्वयं अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा प्रदत्त अधिकारों, कर्तव्यों तथा शक्तियों का उपयोग कर सके और या तो प्रत्यक्ष या अन्य राज्य (जैसे–संरक्षित राज्य के मामले में) के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति के रूप में कार्य करने की क्षमता धारण करता हो। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति की अवधारणा अंतर्राष्ट्रीय विधि से उत्पन्न हुई है। इस प्रश्न का एकमात्र निर्धारण अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों द्वारा किया जा सकता है कि वे कौन सी इकाइयां हैं, जो उक्त तीनों क्षमताओं का प्रयोग करके अपने अधिकारों को बनाए रखने की क्षमता धारण करती हैं। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय विधि स्वयं विभिन्न इकाइयों का चयन करती है, जिन्हें वह विधिक कार्य को विन्यास करके अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्रदान करती है।

अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्य सभी अधिकारों तथा कर्तव्यों को धारण करना किसी इकाई के लिए आवश्यक नहीं है। यदि कोई इकाई केवल कुछ कार्यों या केवल एक ही कार्य का अनुपालन करने में सक्षम है जैसा कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों द्वारा प्रावधान किया गया है तो उस इकाई को अंतर्राष्ट्रीय विधि का विषय होने के लिए क्षमता धारण करने वाला माना जाएगा। ऐसी इकाइयों के बारे में अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि वे निर्बंधित या सीमित क्षमता धारण करती हैं। ये इकाइयां असीमित या पूर्ण क्षमता रखने वाली इकाइयों से भिन्न होती हैं जो अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा दिए गए अधिकतर अधिकारों व कर्तव्यों को धारण करती हैं। यह कहना अनुचित होगा कि सीमित क्षमता धारण करने वाली इकाइयों का अंतर्राष्ट्रीय विधि में कोई व्यक्तित्व नहीं है, क्योंकि इनमें अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्य संपूर्ण अधिकारों तथा कर्तव्यों के अनुपालन की क्षमता नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय विधि गतिशील होने के कारण वर्तमान समय में कुछ ऐसी इकाइयों को भी अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व धारण करने वाला मानती है जो किसी समय अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व धारण नहीं करती थीं। भविष्य में कुछ अन्य इकाइयों को भी अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त हो सकता है यदि वे उस क्षमता को अर्जित कर लेती हैं।

इस प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है कि इसकी किस इकाई को अंतर्राष्ट्रीय विधि का विषय माना जाए। इस मतभेद के कारण तीन प्रमुख सिद्धांतों की उत्पत्ति हुई है, जो इस प्रकार हैं–

टिप्पणी

(क) यथार्थवादी सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार केवल राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि का विषय है। यह अंतर्राष्ट्रीय विधि की परंपरागत अवधारणा है जिसमें केवल प्रभुत्व संपन्न राज्यों को अंतर्राष्ट्रीय विधि का विषय माना जाता था। इस सिद्धांत के अनुसार केवल राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन अधिकारों तथा बाद में नेताओं के धारक होते हैं। इस सिद्धांत को यथार्थवादी सिद्धांत कहा जाता है। इस सिद्धांत के प्रतिपादकों की कल्पना है कि इकाई के रूप में राज्य जो व्यक्ति विधिक रूप से निवेश करने योग्य हैं, उनको गठित करता है। राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हैं जबकि व्यक्ति अंतर्राष्ट्रीय विधि के लक्ष्य हैं। इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति को अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत न तो अधिकार और न ही कर्तव्य प्राप्त हैं। यदि उनके पास कोई अधिकार है तो उसका दावा केवल राज्यों के माध्यम से ही किया जा सकता है।

इस सिद्धांत की आलोचना आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि के विशेषज्ञों द्वारा प्रमुख रूप से इस आधार पर की गई है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों द्वारा कथित तौर पर अधिकार तथा कर्तव्य राज्यों के अतिरिक्त अन्य इकाइयों को भी दिए गए हैं, इसलिए उन्हें भी अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त है। यह कहना कि केवल राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हैं, अब इसका कोई अर्थ नहीं है। निसंदेह यथार्थवादियों का सिद्धांत केवल उस समय तक सही था जब तक अन्य इकाइयों को अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन अधिकारों तथा कर्तव्यों को धारण करने की क्षमता को प्रदान नहीं किया गया था। वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय विधि केवल राज्यों तक ही सीमित नहीं है। आर्थिक तथा सामाजिक कल्याण में विधि के विस्तार ने अंतर्राष्ट्रीय विधि व्यवस्था में भाग लेने वालों की संख्या में वृद्धि की है।

(ख) कल्पित सिद्धांत

यह सिद्धांत यथार्थवादी सिद्धांत के विपरीत है। इस सिद्धांत के अनुसार केवल व्यक्ति ही अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय होते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि राज्यों के पास अपनी इच्छा को प्रकट करने की क्षमता नहीं है। राज्य व्यक्तियों के माध्यम से कार्य करने वाली अमूर्त संरचना है। राष्ट्रीय विधि तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों का उद्देश्य मानव के लिए है। राष्ट्रीय विधि प्रत्यक्ष रूप से मानव पर बाध्यकारी होती है जबकि अंतर्राष्ट्रीय विधि अप्रत्यक्ष रूप से अर्थात राज्यों के माध्यम से बाध्यकारी होती है। यह सिद्धांत उस परिकल्पना पर आधारित है कि राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य उन व्यक्तियों के अधिकार तथा कर्तव्य होते हैं जिनसे में यह घटित होता है। इसलिए अंततोगत्वा व्यक्ति ही अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय होते हैं। इस सिद्धांत को कल्पित सिद्धांत इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इसके अनुसार राज्य को कल्पना मात्र माना गया है।

(ग) क्रियात्मक सिद्धांत

यथार्थवादी सिद्धांत में केवल राज्यों को अंतर्राष्ट्रीय विधि का विषय माना गया है जबकि कल्पित सिद्धांत में केवल व्यक्तियों को इसका विषय माना गया है। कल्पित सिद्धांत में

टिप्पणी

व्यक्तियों को अंतर्राष्ट्रीय विधि का विषय इस कारण नहीं माना गया है कि उन्हें अंतर्राष्ट्रीय विधि अधिकार तथा कर्तव्य प्रदान करता है बल्कि इस कल्पना के कारण कि राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य उन व्यक्तियों के अधिकार तथा कर्तव्य हैं जो राज्यों को गठित करते हैं। इस सिद्धांत में पुनःयह निहित है कि केवल राज्य ही अधिकार तथा कर्तव्य को धारण करने में समर्थ हैं। ऐसा केवल इस परिकल्पना के कारण है कि व्यक्तियों को अंतर्राष्ट्रीय विधि का विषय माना गया है। यदि इन दोनों सिद्धांतों का वर्तमान समय में विश्लेषण किया जाए तो दोनों ही सिद्धांत सही नहीं होंगे। क्रियात्मक यानी व्यावहारिक सिद्धांत इसी कारण प्रत्यक्ष हुआ है।

यह सत्य है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि अधिकतर अधिकारों तथा कर्तव्यों को राज्य के प्रति निर्दिष्ट करता है लेकिन पिछले 70 वर्षों में इस में मूलभूत परिवर्तन हुआ है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में कई अन्य नई इकाइयां शामिल हुई हैं। राज्यों के अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय संगठनों तथा व्यक्तियों को अधिकार तथा कर्तव्य प्रदान किए गए हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठन विधिक कार्य करते हैं। उनका अपना विधिक व्यक्तित्व होता है।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कथित किया है कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हैं और वे अंतर्राष्ट्रीय विधि के साधारण नियमों के द्वारा उनके संविधान के अधीन या उन अंतर्राष्ट्रीय करारों के अधीन हैं, जिनके वे पक्षकार हैं। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने गठित किया है कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हैं जो राज्यों के समान साधारण क्षमता नहीं धारण करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को विशिष्टता के सिद्धांत द्वारा शासित किया जाता है, अर्थात उन्हें उन राज्यों द्वारा विहित किया जाता है जो उन्हें शक्तियां देते हैं।

यही व्यक्तियों के साथ भी है। उन्हें अंतर्राष्ट्रीय विधि में कुछ अधिकार तथा कर्तव्य प्रदान किए गए हैं। यदि वे अपने कर्तव्यों का अनुपालन करने में असफल रहते हैं तो इसके लिए दंड का प्रावधान भी है। पुनः कुछ मामलों में उन्हें अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा दिए गए अधिकारों का दावा करने का भी अधिकार प्रदान किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वे सभी विधिक या अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति हैं फिर भी यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत राज्य को पूर्ण अधिकार तथा कर्तव्य प्रदान किए गए हैं इसलिए उनके पास असीमित व्यक्तित्व है। अर्थात उनके पास पूर्ण क्षमता है और वे अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्राथमिक विषय हैं जबकि अंतर्राष्ट्रीय संगठन तथा व्यक्ति निर्बंधित व्यक्तित्व धारण करते हैं क्योंकि वे केवल कुछ अधिकारों एवं कर्तव्यों का पालन करते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व केवल उन को प्रदान किया जाता है जो इसके अंतर्गत विधिक कार्यों का पालन करने में सक्षम हैं।

अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत अधिकारों तथा कर्तव्यों को धारण करने की क्षमता के आधार पर इसके विषय के रूप में इकाई को मान्यता देने का सिद्धांत उचित प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों ने जिन्होंने पहले यह मत व्यक्त किया था कि केवल राज्य ही अनन्य रूप से अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हैं, उन्होंने अब अपने पूर्व मत बदल दिए हैं। वे राज्यों के अतिरिक्त अन्य इकाइयों को अंतर्राष्ट्रीय विधि का विषय मानने लगे हैं। उदाहरणार्थ जिन्होंने अपनी पुस्तक के प्रथम तीन संस्करणों तक यह मत व्यक्त किया था कि केवल राज्य ही अनन्य रूप से अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हैं, उन्होंने बाद के संस्करणों में अपना मत बदल दिया। नए संस्करण में उन्होंने यह कहा है कि यद्यपि

राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के मुख्य विषय हैं फिर भी व्यक्तियों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को इस प्रकार माना जा सकता है जैसे उन्हें प्रत्यक्ष अंतर्राष्ट्रीय अधिकार तथा कर्तव्य प्रदान किए गए हों।

मूल व्यक्तित्व तथा व्युत्पन्न व्यक्तित्व

टिप्पणी

अन्य इकाइयों जैसे व्यक्तियों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को स्वयं राज्यों द्वारा अधिकतर मामलों में अधिकार तथा कर्तव्य प्रदान किए गए हैं। इसलिए ये राज्यों के ही अधीन हैं। ये उस समय अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय के रूप में अस्तित्व में रहने से वंचित हो जाएंगे जब राज्य इनसे छुटकारा पाने का निश्चय करेंगे। इसका अर्थ है कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन तथा व्यक्ति इस अर्थ में उत्पन्न विषय हैं क्योंकि ये अन्य विषयों के औपचारिक निर्णय के द्वारा अपना अस्तित्व ग्रहण करते हैं। राज्यों को मूल विषय कहा जा सकता है क्योंकि वे विद्यमान विषयों के किसी औपचारिक मिनिस्टर से स्वतंत्र हैं।

उपरोक्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि में दो प्रकार के व्यक्तित्व हैं– मूल व्यक्तित्व तथा व्युत्पन्न व्यक्तित्व। मूल व्यक्तित्व राज्य से संबंधित होता है। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि किसने अधिकार तथा कर्तव्य प्रदान किया है। महत्वपूर्ण यह है कि यदि लोग अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत अधिकार व कर्तव्य का अनुपालन करने में समर्थ हैं तो वे अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय माने जाएंगे। ऐसे अधिकार तथा कर्तव्य उनको या तो अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के कारण या फिर अंतर्राष्ट्रीय संधियों के निर्माण के कारण प्राप्त हो सकते हैं। यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय के रूप में अंतर्राष्ट्रीय संगठन अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्य विषयों जैसे राज्यों से भिन्न हैं।

अंतर्राष्ट्रीय संगठन राज्य क्षेत्र तथा जनसंख्या को धारण नहीं करते। इसलिए वे राज्य क्षेत्रीय सर्वोच्चता तथा प्रभु क्षमता को धारण नहीं करते, लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि विधि की प्रणाली में सभी इकाइयां एक समान हों। ये प्रकृति में एक–दूसरे से भिन्न भी हो सकती हैं। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने निर्णय दिया था कि किसी विधिक प्रणाली में विधि के विषय आवश्यक रूप से अपनी प्रकृति में या अपने अधिकारों में समान नहीं होते तथा उनकी प्रकृति समुदाय की आवश्यकताओं पर आधारित होती है। अपने संपूर्ण इतिहास में अंतर्राष्ट्रीय विधि का विकास समय अनुसार उसकी आवश्यकताओं द्वारा प्रभावित हुआ है। राज्यों के सामूहिक क्रियाकलापों ने कई इकाइयों को जोड़ा नहीं है। न्यायालय की राय में संगठन कार्य तथा अधिकारों का प्रयोग करने तथा उपभोग करने के लिए आश्रित हैं। ये वास्तव में प्रयोग तथा उपभोग कर रहे हैं। केवल अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व की व्यापकता मात्र को या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने की क्षमता को धारण करने के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है कि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति है। इसके बावजूद कि यह राज्य नहीं है। इसका अर्थ यह है कि संयुक्त राष्ट्र राष्ट्रीय विधि का विषय है तथा यह अंतर्राष्ट्रीय अधिकारों तथा कर्तव्यों को धारण करने में सक्षम है। इसमें अंतर्राष्ट्रीय दावा करके अपने अधिकारों को बनाए रखने की क्षमता है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि विषयों की स्थिति के अनुसार काफी परिवर्तित हो गई है। मूल रूप से प्रभुत्व संपन्न राज्य समुदाय में एकमात्र कर्ता है।

वर्तमान शताब्दी में नई गैर राज्य इकाइयों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों तथा संस्थाओं और व्यक्तियों को अंतर्राष्ट्रीय विधिक विषयों की स्थिति तथा श्रेणी प्रदान की गई है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. इनमें से क्या अंतर्राष्ट्रीय विधि को आधार प्रदान करने वाला संयोजन नहीं है?
   (क) पेरिस घोषणा (ख) वियना ऐक्ट
   (ग) इंडिया ऐक्ट (घ) लोकार्नो संधि
2. राज्यों के बीच विवाद का केंद्र बनने वाली संधियों के विषय किन प्रश्नों के आसपास घूमते हैं?
   (क) निर्वाचन के प्रश्नों के (ख) भौगोलिक सीमा के प्रश्नों के
   (ग) विशेषाधिकार के प्रश्नों के (घ) स्वायत्तता के प्रश्नों के

1.3 अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि

अंतर्राष्ट्रीय विधि 'राज्यों के संबंधों में तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्य विषयों पर' लागू होती है, जबकि राष्ट्रीय या राज्य विधि, जिसको नगरपालिका विधि भी कहा जाता है, राज्य के अंतर्गत व्यक्तियों तथा उन निगमित इकाइयों पर लागू होती है जिन को उसके अंतर्गत अधिकार तथा कर्तव्य प्राप्त होते हैं। ऐसा लगता है कि इन दोनों प्रणालियों में शायद ही कोई संबंध हो क्योंकि ये दो भिन्न विधिक प्रणालियों का गठन करती हैं जिनमें से प्रत्येक अपने क्षेत्र में प्रभावी है। ये विभिन्न न्यायालयों द्वारा अपने विषयों पर स्पष्ट रूप से लागू की जाती हैं किंतु ऐसा नहीं है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि के नियमों के बीच संबंध का प्रश्न विधिक सिद्धांत के अत्यधिक विवादास्पद प्रश्नों में से एक है। मूलतः दोनों कानूनों के बीच संबंध का प्रश्न सैद्धांतिक महत्व का था। अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि विधिक व्यवस्था के अंग हैं या ये विधि की दो विभिन्न प्रणालियां हैं? यह प्रश्न सहज स्वाभाविक है किंतु वर्तमान समय में इस प्रश्न का व्यावहारिक महत्व हो गया है। जब अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि के नियमों के बीच विरोध होता है तब न्यायालय को किसी निष्कर्ष पर पहुंचने में कठिनाई होती है।

अंतर्राष्ट्रीय अभिकरण के सम्मुख प्रमुख प्रश्न यह उठता है कि क्या अंतर्राष्ट्रीय विधि राष्ट्रीय विधि पर प्रमुखता प्राप्त करती है या राष्ट्रीय विधि को अंतर्राष्ट्रीय विधि पर प्रमुखता प्राप्त है? यदि यह विवाद राष्ट्रीय न्यायालय के सामने उत्पन्न होता है तो उत्तर इस पर निर्भर करता है कि न्यायालय किस सीमा तक राज्य की संवैधानिक विधि को अंतर्राष्ट्रीय विधि लागू करने के लिए निर्देश देता है।

प्रायः उन सभी मामलों में राष्ट्रीय न्यायालय को विनिश्चय करने में कठिनाई उत्पन्न होती है जिनमें अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों को लागू करने से संबंधित प्रश्न आता है। उदाहरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा प्रदान की गई राजनयिक उन्मुक्ति उस समय तक बनी रहेगी जब तक उन्हें राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्यता नहीं दी जाती है।

प्रत्यर्पण के नियम राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा ही लागू किए जाते हैं। वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय विधि राष्ट्रीय विधिक प्रणाली के सहयोग के बिना कार्य कर ही नहीं सकती। दोनों के संबंध आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि में और भी महत्वपूर्ण हो गए हैं, क्योंकि व्यक्तियों के मामले जो राष्ट्रीय न्यायालय के सम्मुख आते हैं वे भी अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हो गए हैं।

टिप्पणी

1.3.1 अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय विधि के मध्य संबंध पर सिद्धांत

अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि के संबंध के प्रश्न पर विधिविदों के मतों में भिन्नता होने के कारण कई सिद्धांत विकसित हुए हैं। इनमें से दो प्रमुख निम्न प्रकार हैं–

(अ) द्वैतवादी सिद्धांत

द्वैतवादी सिद्धांत के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा विभिन्न राज्यों की राष्ट्रीय विधि दो भिन्न तथा स्वयंपूर्ण विधिक प्रणालियां हैं। पृथक प्रणाली होने के कारण अंतर्राष्ट्रीय विधि कुछ समय तक राज्य की आंतरिक विधि का भाग नहीं होती, जब तक विशिष्ट मामलों में अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम राज्य के अंतर्गत लागू नहीं कर लिए जाते। ऐसा राज्य की आंतरिक विधि द्वारा उनके अभिकरण के कारण होता है। अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम आंतरिक विधि के रूप में लागू होते हैं न कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूप में। यह मत एक प्रणाली के ऊपर दूसरे की सर्वोच्चता के किसी प्रश्न का निषेध करता है क्योंकि इनके प्रवर्तन का क्षेत्र समान नहीं है तथा प्रत्येक अपने क्षेत्र में सर्वोच्च है। राष्ट्रीय विधि को राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा लागू किया जाता है जबकि अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा अभिकरण अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों को लागू करते हैं।

द्वैतवादी मत को 1899 में प्रसिद्ध जर्मन विद्वान ट्रिपेल द्वारा प्रतिपादित किया गया था। बाद में इस सिद्धांत का अनुसरण इटालियन विधि शास्त्री एन्जीलोट्टी द्वारा किया गया। स्टार्क के अनुसार सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि दोनों को ही पूर्णतया दो भिन्न विधिक प्रणालियों की तरह समझता है, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति मूल रूप से राष्ट्रीय विधि की प्रकृति से भिन्न है।

द्वैतवादी विद्वानों के मत में विधि की प्रणालियां निम्नलिखित आधारों पर एक–दूसरे से भिन्न हैं–

- **स्रोतों के संबंध में**

द्वैतवादियों के अनुसार राष्ट्रीय विधि का स्रोत संबद्ध राज्य की सीमाओं के अंतर्गत विकसित रूढ़ियां तथा प्रभुत्व संपन्न राज्यों द्वारा अधिनियमित विधान है, जबकि अंतर्राष्ट्रीय विधि का स्रोत राज्यों के मध्य विकसित रूढ़ियां तथा राज्यों द्वारा बनाई गई विधि निर्माणकारी संधियां हैं।

- **विषयों के संबंध में**

द्वैतवादी इस मत के हैं कि अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय विधि के विषय एक–दूसरे से भिन्न हैं। राष्ट्रीय विधि व्यक्तियों तथा निगमित इकाइयों के बीच संबंधों को तथा राज्य एवं व्यक्तियों के मध्य संबंधों को विनियमित करती है, जबकि अंतर्राष्ट्रीय विधि प्रमुख रूप से राज्यों के मध्य संबंधों को विनियमित करती है।

टिप्पणी

• विधि के तत्व के संबंध में

विधि की दोनों प्रणालियों के तत्व भी भिन्न हैं। राष्ट्रीय विधि प्रभुत्व संपन्न राज्यों द्वारा बनाई गई होती है जो व्यक्तियों पर लागू होती है, जबकि अंतर्राष्ट्रीय विधि प्रभुत्व संपन्न राज्यों के ऊपर नहीं बल्कि उनके मध्य की विधि है। अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम स्वयं इसके विषयों द्वारा, अर्थात राज्यों के अनुबंध के माध्यम से सृजित किए जाते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय विधि में प्रभुत्व संपन्न राज्यों द्वारा बनाए गए नियम उनके विषयों पर लागू होते हैं, किंतु अंतर्राष्ट्रीय विधि स्वयं प्रभुत्व संपन्न राज्यों पर लागू होती है।

• सिद्धांतों के संबंध में

एनजी लोटी का मत है कि राष्ट्रीय विधि का अनुपालन इसलिए किया जाता है क्योंकि ये राज्य विधानमंडल के सिद्धांत होते हैं जबकि अंतर्राष्ट्रीय विधि का अनुपालन संविदा सर्वथा पालनीय के सिद्धांत के कारण किया जाता है। इस प्रकार राष्ट्रीय विधि में विधिक पवित्रता है जबकि अंतर्राष्ट्रीय विधि का अनुसरण इसलिए किया जाता है क्योंकि राजनीतिक रूप से उसका अनुपालन करने की बाध्यता होती है।

• विषय–वस्तु की गतिशीलता के संबंध में

विधि की दोनों प्रणालियों की विषय–वस्तु भी भिन्न हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि की विषय–वस्तु सदैव गतिशील रही है। जबकि राष्ट्रीय विधि की विषय–वस्तु सीमित है। वर्ष 1945 के बाद से अंतर्राष्ट्रीय विधि विभिन्न क्षेत्रों में अत्यधिक विस्तृत हुई है, जबकि राष्ट्रीय विधि की विषय–वस्तु का क्षेत्र सीमित ही रहा है।

उपर्युक्त बातों को यदि ध्यान से देखा जाए तो प्रतीत होता है कि दोनों ही प्रणालियां अलग–अलग क्षेत्रों में विभिन्न रूप से लागू की जाती हैं। ये दोनों प्रणालियां इस प्रकार से भिन्न हैं कि इन दोनों के मध्य कोई विरोध संभव नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा कभी लागू नहीं किए जा सकते हैं। राष्ट्रीय न्यायालय अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों को तब लागू करेंगे जब उन्हें राष्ट्रीय विधि में शामिल कर लिया जाएगा।

अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम अपने से उस समय परिवर्तन में लाए जा सकते हैं जबकि राष्ट्रीय विधि में कोई स्पष्ट विरोधाभास नहीं होता। फलस्वरुप जब एक बार यह स्थापित हो जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि का नियम विद्यमान है और वर्तमान मामले में सुसंगत है जो निगमन के सिद्धांत के अंतर्गत है; तब अंतर्राष्ट्रीय विधि नियम अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष स्वतः लागू होगा। राष्ट्रीय न्यायालय अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों को उस समय भी लागू करेंगे जब वे विवाद में राष्ट्रीय विधि में परिवर्तित हो जाते हैं, अर्थात जब वे अभिव्यक्त रूप से राज्य द्वारा ग्रहण किए जाते हैं। अतः राष्ट्रीय न्यायालय अंतर्राष्ट्रीय विधि का विशिष्ट नियम उस समय तक नहीं लागू कर सकता जब तक कि वह विशिष्ट नियम राष्ट्रीय विधि में विधायन द्वारा उचित रूप से अंतरित न किया गया हो।

अंतर्राष्ट्रीय विधि का राष्ट्रीय विधि में रूपांतरण राज्य के संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार ही किया जाता है। इसलिए राज्यों में रूपांतरण की प्रक्रिया भिन्न–भिन्न होती है। समावेशन तथा रूपांतरण के मध्य यह भेद है कि समावेशन अंतर्राष्ट्रीय विधि को

राष्ट्रीय विधि में अंगीकार करता है क्योंकि यह अंतर्राष्ट्रीय विधि होती है जबकि रूपांतरण संबंधित राज्य की ओर से अपनी इच्छा से किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त समावेशन से विवक्षित है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम राष्ट्रीय विधि के नियम हैं जब तक कि वे बहिष्कृत न हों। रूपांतरण से यह अपेक्षित है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम केवल विधि के भाग हैं यदि वे राष्ट्रीय विधि में सम्मिलित किए गए हैं।

टिप्पणी

यह ध्यान देने की बात है कि समावेशन तथा रूपांतरण अंतर्राष्ट्रीय विधि के लागू करने से संबंधित सिद्धांत हैं। इन दोनों प्रणालियों को अंतर्राष्ट्रीय विधि व राष्ट्रीय विधि के संबंध का सिद्धांत नहीं कहा जा सकता। यह निर्णय करने का दायित्व प्रत्येक राज्य का है कि अंतर्राष्ट्रीय संधियों को राष्ट्रीय विधि में किस प्रकार लागू किया जाए।

द्वैतवादियों के अनुसार राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि के मध्य विरोध के मामले में राष्ट्रीय विधि को लागू किया जाएगा। इस प्रकार इस मत के अनुसार राष्ट्रीय विधि की अंतर्राष्ट्रीय विधि पर प्रमुखता होगी। जब अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय या अभिकरण के सम्मुख कोई मामला आता है तब वह दोनों के मध्य विरोध की स्थिति में राष्ट्रीय विधि की अपेक्षा अंतर्राष्ट्रीय विधि को लागू करेगा। ग्रीको एंड बुल्गारियन कम्युनिटीज केस (Greco & Bulgarian Communities Case) में स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि अंतर्राष्ट्रीय विधि का सामान्यतः स्वीकृत सिद्धांत यह है कि जो राज्य संधि के संविदाकारी पक्षकार हैं, उनके मध्य संबंध में राष्ट्रीय विधि के प्रावधान संधि के प्रावधानों पर अभिभावी नहीं हो सकते। संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय अनुबंध, 1947 (U.N. Headquarters Agreement, 1947) की धारा 21 के अधीन मध्यस्थता करने की बाध्यताओं की प्रयोज्यता पर 26 अप्रैल, 1988 के अपने सलाहकारी मत में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने कहा कि यह अंतर्राष्ट्रीय विधि का मूल सिद्धांत है कि यह विधि राष्ट्रीय विधि पर प्रभावी होती है।

आलोचना

इस सिद्धांत की कड़ी आलोचना की गई है। इस मत के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि एक–दूसरे से भिन्न हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि राष्ट्रीय विधि का भाग उस समय तक नहीं हो सकती जब तक कि उसे अपेक्षित अधिनियमिति के माध्यम से विनिर्दिष्ट रूप से अधिकृत या रूपांतरित नहीं कर दिया जाता। यह सही नहीं है क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय विधि के कुछ मूल सिद्धांत राज्यों पर उनकी इच्छा के बिना भी बाध्यकारी होते हैं। यह कहना भी सही नहीं है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि केवल राज्यों के संबंधों को विनियमित करती है। यदि व्यक्ति दोषपूर्ण कार्य करते हैं तो उन्हें अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुसार दंड दिया जा सकता है। निसंदेह संविदा सर्वथा पालनीय अंतर्राष्ट्रीय विधि का महत्वपूर्ण सिद्धांत है किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि यही एक ऐसा सिद्धांत है जिस पर अंतर्राष्ट्रीय विधि आधारित है। कुछ नियम ऐसे भी हैं जो राज्यों पर अवैध रूप से बाध्यकारी होते हैं।

(ब) एकात्मक सिद्धांत

एकात्मक सिद्धांत को 18वीं शताब्दी में दो जर्मन विद्वानों मोसर (1701–85) तथा मार्टेंस (1756–1821) द्वारा प्रतिपादित किया गया था। लेकिन 19वीं शताब्दी के पहले तक उनकी संकल्पना को पूर्ण विकसित सिद्धांत के रूप में सविस्तार प्रतिपादित नहीं किया

गया था। इस सिद्धांत के अनुसार सभी विधि केवल एक ही विधिक प्रणाली के रूप में होती हैं, अर्थात घरेलू विधि व्यवस्था। इस सिद्धांत के समर्थक इस बात से इनकार करते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय विधि एक भिन्न तथा विधि का स्वायत्त निकाय है।

टिप्पणी

इस सिद्धांत के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि को राष्ट्रीय विधि में सम्मिलित करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसे स्वयं राज्यों द्वारा बनाया गया है। बाद में 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में एकात्मक सिद्धांत का विकास ऑस्ट्रियाई विधिशास्त्री कैल्सन द्वारा किया गया।

एकात्मक सिद्धांत के अनुसार राष्ट्रीय विधि तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि दोनों ही मानव समुदाय की आवश्यकता को पूरा करने वाली एक सार्वभौमिक विधिक प्रणाली के भाग हैं। इसलिए ये दोनों ही विधि की 2 जातियां हैं। इस सिद्धांत के अनुसार सभी कानूनों का निर्माण केवल व्यक्तियों के लिए ही किया जाता है। राष्ट्रीय विधि उन पर प्रत्यक्ष रूप से बाध्यकारी होती है जबकि अंतर्राष्ट्रीय विधि उन पर राज्यों के माध्यम से बाध्यकारी होती है। दोनों कानूनों का उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों में मानवीय समस्याओं को हल करना है। इसलिए ये दोनों एक–दूसरे से संबंधित हैं। परिणामस्वरूप, अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा लागू किए जा सकते हैं।

एकात्मक सिद्धांत के प्रवर्तक द्वैत वादियों द्वारा अधिकृत स्रोतों, तत्वों तथा विषयों के संबंध में दोनों प्रणालियों के मध्य जो सहमत नहीं हैं उनके अनुसार दोनों प्रणालियों के विषय अंततः व्यक्ति ही हैं। यदि कोई एकात्मक सिद्धांत के प्रवर्तक ही से पूछता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि राज्यों के संबंधों को विनियमित करती है या व्यक्तियों के संबंधों को तो उनका कहना है कि राज्य व्यक्तियों से गठित होता है इसलिए अंतर्राष्ट्रीय विधि अंत में राष्ट्रीय विधि की तरह केवल व्यक्तियों पर ही बाध्यकारी होती है। दूसरे विधि आवश्यक रूप से समादेश है जो विधि के विषय पर बाध्यकारी है। तीसरे एकात्मक सिद्धांत के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि की एकल संकल्पना को प्रकट मानना चाहिए क्योंकि इन में आवश्यक रूप से कोई अंतर नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि के संबंध में दोनों के सिद्धांत काफी समय से प्रचलित हैं। प्रश्न उठता है कि दोनों सिद्धांतों में से कौन–सा सिद्धांत अधिक उचित है? यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि दोनों में से कोई भी सिद्धांत अपने में पूर्ण नहीं है। राज्यों के अभ्यास से प्रतीत होता है कि कई अवसरों पर अंतर्राष्ट्रीय विधि को प्राथमिकता दी जाती है और कई अवसरों पर राष्ट्रीय विधि को लागू किया जाता है।

यदि कोई मामला अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष आता है तो उसमें अंतर्राष्ट्रीय विधि को लागू किया जाता है और यदि कोई मामला राष्ट्रीय न्यायालय में आता है तो उसमें राष्ट्रीय विधि को लागू किया जाता है। यदि राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष कोई ऐसा मामला आता है जिसमें राष्ट्रीय विधि और अंतर्राष्ट्रीय विधि से संबंधित तथ्य होता है तो राष्ट्रीय विधि को ही प्राथमिकता दी जाती है। यह कहा जा सकता है कि यदि राष्ट्रीय विधि और अंतर्राष्ट्रीय विधि एक–दूसरे के प्रति पूर्ण होती हैं और प्रस्तुत किए गए किसी मामले में निर्णय करने की अपेक्षा की जाती है तब विरोधाभास का निबटारा किया जाना चाहिए। ऐसे अवसरों पर दोनों ही कानूनों में समन्वय करने की अपेक्षा की

जाती है क्योंकि दोनों ही विधिक व्यवस्थाएं व्यक्तियों की समस्याओं को हल करने के लिए बनी हैं।

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि इस अर्थ में स्वायत्त हैं कि वे मानव आचरण के विभिन्न पहलुओं से संबंध रखती हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों में से कौन अधिक उचित है? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि कई अवसर पर अंतर्राष्ट्रीय विधि के साथ निकासी जाती है और कई अवसर पर राष्ट्रीय विधि को लागू किया जाता है। कई अवसरों पर दोनों ही कानूनों में समन्वय करने की अपेक्षा की जाती है क्योंकि दोनों ही विधिक व्यवस्थाएं व्यक्तियों की समस्याओं को हल करने के लिए बनी हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि इस अर्थ में स्वायत्त हैं कि ये मानव आचरण के भिन्न–भिन्न पहलुओं से संबंध रखती हैं फिर भी दोनों का ही लक्ष्य मूल रूप से मानव कल्याण है। इसलिए दोनों प्रणालियों में समन्वय कार्य होना चाहिए तथा परस्पर विरोधी नियमों का अस्तित्व नहीं होना चाहिए। जहां राष्ट्रीय विधि कुछ कहती है और अंतर्राष्ट्रीय विधि उससे भिन्न कहती है, वहां विरोधाभास हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में विरोधाभास का निबटारा किया जाना चाहिए। जहां तक संभव हो दो परस्पर विरोधी नियमों में समन्वय स्थापित करना चाहिए। अतः सभी राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय न्यायालयों के न्यायाधीशों का लक्ष्य एक को दूसरे से श्रेष्ठ मानने की अपेक्षा दोनों प्रणालियों में समन्वय स्थापित करने का होना चाहिए। विधि की दोनों प्रणालियां दो पहियों के समान हैं जो एक दूरी पर चक्कर काटते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि दोनों ही मानव के लिए निर्मित किए गए हैं इसलिए प्राथमिक रूप से दोनों में कोई विरोध नहीं होना चाहिए तथा यदि परस्पर विरोधी नियम प्रतीत होते हैं तो उनमें समन्वय किया जाना चाहिए। दोनों ही कानूनों में समन्वय की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय विधि के कई प्रावधानों का असर राष्ट्रीय विधि पर पड़ता है। उसके नियम धीरे–धीरे राज्यों में राष्ट्रीय नियम बन गए हैं।

यद्यपि कई अवसरों पर अंतर्राष्ट्रीय विधि और राष्ट्रीय विधि में समन्वय करना कठिन हो जाता है किंतु दोनों में समन्वयीकरण किया जाना चाहिए। दोनों नियमों का समन्वयीकरण मुख्यतः दो प्रकार से संभव है। प्रथमतः,न्यायाधीशों का कर्तव्य है कि वे अपने विधिक तर्क द्वारा विरोध को समाप्त करें तथा दूसरे, राज्य की विधिक प्रणाली में अधिनियमितियों को इस प्रकार निर्मित करें, जिससे कि वे अंतर्राष्ट्रीय विधि के विद्यमान नियमों के प्रतिकूल न हों। यदि परस्पर विरोध अस्तित्व में हो तो उसमें ऐसा संशोधन किया जाना चाहिए जिससे वह समाप्त हो जाए।

1.3.2 अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय विधि के मध्य संबंधों के विषय पर राज्यों के व्यवहार

किसी भी राज्य के व्यवहार से यह प्रतीत होता है कि वह राज्य उस सिद्धांत का अनुसरण करता है जिसको वह स्वयं अपनी राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रणाली के अनुसार अधिक समुचित समझता है। अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय विधि को राज्यों द्वारा किस सीमा तक लागू किया जाता है, इस संबंध में राज्यों के व्यवहार भिन्न–भिन्न हैं।

राज्यों के कुछ मुख्य व्यवहार निम्न प्रकार हैं:–

टिप्पणी

• संयुक्त राज्य अमेरिका

अमेरिका में अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा संधियों को भिन्न–भिन्न रूपों में लागू किया जाता है। जहां तक अंतर्राष्ट्रीय विधि का संबंध है, अमेरिका में स्थिति अधिक स्पष्ट है। जिस अंतर्राष्ट्रीय विधि को सार्वभौमिक रूप से मान्यता प्रदान की गई है और जिसे संयुक्त राज्य की सम्मति प्राप्त हो गई है वह अमरीकी न्यायालय पर बाध्यकारी होती है तथा उसके द्वारा लागू की जाती है। ऐसा करने में न्यायालयों को मार्गदर्शन दिया जाता है या वैदेशिक संबंधों को प्रभावित करने वाले कुछ मामलों में सरकार की प्रशासनिक शाखा द्वारा न्यायालयों को जो सुझाव दिया जाता है, उनसे वे बाध्यकारी होते हैं। इससे संबंधित प्रश्न पर पॉकेट हवाना मामले में न्यायमूर्ति ग्रे ने निर्णय दिया था कि अंतर्राष्ट्रीय विधि हमारी विधि का भाग है जिसे न्यायालय द्वारा सुनिश्चित तथा लागू करना चाहिए। राष्ट्रीय विधि के रूप में अंतर्राष्ट्रीय विधि की मान्यता और भी स्पष्ट है। यदि इसे अन्य दृष्टिकोण से देखा जाए तो मैकलोड बनाम यूनाइटेड स्टेट्स में न्यायालय ने कहा था कि संविधि का अर्थान्वयन अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों की सीमाओं के अंतर्गत किया जाना चाहिए। इसका अनुपालन राष्ट्रों की शांति तथा मैत्री के लिए अत्यंत आवश्यक है किंतु यदि कोई विधि अस्तित्व में है जिसका अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम से विरोधाभास है तो अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम पर संविधि अभिभावी होगी। कई मामलों में अमरीकी न्यायालयों द्वारा कहा गया है कि बाद में बनाई गई स्पष्ट संविधियां रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि पर अभिभावी होंगी।

जहां तक संधियों का संबंध है संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के अनुच्छेद 6 का खंड 2 प्रावधान करता है कि सभी संधियां जो संयुक्त राज्य के प्राधिकार के अधीन की जाएंगी देश की सर्वोच्च विधि होगी। अनुच्छेद 01 खंड 10 प्रावधान करता है कि संधि निर्माण करने का अधिकार पूर्ण रूप से संघीय सरकार का है। संघीय सरकार संधियों का निर्धारण राज्यों के हस्तक्षेप के बिना कर सकती है।

कई मामलों में अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों को देश की विधि के भाग के रूप में अमेरिकी न्यायालय द्वारा लागू किया गया है। उदाहरणार्थ–द यूनाइटेड स्टेट्स बनाम स्मिथ, (1820); द सायोलिया, (1871); वाकर बनाम वायर्ड, (1872); पैकेट हवाना बनाम द लोला, (1970) के मामले।

• ग्रेट ब्रिटेन

ब्रिटेन में परिस्थितियां संयुक्त राज्य अमेरिका से कुछ भिन्न हैं। यहां अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा संधियों को भिन्न–भिन्न रूपों में लागू किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन में अंतर्राष्ट्रीय विधि के उन नियमों को देश की विधि के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिनको सार्वभौमिक रूप से मान्यता प्राप्त है या जिनको ग्रेट ब्रिटेन की सम्मति प्राप्त हो जाती है। वे नियम उसी समय लागू किए जाते हैं जब वे ब्रिटिश संसद के अधिनियम हों या अंतिम प्राधिकारी के पूर्व विनिश्चयों से असंगत न हों। सामान्य रूप से इस व्यवहार को समावेशन के सिद्धांत के रूप में जाना जाता है। यद्यपि यह सिद्धांत कई मामलों में लागू किया गया है, किंतु आर बनाम केन के मामले में न्यायमूर्ति कॉकबर्न ने इस सिद्धांत से भिन्न मत व्यक्त किया है। उनके अनुसार रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि देश की विधि

का भाग तभी बनेगी जब उसे स्पष्ट रूप से विधायन न्यायिक विनिश्चय या स्थापित प्रथा द्वारा अंगीकृत कर लिया गया हो। इस मामले में जो सिद्धांत बनाया गया है उसे रूपांतरण के सिद्धांत के नाम से जाना जाता है अर्थात न्यायालयों द्वारा रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि को लागू करने के पूर्व उसका इंग्लैंड की राष्ट्रीय विधि में रूपांतरित होना आवश्यक है।

टिप्पणी

बाद में 1905 में लॉर्ड अल्वरस्टोन ने वेस्ट रेंट सेंट्रल गोल्ड माइनिंग कंपनी बनाम आर में समावेशन के सिद्धांत की फिर से पुष्टि की। न्यायालय के समक्ष बाद में लाए गए कई मामलों में इसी सिद्धांत का अनुमोदन किया गया।

संधियों को लागू करने के विषय में ब्रिटिश व्यवहार प्रमुख रूप से संवैधानिक प्रावधानों पर आधारित है। कुछ संधियां न्यायालय पर केवल उस समय बाध्यकारी होती हैं जब संसद द्वारा उन संधियों से संबंधित अधिनियम पारित कर दिए जाते हैं। ये नियम उन संधियों पर लागू होते हैं जो व्यक्तिगत अधिकारों या दायित्वों को प्रभावित करती हैं या जो आर्थिक बाध्यताओं को आरोपित करती हैं या जो न्यायालय में उनके प्रवर्तन के लिए कॉमन विधि या संविधान के संशोधन की अपेक्षा करती हैं। जिन संधियों में प्रत्यक्ष रूप से यह उल्लिखित किया जाता है कि उन्हें संसद द्वारा अनुमोदित किए जाने के बाद लागू किया जाएगा उन्हें संसद द्वारा समृद्ध बनाने के बाद ही लागू किया जाता है। ब्रिटिश राज्य क्षेत्र के अध्ययन की संध्या इसका उदाहरण है जिसमें संसद का अनुमोदन आवश्यक है। इसका अर्थ यह है कि यदि संधि और अधिनियम के प्रावधानों में असंगतता है तो संसद के बाद के अधिनियम के प्रावधान पहले बनाई गई संधि के प्रावधानों के ऊपर प्रभावी होंगे। अन्य संधियों के मामले में किसी विधान के निर्माण की अपेक्षा नहीं की जाती।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि जहां संविधि के प्रावधानों में पहले की गई संधि के प्रावधानों में असंगतता है वहां ब्रिटिश न्यायालय संधि की वरीयता में संविधि के प्रावधानों को लागू करेंगे किन्तु जहां संविधि के प्रावधानों में अस्पष्टता है वहां ऐसी उपधारणा उत्पन्न होती है कि संसद संधि के अधीन कानून की अंतर्राष्ट्रीय बाध्यताओं के प्रतिकूल विधान निर्मित करने का आशय नहीं रखती। न्यायालय अस्पष्ट विधिक भाषा निर्वचन करते समय संधि का अवलोकन कर सकता है। इसके उपरांत भी कि संविधि स्पष्ट रूप से संधि को समाविष्ट या निर्दिष्ट नहीं करती।

ग्रेट ब्रिटेन में संधियों को लागू करने से संबंधित उक्त नियम के कई अपवाद हैं। मानवीय अधिकारों तथा मूल स्वतंत्रताओं का यूरोपीय अभिसमय, 1950 तथा यूरोपीय समुदाय संधियां ब्रिटिश न्यायालय पर बाध्यकारी होती हैं। यह समर्थकारी विधान की अधिनियमितियों की अपेक्षा नहीं करते।

ब्रिटिश व्यवहार से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ब्रिटिश विधि तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के मध्य विरोधाभास उत्पन्न होने की स्थिति में ब्रिटिश विधि ही ब्रिटिश न्यायालय पर बाध्यकारी होगी। अंतर्राष्ट्रीय विधि राज्य की विधि का भाग है तथा सीधे न्यायालयों तथा व्यक्तियों पर बाध्यकारी है, इस तथ्य का यह आशय नहीं है कि ब्रिटिश विधि सभी परिस्थितियों में अंतर्राष्ट्रीय विधि की सर्वोच्चता को मान्यता देती है।

टिप्पणी

• सोवियत रूस

यद्यपि सोवियत संघ के व्यवहार का अध्ययन उसके विघटन के उपरांत अत्यधिक महत्व का नहीं रह गया है किंतु अंतर्राष्ट्रीय विधि की वैश्विक स्थिति के अध्ययन तथा शैक्षणिक ज्ञान के लिए आवश्यक है। सोवियत रूस में राष्ट्रीय विधि तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि को एक–दूसरे के अधीनस्थ नहीं वरन दो पृथकविधिक प्रणाली माना जाता था। सोवियत संविधान के अनुच्छेद 29 के अनुसार अन्य राज्यों के साथ सोवियत रूस का संबंध निम्नलिखित सैद्धांतिक प्रारूप पर आधारित था–

प्रभुत्व संपन्न, समता, बल की धमकी या प्रयोग का पारस्परिक परित्याग, सीमाओं का उल्लंघन न किया जाना, राज्यों की क्षेत्रीय अखंडता, विवादों का शांतिपूर्ण समाधान, आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न किया जाना, मानवाधिकारों तथा मूल स्वतंत्रताओं के लिए सम्मान, लोगों के समान अधिकार तथा अपनी नियति को स्वयं निश्चित करने के उनके अधिकार, राज्यों के मध्य सहयोग तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के सामान्यतः मान्य सिद्धांतों तथा नियमों से उत्पन्न बाध्यताओं को सद्भावपूर्वक पूर्ण करना।

इससे यह विदित होता है कि सोवियत संविधान तथा विधिक प्रणाली अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा व्यवहार के मूल सिद्धांतों का सम्मान करने तथा कार्यान्वित करने की महत्ता को स्वीकार करते थे। अन्य शब्दों में, अंतर्राष्ट्रीय संधियों तथा आंतरिक कानूनों को समान महत्व प्रदान किया जाता था। इसके उपरांत भी, यदि अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा सोवियत विधि में परस्पर विरोध की स्थिति उत्पन्न होती थी तो सोवियत विधि अभिभावी होती थी।

• यूरोपीय राज्य

यूरोपीय राज्य में से अधिकांश राज्य ब्रिटेन की तरह अंतर्राष्ट्रीय विधि के समावेशन या अंगीकरण के सिद्धांत का अनुसरण करते हैं। इस सिद्धांत को या तो न्याय के व्यवहार में या तो संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर लागू किया जाता है जैसा कि न्यायालय द्वारा अर्थ किया जाता है। अधिकतर राज्यों ने अपने संविधान में समुचित प्रावधानों को समाविष्ट किया है। जहां तक संधियों का संबंध है, कई देश इस सिद्धांत का अनुसरण करते हैं कि संविधान के अनुसार की गई संधियां समावेशन के किसी विनिर्दिष्ट कार्य के बिना न्यायालय पर आबद्ध होती हैं।

• लैटिन अमेरिकी राज्य

कई लैटिन अमेरिकी राज्यों के संविधान में अंतर्राष्ट्रीय विधि को देश की विधि का भाग होने की उद्घोषणा करने वाले प्रावधान हैं। युद्ध तथा शांति समस्या सम्मेलन 1945 के संकल्प में इस विषय पर अंतर अमेरिकी समुदाय की प्रथम शासकीय उद्घोषणा सम्मिलित है। इसमें सभी राज्यों से अपने संविधानों तथा अन्य राष्ट्रीय कानूनों में अंतर राष्ट्रीय विधि के आवश्यक सिद्धांतों के समावेशन के लिए कार्य करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लैटिन अमेरिकी राज्य कुल मिलाकर इस सिद्धांत को स्वीकार करते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय विधि समान रूप से उसी तरह प्रभावी रहेगी जैसी राष्ट्रीय विधि रहती है।

• भारतीय स्थिति

टिप्पणी

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 के अंतर्गत विश्व के प्रति भारत की सामान्य बाध्यता के लिए प्रावधान किया गया है। इसके अनुसार, 'राज्य यह प्रयास करेगा कि– (क) अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा की वृद्धि हो, (ख) राष्ट्रों के बीच न्यायसंगत और सम्मानपूर्ण संबंध बने रहें, (ग) अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि बाध्यताओं को राज्यों के परस्पर व्यवहार में आदर मिले, और (घ) अंतर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिए प्रोत्साहन मिले।'

यह अनुच्छेद संविधान के भाग 4 में सम्मिलित किया गया है, जो राज्य के नीति निदेशक तत्व को प्रतिपादित करता है। संविधान के इसी भाग में अंतर्विष्ट अनुच्छेद 37 प्रावधान करता है कि भाग 4 में अंतर्विष्ट निदेशक सिद्धांत देश के शासन में मूलभूत हैं तथा विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा। इस अनुच्छेद में यह भी कहा गया है कि इसमें अंतर्विष्ट प्रावधान किसी न्यायालय में लागू नहीं होंगे। संविधान का यह भाग (भाग 4) देश की कार्यपालिका तथा विधान पालिका के प्रति निर्दिष्ट है तथा इस प्रकार न्यायालयों के समक्ष लागू नहीं किया जा सकता। इसके उपरांत भी निदेशक तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं, क्योंकि विधि बनाकर उन्हें कार्यान्वित किया जाएगा।

इस प्रकार भारतीय संवैधानिक नीति अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि–बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने तथा विधि बनाने में इन सिद्धांतों को लागू करने के प्रति वचनबद्ध है। यहां यह उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 51 अत्यधिक सामान्य है तथा इस अनुच्छेद से कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम कहां तक न्यायालय द्वारा लागू किए जाएंगे। साधारण रूप से अनुच्छेद 51 केवल एक वचन है कि भारत अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा की अभिवृद्धि अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि–बाध्यताओं की अभिवृद्धि तथा शांतिपूर्ण तरीके से अंतर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिए कार्य करेगा। इस अनुच्छेद को भारत की विदेश नीति के माध्यम से कार्यपालिका द्वारा कार्यान्वित किया गया है।

अनुच्छेद 51 में, 'अंतर्राष्ट्रीय विधि' तथा 'संधि–बाध्यताओं' शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि शब्द 'अंतर्राष्ट्रीय विधि' रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि को निर्दिष्ट करता है। इसका यह तात्पर्य हो सकता है कि अनुच्छेद 51 रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा संधिबद्ध विधि को एक समान मानता है।

भारत में रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि एवं संधियां इस प्रकार विवेचित की जा सकती हैं–

(क) रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि

जहां तक रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि के लागू होने का संबंध है, भारतीय न्यायालय ग्रेट ब्रिटेन द्वारा स्वीकृत किए गए समावेशन के सिद्धांत (Doctrine of incorporation) का अनुसरण करते हैं। इस प्रकार भारतीय न्यायालय अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियमों को लागू करेंगे यदि उन पर राष्ट्रीय विधि के स्पष्ट नियम अभिभावी नहीं होते हैं। श्रीकृष्ण शर्मा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि भारतीय न्यायालय आंतरिक विधि के अन्य नियमों को लागू करेंगे जो भारत के

संविधान, भारतीय संसद द्वारा अधिनियमित परिनियम और राज्य विधान मंडलों द्वारा अधिनियमित परिणामों में सम्मिलित हैं।

एडीएम जबलपुर बनाम शुक्ला में न्यायमूर्ति एच आर खन्ना ने अपने विरोधी मत में इसी प्रकार का निर्णय लिया था। उनके अनुसार यदि राष्ट्रीय विधि तथा विधिरूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि के बीच विरोध है तो न्यायालय राष्ट्रीय विधि को लागू करेंगे।

टिप्पणी

ग्रामोफोन कंपनी ऑफ़ इंडिया लिमिटेड बनाम वीरेंद्र बहादुर पांडे में उच्चतम न्यायालय का अवलोकन अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियमों के बाद अधिकारी बल से संबंधित था। इस निर्णय में स्पष्ट किया गया कि भारतीय न्यायालय अंतर्राष्ट्रीय गणतंत्र विधि को उस समय तक लागू करेंगे जब तक वह राष्ट्रीय विधि से असंगत नहीं है।

- **संधियां**

भारत में संधियों के संबंध में यह मत है कि संधियां उस समय बाध्यकारी होंगी जब विधान द्वारा उनसे संबंधित नियम पारित हो जाए। यह मत संविधान के अनुच्छेद 253 पर आधारित है जो प्रावधान करता है कि संसद को किसी अन्य देश या देशों के साथ की गई किसी संधि अनुबंध या अभिसमय अथवा किसी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन या अन्य निकाय में किए गए विनिश्चय के कार्यान्वयन के लिए भारत के संपूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए कोई विधि बनाने की शक्ति है। भारतीय न्यायालय द्वारा कई मामलों में निर्णय लिया गया है कि संधियां न्यायालय पर उसी समय बाध्यकारी होंगी, जब विधान द्वारा उनसे संबंधित अधिनियम पारित कर दिया जाएगा। बिरमा बनाम राजस्थान राज्य में न्यायालय ने निर्णय दिया कि वे संधियां जो अंतर्राष्ट्रीय विधि का भाग हैं देश की विधि का भाग नहीं होतीं, यदि विधायक प्राधिकारी द्वारा अभिव्यक्त रूप से ऐसी मान्यता नहीं दी गई हो। पुनः शिवकुमार शर्मा व अन्य बनाम भारत संघ में दिल्ली उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि भारत में संधियों में विधि का बल नहीं होता तथा परिणामस्वरूप उससे उत्पन्न बाध्यताएं राष्ट्रीय न्यायालयों में प्रवर्तनीय नहीं होतीं, यदि विधान द्वारा समर्थित नहीं हो। अन्य मामले जिनमें सिद्धांत का अनुसरण किया गया है– बतौर उदाहरण मोतीलाल बनाम उत्तर प्रदेश सरकार, मगनभाई बनाम भारत संघ, निर्मल बनाम भारत संघ तथा जौलीजॉर्ज वर्गिस बनाम बैंक ऑफ़ कोचीन। इन मामलों में यह निर्णय लिया गया था कि विधाई शक्ति अनन्य रूप से संसद से संबंधित है।

सिविल राइट्स विजिलेंस कमेटी बेंगलुरु बनाम भारत संघ में कर्नाटक उच्च न्यायालय ने इसी प्रकार का निर्णय दिया था। बाद में यह प्रश्न था कि क्या बॉयकॉट तथा कुक दोनों क्रिकेट खिलाड़ियों को भारत में आने की तथा दक्षिण अफ्रीका जो रंगभेद की नीति को मान्यता देता है के साथ उनके संबंधों के कारण भारत के विरुद्ध इंग्लिश क्रिकेट दल के सदस्य के रूप में मैच खेलने की अनुमति दी जाएगी। याची ने तर्क दिया कि इन दोनों क्रिकेट खिलाड़ियों को भारत में प्रवेश देने तथा भारत में क्रिकेट खेलने की अनुमति देने की भारत सरकार की कार्यवाही संयुक्त राष्ट्र संघ की इसकी सदस्यता से संबंधित समझौता तथा इसकी बाध्यताओं का उल्लंघन है।

न्यायालय ने निर्णय दिया कि संयुक्त राष्ट्र की इसकी सदस्यता से संबंधित इंग्लिश समझौता तथा बादशाहों के अधीन भारत सरकार की बाध्यता को इस देश के नागरिकों या ऐसे नागरिकों के संगठन के निर्देश पर भारत में न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया जा सकता।

टिप्पणी

न्यायालय ने आगे कहा कि यदि संसद अन्य देशों के साथ भारत सरकार द्वारा की गई संधि के अधीन बाध्यता को कार्यान्वित करने के लिए किसी विधि को अभिनियमित नहीं करता तो न्यायालय संसद को ऐसा विधि बनाने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। संसद द्वारा अधिनियमित विधि के अभाव में अन्य देशों के साथ भारत सरकार की संधि बाध्यता के अनुपालन को न्यायालय लागू नहीं कर सकते। न्यायालय का यह निर्णय द्वैतवादी सिद्धांत के अनुरूप है जिसके अनुसार संधि राष्ट्र की विधि का भाग केवल तब होती है, जब विधायी प्रक्रिया द्वारा उसे देश की विधि में सम्मिलित कर लिया जाता है।

कुछ मामलों में, विशेषकर मानव अधिकार के संबंध में अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय को न्यायालय द्वारा उस समय ध्यान में रखा गया जब उनमें और राष्ट्रीय विधि में कोई और संगतता नहीं रहती। विशाखा बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह कहा गया कि किसी भी कार्य स्थानों में काम करने वाली महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न रोकने के लिए कोई राष्ट्रीय विधि नहीं है। अतः अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय तथा मानकों पर ध्यान देना चाहिए जब उनके मध्य में कोई असंगतता न हो और राज्य विधि में शून्यता हो। न्यायालय ने यह भी कहा कि कार्य–स्थलों में यौन उत्पीड़न निरोध की प्रत्येक घटना से लैंगिक समानता के मूल अधिकार तथा प्राण और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन होता है क्योंकि भारत में न तो सिविल और न ही डांडिक विधि में कार्य–स्थलों में यौन उत्पीड़न निरोध के लिए कोई प्रावधान है।

अतः अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय तथा मानक को ध्यान में रखकर यह कहा गया है कि लैंगिक समानता तथा मानव गरिमा के साथ काम करने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 19 और 21 में विवक्षित है।

अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि के संबंध में संबंधित राज्यों के व्यवहार भिन्न–भिन्न हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि का लागू किया जाना व्यापक रूप से राज्य की विधानपालिका तथा कार्यपालिका पर निर्भर करता है। उनसे राज्य की अंतर्राष्ट्रीय बाध्यताओं का संज्ञान लेने तथा सम्मान करने की प्रत्याशा की जाती है। राष्ट्र द्वारा यह अनुभव किया गया है कि न तो राष्ट्रीय विधि और न ही अंतर्राष्ट्रीय विधि सर्वोच्च है बल्कि ये एक–दूसरे के अनुरूप हैं। ये दोनों विभिन्न क्षेत्रों में मानवीय समस्याओं का निबटारा करने के लिए ही हैं। यदि राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों को स्वीकार करने से इंकार कर देते हैं तो स्पष्ट रूप से राज्यों के मध्य आपसी संबंध तनावपूर्ण हो जाएंगे। अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को कायम रखने का उच्च आदर्श कल्पनापूर्ण (काल्पनिक) होने लगेगा।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय विधि के बीच संबंध पर आधारित सिद्धांत है–

   (क) द्वैतवादी सिद्धांत (ख) एकात्मक सिद्धांत

   (ग) द्वैतवादी एवं एकात्मक सिद्धांत (घ) इनमें से कोई नहीं

4. संधियां तब बाध्यकारी होंगी, जब विधान द्वारा उनसे संबंधित नियम पारित हो जाए। यह मत भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद पर आधारित है?

   (क) 253 (ख) 241

   (ग) 250 (घ) 252

1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (क)
3. (ग)
4. (क)

1.5 सारांश

अंतर्राष्ट्रीय विधि में मुख्य रूप से दो भिन्न–भिन्न श्रेणियां होती हैं– निजी अंतर्राष्ट्रीय विधि और सार्वजनिक अन्तर्राष्ट्रीय विधि। निजी संस्थाएं, जो लोगों या निगमों के मध्य विवादों से संबंधित हैं, जिनका एक से अधिक राष्ट्रों से सार्थक संबंध होता है। उदाहरण के लिए, एक भारतीय निगम, यूनिलीवर कंपनी के स्वामित्व वाले औद्योगिक संयंत्रों से नेपाल के हेटुडा में जहरीली गैस के रिसाव से उत्पन्न मुकदमे को निजी अंतर्राष्ट्रीय विधि का मामला माना जाएगा। सार्वजनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि राष्ट्रों के भव्य संबंधों से संबद्ध होती है।

अंतर्राष्ट्रीय विधि उन मानदंडों से संबंधित है जो राज्यों के आचरण तथा उनके मध्य संबंधों को नियंत्रित करते हैं। यह कहना उचित नहीं है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि की पहुंच राज्यों के अधिकारों तथा दायित्वों से आगे नहीं है। यह मान्यता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत व्यक्तियों को भी दायित्व वहन करना पड़ सकता है, जबकि निगमों को भी अछूता नहीं छोड़ा गया है। इसके अतिरिक्त, पिछली सदी में, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने अंतर्राष्ट्रीय विधि के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

यह कहना अनुचित होगा कि सीमित क्षमता धारण करने वाली इकाइयों का अंतर्राष्ट्रीय विधि में कोई व्यक्तित्व नहीं हैं। क्योंकि इनमें अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्य संपूर्ण अधिकारों तथा कर्तव्यों के अनुपालन की क्षमता नहीं है।

यदि राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष कोई ऐसा मामला आता है जिसमें राष्ट्रीय विधि और अंतर्राष्ट्रीय विधि से संबंधित तथ्य होता है तो वह राष्ट्रीय विधि को ही प्राथमिकता

देते हैं। यह कहा जा सकता है कि यदि राष्ट्रीय विधि और अंतर्राष्ट्रीय विधि एक–दूसरे के प्रति पूर्ण होती हैं और प्रस्तुत किए गए किसी मामले में निर्णय करने की अपेक्षा की जाती है तब विरोधाभास का निबटारा किया जाना चाहिए। ऐसे अवसरों पर दोनों ही कानूनो में समन्वय करने की अपेक्षा की जाती है क्योंकि दोनों ही विधिक व्यवस्थाएं व्यक्तियों की समस्याओं को हल करने के लिए बनी हैं।

टिप्पणी

यदि कोई मामला अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष आता है तो उसमें अंतर्राष्ट्रीय विधि को लागू किया जाता है और यदि कोई मामला राष्ट्रीय न्यायालय में आता है तो उसमें राष्ट्रीय विधि को लागू किया जाता है। यदि राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष कोई ऐसा मामला आता है जिसमें राष्ट्रीय विधि और अंतर्राष्ट्रीय विधि से संबंधित तथ्य होता है तो वह राष्ट्रीय विधि को ही प्राथमिकता देता है। यह कहा जा सकता है कि यदि राष्ट्रीय विधि और अंतर्राष्ट्रीय विधि एक–दूसरे के प्रति पूर्ण होती हैं और प्रस्तुत किए गए किसी मामले में निर्णय करने की अपेक्षा की जाती है तब विरोधाभास का निबटारा किया जाना चाहिए। ऐसे अवसरों पर दोनों ही कानूनों में समन्वय करने की अपेक्षा की जाती है क्योंकि दोनों ही विधिक व्यवस्थाएं व्यक्तियों की समस्याओं को हल करने के लिए बनी हैं।

1.6 मुख्य शब्दावली

- **पूर्वानुमानशीलता** : पहले से किए गए अनुमान के अनुसार गति प्रक्रिया क्रियाविधि, तरीका।
- **बाध्यकारी** : विवश/मजबूर करने वाली स्थिति।
- **तदनुसार** : पूर्व निर्धारित नियम के अनुसार।
- **न्यायिक** : न्याय से संबंधित।
- **असीमित** : जिसकी कोई सीमा न हो।

1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अंतर्राष्ट्रीय विधि से क्या आशय है?
2. अंतर्राष्ट्रीय विधि का आधार बनने वाली संधियां कौन–कौन सी हैं?
3. 'साम्य' से क्या तात्पर्य है?
4. द्वैतवादी सिद्धांत क्या है?
5. रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि से क्या आशय है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति पर प्रकाश डालिए।
2. अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्रोत का विश्लेषण कीजिए।
3. अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय से क्या तात्पर्य है? विस्तृत विवेचन कीजिए।

4. अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय विधि के मध्य संबंध पर आधारित सिद्धांतों का निरूपण कीजिए।
5. अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय विधि के बीच संबंधों के विषय पर राज्यों के व्यवहार का विश्लेषण कीजिए।

टिप्पणी

1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अन्तर्राष्ट्रीय विधि और मानवाधिकार–के.सी. जोशी, ईस्टर्न बुक कंपनी
2. Dr. S.K. Kapoor: Human Rights & International Law (Hindi)
3. R. Falk: International Law: A Contemporary Perspective
4. R.P. Anand: Law of the Sea,. Caracas and beyond (1978)
5. O.P. Malhotra: Law of industrial Disputes (1999)
6. Oppenheim: International Law (Volume I, Peace)
7. S. K. Kapoor: International Law
8. M.P. Tandon: International Law (English & Hindi)
9. Robertson, A.H.: Human Rights in the World
10. S.C. Khare: Human Rights in United Nations
11. D.D. Basu: Human Rights in Constitutional Law
12. Nagendra Singh: Protection of Human Rights.

इकाई 2 राज्यों और सरकार की मान्यता

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 राज्य के लिए अनिवार्य अर्हताएं
  2.2.1 राज्यों के विविध प्रकार
  2.2.2 राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य
2.3 राज्यों एवं सरकार की मान्यता
  2.3.1 राज्यों की मान्यता
  2.3.2 सरकार की मान्यता
2.4 राज्यों की समानता
  2.4.1 राज्यों की समानता के सिद्धांत की अर्थवत्ता
  2.4.2 राज्यों का महासंघ तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि
2.5 राज्यों का अधिकार क्षेत्र
  2.5.1 राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता : अर्थ एवं सीमाएं
  2.5.2 राज्य अधिकारिता के स्वरूप
2.6 राज्य उत्तराधिकार
  2.6.1 राज्य उत्तराधिकार के स्वरूप एवं सिद्धांत
  2.6.2 राज्य उत्तराधिकार के परिणाम
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

2.0 परिचय

राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्राथमिक विषय हैं। ये अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत संपूर्ण अधिकार तथा कर्तव्य धारण करते हैं। किन्तु 'राज्य' शब्द को परिभाषित करना कठिन है, क्योंकि इसके भिन्न–भिन्न अर्थ हो सकते हैं।

संवैधानिक विधि में इसका अर्थ, अंतर्राष्ट्रीय विधि की अपेक्षा, पूर्ण रूप से भिन्न है। इसलिए इस शब्द की समुचित परिभाषा देना कठिन है। अंतर्राष्ट्रीय विधि की दृष्टि से 'राज्य' शब्द महत्वपूर्ण है, क्योंकि जो समुदाय राज्य नहीं हैं वे अंतर्राष्ट्रीय विधि में क्षमता धारण करने से वर्जित किए गए हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रयोजन के लिए राज्य को राज्य क्षेत्र पर दखल करने वाले (occupying) व्यक्तियों के समुदाय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके सदस्य सरकार के प्रति सामान्य अधीनता के बंधन द्वारा एकसाथ बाध्य होते हैं तथा जिनमें अन्य इकाइयों के साथ संबंध बनाने की क्षमता हो। जो इकाई इन लक्षणों को धारण करती है, उसे राज्य कहा जा सकता है। राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य पर 'मोंटेवीडियो अभिसमय', 1933, (Montevideo Convention on the Rights and Duties of States, 1933) राज्य शब्द को परिभाषित करने के स्थान पर राज्यों की कतिपय अर्हताओं का उल्लेख करता है, जो ऊपर दी

टिप्पणी

गई परिभाषा के समान हैं। उक्त अभिसमय का अनुच्छेद 1 अधिकथित करता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय के रूप में राज्य को अग्रलिखित अर्हताओं को धारण करना चाहिए–(अ) स्थाई जनसंख्या, (ब) निश्चित राज्य क्षेत्र, (स) सरकार, तथा (द) अन्य राज्यों से संबंध बनाने की क्षमता। राजत्व की अर्हताओं का विवेचन 'मोंटेवीडियो अभिसमय' को ध्यान में रखकर किया गया है, क्योंकि अभिसमय ने रूढ़िगत नियम की प्रस्थिति अर्जित कर ली है। अतः यह केवल अभिसमय के पक्षकार के ऊपर ही नहीं वरन सभी राज्यों पर लागू होती है।

प्रस्तुत इकाई में राज्यों और सरकार की मान्यता के साथ–साथ राज्यों की समानता के सिद्धांत पर भी प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त राज्यों के अधिकार क्षेत्र तथा राज्य उत्तराधिकारी का भी अध्ययन किया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- राज्य के विविध स्वरूपों को समझ पाएंगे;
- राज्य और सरकार की मान्यता संबंधी तथ्यों से अवगत हो पाएंगे;
- राज्यों की समानता संबंधी तथ्यों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- राज्यों के क्षेत्राधिकार रेखांकित कर पाएंगे;
- राज्य उत्तराधिकार की विवेचना कर पाएंगे।

2.2 राज्य के लिए अनिवार्य अर्हताएं

राज्य के अनिवार्य घटक हैं–

(क) जनसंख्या

जनसंख्या का तात्पर्य जनसमूह से है। जनसमूह व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है, जो एक समुदाय के रूप में एक साथ रहता है। वह भिन्न–भिन्न मूल वंशों या पंथों का हो सकता है। जिस राज्य क्षेत्र में जन समुदाय स्थाई रूप से निवास नहीं करता अर्थात जहां जनसमूह अव्यवस्थित ढंग से बिखरा हुआ है, उस राज्य क्षेत्र को राज्य नहीं माना जा सकता। बंजारों के राज्य क्षेत्र को राज्य नहीं कहा जा सकता। जनसंख्या एक संगठित समाज के रूप में व्यवस्थित होनी चाहिए। 'मोंटेवीडियो अभिसमय' में अभिवर्णित स्थाई जनसंख्या का तात्पर्य स्पष्ट नहीं है। यह निश्चित है कि इसका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि एक राज्य के व्यक्ति राज्य की सीमा के बाहर नहीं जा सकते। इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि किसी राज्य में जनसंख्या होनी चाहिए जो राज्य से स्थाई रूप से जुड़ी हो तथा जिसके सदस्यों को राज्य के सामान्य निवासी कहा जा सके। राज्य की जनसंख्या के लिए कोई न्यूनतम सीमा नहीं है, उदाहरण के लिए नारू में 10000 से कम निवासी हैं, इसके उपरांत भी वह एक राज्य है। कई अन्य ऐसे राज्य हैं जिनकी जनसंख्या बहुत कम है, इसके उपरांत भी वे राज्य हैं। कभी–कभी किसी राज्य को लघु राज्य या छोटा राज्य कहा जाता है किंतु फिर भी वह राज्य ही

होता है। यदि वह संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 4 की अधिकृत शर्तों को पूरा करता है तो वह संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता के लिए सक्षम होता है।

(ख) राज्य क्षेत्र

राज्य के पास राज्य क्षेत्र होना चाहिए। बिना राज्य क्षेत्र के किसी भी इकाई को राज्य नहीं कहा जा सकता। यह महत्वहीन है कि वह राज्य क्षेत्र छोटा है या बड़ा। राज्य केवल एक नगर के रूप में भी हो सकते हैं। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि एक राज्य का राज्य क्षेत्र निश्चित हो, जैसा कि राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य पर 'मोंटेवीडियो अभिसमय' में कहा गया है। किंतु फिर भी यह वांछनीय है कि यथासंभव जटिलता को दूर करने के लिए इसे पूर्णतया निर्धारित होना चाहिए। 'मोंटेवीडियो अभिसमय' में परिभाषित शब्दावली का यह तात्पर्य नहीं है कि राज्य पूर्ण रूप से सुनिश्चित हो। वर्तमान समय में भी कुछ राज्य सीमा की सुनिश्चित रेखा होने के उपरांत भी सीमा विवाद रखते हैं, किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे राज्य नहीं हैं। नॉर्थ सी कॉन्टिनेंटल शेल्फ के मामले में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि ऐसा कोई नियम नहीं है कि राज्यों की सीमाएं निर्धारित हों। इज़राइल राज्य है किंतु उसके पास निर्धारित राज्य क्षेत्र नहीं है।

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय विधि सदैव इस बात पर बल देती है कि राज्य का राज्य क्षेत्र पर अधिकार तथा नियंत्रण होना चाहिए, किंतु विशेष मामलों में यदि कोई राज्य कुछ अवधि के लिए राज्य क्षेत्र पर अपना नियंत्रण खो देता है फिर भी उसे राज्य क्षेत्र पर कब्जा धारण करने वाला ही माना जाएगा। जिस प्रकार, यदि राज्य के राज्य क्षेत्र का विदेशी राज्य द्वारा बलपूर्वक अधिग्रहण कर लिया गया हो, तो अधिभोगी, अधिग्रहित राज्य क्षेत्र को अपने राज्य क्षेत्र के रूप में मानने का अधिकारी नहीं होता। बेदखल किया गया राज्य अधिभोगी को अप्रदत सभी विधिक अधिकारों को धारण करता है। इस प्रस्थापना पर फिलिस्तीन 1988 में फिलिस्तीनी राष्ट्रीय सभा द्वारा घोषित राज्य को राज्य क्षेत्र धारण करने वाला माना जाएगा, इसके उपरांत भी उसका राज्य क्षेत्र इजराइल के अधिभोग के अधीन था। इसे संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा 1947 में संकल्प 181 को स्वीकार करके राज्य क्षेत्र से प्रदान किया गया था, जिस पर स्वयं इजराइल राज्य का अस्तित्व आधारित है। संकल्प में निसंदेह अरब राज्य अर्थात् फिलिस्तीनी राज्य के सृजन का उल्लेख किया गया था। 1947 के संकल्प के ही कारण इसे 1988 में एक राज्य के रूप में घोषित किया गया था। सुरक्षा परिषद ने 2002 में संकल्प 1397 पारित कर पहली बार फिलिस्तीन को एक राज्य के रूप में संबोधित किया था।

(ग) सरकार

जनसंख्या तथा राज्य क्षेत्र सरकार द्वारा प्रशासित किए जाते हैं। अतः किसी राज्य में सरकार का होना आवश्यक है। जिस राज्य में सरकार नहीं होती, उसको राज्य नहीं माना जाता। राज्य की सरकार को प्रभावकारी होना आवश्यक नहीं है। यद्यपि परंपरागत अंतर्राष्ट्रीय विधि में स्थाई तथा प्रभावकारी सरकार को राजस्व का एक आवश्यक तत्व होना माना गया था, किंतु वर्तमान समय में यह तत्व संकुचित होने के कारण और अप्रचलित हो गया है। प्रभावकारी सरकार की अवधारणा आत्मनिर्णय के सिद्धांत के विरुद्ध है, इसलिए यह राज्य का तत्व नहीं रह गया है। इस प्रकार, राज्य निर्वासित सरकार द्वारा भी प्रशासित हो सकता है, जिसका राज्य क्षेत्र पर प्रभावकारी

नियंत्रण नहीं होता। राज्य की सरकार का रूप क्या हो? यह ऐसा प्रश्न है, जिसका निर्धारण राष्ट्रीय विधि द्वारा किया जाता है। सरकार के रूप का चयन करना पूर्णतया राज्य की अधिकारिता के अंतर्गत आता है, अतएव यह आवश्यक नहीं है कि सरकार को सदैव जनता का प्रतिनिधि होना चाहिए। राज्य का शासन जनता के प्रतिनिधियों द्वारा या राजतंत्र अथवा राजवंश द्वारा भी किया जा सकता है।

टिप्पणी

(घ) राज्यों में अन्य राज्यों से संबंध बनाने की क्षमता

अंतर्राष्ट्रीय विधि में किसी राज्य को राज्य कहने के लिए आवश्यक है कि उसके पास अन्य राज्यों से संबंध बनाने की क्षमता हो। राज्यों की क्षमता के कारण उसकी स्थिति संबद्ध राज्यों से भिन्न होती है। इस प्रकार, संबद्ध राज्यों को, उदाहरणार्थ भारत में, अंतर्राष्ट्रीय विधि की दृष्टि से राज्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे अन्य राज्यों से संबंध बनाने की क्षमता धारण नहीं करते। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया राष्ट्रमंडल के राज्यों की स्थिति भी यही है। किंतु यदि राष्ट्रीय संविधान संघवाद राज्यों को उनके बाह्य संबंधों को संचालित करने के अधिकार प्रदान करता है, जैसा कि पहले सोवियत गणतंत्र में था, तो अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन उनकी प्रस्थिति हो जाएगी।

यदि किसी इकाई के पास राज्यत्व के उक्त तत्व विद्यमान हैं, तो उसे राज्य माना जाता है। किंतु यदि राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि व्यवस्था के मूल सिद्धांतों का उल्लंघन करके उन्हें धारण करता है, तो उसके राज्यत्व को संयुक्त राज्य द्वारा अमान्य किया जा सकता है। आक्रमण के परिणामस्वरुप उत्पन्न होने वाले नए राज्य होने का दावा जातीय भेदभाव की प्रथा की प्रयुक्ति या आत्म निर्धारण के अधिकार की नामंजूरी की भर्त्सना संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई है। जब राज्य क्षेत्र का अर्जन संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रावधानों का उल्लंघन कर, बल के प्रयोग द्वारा किया जाता है, तब इसकी भी भर्त्सना की जाती है। यह ध्यान देने की बात है कि राज्यत्व की कसौटी संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता के साथ नहीं जुड़ी है और इसीलिए संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता राज्य का स्पष्ट प्रमाण नहीं है। यूक्रेन तथा बेलारूस 1945 से ही संयक्त राष्ट्र के सदस्य थे, किंतु वे 1991 तक सोवियत संघ के भाग थे। इसके विपरीत, स्विट्जरलैंड एक राज्य था किंतु यह 2002 तक संयुक्त राष्ट्र का सदस्य नहीं था। यह लाईकेन्सरीन तथा सेन मरीनो के साथ भी था। तथापि, यदि एक राज्य संयुक्त राष्ट्र में सदस्य के रूप में राष्ट्र में प्रविष्ट किया जाता है, तो यह इस बात का संकेत है कि इसने अंतर्राष्ट्रीय विधि में राज्यत्व प्राप्त कर लिया है।

2.2.1 राज्यों के विविध प्रकार

उन सभी इकाइयों को राज्य कहा जाता है जो उक्त लक्षणों को धारण करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि में राज्य होने के लिए राज्यों को स्वतंत्र होना आवश्यक नहीं है, क्योंकि स्वतंत्र राज्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य इकाइयों को भी कुछ अंश तक इन लक्षणों को प्रदान किया गया है। इसलिए उन्हें भी अंतर्राष्ट्रीय विधि में राज्य कहा जा सकता है। इसलिए सुविधा के लिए राज्यों को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है, ये हैं:– (1) प्रभुत्व संपन्न राज्य; (2) अपूर्ण प्रभुत्व संपन्न राज्य; तथा (3) असामान्य राज्य।

(1) प्रभुत्व संपन्न राज्य

टिप्पणी

'प्रभुत्व संपन्न' का तात्पर्य उस राज्य के अंतर्गत उस सर्वोच्च प्राधिकारी से है, जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्य राज्यों के प्राधिकार के अधीन नहीं है। इसका आशय उस विधिक प्राधिकारी से भी है, जो विधि में किसी अन्य के प्राधिकार पर आधारित नहीं है। ऑस्टिन के अनुसार, प्रभुत्व संपन्नता का तात्पर्य, राज्य के आंतरिक तथा राज्य के बाहर सभी स्वतंत्रताओं को सम्मिलित करना है। आइसलैंड ऑफ पालमास आर्बिट्रेशन में मैक्स ह्युबर ने कहा था कि राज्यों के मध्य संबंधों में प्रभुत्व संपन्नता का तात्पर्य स्वतंत्रता है। भूमंडल के एक भाग में स्वतंत्रता का तात्पर्य यह है कि वह राज्य किसी अन्य राज्य के हस्तक्षेप के बिना राज्य के कार्य को करे। उपरोक्त से यह स्पष्ट होता है कि प्रभुत्व संपन्नता के दो आवश्यक तत्व हैं। पहला, यह कि इसका प्रयोग राज्य क्षेत्र की सीमाओं के भीतर होता है, तथा दूसरा, यह कि प्रभुत्व संपन्न राज्य के ऊपर किसी अन्य राज्य का प्राधिकार नहीं होता। अतः प्रभुत्व संपन्न राज्य दो रूपों से स्वतंत्र होते हैं अर्थात् आंतरिक मामलों में स्वतंत्रता तथा बाह्य या विदेशी मामलों में स्वतंत्रता।

राज्य प्रभुत्व संपन्नता के इन दोनों पहलुओं के मध्य अत्यधिक अंतर होता है। राज्यों के आंतरिक मामलों में उनकी स्वतंत्रता में समाज के सामाजिक–राजनीतिक संगठन, अर्थात राज्य के सामाजिक तथा राजनीतिक प्रणाली के संगठन में तथा विधि और व्यवस्था में पूर्ण स्वतंत्रता होती है। एक राज्य के आंतरिक मामलों में किसी राज्य द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। अपनी आंतरिक स्वतंत्रता तथा क्षेत्रीय सर्वोच्चता के परिणामस्वरूप राज्य किसी संविधान को अपना सकता है, अपने प्रशासन को किसी भी ढंग से व्यवस्थित कर सकता है, जिसे वह उचित समझे। ऐसी विधि को अधिनियमित कर सकता है, जैसी वह चाहे तथा अपनी इच्छा अनुसार वाणिज्यिक नीति को अपना सकता है। किंतु आंतरिक स्वतंत्रता पूर्ण और अनिर्बंधित नहीं होती। प्रभुत्व संपन्न राज्य अपने आंतरिक मामलों में ऐसे कार्य को करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं, जो अन्य राज्यों की स्वतंत्रता के लिए अहितकर हो। बाह्य मामलों में स्वतंत्रता का तात्पर्य है कि राज्य अपने बाह्य कार्यों, अर्थात बाह्य मामलों को निष्पादित करने के लिए स्वतंत्र है। परिणामस्वरूप, राज्य अपनी विदेशी नीति के निर्माण के लिए स्वतंत्र होते हैं। वे अन्य राज्यों से संबंध स्थापित कर सकते हैं तथा विदेशी मामलों को स्वयं निर्धारित कर सकते हैं। कोई अन्य राज्य आचरण के उन नियमों को विहित नहीं कर सकता, जिनका प्रभुत्व संपन्न राज्य को अंतर्राष्ट्रीय मामलों में अनुसरण करना चाहिए। यदि कोई राज्य ऐसा करता है, तो उसे दूसरे राज्यों के बाह्य मामलों में हस्तक्षेप माना जाएगा, जो न्यायोचित नहीं है। हॉब्स के अनुसार, 'आंतरिक तथा बाह्य स्वतंत्रता के कारण प्रभुत्व संपन्नता 'सर्वोच्च तथा पूर्ण शक्ति' को धारण करती है, जो किसी विधि या संधि द्वारा निर्बंधित नहीं होती।'

वर्तमान समय में, प्रभुत्व संपन्नता शब्द के अर्थ में व्यापक परिवर्तन हुआ है। यहां तक कि अब प्रभुत्व संपन्न राज्य भी 'सर्वोच्च तथा पूर्ण शक्ति' को धारण नहीं करते। राष्ट्रीय विधि के प्रकरण में प्रभुत्व संपन्न राज्य के पास राज्य के अंतर्गत सर्वोच्च शक्ति हो सकती है, किंतु अंतर्राष्ट्रीय विधि में, जहां सभी राज्य समान तथा प्रभुत्व संपन्न हैं, वहां प्रभुत्व संपन्नता के संबंध में सर्वोच्चता की धारणा मान्य नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में प्रभुत्व संपन्न राज्य सर्वोच्च तथा पूर्ण शक्तियों को धारण नहीं

टिप्पणी

करते, इसलिए इसका अर्थ पहले की अपेक्षा अधिक सीमित हो गया है। इस सिद्धांत को सापेक्ष प्रभुत्व संपन्नता कहा जाता है। वर्तमान समय में प्रभुत्व संपन्न राज्य भी अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा निर्मित नियमों से बाध्य रहते हैं, जिन्हें स्वयं प्रभुत्व संपन्न राज्यों द्वारा अपने अंतर्राष्ट्रीय व्यवहारों की प्रक्रिया में सृजित किया गया है। इस प्रकार, राज्य द्वारा स्वयं नियमों को बनाकर अपनी सर्वोच्च तथा संपूर्ण शक्तियों पर नियंत्रण लगा दिया गया है। यदि अंतर्राष्ट्रीय विधि के सार्वभौमिक रूप से मान्यता प्राप्त नियमों द्वारा राज्यों पर अधिरोपित परिसीमाओं का उल्लंघन किया जाता है, तो इस विधिक प्रणाली के अधीन अनुशास्तियों को उनके विरुद्ध लागू किया जा सकता है। फिर भी, वे केवल विधि विरुद्ध कार्यों के लिए प्रतिक्रिया प्रकट कर सकते हैं। इस प्रकार एक राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा अन्य राज्यों की विदेशी नीति की स्वतंत्रता का सम्मान करने व अन्य राज्यों की विदेशी नीति में हस्तक्षेप न करने के लिए बाध्य है, यदि विदेशी नीति विधि सम्मत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के विरुद्ध नहीं है। इससे यह प्रतीत होता है कि वर्तमान समय में राज्य 'सर्वोच्च तथा पूर्ण' शक्ति धारण नहीं करते। किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि राज्य प्रभुत्व संपन्न नहीं रह गए हैं। वास्तव में प्रभुत्व संपन्नता शब्द का अर्थ परिवर्तित हो गया है। राज्य को अपनी प्रभुत्व संपन्नता को बनाए रखने के लिए दूसरे राज्यों की प्रभुत्व संपन्नता को मान्यता देनी होती है।

इस प्रकार राज्यों के सामान्य हितों में राज्य प्रभुत्व संपन्नता को, एक–दूसरे की प्रभुत्व संपन्नता का सम्मान करने की पारस्परिक बाध्यता की अपेक्षा करता है। यह बाध्यता अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा सृजित की गई है। अंतर्राष्ट्रीय विधि, व्यापक रूप से अंतर्राष्ट्रीय अनुबंधों के परिणाम होने के कारण, प्रभुत्व संपन्नता को अर्थहीन नहीं बनाता या सीमित नहीं करता। यह अन्य राज्यों की प्रभुत्व संपन्नता के लिए सम्यक सम्मान के साथ राज्य के कार्यों की स्वतंत्रता पर परिसीमा अधिरोपित करता है। परिणामस्वरूप, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में प्रभुत्व संपन्नता का तात्पर्य है कि राज्य उस समय तक अंतर्राष्ट्रीय मामलों में स्वतंत्र हैं, जब तक वे अंतर्राष्ट्रीय विधि के पारस्परिक बाध्यकारी नियमों की सीमा के अंतर्गत अपने को रखते हैं। राज्यों के अधिकारों तथा कर्तव्यों पर प्रारूप घोषणा में यह कहा गया है कि अन्य राज्यों के साथ संबंध बनाना राज्य के कर्तव्यों में से एक है। घोषणा का अनुच्छेद–14 अधिकथित करता है कि प्रत्येक राज्य की प्रभुत्व संपन्नता अंतर्राष्ट्रीय विधि की सर्वोच्चता के अधीन है। इस सिद्धांत के साथ अपना संबंध अन्य राज्यों के साथ बनाना राज्यों का कर्तव्य है, प्रभुत्व संपन्नता पर सम्मति देकर परिसीमा को अधिरोपित करने को 'आत्म–नियंत्रण' कहा जाता है। राज्य को अपने क्रियाकलापों को करने की पूर्ण स्वतंत्रता है, किंतु उसे ऐसे कार्यों को करने की स्वतंत्रता नहीं है जिन्हें नियम बनाकर रोक दिया गया हो। स्तार्क के अनुसार, प्रभुत्व संपन्नता का तात्पर्य शक्ति का अवशेष है, जिसे राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा अधिकृत परिसीमाओं के अंतर्गत धारण करता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रभुत्व संपन्नता का अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के साथ निकटता का संबंध है।'

राज्यों की प्रभुत्व संपन्न समानता

प्रभुत्व संपन्न राज्य पूर्ण रूप से अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हैं। ओपनहाइम इन्हें वास्तविक अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति कहते हैं, क्योंकि ये अंतर्राष्ट्रीय विधि में मुख्य विधिक कर्ता

हैं। ये अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्यता प्राप्त सभी अंतर्राष्ट्रीय अधिकारों तथा कर्तव्यों को धारण करते हैं। राज्यों की समानता का अर्थ है कि सभी राज्य इस बात के अधिकारी हैं कि उनकी प्रभुत्व संपन्नता का अन्य राज्य आदर करें। सभी प्रभुत्व संपन्न राज्य प्रस्थिति में अपने आकार, जनसंख्या, संसाधन तथा अन्य मामलों में विभिन्नता के उपरांत भी अंतर्राष्ट्रीय रूप में समान हैं। राज्यों की समानता के सिद्धांत को संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद–2 के परिच्छेद–1 के अधीन मान्यता दी गई है, जो अधिकथित करता है कि यह संगठन अपने सभी सदस्यों की प्रभुत्व संपन्न समानता के सिद्धांत पर आधारित है। पुनः राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य पर प्रारूप घोषणा के अनुच्छेद–5 में भी प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक राज्य को अन्य सभी राज्यों के साथ विधि में समानता का अधिकार है। इसके अनुसार सभी राज्यों के समान अधिकार तथा कर्तव्य हैं तथा ये अपनी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा अन्य विभिन्नताओं के उपरांत भी अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के समान सदस्य हैं। प्रभुत्व संपन्न समानता विशेष रूप से अग्रलिखित तत्वों को सम्मिलित करती हैः– (क) समस्त राज्य न्यायिक रूप से समान हैं, (ख) प्रत्येक राज्य पूर्ण प्रभुत्व संपन्नता में अंतर्निहित अधिकारों का उपभोग करता है, (ग) प्रत्येक राज्य का कर्त्तव्य अन्य राज्यों के व्यक्तित्व का सम्मान करना है, (घ) राज्यों की राज्यक्षेत्रीय अखंडता तथा राजनीतिक स्वतंत्रता उल्लंघनीय नहीं है, (ङ) प्रत्येक राज्य को अपनी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा आंतरिक प्रणाली को स्वतंत्रतापूर्वक चुनने तथा विकसित करने का अधिकार है, तथा (च) प्रत्येक राज्य का कर्तव्य पूर्ण रूप से तथा सद्भाव पूर्वक अपनी अंतर्राष्ट्रीय बाध्यताओं का अनुसरण करना तथा अन्य राज्यों के साथ शांति पूर्वक रहना है। इसके अनुसार प्रत्येक राज्य को किसी प्रश्न पर मत देने का अधिकार है, जिसका सम्मति से समाधान किया जाना हो। सभी प्रभुत्व संपन्न राज्यों के मत का समान महत्व है। कोई राज्य अन्य राज्यों पर अधिकारिता का दावा नहीं कर सकता तथा नियमानुसार किसी राज्य के न्यायालय अन्य राज्य के शासकीय कार्यों की वैधता को प्रश्नगत नहीं कर सकते।

टिप्पणी

राज्यों का संघ

सामान्यतया, प्रभुत्व संपन्न राज्य एकल अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति होते हैं, अर्थात उनके पास एक केंद्रीय राजनीतिक अधिकार होता है। ऐसे एकल राज्य को साधारण अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, दो या अधिक राज्य अन्य शक्तियों द्वारा मान्यता प्राप्त अंतर्राष्ट्रीय संधि द्वारा संघ बना सकते हैं, जिसमें वे अपनी प्रभुत्व संपन्नता को संघ के पक्ष में समर्पित कर देते हैं। ऐसे मामलों में संघ प्रभुत्व संपन्न राजनीतिक प्राधिकारी हो जाता है तथा संगठित करने वाले राज्य संघ के भाग हो जाते हैं। वे प्रत्यक्ष रूप से अपने अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व को खो देते हैं तथा संघ को निहित हो जाते हैं। इस प्रकार संघ गठित करने वाले राज्य एक–दूसरे के विरुद्ध तथा पृथक रूप से विदेशी शक्ति के विरुद्ध युद्ध नहीं कर सकते तथा ना ही उनमें से एक के विरुद्ध पृथक रूप से युद्ध किया जा सकता है। दो प्रभुत्व संपन्न राज्यों सीरिया तथा मिस्र ने 1 फरवरी, 1958 को संयुक्त अरब गणतंत्र (United Arab Republic) के नाम के अधीन एक नए राज्य में अपने को विलीन कर लिया। यह राज्य संयुक्त अरब गणतंत्र लोकतांत्रिक, स्वतंत्र तथा प्रभुत्व संपन्न गणतंत्र बना। इसके अंतरिम संविधान में कहीं भी सीरिया तथा मिश्र को राज्य के रूप में उल्लिखित नहीं किया गया है। उनको प्रभुत्व

टिप्पणी

संपन्नता के किसी भी भाग को प्रदान नहीं किया गया था। संयुक्त अरब गणतंत्र का राष्ट्रपति राज्य का प्रमुख था। मिस्र और सीरिया का अपना व्यक्तित्व समाप्त हो गया था तथा उनके स्थान पर संयुक्त अरब गणतंत्र आ गया था। ऐसे संघ जिनमें नई अंतर्राष्ट्रीय इकाई अस्तित्व में आती है व्यक्तिगत संघ की अपेक्षा वास्तविक संघ कहे जाते हैं। वास्तविक संघ व्यक्तिगत संघ से भिन्न होते हैं, क्योंकि उनमें संघ गठित करने वाले राज्य अपने व्यक्तिगत सुभिन्न व्यक्तित्व को प्रतिधारण किए रखते हैं।

(2) अपूर्ण प्रभुत्व संपन्न राज्य

अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि राज्य प्रभुत्व संपन्न हो। यदि प्रभुत्व संपन्न राज्यों के अतिरिक्त किसी अन्य राज्य द्वारा राज्यत्व का गुण, चाहे छोटे ही अंश में, धारण किया जाता है, तो उसे अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति माना जा सकता है। निःसंदेह, ऐसे राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के पूर्ण, सही तथा सामान्य विषय नहीं हो सकते, किंतु निश्चय पूर्वक यह कहना उचित नहीं है कि उनकी अंतर्राष्ट्रीय स्थिति बिल्कुल ही नहीं होती है। यदि यह मान लिया जाए कि अंतर्राष्ट्रीय विधि में प्रभुत्व संपन्नता की अपेक्षा अधिकारों पर तथ्यों तथा शक्तियों को धारण करने से अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व का निर्धारण होता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे राज्य भी अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व को धारण करेंगे जो सभी अधिकारों, कर्तव्यों तथा शक्तियों को धारण नहीं करते। ऐसे राज्य अपूर्ण प्रभुत्व संपन्न राज्य कहे जाते हैं। ये एक या अधिक अन्य राज्यों के प्राधिकार के अध्यक्ष बने रहते हैं, जो कि निम्न प्रकार से हैं–

संरक्षित राज्य

जब कोई राज्य कुछ महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय मामलों के प्रशासन को अन्य राज्य के संरक्षण में संधि द्वारा स्वयं प्रदान कर देता है, तब दोनों राज्यों के मध्य एक प्रकार का संबंध स्थापित होता है, जिसे संरक्षक के रूप में जाना जाता है। संरक्षक संधि को दो राज्यों के मध्य होने की आवश्यकता नहीं होती है। संरक्षित राज्य को अंतर्राष्ट्रीय संधि के अधीन भी सृजित किया जा सकता है। संरक्षण विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं, जो संरक्षित राज्य के राज्य क्षेत्र में संरक्षण प्रदान करने वाले राज्य के पक्ष में समर्पित किए जाते हैं। यह संधि की शर्तों पर आधारित होता है। आयोनियन जहाज के मामले में न्यायालय ने संपरीक्षण किया कि संधि एकमात्र संदर्शिका है इसी से संविदाकारी पक्षकारों के सभी अधिकार और आयोनियन राज्यों के सभी अधिकार एवं बाध्यताएं उत्पन्न होनी चाहिए। आयोनियन द्वीप समूह ग्रेट ब्रिटेन के अन्य संरक्षण के अधीन स्वतंत्र राज्य के रूप में गठित किया गया था।

ऐसे प्रश्नों का विनिश्चय स्वयं संधियों द्वारा किया जाता है कि क्या संरक्षित राज्य अन्य राज्यों में अपने राजनयिक भेज सकते हैं या उनके राजनयिक का स्वागत कर सकते हैं या क्या संरक्षित राज्य संधियों का निर्माण कर सकते हैं। नेशनलिटी डिक्रीज इश्यूड इन ट्यूनिश एंड मोरोक्को (Nationality Decrees Issued in Tunis and Morocco) के मामले में स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने निर्णय दिया था कि संरक्षित राज्य तथा संरक्षक राज्य के मध्य संबंध तथा शेष विश्व के साथ इन दोनों राज्यों के संबंध संधि की शर्तों पर आधारित होते हैं।

टिप्पणी

संरक्षित राज्य प्रभुत्व संपन्न राज्य नहीं होते लेकिन वे उन सभी कार्यों को करने के लिए स्वतंत्र रहते हैं तथा उन सभी अधिकारों को धारण किए रहते हैं जिनको उन्होंने समर्पित नहीं किया है। इसलिए वे अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हैं, यदि वे उपनिवेशी संरक्षित राज्य नहीं हैं। वे कुछ प्रयोजनों के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति के रूप में अपनी स्थिति बनाए रखते हैं तथा इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हैं। मोरक्को में संयुक्त राज्य के नागरिकों के अधिकार में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने निर्णय किया था कि संरक्षित राज्य के अधीन भी मोरक्को 1912 की फेज़ संधि की शर्तों के अधीन प्रभुत्व सम्पन्न राज्य था। इस प्रकार, वह अंतर्राष्ट्रीय विधि में राज्य के रूप में अपने व्यक्तित्व को धारण करता था। जब कोई प्रभुत्व सम्पन्न राज्य अन्य राज्य के संरक्षण के अधीन आने के कारण अपनी प्रभुत्व संपन्नता के कुछ अंशों को खो देता है, तब उसका यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि उसने अपने व्यक्तित्व को खो दिया है। ऐसे मामलों में वह अन्य राज्य के पक्ष में प्रभुत्व संपन्नता के केवल एक हिस्से को समर्पित करता है। अतः ऐसे मामलों को आंशिक उत्तराधिकार के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है। अधिकतर मामलों में संरक्षित राज्य संरक्षक राज्य से भिन्न अस्तित्व रखते हैं परौनाक तथा बेड्रॉस परौनाकियन बनाम तुर्की सरकार में आंग्ल–तुर्की मिश्रित माध्यास्थम अधिकरण पंचाट ने कहा था कि संरक्षित राज्य का प्रभाव संरक्षित राज्य की संधि के प्रावधानों, दोनों राज्यों के मध्य संबंधों तथा संरक्षक राज्य की नीति के अनुसार परिवर्तित होता है। सामान्यतया अंतर्राष्ट्रीय विधि में यह माना जाता है कि संरक्षित राज्य का एक तथा एक समान रूप नहीं होता तथा प्रत्येक का निर्धारण संधियों के आधार पर अलग–अलग किया जाना चाहिए। किंतु प्रत्येक मामले में संरक्षक राज्य सामान्यतः संरक्षित राज्य के प्रभुत्व संपन्न अधिकारों में कुछ परिवर्तन करता है। यह संरक्षक राज्य को न केवल अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के आचरण को बल्कि संरक्षित राज्यों के घरेलू मामलों के विनियमन से संबंधित विभिन्न अधिकारों जैसे सैनिक कमान, न्यास प्रशासन, करों के उद्ग्रहण इत्यादि को भी प्रदान करता है।

भूटान (Bhutan)– भूटान 8 अगस्त, 1949 को की गयी मैत्री संधि के द्वारा भूटान भारत का संरक्षित राज्य बना। संधि के अनुच्छेद–3 के अधीन भारत सरकार ने भूटान के आंतरिक प्रशासन में कोई हस्तक्षेप न करने का वचन दिया। किंतु भूटान सरकार अपने विदेशी मामलों में भारत सरकार की सलाह से मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिये सहमत हुई। संधि के अनुच्छेद–6 के अनुसार भारत भी सहमत हुआ कि भूटान भारत की सहायता व अनुमोदन से भारत से या भारत के माध्यम से भूटान में आयुध, गोला–बारूद, मशीनरी, सामरिक सामानों का आयात करने के लिये स्वतंत्र होगा, जो भी भूटान की शक्ति तथा कल्याण के लिये अपेक्षित या वांछित हो। भूटान भी सहमत हुआ कि भूटान की सीमा के पार विभिन्न आयुधों, गोला–बारूदों आदि का निर्यात भूटान की सरकार द्वारा या गैर सरकारी व्यक्तियों द्वारा नहीं किया जाएगा। भारत भूटान को पांच लाख रुपये की वार्षिक सहायता प्रदान करेगा। संधि का अनुच्छेद–10 वर्णित करता है कि यह संधि सदैव प्रवर्तन में रहेगी, यदि इसको पारस्परिक सम्मति द्वारा समाप्त नहीं किया जाता या परिवर्तित नहीं किया जाता। इसलिये भूटान 1949 से भारत का संरक्षित राज्य बन गया। भूटान को 1971 में भारत के पूर्ण समर्थन से संयुक्त राष्ट्र में प्रवेश प्रदान किया गया, किंतु भूटान भारत का संरक्षित राज्य बना रहा।

सिक्किम (Sikkim)– 5 दिसंबर, 1950 को की गई संधि द्वारा सिक्किम भारत का संरक्षित राज्य बना। भारत ने सिक्किम के विदेशी मामलों, संचार, सुरक्षा तथा राज्य की क्षेत्रीय अखंडता का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। किंतु सिक्किम पर भारत का संरक्षण 1974 में समाप्त हो गया, जब सिक्किम भारत का सह–राज्य बन गया।

टिप्पणी

वशवर्ती राज्य

ऐसे राज्य जो दूसरे राज्य के अधिराजत्व के अधीन रहते हैं, उन्हें वशवर्ती राज्य कहा जाता है। वशवर्ती राज्यों में अन्य राज्यों के साथ संबंध बनाने की क्षमता नहीं होती, क्योंकि अधिराज इन संबंधों को पूर्णतः उपाबद्ध कर लेता है। फिर भी उन्हें उनकी आंतरिक स्वतंत्रता की दृष्टि से अपूर्ण प्रभुत्व संपन्न राज्यों के वर्ग में रखा जा सकता है। इस प्रकार अधिराज राज्य द्वारा की गई सभी अंतर्राष्ट्रीय संधियां अपने आप अधिराज्यों में लागू हो जाती हैं। अधिराज कुछ परिसीमाओं के अंतर्गत वशवर्ती राज्य के कार्यों के लिए उत्तरदायित्व ग्रहण करता है।

संरक्षित राज्य तथा वशवर्ती राज्य में अन्तर

वशवर्ती राज्य की स्थिति संरक्षित राज्य से भिन्न होती है। दोनों में कई आधारों पर अंतर होते हैं, जोकि निम्न प्रकार हैं:–

(अ) संरक्षित राज्य के मामले में शक्तिशाली राज्य कमजोर राज्य का उनके मध्य की गई संधि के निर्बंधनों के अनुसार संरक्षण करता है, किंतु वशवर्ती राज्य के मामले में अधिराज विदेशी संबंधों को पूर्णतः समामेलित कर लेता है। यदि उनकी कोई अंतर्राष्ट्रीय प्रस्थिति होती है, तो वह केवल उनकी आंतरिक स्वतंत्रता के कारण होती है।

(ब) यदि संरक्षक राज्य द्वारा युद्ध घोषित किया जाता है, तो संरक्षित राज्य अपने आप उस युद्ध का पक्षकार नहीं हो जाता। किंतु वशवर्ती राज्य के मामले में अधिराज का युद्ध तथ्यतः वशवर्ती राज्य का युद्ध होता है।

(स) संरक्षित राज्य द्वारा संधि का निर्माण किया जा सकता है किंतु अधिराज द्वारा की गई सभी अंतर्राष्ट्रीय संधियां वशवर्ती राज्यों पर बाध्यकारी होती हैं यदि अपवाद का स्पष्ट रूप से उल्लेख न हो या अपवाद स्वयं स्पष्ट न हो।

(द) संरक्षित राज्य संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के सदस्य हो सकते हैं, किंतु वशवर्ती राज्य में न तो अंतर्राष्ट्रीय संगठन का सदस्य होने की और न ही अन्य राज्यों के साथ संबंध स्थापित करने की क्षमता होती है।

तिब्बत (Tibet)– तिब्बत एक स्वतंत्र राज्य था किंतु 1720 में इसे चीन द्वारा अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। किंतु चीन में मंचू राजवंश के शासन की समाप्ति के बाद तिब्बत पुनः चीन के अधिराज्य से स्वतंत्र हो गया। स्वतंत्र राज्य होने के कारण तिब्बत ने अन्य राज्यों के साथ संधि की। तिब्बत 1906 में चीन तथा ब्रिटेन के संयुक्त संरक्षण में लाया गया, किंतु 1913 में उसने पुनः अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। शिमला सम्मेलन 1914 में तिब्बत के प्रतिनिधि ने अपनी स्वतंत्रता दोहरायी। 1914 के शिमला अनुबंध द्वारा चीन के अधीन अंतर्राष्ट्रीय मामलों में तिब्बत की स्वायत्तता को मान्यता प्रदान की गयी। दलाई लामा ने 7 अक्टूबर, 1950 को तिब्बत के ऊपर संयुक्त

राष्ट्र के संरक्षण की मांग की। किंतु संयुक्त राष्ट्र महासभा के सामान्य आयोग ने समस्या के शांतिपूर्ण चीनी समाधान की आशा व्यक्त करते हुए चीन के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने से इंकार कर दिया। बाद में, 1951 में, तिब्बत की ओर से दलाई लामा ने चीन के साथ एक संधि की, जिसमें दलाई लामा को चीन द्वारा चीन के अधिराज के अधीन तिब्बत का आध्यात्मिक तथा अस्थाई शासक माना गया था। संधि की शर्तों के अनुसार तिब्बत आंतरिक मामलों में स्वायत्त हो गया, जबकि विदेशी मामले चीन के नियंत्रण के अधीन थे। बाद में यह वशवर्ती राज्य भी नहीं रह गया, क्योंकि चीन ने संधि का उल्लंघन कर आंतरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया। चीन द्वारा 1951 में तिब्बत की जनता के आंदोलन का दमन करके स्थिति अधिक समस्या पूर्ण कर दी गयी। ऐसी स्थिति में दलाई लामा को तिब्बत से भागना पड़ा। उन्होंने भारत में आश्रय लिया। तब से चीन का तिब्बत के विदेशी मामलों पर पूर्ण नियंत्रण है। वह अपने आंतरिक मामलों का प्रशासन करने के लिए भी स्वतंत्र नहीं है, जो 1951 की संधि का उल्लंघन है। ऐसा होने के कारण, क्या तिब्बत को चीन के विधि विरुद्ध अधिग्रहण के आधार पर अधिग्रहित राज्य कहा जा सकता है? क्योंकि स्वतंत्र राज्य के रूप में तिब्बत को मंगोलिया, भूटान, नेपाल, रूस तथा कई अन्य राज्यों द्वारा मान्यता दी गई थी। यदि इस मत को स्वीकार कर लिया जाए, तो संयुक्त राष्ट्र से कम से कम इस की जनता को आत्म निर्णय के अधिकार को प्रदान करने के लिए कदम उठाने की अपेक्षा की जाती है। किंतु जब तक तिब्बत की वर्तमान स्थिति जारी है, तब तक इसको कोई अंतर्राष्ट्रीय स्थिति प्रदान करना कठिन है। अधिकतम यह कहा जा सकता है कि इसकी स्थिति विधि में वशवर्ती राज्यों के समान है, किंतु वास्तव में स्थिति भिन्न है। अर्थात अंतर्राष्ट्रीय विधि में इसकी कोई स्थिति नहीं है।

टिप्पणी

संघीय राज्य

संघीय राज्य कई राज्यों का संघ होता है, जिसके अपने अंग होते हैं तथा जिनमें न केवल सदस्य राज्यों के ऊपर बल्कि उनके नागरिकों के ऊपर भी संघ शक्ति का प्रयोग करता है। संघ सामान्यतः सदस्य राज्यों की अंतर्राष्ट्रीय संधि तथा बाद में संघीय राज्य के स्वीकृत संविधान पर आधारित होता है। संघ राज्य के सदस्य राज्यों को अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति मानना इस कारण संभव नहीं है कि वे न तो पूर्ण न ही अपूर्ण प्रभुत्व संपन्न राजनीतिक इकाई हैं तथा उस अर्थ में राज्य नहीं है, जिस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय विधि में किया जाता है। वे न तो स्वतंत्र होते हैं तथा न ही वे पूर्ण राज्य क्षेत्रीय एवं व्यक्तिगत सर्वोच्चता का प्रयोग कर सकते हैं। वे एक राज्य के अविभाज्य अंग होते हैं तथा उस संविधान की सर्वोपरिता के अधीन शासित होते हैं जो उनकी क्षमता को निर्धारण करता है तथा जिसे वे व्यक्तिगत रूप से परिवर्तित या संशोधित नहीं कर सकते। अंतर्राष्ट्रीय विधि में शक्तियों का प्रयोग संघीय राज्य द्वारा किया जाता है, न कि इसके सदस्यों द्वारा। यही स्थिति भारत के संघीय राज्यों की है। इस प्रकार युद्ध घोषित करने, संधि करने तथा राजनयिक दूतों को भेजने तथा स्वीकार करने की सामर्थ्य संघीय राज्य में निहित है। किंतु उन मामलों में, जिनमें संघीय राज्यों के सदस्यगण अंतर्राष्ट्रीय कार्यों को करने की सामर्थ्य धारण करते हैं, चाहे वे कितने ही सीमित हों, वहां यह कहना अनुचित होगा कि वे तनिक भी अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व को धारण नहीं करते। उदाहरणार्थ, स्विट्जरलैंड के सदस्य राज्य कुछ मामलों में संघीय

राज्य की सम्मति के बिना अपने मध्य संधियों को करने के अधिकार तथा विदेशी राज्य से संधि करने के अधिकार को प्रतिधारित करते हैं। इस दृष्टिकोण से यह स्वीकार किया जा सकता है कि संघीय राज्य के सदस्य राज्य सीमित अंश में अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति हो सकते हैं। अतः वे केवल कुछ प्रयोजनों के लिए अंशतः प्रभुत्व संपन्न राज्य तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति होते हैं।

टिप्पणी

संघीय राज्य, मंडलित राज्य से भिन्न होते हैं। मंडलित राज्य कई प्रभुत्व संपन्न राज्यों के समूह होते हैं, जो अपनी बाह्य तथा आंतरिक स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए मान्यता प्राप्त अंतर्राष्ट्रीय संधि द्वारा अपने अंगों के साथ उस संघ में एकसाथ संयुक्त होते हैं, जिसमें सदस्य राज्य में उच्च शक्ति निहित होती है। ऐसे मामलों में वे केवल प्रभुत्व संपन्न राज्य बने रहते हैं तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व धारण करते हैं। अतः मंडलित राज्यों का संघ अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति नहीं होता। किंतु इनको कुछ प्रयोजनों के लिए पूर्ण प्रभुत्व संपन्न सदस्य राज्यों की संयुक्त शक्ति का प्रतिनिधित्व करने के कारण ऐसा माना जाता है।

राष्ट्रमण्डल (Commonwealth)

राष्ट्रमंडल न तो संघीय राज्य होते हैं और न ही महा राष्ट्र होते हैं। इनमें कोई केंद्रीय सरकार नहीं होती, बल्कि राष्ट्रमंडल ऐसे स्वतंत्र राज्यों का संगम होते हैं जो कतिपय समान सिद्धांतों में विश्वास करते हैं और उन्हें मान्यता देते हैं।

राष्ट्रमंडल का एक उदाहरण है 'राज्यों का राष्ट्रमंडल', जो प्रभुत्व संपन्न राज्यों का एक संघ है। इस राष्ट्रमंडल के सभी राज्य पहले ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत आते थे। राष्ट्रमंडल (1931 से 1946) पहले ब्रिटिश राज्यों के राष्ट्रमंडल के नाम से जाना जाता था। ब्रिटिश शब्द का प्रयोग 1946 से हटा लिया गया और तब से इसे राज्यों का राष्ट्रमंडल कहा जाता है। राष्ट्रमंडल में कोई भी ऐसा राज्य स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद सदस्य बन सकता है जो पहले ब्रिटिश राज्य के अधीन था। किसी भी राज्य को सदस्यता, सदस्यों के सर्वसम्मत मत द्वारा ही प्रदान की जाती है। इस राष्ट्रमंडल में वर्ष 2018 में 53 सदस्य थे। राष्ट्रमंडल के सदस्य राष्ट्रों को एकसाथ आबद्ध करने के प्रमुख कारणों में से एक है अधिकतर राज्यों की न्यायिक प्रणाली में कॉमन लॉ का प्रयोग। यद्यपि इसके अपवाद भी हैं, जैसे कैनेडा का क्यूबेक प्रांत जहां फ्रांस की विधिक प्रणाली, न्यायिक प्रणाली का आधार है, श्रीलंका जहां डच रोमन विधि लागू होती है। यही स्थिति रोडेशिया में भी है और एशिया तथा अफ्रीका के मुस्लिम राज्यों में भी है, जहां मुस्लिम सिविल विधि लागू होती है। राष्ट्रमंडल का अध्यक्ष ब्रिटेन की साम्राज्ञी होती हैं। इन्हें उन सदस्य राज्यों द्वारा भी प्रमुख के रूप में मान्यता दी जाती है जिनके राज्यों में उनके स्वयं के प्रमुख होते हैं। राष्ट्रमंडल के सदस्यों के लिए ब्रिटिश सम्राज्ञी को प्रमुख के रूप में मान्यता देने का कोई संवैधानिक महत्व नहीं है। इससे उनकी प्रभुत्व संपन्नता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। राष्ट्रमंडल में एक सचिवालय है, जिसे राष्ट्रमंडलीय सचिवालय कहा जाता है। इसकी स्थापना जुलाई 1964 के प्रधानमंत्री सम्मेलन द्वारा की गयी सिफारिश पर जुलाई 1965 में की गयी थी। राष्ट्रमंडल के सदस्यों के मध्य कई मामलों में सहयोग रहा है। उदाहरण के लिए वस्तुओं पर सीमा शुल्क बहुत ही कम दर का होता है या नहीं भी होता है, जो विदेशों से आयात की गई वस्तुओं के मुकाबले अत्यधिक कम है। राष्ट्रमंडल का अन्य उदाहरण स्वतंत्र राज्यों

का राष्ट्रमंडल (सीआईएस) है, जो सबसे पहले रूस, बेलारूस और यूक्रेन द्वारा दिसंबर 8, 1991 में स्थापित किया गया था। तत्पश्चात पूर्व सोवियत संघ के 11 गणतंत्रों द्वारा 21 दिसंबर, 1991 को अल्मा आटा में स्थापित किया गया था। सीआईएस में केवल 9 सदस्य राज्य हैं और इनके अतिरिक्त दो संयुक्त सदस्य हैं।

टिप्पणी

सीआईएस का चार्टर 22 जून, 1993 को अंतर्राष्ट्रीय संधि के रूप में लागू किया गया था। वर्तमान में राष्ट्रमंडल के सदस्य राज्य प्रत्येक अर्थ में पूर्ण संप्रभु राज्य हैं। आंतरिक तथा बाह्य मामलों मे सदस्यगण पूर्ण स्वतंत्र हैं। स्वतंत्र राज्यों और राष्ट्रमंडल के सदस्यों के मध्य संबंध, परस्पर मान्यता, राज्य संप्रभुता, संप्रभु समानता के लिए सम्मान, आत्म निर्णय के लिए अहस्तांतरनीय अधिकार समानता, आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत, बल प्रयोग की धमकी, वित्तीय तथा किसी अन्य ढंग के दबाव की अस्वीकृति, विवादों के शांतिपूर्ण समाधान, मानव अधिकार तथा स्वतंत्रता के लिए सम्मान जिसमें राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों के अधिकार, वादों की अंतःकरण से पूर्ति तथा अन्य सामान्य रूप में स्वीकृत सिद्धांत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के मानक सम्मिलित हैं, एक–दूसरे की क्षेत्रीय अखंडता की स्वीकृति और सम्मान तथा वर्तमान सीमाओं की अनुल्लंघनीयता के आधार पर पोषित होता है।

संयुक्त राज्य (Associated States)

संयुक्त राज्यों को आंतरिक मामलों में काफी स्वायत्तता है तथा यह विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार प्रथक होने का अधिकार रखते हैं। किंतु यह अपनी परिस्थिति की दृष्टि से संघीय राज्यों तथा राज्यों के संघ से भिन्न हैं। संयुक्त राज्य के उदाहरण पोर्टो रिको का राष्ट्र मंडल है जो स्वेच्छा से संयुक्त राज्य के साथ संयुक्त हो गया है। कुछ कैरेबियन राज्य क्षेत्र जैसे सेंट किट्स – नेविस अंगूईला भी यूनाइटेड किंगडम के साथ संयुक्त हो गए हैं। सभी संयुक्त राज्यों को एक वर्ग में सूचीबद्ध नहीं किया जा सकता। राज्य तथा संयुक्त राज्य के मध्य संवैधानिक संबंध एक दूसरे से भिन्न हो सकते हैं। उनके मध्य संबंध अनुबंध की शर्तों पर आधारित होते हैं। संयुक्त राज्य कुछ मामलों में संरक्षित राज्य, कुछ में उपनिवेशी राज्य क्षेत्र तथा अन्य में सम्भवतः राज्यों के संघ के समरूप प्रतीत होते हैं। यदि किसी राज्य क्षेत्र की प्रस्थिति विभेदक व्यक्तित्व के सिद्धांत पर आधारित हो तो वह अपने सामर्थ्य के आधार पर चाहे जितना सीमित हो, किंतु वह अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति मानने योग्य होता है। यदि कोई राज्य क्षेत्र कुछ मामलों में ही पृथक राजनीतिक कर्ता है, तो यह माना जाता है कि वह उन राज्य क्षेत्रों के समान विधिक सामर्थ्य धारण करता है जिन्हें राज्य कहा जाता है।

सिक्किम (Sikkim) – सिक्किम का मामला उल्लेखनीय है। सिक्किम को 2 सितंबर, 1974 को भारत का संयुक्त राज्य बनाने के लिए लोकसभा में संविधान (36वां संशोधन) विधेयक प्रस्तुत किया गया। संविधान में संशोधन की मांग भारत–सिक्किम सहयोग तथा अंतर्संबंध को मजबूत बनाने के लिए तथा सिक्किम की जनता की इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए भी की गई थी। तदानुसार, सितंबर 1974 में संविधान में संविधान (35वां संशोधन) अधिनियम द्वारा संशोधन किया गया तथा सिक्किम को भारत के संयुक्त राज्य की स्थिति प्रदान की गई। संशोधन द्वारा सिक्किम का राज्य क्षेत्र भारतीय संविधान की पहली अनुसूची में सम्मिलित किया गया तथा संविधान में नया अनुच्छेद 2–क अंतःस्थापित किया गया। भारत का संयुक्त राज्य होने के उपरांत भी सिक्किम

ने अपने अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व को नहीं खोया था। यद्यपि संयुक्त राज्य की प्रस्थिति अंतर्राष्ट्रीय विधि में सुआधारित नहीं है, फिर भी भविष्य गत अंतर्राष्ट्रीय विधि निश्चित रूप से इस राजनीतिक तथ्य को ध्यान में रखेगी। संयुक्त राज्य के रूप में सिक्किम की प्रस्थिति 1975 में समाप्त हो गयी, जब भारत में सिक्किम का विलय हो गया।

टिप्पणी

न्यास राज्य–क्षेत्र (Trust Territories)

प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत कई राज्य क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय पटल पर उजागर हुए, जो राजनीतिक दृष्टि से इतने विकसित नहीं थे कि उन्हें स्वतंत्रता प्रदान की जाए। इसलिए राष्ट्र संघ के द्वारा यह निश्चित किया गया कि ऐसे राज्य क्षेत्रों को अन्य राज्य के प्रशासन के अधीन रखा जाए। इस व्यवस्था को अधिदेश व्यवस्था कहा गया। इस व्यवस्था के अंतर्गत राज्य क्षेत्रों को प्रशासित करने वाले राज्यों तथा राष्ट्र संघ के मध्य किए गए अनुबंधों में उल्लिखित शर्तों के अधीन प्रशासन किया जाता था। जिन्हें अधिदेशात्मक राज्य कहा जाता था। जब राष्ट्र संघ का विघटन हो गया तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई, तब अधिदेश व्यवस्था को संशोधित कर एक नई व्यवस्था प्रारंभ की गई, जिसे 'न्यासधारिता व्यवस्था' कहा गया, जिसके अंतर्गत अधिदेशात्मक राज्यों ने स्वेच्छा से राज्य क्षेत्रों को उनके नियंत्रण के अधीन रख दिया। इस प्रकार, जो राज्य क्षेत्र न्यासधारिता व्यवस्था के अधीन रखे गए वे या तो पहले अधिदेश व्यवस्था के अधीन थे (दक्षिण–पश्चिम अफ्रीका के अपवाद सहित) या द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरुप शत्रु राज्य से अलग राज्य क्षेत्र थे या उनके प्रशासन के लिए उत्तरदायी राज्य द्वारा इस व्यवस्था के अधीन स्वेच्छा से रखे गए राज्य क्षेत्र थे। संयुक्त राष्ट्र संघ की न्यासधारिता परिषद (Trusteeship Council) की रचना इस व्यवस्था के अधीन रखे गए राज्यक्षेत्रों के प्रशासन का पर्यवेक्षण करने के लिए की गई थी।

न्यासधारिता व्यवस्था के अधीन 11 राज्य क्षेत्र रखे गए थे। राज्य क्षेत्र तथा उनको प्रशासित करने वाली शक्तियां थीं:– न्यू गुयाना एंड नौरा (ऑस्ट्रेलिया), रवांडा उरुणडी (बेल्जियम), कैमरून एंड टोगोलैंड (फ्रांस), सोमालीलैंड (इटली), वेस्टर्न सामोआ (न्यूजीलैंड) कैमरूंस, टोगोलैंड तथा तंगनायिका (यूनाइटेड किंगडम) तथा प्रशांत द्वीप ट्रस्ट टेरिटरी (संयुक्त राज्य)। दक्षिण–पश्चिम अफ्रीका का राज्य क्षेत्र जो अधिदेश व्यवस्था के अंतर्गत दक्षिण अफ्रीका द्वारा प्रशासित था, दक्षिण अफ्रीका द्वारा न्यासधारिता व्यवस्था के अंतर्गत नहीं रखा गया। जो राज्य क्षेत्र इस व्यवस्था के अधीन रखे गए थे, वे सभी स्वतंत्र राज्य बन गए। वर्तमान समय में कोई भी राज्य न्यास क्षेत्र नहीं है। पलाऊ, जो प्रशांत द्वीप की एक इकाई थी, अंतिम न्यास राज्य क्षेत्र था, जो 10 नवंबर, 1994 को स्वतंत्र हो गया।

मार्शल द्वीप तथा माइक्रोनेशिया के साथ न्यासधारिता अनुबंध सुरक्षा परिषद द्वारा 22 दिसंबर, 1990 को समाप्त कर दिया गया। उत्तरी मैरिआना के साथ न्यासधारिता अनुबंध को सुरक्षा परिषद द्वारा 22 दिसंबर, 1991 को समाप्त किया गया तथा पलाऊ के साथ किए गए अनुबंध को 10 नवंबर, 1994 को समाप्त किया गया।

न्यास राज्य क्षेत्र कदापि प्रभुत्व संपन्न राज्य नहीं होते। एक ओर उनके ऊपर प्रभुत्व संपन्नता का प्रयोग प्रशासी अधिकारियों द्वारा किया जाता है अर्थात प्रभावी प्रभुत्व संपन्नता प्रशासी अधिकारियों में निहित है। किंतु यह न्यासधारिता अनुबंध के अनुसार

उनकी शक्तियों पर अधिरोपित वास्तविक निर्बंधनों की दृष्टि में सीमित है। प्रशासी प्राधिकारी में संयुक्त राष्ट्र के पर्यवेक्षण तथा उत्तरदायित्व के अधीन न्यासी शक्तियां निहित हैं। इस प्रकार प्रशासी प्राधिकारी न्यास राज्य क्षेत्रों के निवासियों पर आंतरिक तथा बाह्य क्षेत्र अधिकार तथा संरक्षण की पूर्ण शक्ति का प्रयोग करता है। किंतु यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि न्यास राज्य क्षेत्र प्रशासी अधिकारियों के राज्य क्षेत्र का भाग नहीं होता। अतः यह संयुक्त राष्ट्र के अनुमोदन के अतिरिक्त न्यास राज्य क्षेत्रों की प्रस्थिति को अध्यर्पित या परिवर्तित नहीं कर सकता। दूसरी ओर, अवशिष्ट प्रभुत्व संपन्नता अंततः न्यास राज्य क्षेत्रों के हितग्राहियों में निहित है। इटली तथा सोमालीलैंड के मध्य न्यासधारिता अनुबंध का विवेचन करते हुए सेशेसन के इटैलियन न्यायालय ने स्वीकार किया था कि प्रभुत्व संपन्नता राज्य क्षेत्र की जनता में निहित है। इसका तात्पर्य यह है कि न्यास राज्य क्षेत्रों के मामले में जब प्रभावी प्रभुत्व संपन्नता प्रशासी प्राधिकारी तथा संयुक्त राष्ट्र के मध्य विभाजित होती है, तब अवशिष्ट प्रभुत्व संपन्नता राज्य क्षेत्रों की जनता में निहित होती है।

टिप्पणी

(3) असामान्य राज्य

यद्यपि कुछ राज्य प्रभुत्व संपन्न होते हैं, फिर भी ऊपर वर्णित प्रभुत्व संपन्न राज्यों में से कुछ अपनी विशेषताओं के कारण उनसे भिन्न हैं। ऐसे राज्य इस प्रकार हैंः–

वैटिकन सिटी

होली सी, एक प्रभुत्व संपन्न राज्य है, जिसका भू–राज्य क्षेत्र लगभग आधा वर्ग किलोमीटर तथा जिसकी जनसंख्या 1000 से भी कम है। कैथोलिक ईसाइयों का प्रमुख पोप होली सी का शासक है। पोप 1870 के पूर्व, पोप के राज्यों का शासक था तथा सभी अन्य शासकों के समान था। इटली ने 1870 में पोप के राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया, किंतु रोमन कैथोलिक चर्च के प्रधान के रूप में पोप का अंतर्राष्ट्रीय महत्व बना रहा। उसके द्वारा विधिक क्षमता को भी इस अर्थ में धारण करना जारी रखा गया था कि वह राजनयिक मिशनों का आदान–प्रदान कर सकता था तथा राज्यों के साथ संधि कर सकता था, जिन्हें सामान्यतः धर्म संधि कहा जाता था। किंतु इस विचार की सराहना नहीं की गई कि पोप इटली का सामान्य नागरिक बना रहे। इटली की संसद ने 1871 में पोप तथा होली सी को प्रत्याभूति प्रदान करने के संबंध में एक अधिनियम लागू किया, जिसे प्रत्याभूति विधि कहा जाता है।

इटली तथा होली सी के मध्य 11 फरवरी, 1929 को की गई संधि, जिसे लैटरन संधि कहा जाता है, के फलस्वरूप होली सी की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को स्पष्ट किया गया। संधि के अनुच्छेद 2 के अधीन इटली ने अंतर्राष्ट्रीय मामलों में होली सी की प्रभुत्व संपन्नता को स्वीकार किया तथा मान्यता प्रदान की। संधि के अनुच्छेद 4 में प्रावधान किया गया है कि वैटिकन सिटी को सभी स्थितियों में तटस्थ तथा अतिक्रमण से परे राज्य क्षेत्र माना जाएगा।

वैटिकन के राज्यत्व की वास्तविकता पर विधिशास्त्रियों द्वारा कई आधारों पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है। कुछ विधि शास्त्री यह मानते हैं कि इटली द्वारा प्रभुत्व संपन्नता की मान्यता अन्य राज्यों को बाध्य नहीं करती। अन्य विधि शास्त्री कहते हैं कि राज्य कहे जाने के लिए वैटिकन के पास पर्याप्त राज्य क्षेत्र की कमी है। वैटिकन

टिप्पणी

राज्यत्व के औपचारिक लक्षणों को धारण करता है तथा इसे अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त है, क्योंकि अन्य राज्यों द्वारा इसे ऐसी मान्यता दी गई है। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि राज्य राज्यत्व के गुणों को किस प्रकार धारण करता है। राज्य को निर्धारित करने के लिए राज्य के आकार तथा उसकी जनसंख्या भी महत्वपूर्ण नहीं है। वर्तमान समय में वैटिकन संयुक्त राष्ट्र में स्थाई पर्यवेक्षक है तथा यह कई अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का सदस्य है, जो केवल राज्यों के लिए हैं तथा इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय विधि में इसके व्यक्तित्व के प्रश्न पर कोई शंका नहीं की जा सकती। यह अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि राज्य को होली सी कहा जाए या वेटिकन सिटी। लैटरन संधि में इसे स्पष्ट नहीं किया गया है। इस अर्थ में यह भ्रांति पूर्ण है कि संधि में होली सी तथा वैटिकन सिटी दोनों की प्रभुत्व संपन्नता को मान्यता दिए जाने से प्रश्न और भी जटिल हो गया है। संभवतः राज्य को वैटिकन सिटी कहना तथा उसके प्रभुत्व को होली सी कहना अधिक उपयुक्त होगा।

तटस्थीकृत राज्य

जब कोई राज्य यह घोषणा करता है कि वह किसी राज्य द्वारा किए गए आक्रमण के मामले के अतिरिक्त अन्य किसी राज्य के विरुद्ध कभी भी हथियार नहीं उठाएगा तथा वह सभी युद्धों में निष्पक्षता का रुख अपनाएगा, तब उस राज्य को तटस्थीकृत राज्य कहा जाता है। उस घोषणा को अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध में अन्य राज्यों द्वारा मान्यता दे दी जाती है। ओपेनहाइम के अनुसार, तटस्थीकृत राज्य वह राज्य है जिसकी स्वतंत्रता तथा अखंडता के लिए संधि द्वारा इस शर्त पर गारंटी दी जाती है कि वह स्वयं को सैनिक संधियों में, अतिक्रमण के विरुद्ध प्रतिरक्षा के सिवा, सम्मिलित नहीं करेगा तथा ऐसी अंतर्राष्ट्रीय बाध्यताओं को, जो अप्रत्यक्ष रूप से उसे युद्ध में सम्मिलित करें, को नहीं मानेगा। किसी राज्य को तटस्थीकृत राज्य कहने के लिए तीन तत्वों की अपेक्षा की जाती है– प्रथम, राज्य को आक्रमक कार्य से विरत रहना चाहिए, किंतु वह अपने ऊपर आक्रमण होने पर आत्मरक्षा के रूप में युद्ध कर सकता है। दूसरे, राज्य को भविष्य में सभी युद्धों में तटस्थ रहना चाहिए। तीसरे, राज्य की स्थिति को अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय में अन्य राज्यों द्वारा सामूहिक रूप से मान्यता दी जानी चाहिए। यह तर्क दिया जाता है कि तटस्थीकृत राज्य प्रभुत्व संपन्न राज्य नहीं हैं, क्योंकि उनकी किसी राज्य के विरुद्ध युद्ध न करने की बाध्यता है और यह बाध्यता उन्हें यह निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित करती है कि ऐसे राज्य पूर्णतः प्रभुत्व संपन्न राज्य नहीं हैं। इस मत का कोई आधार नहीं है। यदि तटस्थीकृत राज्यों की कोई भी बाध्यता है, तो यह कि इन राज्यों ने स्वयं जानबूझकर संधि के अधीन अपने ऊपर अवरोध लगाए हैं। तटस्थीकृत राज्य अन्य राज्यों के समान प्रभुत्व संपन्न राज्य होते हैं, किंतु ये अपनी विशेष प्रस्थिति के कारण उन से भिन्न होते हैं। तटस्थीकृत राज्य उस शर्त जिस पर उसकी तटस्थता स्थापित है या प्रत्याभूत है, के उल्लंघन में स्वयं के कृत्य द्वारा या प्रत्याभूति प्रदाता की सम्मति द्वारा तटस्थ राज्य नहीं रह जाता। इस प्रकार, प्रथम विश्व युद्ध के बाद बेल्जियम (Belgium) तथा लक्जमबर्ग (Luxembourg) तटस्थीकृत राज्य नहीं रह गए थे। ये दोनों देश क्रमशः 1831 तथा 1867 की संधि द्वारा तटस्थीकृत राज्य बनाए गए थे।

टिप्पणी

स्विट्जरलैंड (Switzerland)– स्विट्जरलैंड की स्थायी तटस्थता को यूरोपीय महाशक्तियों द्वारा 20 मार्च, 1815 को वियना कांग्रेस अधिनियम में एक घोषणा द्वारा मान्यता दी गई थी तथा सामूहिक रूप से प्रत्याभूत किया गया था। स्विट्जरलैंड ने इस घोषणा को 27 मई, 1815 को स्वीकार किया। तत्पश्चात वियना कांग्रेस ने 20 नवंबर 1815 को अधिनियम पारित कर धारा 84 के अंतर्गत घोषणा की संपुष्टि की। स्विट्जरलैंड ने विभिन्न यूरोपीय युद्धों में युद्धरत राज्यों को सहायता से इंकार करके अपनी तटस्थता की रक्षा की है। यद्यपि स्विट्जरलैंड सभी युद्धों में तटस्थ रहा है, फिर भी उसके पास मजबूत तथा कुशल सेना है। स्विट्जरलैंड की तटस्थता की स्थिति को पुनः 1919 की वर्साय संधि (Treaty of Versailles) के अनुच्छेद 435 के अधीन तथा 1938 में यूनाइटेड किंगडम तथा इटली के मध्य नोटों के विनिमय के द्वारा संपुष्ट किया गया। स्विट्जरलैंड की स्थिति को राष्ट्र संघ की परिषद द्वारा भी मान्यता दी गई थी। यद्यपि स्विट्जरलैंड राष्ट्र संघ का मूल सदस्य था फिर भी उसे प्रसंविदा के सैन्य प्रावधानों से मुक्त किया गया था।

स्विट्जरलैंड संयुक्त राष्ट्र का मूल सदस्य नहीं बना था, क्योंकि उसे चार्टर के अध्याय 7 की सामूहिक प्रवर्तन कार्यवाही के प्रावधानों से मुक्त नहीं किया गया था, जो इसकी तटस्थता के साथ असंगत होता है। यद्यपि जेनेवा संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के महत्वपूर्ण स्थानों में से एक है तथा स्विट्जरलैंड कई विशिष्ट अभिकरणों का सदस्य है तथा अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की संविधि का पक्षकार भी है। फिर भी यह संयुक्त राष्ट्र संघ में सदस्य के रूप में सम्मिलित नहीं हुआ है।

स्विट्जरलैंड के नागरिकों ने संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता के संबंध में 1986 में हुए जनमत संग्रह में सदस्यता से इस भय से इनकार कर दिया था कि इससे राष्ट्र की तटस्थीकृत प्रस्थिति प्रभावित होगी। किंतु मार्च 2002 में फिर से इस संबंध में जब जनमत संग्रह हुआ तब जनसंख्या के 54.61 प्रतिशत मत संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता के पक्ष में पड़े और 45.4 प्रतिशत मत सदस्यता के विरोध में पड़े। राष्ट्र के 23 कैन्टोन या राज्यों में से 12 कैन्टोन सदस्यता के पक्ष में थे। अतः स्विट्जरलैंड 10 सितंबर, 2002 को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बना।

ऑस्ट्रिया (Austria)– द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ऑस्ट्रिया संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत रूस के सैनिक आधिपत्य के अधीन आया। राज्य संधि के अधीन 1952 में की गई व्यवस्थाओं द्वारा इसकी अधिग्रहित प्रस्थिति को समाप्त कर दिया गया। ऑस्ट्रिया की संसद ने तत्पश्चात 26 अक्टूबर, 1955 को एक अधिनियम पारित किया, जिसमें तटस्थीकृत स्थिति का प्रावधान किया गया था। स्वघोषित तटस्थता संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत रूस के साथ इसके पूर्व अनुबंधों के अनुसार थी। बाद में, ऑस्ट्रिया की इस स्थिति को कई अन्य महाशक्तियों द्वारा भी मान्यता दी गई। ऑस्ट्रिया 14 दिसंबर, 1955 को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बना। संयुक्त राष्ट्र का सदस्य होने के कारण इसकी स्थिति को कठोर अर्थ में तटस्थीकृत राज्य की स्थिति नहीं कहा जा सकता। इससे उस सामूहिक कार्यवाही में भाग लेने की अपेक्षा की जाती है जो सुरक्षा परिषद अध्याय 7 के अधीन होती है। निःसंदेह सुरक्षा परिषद

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 48 के अधीन बाध्यताओं के पालन से ऑस्ट्रिया को मुक्त कर सकती है। किंतु यदि परिषद ऐसा नहीं करती तो संभवतः ऑस्ट्रिया को तटस्थीकृत राज्य बना रहना कठिन हो जाएगा।

टिप्पणी

जब दक्षिणी रोडेशिया तथा दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध सुरक्षा परिषद द्वारा आज्ञापक अनुशास्तियां लागू की गईं तब ऑस्ट्रिया के लिए कोई विशेष अपवाद नहीं किया गया था। दक्षिणी रोडेशिया के विरुद्ध उपाय के संबंध में ऑस्ट्रिया ने दक्षिणी रोडेशिया के शासन को सहायता तथा समर्थन न देने के लिए कई कदम उठाए किंतु ऐसा अभिव्यक्त रूप से किया।

संयुक्त राष्ट्र के स्थाई तटस्थ राज्य के रूप में ऑस्ट्रिया आज्ञापक अनुशास्तियों के संबंध में सुरक्षा परिषद के निर्णय द्वारा प्राधिकृत रूप से बाध्य है। इस सिद्धांत के प्रश्न के प्रतिकूल हुए बिना यह प्रश्न उठा कि ऑस्ट्रिया की संघीय सरकार के विचार में प्रत्येक मामले का विनिश्चय केवल उस विशेष परिस्थिति तथा बाध्यताओं पर सम्यक ध्यान देते हुए किया जा सकता है, जो एक ओर संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता से तथा दूसरी ओर उस की स्थाई सदस्यता से उत्पन्न होती है, जिस की अधिसूचना संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य राज्यों को पहले ही दे दी गई है।

दक्षिण अफ्रीका पर शस्त्र व्यापार प्रतिषेध लागू करने के संकल्प संख्या 418 (1977) तथा कुवैत के विरुद्ध आक्रमण के कारण इराक पर आर्थिक अनुशास्ति लागू करने के संकल्प संख्या 661 (1990) को सुरक्षा परिषद द्वारा स्वीकृत किया जाने के बाद ऑस्ट्रिया ने तटस्थीकृत सिद्धांत के महत्व की पुनः पुष्टि की।

मुक्त शहर (Free Cities)– मुक्त शहर एक ऐसी विनिर्दिष्ट राजनीतिक रचना है जिसमें केवल एक स्वतंत्र नगर होता है। इसकी स्थिति संबद्ध राज्यों के अनुबंध द्वारा निर्धारित की जाती है। यद्यपि उनसे पूर्ण प्रभुत्व संपन्न होने की आवश्यक रूप से अपेक्षा नहीं की जाती है, फिर भी ऐसे राज्यों का मुख्य लक्षण स्वतंत्रता है, इसलिए इन्हें अंतर्राष्ट्रीय प्रस्थिति प्राप्त है। पहले मुक्त शहर की प्रस्तुति क्रेको 1815 से 1846 तथा डेनज़िग 1920 से 1939 को प्रदान की गई थी। वर्तमान में ट्रीस्टे को मुक्त शहर की प्रस्थिति प्राप्त है।

2.2.2 राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य

राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्राथमिक विषय हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत उन्हें पूर्ण अधिकार तथा कर्तव्य प्रदान किए गए हैं। इन अधिकारों की प्रकृति में एक समानता न होने के कारण इनके महत्व में भिन्नता होती है। कुछ अधिकार अंतर्निहित होते हैं, अतः उन्हें मूल अधिकार कहा जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि राज्य के अधिकार या तो मूल या अन्य हो सकते हैं। अधिकार चाहे कोई भी हों, वे सभी अंतर्राष्ट्रीय समुदायों द्वारा मानने हैं तथा राज्यों से उनका सम्मान करने की अपेक्षा की जाती है।

नैसर्गिक शाखा के अनुसार, राज्यों के अधिकारों तथा कर्तव्यों का आधार प्राकृतिक विधि है। यह सिद्धांत 17वीं तथा 18वीं शताब्दी में प्रचलन में था। उस समय के लेखक इस मत के थे कि अंतर्राष्ट्रीय विधि प्राकृतिक विधि से व्युत्पन्न हुई है, इसलिए अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों द्वारा जो अधिकार तथा कर्तव्य राज्यों को प्रदान किए गए

हैं, वे प्राकृतिक विधि पर आधारित हैं। किंतु वर्तमान शताब्दी के लेखक उक्त मत से सहमत नहीं हैं। वे इस विचार के हैं कि राज्यों को अधिकार तथा कर्तव्य रूढ़ि तथा संधियों द्वारा प्रदान किए जाते हैं। संधि के निर्माण द्वारा किसी कार्य को राज्य के अधिकार के रूप में माना जा सकता है। इसका आशय है कि राज्य स्वयं निश्चित करते हैं कि उनके अधिकार तथा कर्तव्य कौन–कौन से हैं।

टिप्पणी

राज्य निश्चित रूप से अधिकार तथा कर्तव्य धारण करते हैं, किंतु उनकी यथावत गणना नहीं की जा सकती। पहले इन अधिकारों तथा कर्तव्यों को संहिताबद्ध करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों द्वारा कुछ प्रयास किए गए थे। उदाहरण के लिए 1916 में अंतर्राष्ट्रीय विधि संस्थान तथा राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य पर मोंटेवीडियो अभिसमय 1933 ने राज्यों के विभिन्न अधिकारों तथा कर्तव्यों की संगणना करने का प्रयास किया था। इस संबंध में उनका प्रयास इस कारण असफल हो गया क्योंकि वह भाग लेने वाले सभी राज्यों को स्वीकार्य नहीं था।

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने 21 नवंबर, 1947 को एक संकल्प अंगीकार कर अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग को, 'राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य के प्रारूप की घोषणा' को तैयार करने का निर्देश दिया। आयोग ने राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य के प्रारूप की घोषणा को तैयार किया, जिसमें निम्नलिखित अधिकार तथा कर्तव्य वर्णित हैं :–

राज्यों के अधिकार

(1) **स्वतंत्रता का अधिकार**– प्रारूप घोषणा के अनुच्छेद 1 के अनुसार प्रत्येक राज्य को स्वतंत्रता का तथा स्वतंत्रतापूर्वक, बिना किसी अन्य राज्य के अधिदेश के, सरकार को किसी भी रूप में स्थापित करने का अधिकार है।

(2) **राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता का अधिकार**– अनुच्छेद 2 प्रावधान करता है कि प्रत्येक राज्य को अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्य उन्मुक्तियों के अधीन अपने राज्य क्षेत्र पर तथा उसमें सभी व्यक्तियों तथा वस्तुओं पर अधिकारिता के प्रयोग का अधिकार है।

(3) **समानता का अधिकार**– घोषणा का अनुच्छेद 5 प्रावधान करता है कि विधि में सभी राज्यों को अन्य राज्यों के साथ समानता का अधिकार है।

(4) **आत्मरक्षा का अधिकार**– अनुच्छेद 12 अधिकथित करता है कि प्रत्येक राज्य को सशस्त्र आक्रमण के विरुद्ध व्यक्तिगत या सामूहिक आत्मरक्षा का अधिकार है। यह शब्दावली संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 51 में प्रयुक्त शब्दावली पर आधारित है।

राज्यों के कर्तव्य

(1) **मध्यक्षेप से प्रविरत रहने का कर्तव्य**– अनुच्छेद 3 प्रावधान करता है कि प्रत्येक राज्य का किसी अन्य राज्य के आंतरिक या बाह्य मामलों में मध्यक्षेप न करने का कर्तव्य है।

(2) **गृह संघर्ष को प्रोत्साहित करने से प्रविरत रहने का कर्तव्य**– अनुच्छेद 4 के अनुसार प्रत्येक राज्य का अन्य राज्य के राज्य क्षेत्र में गृह संघर्ष को प्रोत्साहित करने से अलग रहने का तथा अपने राज्यक्षेत्र के अंतर्गत ऐसे गृह

टिप्पणी

संघर्ष को प्रोत्साहित करने के लिए प्रकल्पित संगठन को निवारित करने का कर्तव्य है।

(3) मानव अधिकारों तथा मूल स्वतंत्रताओं का सम्मान करने का कर्तव्य– अनुच्छेद 6 वर्णन करता है कि प्रत्येक राज्य का अपनी अधिकारिता के अंतर्गत जाति, लिंग, भाषा या धर्म के संबंध में विभेद किए बिना सभी व्यक्तियों के मानव अधिकारों तथा मूल स्वतंत्रताओं का सम्मान करने का कर्तव्य है। मानव अधिकारों तथा मूल स्वतंत्रता के लिए सम्मान करने के राज्य के कर्तव्य का निर्देश संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 1 (3), अनुच्छेद 13 (1) (ख), अनुच्छेद 55 (ग) तथा अनुच्छेद 76 (ग) द्वारा तथा मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा द्वारा प्रेरित है।

(4) अंतर्राष्ट्रीय शांति को सुनिश्चित करने का कर्तव्य– अनुच्छेद 7 वर्णन करता है कि प्रत्येक राज्य को अपने राज्य क्षेत्र में विद्यमान उन परिस्थितियों को सुनिश्चित करने का कर्तव्य है जो अंतर्राष्ट्रीय शांति को खतरे में नहीं डालतीं।

(5) शांतिपूर्ण साधनों द्वारा विवादों का समाधान करने का कर्तव्य– घोषणा का अनुच्छेद 8 प्रावधान करता है कि प्रत्येक राज्य का अन्य राज्यों के साथ अपने विवादों का शांतिपूर्ण साधनों द्वारा ऐसे ढंग से समाधान करने का कर्तव्य है, जो अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा एवं न्याय का संकट न उत्पन्न करें। उक्त प्रावधान संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2 (3) के समान है।

(6) युद्ध करने से विरत रहने का कर्तव्य– अनुच्छेद 9 प्रावधान करता है कि प्रत्येक राज्य का राष्ट्रीय नीति के रूप में युद्ध करने से विरत रहने तथा अन्य राज्य की क्षेत्रीय अखंडता या राजनीतिक स्वतंत्रता के विरुद्ध या अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा व्यवस्था से असंगत किसी अन्य ढंग से बल की धमकी या प्रयोग से विरत रहने का कर्तव्य है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद 9 का प्रथम पद 1928 के युद्ध त्याग की पेरिस संधि के प्रावधानों पर आधारित है, जबकि दूसरा पद संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2 (4) के प्रावधान का निकट से अनुसरण करता है।

(7) सहायता देने से अलग रहने का कर्तव्य– अनुच्छेद 10 प्रावधान करता है कि प्रत्येक राज्य का कर्तव्य किसी ऐसे राज्य को सहायता देने से अलग रहने का है, जो अनुच्छेद 39 के उल्लंघन में, युद्ध करने से अलग रहने के कर्तव्य के उल्लंघन में कार्य कर रहा है या जिसके विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र निवारक या प्रवर्तन कार्यवाही कर रहा है। इस अनुच्छेद का द्वितीय पद संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2 (5) में प्रयुक्त शब्दों के समान है।

(8) राज्य क्षेत्रीय अध्यर्पण को मान्यता देने से अलग रहने का कर्तव्य– अनुच्छेद 11 वर्णन करता है कि प्रत्येक राज्य का अन्य राज्य द्वारा अनुच्छेद 9 के उल्लंघन में कार्य करते हुए किसी राज्य क्षेत्रीय अध्यर्पण को मान्यता देने से अलग रहने का कर्तव्य है। इस प्रकार यदि कोई राज्य युद्ध करके अन्य राज्य के राज्य क्षेत्र को अर्जित करता है, तो उस अर्जन को मान्यता नहीं दी जाएगी।

टिप्पणी

(9) सद्भावपूर्वक बाध्यता निभाने का कर्तव्य– अनुच्छेद 13 वर्णन करता है कि प्रत्येक राज्य का संधियों तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्रोतों से उत्पन्न अपनी बाध्यताओं का सद्भावपूर्वक पालन करने का कर्तव्य है तथा वह इस कर्तव्य का अनुपालन न करने के लिए किसी बहाने के रूप में अपने संविधान के प्रावधानों का सहारा नहीं ले सकता। 'संधियां तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्य स्रोत' पद संयुक्त राष्ट्र चार्टर की उद्देशिका से ग्रहण किए गए हैं। प्रथम पद अंतर्राष्ट्रीय विधि के मूल सिद्धांत 'संविदा सर्वथा पालनीय' पर आधारित है। अंतिम पद 'ट्रीटमेंट ऑफ पोलिश नेशनल एंड अदर परसन ऑफ पोलिश ओरिजन' स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा दी गई सलाहकारी राय के सार को उद्धत करता है।

(10) अन्य राज्यों के साथ संबंध बनाने का कर्तव्य– अनुच्छेद 14 वर्णन करता है कि 'प्रत्येक राज्य का कर्तव्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार तथा 'प्रत्येक राज्य की प्रभुत्व संपन्नता अंतर्राष्ट्रीय विधि की सर्वोच्चता के अधीन है' के सिद्धांत के साथ अपना संबंध अन्य राज्यों के साथ बनाना है।

उपरोक्त अधिकार तथा कर्तव्य मार्गदर्शक सिद्धांतों को ध्यान में रखने के बाद प्रारूप घोषणा में सम्मिलित किए गए थे, क्योंकि घोषणा को संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रावधानों के अनुरूप होना चाहिए था। यह केवल प्रभुत्व संपन्न राज्यों पर लागू होना चाहिए। इसे विश्व के सभी प्रभुत्व संपन्न राज्यों तथा संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों को मानना चाहिए तथा इसे राज्यों के मूल अधिकारों तथा कर्तव्यों में सम्मिलित करना चाहिए। आयोग द्वारा तैयार किए गए राज्यों के अधिकारों तथा कर्तव्यों की सूची किसी भी रूप में सर्वांग पूर्ण नहीं है। वास्तव में आयोग का कभी भी राज्य के सभी अधिकारों तथा कर्तव्यों को सम्मिलित करने का आशय नहीं था। घोषणा की उद्देशिका में कहा गया है कि कुछ अधिकारों और कर्तव्यों को बनाया जा रहा है। कुछ शब्द के प्रयोग करने से यह तात्पर्य निकलता है कि घोषणा में राज्यों के सभी मूल अधिकारों तथा कर्तव्यों को सम्मिलित नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ, राज्यों के अत्यधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य, जैसे अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बनाए रखने के उपाय, नाभिकीय हथियारों के प्रयोग पर प्रतिषेध तथा शस्त्रीकरण एवं सुरक्षा सेनाओं की सामान्य कटौती का उल्लेख नहीं है। अस्तित्व में रहने का अधिकार तथा अपने अस्तित्व की रक्षा करने के अधिकार को भी घोषणा में सम्मिलित नहीं किया गया है। किंतु यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि घोषणा में वर्णित अधिकार तथा कर्तव्य बिना किसी प्रतिबंध के सामान्य रूप से बनाए गए थे जो प्रारूप घोषणा के लिए उचित था। प्रारूप घोषणा में अंतर्राष्ट्रीय विधि के सामान्य सिद्धांतों को ज्ञापित किया गया था और उनको विस्तृत रूप से बाद में बनाने की आशा की गई थी।

आयोग ने महासचिव के माध्यम से प्रमुख घोषणा को महासभा को सौंप दिया था। किंतु महासभा ने अभी तक घोषणा को स्वीकार नहीं किया है। यद्यपि संकल्प के माध्यम से घोषणा के अंगीकरण ने उन अधिकारों तथा कर्तव्यों को कोई विधिक बल नहीं प्रदान किया है फिर भी सर्वसम्मत स्वीकरण या सदस्यों के भारी मतों द्वारा स्वीकरण तथा महासभा के पश्चात भर्ती प्रस्तावों में उनकी शर्त ने प्रारूप घोषणा में वर्णित अधिकारों तथा कर्तव्यों के महत्व को परिवर्तित कर दिया है। यह वांछनीय है कि राज्य के अधिकारों तथा कर्तव्यों को विधिक बल प्रदान करने के लिए बहुपक्षीय

अभिसमय का निर्माण किया जाए। ऐसे अभिसमय को सभी राज्यों द्वारा स्वीकार कराने हेतु सर्वांग पूर्ण सूची सम्मिलित करनी चाहिए, जिससे उसका निराकरण किया जा सके जो समय–समय पर उत्पन्न होता है।

राज्यों के आर्थिक अधिकार तथा कर्तव्य

टिप्पणी

1970 के दशक को अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक कूटनीति का दशक कहा जाता है। यह वह अवधि थी, जिसमें आर्थिक मुद्दों को सरकार के उच्चतम स्तर पर तथा संयुक्त राष्ट्र में सबसे अधिक वरीयता दी गई थी। नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को स्थापित करने की मांग अफ्रीका, एशिया तथा लैटिन अमेरिका के विकासशील देशों द्वारा 1972 में सेंटियागो, चिली में आयोजित संयुक्त राष्ट्र व्यापार तथा विकास सम्मेलन के तीसरे सम्मेलन में की गई। उनके अनुरोध पर अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग से संबंधित मामलों पर विचार करने के लिए 1974 में महासभा का विशेष अधिवेशन बुलाया गया। विशेष अधिवेशन में 1 मई, 1974 को नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को स्थापित करने की घोषणा को स्वीकार किया गया जो उस सिद्धांत को प्रतिपादित करती है जिस पर नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को स्थापित किया जाना चाहिए। इस अधिवेशन में 'नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना पर कार्य योजना' शीर्षक से एक संकल्प भी स्वीकार किया गया। घोषणा तथा कार्य योजना दोनों को ध्वनिमत से स्वीकार किया गया था। 12 दिसंबर, 1974 को महासभा ने अपने 29 वें अधिवेशन में एक संकल्प अंगीकार किया, जो आर्थिक अधिकार तथा कर्तव्य चार्टर के रूप में जाना जाता है। चार्टर की उद्देशिका में चार्टर के उद्देश्य पर बल दिया गया है, अर्थात् चार्टर विकसित तथा विकासशील देशों के हितों को साम्य, प्रभुत्व संपन्नता, समानता तथा स्वतंत्रता पर आधारित अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों की नई प्रणाली की स्थापना के लिए प्रभावी तंत्र को गठित करेगा। चार्टर अध्याय–2 के अधीन राज्यों के आर्थिक अधिकारों तथा कर्तव्यों का वर्णन करता है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:–

राज्य के आर्थिक अधिकार

1. **अपनी आर्थिक प्रणाली को चुनने का अधिकार**–चार्टर के अनुच्छेद 1 के अनुसार प्रत्येक राज्य को बाह्य हस्तक्षेप, प्रपीड़न या किसी भी रूप में बिना धमकी के अपने नागरिकों की इच्छा के अनुसार अपनी आर्थिक प्रणाली तथा राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रणाली को चुनने का अधिकार है।
2. **प्राकृतिक संसाधनों पर स्थाई प्रभुत्व संपन्नता**– चार्टर का अनुच्छेद–2 वर्णन करता है कि प्रत्येक राज्य को अपनी सभी संपत्ति, प्राकृतिक संसाधनों तथा आर्थिक क्रियाकलापों पर कब्जे के प्रयोग तथा व्यवस्थापन को सम्मिलित करके पूर्ण स्थाई प्रभुत्व संपन्नता के प्रयोग का अधिकार होगा। यह अनुच्छेद विदेशी निवेश, राष्ट्रीयकरण तथा विदेशी निगम पर राज्य के स्थाई प्रभुत्व संपन्नता के संबंध में भी प्रावधान करता है।
3. **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न होने का अधिकार**– चार्टर का अनुच्छेद–4 प्रावधान करता है कि प्रत्येक राज्य को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार तथा राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रणाली में किसी मतभेद के उपरांत भी आर्थिक सहयोग

में संलग्न होने का अधिकार है तथा कोई राज्य मात्र ऐसे मतभेदों पर आधारित किसी प्रकार के भेदभाव के अधीन नहीं होगा।

4. **उत्पादक संगठन से संबद्ध होने का अधिकार**– चार्टर का अनुच्छेद 5 प्राथमिक वस्तु उत्पादकों के संगठनों से संबद्ध होने के सभी राज्यों के अधिकारों के संबंध में प्रावधान करता है, ताकि वे अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विकास कर सकें।

टिप्पणी

5. **अंतर्राष्ट्रीय नीति निर्माण प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार**– चार्टर का अनुच्छेद–10 वर्णन करता है कि विधिक रूप से समान होने के कारण सभी राज्यों को विश्व की आर्थिक, वित्तीय तथा मुद्रा संबंधी समस्याओं में अंतर्राष्ट्रीय नीति निर्धारण प्रक्रिया में पूर्ण रूप से तथा प्रभावी रूप से भाग लेने का तथा उसके परिणाम स्वरूप होने वाले लाभ में साम्यिक रूप से भागीदार होने का अधिकार है।

6. **प्रौद्योगिकी का अंतरण**– चार्टर का अनुच्छेद 13 प्रत्येक राज्य के आर्थिक तथा सामाजिक विकास को तीव्र करने के लिए विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में प्रकृति तथा विकास से लाभ लेने के अधिकार को मान्यता प्रदान करता है।

राज्य के आर्थिक कर्तव्य

1. **विश्व व्यापार की अभिवृद्धि, विस्तार तथा उदारीकरण का कर्तव्य**– चार्टर का अनुच्छेद–14 प्रावधान करता है कि प्रत्येक राज्य का कर्तव्य है कि वह विश्व व्यापार के निरंतर विस्तार तथा उदारीकरण और सभी लोगों विशेषकर विकासशील देशों के जीवन स्तर में सुधार करने में सहयोग दे।

2. **निरस्त्रीकरण द्वारा मुक्त किए गए संसाधनों के उपयोग का कर्तव्य**– चार्टर का अनुच्छेद 15 वर्णन करता है कि प्रत्येक राज्य का कर्तव्य है कि वह प्रभावी अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण के अधीन सामान्य तथा संपूर्ण कार्य निष्पादन में अभिवृद्धि करे तथा प्रभावी निरस्त्रीकरण उपायों द्वारा मुक्त किए गए संसाधनों को विकासशील देशों के विकास हेतु आवश्यकताओं के लिए अतिरिक्त साधन के रूप में ऐसे संसाधनों को वितरित करते हुए देश के आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिए उपयोग करे।

3. **अत्यधिक अनुग्रहित राष्ट्र के साथ व्यापार करने का कर्तव्य**– चार्टर का अनुच्छेद 26 प्रावधान करता है कि सभी राज्यों का सहनशीलता के साथ सह अस्तित्व में रहने तथा राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रणाली में भेद के उपरांत एक साथ शांति से रहने और भिन्न आर्थिक तथा सामाजिक प्रणाली के राज्यों के मध्य व्यापार को सुविधाजनक बनाने का कर्तव्य है।

4. **मूल्यों को सूचीबद्ध करने का कर्तव्य**– चार्टर का अनुच्छेद 28 यह प्रावधान करता है कि सभी राज्य विकासशील देशों की आयात वस्तुओं के मूल्य के संबंध में उनके निर्यात के मूल्यों में समायोजन करने में सहयोग करेंगे, ताकि उनके लिए व्यापार की न्यायोचित और साम्यपूर्ण शर्तों में इस प्रकार से वृद्धि की जाए, जो उपभोक्ताओं के लिए साम्यपूर्ण और उत्पादकों के लिए लाभदाई हो।

5. विश्वव्यापी वस्तु अनुबंध का कर्तव्य– चार्टर का अनुच्छेद 6 प्रावधान करता है कि राज्यों का सामानों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास में विश्वव्यापी वस्तु अनुबंध तथा दीर्घकालीन बहुपक्षीय वस्तु अनुबंध करके योगदान देने का कर्तव्य है।

टिप्पणी

राज्यों के उपरोक्त आर्थिक अधिकार तथा कर्तव्य सर्वांगीण नहीं है, किंतु ये राज्यों के आर्थिक विकास के लिए मूलभूत हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. इनमें से क्या राज्य की अर्हता में शामिल नहीं है?
   (क) जनसंख्या (ख) सरकार
   (ग) महाद्वीप (घ) राज्यक्षेत्र
2. इनमें से क्या राज्य का मूलभूत प्रकार नहीं है?
   (क) प्रभुत्व संपन्न राज्य (ख) अपूर्ण प्रभुत्व संपन्न राज्य
   (ग) वशवर्ती राज्य (घ) असामान्य रूप

2.3 राज्यों एवं सरकार की मान्यता

सामान्यतः अंतर्राष्ट्रीय विधि में मान्यता को 4 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:– (1) राज्यों की मान्यता, (2) सरकार की मान्यता, (3) युद्ध स्थिति की मान्यता, (4) राजद्रोह की मान्यता।

पाठ्यक्रमानुसार यहां हम आधारभूत दो मान्यताओं की विवेचना करेंगे।

2.3.1 राज्यों की मान्यता

राज्य कहे जाने के लिए किसी इकाई को राज्यत्व के आवश्यक तत्व जैसे जनसंख्या, राज्य क्षेत्र, सरकार तथा अन्य राज्यों से संबंध बनाने की क्षमता को धारण करना चाहिए। जब राज्य में इन तत्वों के अस्तित्व को अन्य विद्यमान राज्यों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, तब इसे राज्य की मान्यता कहा जाता है। अतः मान्यता एक ऐसी औपचारिक अभिस्वीकृति है, जो अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के अन्य सदस्यों द्वारा एक नए राज्य को प्रदान की जाती है। ओपन हाइम के अनुसार मान्यता की अभिस्वीकृति यह सिद्ध करती है कि विद्यमान राज्यों के विचार में नया राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्य राज्यत्व की शर्तों को पूरा करता है ताकि मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के विचार में नए राज्य को उन अधिकारों तथा कर्तव्य को धारण करने वाले अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति के रूप में माना जा सकता है, जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय विधि राज्यों को प्रदान करती है।

राज्यों के अभ्यास से स्पष्ट होता है कि कई अवसरों पर नए राज्य को राज्यत्व के आवश्यक तत्वों को धारण करने पर भी अन्य राज्यों द्वारा मान्यता नहीं दी जाती है तथा कुछ अवसरों पर नया राज्य राज्यत्व के सभी तत्वों को धारण किए बिना भी अन्य राज्यों द्वारा मान्यता प्राप्त कर लेता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि राज्य द्वारा राज्यत्व के तत्वों के धारण की अभिस्वीकृति विद्यमान राज्यों के स्वविवेक निर्णय पर

आधारित है। स्वविवेक निर्णय तथा एकपक्षीय शक्ति का प्रयोग राज्य की नीति के अनुसार किया जाता है। उदाहरण के लिए यद्यपि इजराइल 1948 में अस्तित्व में आ गया था, फिर भी अरब राज्यों ने उसे मान्यता नहीं दी। मान्यता न प्राप्त होने पर भी किसी राज्य के अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता। इसलिए मान्यता राज्य के अस्तित्व का निश्चायक सबूत नहीं कहा जा सकता। यह राज्यत्व का तत्व नहीं है।

टिप्पणी

राज्यों की मान्यता की विधि

राज्यों को मान्यता मुख्य रूप से राजनीतिक विचारण पर दी जाती है। इसलिए यह सोचा गया कि अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय द्वारा इस विषय का विनियमन न तो वांछनीय है और न ही साध्य है । हावर्ड रिसर्च ने मान्यता के प्रश्न के अध्ययन को प्रारंभ किया था, किंतु प्रारूप अभिसमय को तैयार करने के लिए पर्याप्त प्रगति करने में अक्षम रहा। इस विषय के महत्व को ध्यान में रखकर अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग ने 1949 में आयोजित अपने प्रथम सत्र में 'राज्यों तथा सरकारों की मान्यता' को संहिताकरण के लिए यथोचित समझे गए 14 विषयों की सामान्य सूची में सम्मिलित किया था। बाद में यह विषय आयोग की योजना में से इस आधार पर हटा दिया गया कि मान्यता का प्रश्न विधि की अपेक्षा राजनीतिक क्षेत्र से अधिक संबंधित है। इसलिए वर्तमान में मान्यता से संबंधित नियम स्थापित नहीं है। किसी संहिताबद्ध नियम के अभाव में मान्यता का विषय राज्य व्यवहार तथा न्यायिक विनिश्चयों द्वारा शासित होता है।

मान्यता के सिद्धांत

मान्यता का विधिक महत्व विप्रावधानस्पद है। इसलिए मान्यता के विभिन्न सिद्धांतों का विकास हुआ है, जो कि इस प्रकार हैं :–

संघटक सिद्धांत (Constitutive Theory)

इस सिद्धांत के अनुसार किसी राज्य का निर्माण तथ्य द्वारा नहीं बल्कि अन्य राज्यों द्वारा दी गई मान्यता के माध्यम से होता है। अर्थात कोई इकाई राज्यत्व के आवश्यक तत्वों को प्राप्त करने से राज्य नहीं हो जाती है। यह राज्य तब बनता है, जब राज्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इससे स्पष्ट होता है कि विद्यमान राज्य मान्यता प्रदान करके राज्य के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। इस सिद्धांत का समर्थन एंजीलोटी तथा होलेंड द्वारा किया गया है। ओपनहाइम ने अपनी पुस्तक इंटरनेशनल लॉ के आठवें संस्करण में स्पष्ट किया है कि राज्य अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति केवल तथा अनन्य रूप से मान्यता के द्वारा ही बनता है। इस सिद्धांत के अनुसार, नई इकाई स्वतः (ipso facto) राज्य नहीं हो सकती। अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति होने के लिए उसे अन्य राज्यों द्वारा मान्यता दिया जाना आवश्यक है। अतः इस सिद्धांत के द्वारा मान्यता को बहुत अधिक महत्व दिया गया है। संघटक सिद्धांत की विभिन्न विधिशास्त्रियों द्वारा कई आधारों पर आलोचना की गई है। उनका मानना है कि जब कोई राज्य, राज्य के सभी तत्वों से युक्त हो जाता है तब यह आवश्यक नहीं है कि उसके अस्तित्व को अन्य राज्यों द्वारा एक साथ मान्यता दी जाए। मान्यता देने का समय एक राज्य का दूसरे राज्य से भिन्न भिन्न हो सकता है। इसलिए सदैव ऐसा पाया जाता है कि किसी विशेष समय पर राज्य को केवल कुछ राज्यों द्वारा मान्यता दी जाती है। उदाहरण के लिए चीन को 1979 में

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र राज्य द्वारा मान्यता दी गई थी, जबकि कई राज्यों ने पहले ही मान्यता दे दी थी। इस प्रकार, भारत तथा कुछ अन्य राज्यों द्वारा बांग्लादेश को मान्यता दिए जाने के बहुत अधिक समय बाद उसे पाकिस्तान द्वारा मान्यता प्रदान की गई थी। व्यवहार में जब भी राज्य अस्तित्व में आता है तब यह स्थिति सदैव ही उत्पन्न होती है। संघटक सिद्धांत को स्वीकार करने का अर्थ होगा कि अन्य राज्य कुछ राज्यों के लिए अस्तित्व में है तथा अन्य राज्य अन्य राज्यों के लिए अस्तित्व में नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मान्यता राज्य के अस्तित्व के लिए निश्चायक प्रमाण नहीं है।

मान्यता देना राज्य का राजनीतिक कृत्य है। यदि इस सिद्धांत को स्वीकार किया जाता है तो इसका अर्थ यह होगा कि नए राज्य के भाग्य का निर्धारण अन्य राज्यों द्वारा किया जाएगा। यह उल्लेख किया जा सकता है कि मान्यता किसी भी प्रकार से अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय को उत्पन्न नहीं करती। विद्यमान राज्यों को स्वविवेक निर्णय का अधिकार देना वांछनीय नहीं है, क्योंकि इनके कार्य नई इकाई की परिस्थिति को निर्धारित करने में किसी विधिक मानक द्वारा मार्गदर्शित नहीं होते।

मान्यता किसी राज्य के पास आवश्यक तत्वों के होने की स्वीकारोक्ति है। इसका यह तात्पर्य है कि राज्य मान्यता के पूर्व से ही सदैव अस्तित्व में रहता है। मान्यता द्वारा मात्र इस तथ्य को स्वीकार किया जाता है, कि किसी इकाई के पास राज्यत्व के आवश्यक तत्व विद्यमान हैं। जब तक राज्य अस्तित्व में नहीं आता तब तक मान्यता का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

जब नए राज्य को अन्य राज्य द्वारा मान्यता दी जाती है तब यह माना जाता है कि मान्यता देने वाले राज्य ने मान्यता प्राप्त करने वाले राज्य की स्थापना की तिथि से उसके सभी कृत्यों को मान्यता दी है। इसका तात्पर्य यह है कि नए राज्य को मान्यता प्रदान करते समय राज्य यह स्वीकार करते हैं कि वह अपनी मान्यता के पहले से ही अस्तित्व में आ गया है। उदाहरणार्थ, बांग्लादेश को उसके अस्तित्व में आने के लगभग 2 वर्ष बाद पाकिस्तान द्वारा मान्यता दी गई थी। किंतु उसने बांग्लादेश के निर्माण की तिथि से उसके सभी कृत्यों को मान्यता प्रदान की। इसमें पुनः यह निहित है कि राज्य अपनी मान्यता के पूर्व अस्तित्व में होता है।

यह कहना उचित प्रतीत नहीं होता कि एक राज्य को अंतर्राष्ट्रीय विधि में अधिकार उसी समय प्राप्त होता है जब उसको अन्य राज्यों द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है। राज्यों के व्यवहार से यह स्पष्ट होता है कि एक राज्य को अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत अधिकार बिना मान्यता के भी प्राप्त होते हैं तथा ऐसे राज्यों को भी अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त रहता है। ऐसे राज्य अपनी स्वतंत्रता और राज्य क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा कर सकते हैं। उपर्युक्त अधिकार मोंटेवीडियो अभिसमय 1933 के अनुच्छेद 3 में तथा बोगोटा चार्टर के अनुच्छेद 9 और 10 द्वारा प्रदान किए गए हैं। इन सभी आलोचनाओं से यह साबित होता है कि संघटक सिद्धांत न तो सैद्धांतिक है और न ही व्यावहारिक रूप से युक्तियुक्त है।

घोषणात्मक सिद्धांत (Declaratory Theory)

इस सिद्धांत के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि में राज्य अस्तित्व में उसी समय आ जाता है जब वह राजत्व के सभी गुणों को अर्जित कर लेता है। सभी गुणों के विद्यमान होने से

राज्य इकाई वास्तव में अस्तित्व में आ जाती है। अन्य राज्य द्वारा मान्यता इस तथ्य के साक्ष्य को पेश करती है। इसलिए मान्यता का कार्य विद्यमान तत्व की घोषणा है कि इकाई राज्य के आवश्यक गुणों को धारण करती है। इस सिद्धांत का समर्थन हॉल, ब्रायर्ली और फिशर द्वारा किया गया है। हॉल के अनुसार, एक राज्य राष्ट्रों के परिवार में अधिकार के रूप में उस समय सम्मिलित हो जाता है जब वह राज्य के आवश्यक गुणों को प्राप्त कर लेता है। ब्रायर्ली के अनुसार, राज्य मान्यता प्राप्त किए बिना अस्तित्व में रह सकता है तथा यदि वह वास्तव में अस्तित्व में है तो उसे उनके द्वारा राज्य के रूप में माने जाने का अधिकार है। इस प्रकार, इस सिद्धांत के समर्थकों ने मान्यता के महत्व को कम कर दिया है क्योंकि मान्यता केवल इसलिए आवश्यक है क्योंकि यह नए राज्य को अन्य राज्यों के साथ शासकीय संबंध बनाने के लिए समर्थ बनाती है। इस सिद्धांत के अनुसार नए राज्य को मान्यता प्रदान करने वाले राज्य द्वारा मान्यता का प्रभाव उनके मध्य संबंध को सृजित करना है। यह सिद्धांत संघटक सिद्धांत से सुनिश्चित रूप से बेहतर प्रतीत होता है। राज्यों के व्यवहार तथा न्यायिक संस्थाओं ने इस सिद्धांत का समर्थन किया है। मोंटेवीडियो अभिसमय 1933 में अनुच्छेद 3 में बोगोटा चार्टर ने अनुच्छेद 9 और 10 में तथा पनामा प्रारूप घोषणा 1948 ने अनुच्छेद 3 में इस सिद्धांत को प्रतिपादित किया है। इसके अतिरिक्त कई वादों में भी इस सिद्धांत को माध्यस्थम के द्वारा मान्यता दी गई है। टीनोको माध्यस्थम इसका एक उदाहरण है।

टिप्पणी

यद्यपि घोषणात्मक सिद्धांत संघटक सिद्धांत की अपेक्षा अधिक मान्य है फिर भी इसमें भी कमियां हैं। उदाहरणार्थ, यद्यपि एक राज्य राज्य के सभी गुणों को प्राप्त कर अस्तित्व में आता है फिर भी बिना मान्यता प्राप्त किए वह अन्य राज्यों के साथ विधिक संबंध स्थापित नहीं कर सकता। अर्थात इस सिद्धांत के अनुसार विधिक संबंधों का निर्माण मान्यता द्वारा ही होता है। अतः यह घोषणात्मक सिद्धांत निश्चित रूप से सही अर्थ में उद्घोषणात्मक नहीं है। इसमें संघटक सिद्धांत के तत्व विद्यमान हैं।

निष्कर्ष

मान्यता के संदर्भ में उक्त दोनों सिद्धांत ही अधिक महत्वपूर्ण हैं। किंतु दोनों सिद्धांतों में से कोई भी स्वयं में पूर्ण नहीं है। राज्यों के व्यवहारों से स्पष्ट होता है कि मान्यता में संघटक सिद्धांत तथा घोषणात्मक सिद्धांत, दोनों के तत्व मौजूद हैं। राज्यत्व के दो प्रभेद होते हैं– प्रथम, प्राकृतिक राज्यत्व तथा द्वितीय, विधिक राजत्व।

राज्यत्व के सभी आवश्यक गुणों को धारण करके ही राज्य अस्तित्व में आ जाता है। अपने अस्तित्व में आने के बाद ही वह इस अर्थ में प्राकृतिक राजत्व को प्राप्त कर लेता है तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के कुछ अधिकारों को अर्जित करता है। अतः किसी राज्य को अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त करने के लिए अन्य राज्यों की मान्यता की आवश्यकता नहीं है। उसको कुछ अधिकार व कर्तव्य स्वयं मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ, इसके राज्य क्षेत्र पर आक्रमण नहीं किया जा सकता है या उसका अधिग्रहण नहीं किया जा सकता, अन्य राज्यों को बिना उसकी अनुमति के उसके राज्य क्षेत्र के ऊपर उड़ान भरने का अधिकार नहीं होता, अन्य राज्यों को उसकी आंतरिक राजनीतिक प्रणाली में हस्तक्षेप करने से विरत रहना चाहिए, उन्हें खुले समुद्र पर नए राज्य के अधिकारों को भी सम्मान प्रदान करना चाहिए तथा नए राज्यों का झंडा लगाकर चलने वाले जहाजों को विराष्ट्रिक नहीं माना जा सकता। अंतर्राष्ट्रीय विधि संस्थान ने 23 अप्रैल, 1936 के अपने

संकल्प में अनुच्छेद 1 के परिच्छेद 3 के अधीन उचित रूप से कथित किया था कि नए राज्य के अस्तित्व के साथ संबंधित सभी विधिक प्रभावों सहित उसका अस्तित्व एक या अधिक राज्यों द्वारा मान्यता देने से इनकार करने से प्रभावित नहीं होता। इस प्रकार नया राज्य बिना अन्य राज्यों द्वारा मान्यता के प्राकृतिक राज्यत्व को धारण करता है।

टिप्पणी

जहां विधिक राज्यत्व का प्रश्न है, इसको नया राज्य उस समय प्राप्त करता है, जब वह निश्चित अधिकारों को धारण करता है। विधिक राज्यत्व को राज्य द्वारा केवल तब अर्जित किया जा सकता है जब उसे नए राज्यों द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है। इस प्रकार, यद्यपि मान्यता प्राकृतिक राज्यत्व के अस्तित्व की घोषणा है, फिर भी यह विधिक राज्यत्व का निर्माण करता है। ओपनहाइम ने ठीक ही कहा है कि मान्यता, यद्यपि विद्यमान तथ्य की घोषणा है, परंतु यह मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के संबंधों से संबंधित है। इससे स्पष्ट होता है कि अन्य राज्यों से संबंध स्थापित करने के लिए मान्यता आवश्यक नहीं है। केल्सन द्वारा प्रस्तुत इस मत को संशोधित संघटक सिद्धांत कहा जाता है, क्योंकि मान्यता केवल एक प्रकार के राजत्व अर्थात विधिक राजत्व को गठित करती है। राज्य में प्राकृतिक राजत्व उसी क्षण से अस्तित्व में आ जाता है जब वह राज्य के आवश्यक तत्व को प्राप्त कर लेता है।

मान्यता के रूप

राज्यों को मान्यता मुख्य तौर पर दो रूपों में प्रदान की जा सकती है–(1) अभिव्यक्त मान्यता, तथा (2) विवक्षित मान्यता।

अभिव्यक्त मान्यता

जब विद्यमान राज्य कुछ औपचारिक घोषणा कर के नए राज्य को मान्यता देते हैं तब मान्यता को अभिव्यक्त मान्यता कहा जाता है। अर्थात मान्यता को अभिव्यक्त शब्दों में प्रदान किया जाता है। औपचारिक घोषणा सार्वजनिक कथन के रूप में हो सकती है, जिसके मूल पाठ को राज्य के रूप में मान्यता प्राप्त करने वाले राज्य को भेजा जाता है। भारत द्वारा 6 दिसंबर, 1971 को बांग्लादेश की मान्यता अभिव्यक्त मान्यता का उदाहरण है। इसी प्रकार 7 सितंबर, 1991 को भारत द्वारा 3 बाल्टिक गणतंत्रों लिथुआनिया, एस्तोनिया तथा लातविया को प्रभुत्व संपन्न तथा स्वतंत्र राज्यों के रूप में प्रदत्त मान्यता भी अभिव्यक्त मान्यता का उदाहरण है। भारतीय प्रधानमंत्री ने इस आशय का संदेश तीनों राज्यों के राष्ट्रपतियों को भेजा था। इसी प्रकार वर्ष 2008 में जब कोसोवो ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की तब उसको अमेरिका तथा उसके यूरोपीय सहयोगी राज्यों जैसे– फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी और इटली ने मान्यता प्रदान की। इसी प्रकार, साउथ सूडान जब 9 जुलाई, 2011 को स्वतंत्र हुआ तब उसको संयुक्त राज्य, ब्रिटेन तथा कई अन्य राज्यों ने मान्यता दी। मान्यता संधि बनाकर भी प्रदान की जा सकती है।

विवक्षित मान्यता

जब विद्यमान राज्य नए राज्य की मान्यता के संबंध में कोई औपचारिक घोषणा न करके कुछ ऐसा करते हैं, जिससे नए राज्य को मान्यता देने का आशय निर्दिष्ट होता है, तो इसे विवक्षित मान्यता कहते हैं। मोंटेवीडियो अभिसमय 1933 के अनुच्छेद 7 के अधीन कहा गया है कि विवक्षित मान्यता उस कार्य का परिणाम है, जो नए राज्य की मान्यता

के आशय में निहित है। इस प्रकार की मान्यता को विवक्षित मान्यता के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है। मान्यता का आशय राज्य द्वारा अकेले या सामूहिक रूप से व्यक्त किया जा सकता है।

मान्यता के प्रकार

टिप्पणी

राज्यों को मान्यता मुख्यतः दो प्रकार से प्रदान की जा सकती हैः–

(1) **वस्तुतः मान्यता** (De Facto Recognition)

जब विद्यमान राज्य यह समझते हैं कि नए राज्य ने पर्याप्त स्थायित्व ग्रहण नहीं किया है, तब वे उसे औपबंधिक रूप से मान्यता प्रदान कर सकते हैं। औपबंधिक मान्यता को वस्तुतः मान्यता कहा जाता है। ओपेनहाइम के अनुसार, वस्तुतः मान्यता तब प्रदान की जाती है, जब मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के विचार में, यद्यपि नया राज्य वास्तव में स्वतंत्र है तथा उसके नियंत्रण अधीन राज्य क्षेत्र में शासन करने की उसकी प्रभावी शक्ति है, फिर भी उसने पर्याप्त स्थायित्व प्राप्त नहीं किया है या मान्यता की अन्य अपेक्षाओं के अनुपालन करने की संभावनाओं को प्रस्तुत नहीं किया है। सामान्य रूप से वस्तुतः मान्यता तब प्रदान की जाती है जब मान्यता प्रदान करने वाला राज्य यह समझता है कि यद्यपि नए राज्य के पास विधि सम्मत सरकार है, फिर भी राज्य क्षेत्र को शासित करने की उसकी क्षमता या निरंतरता संदेहास्पद है। वस्तुतः मान्यता प्रदान करने वाला राज्य नए राज्य के साथ संबंध स्थापित करने की इच्छा को दर्शित करता है, किंतु इच्छा औपबंधिक रूप से अर्थात पर्याप्त स्थायित्व सहित राज्यत्व के सभी तत्वों की पूर्ति के अधीन दर्शित की जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि वस्तुतः मान्यता का सही उद्देश्य यह घोषणा करना है कि स्थापित या नए राज्य की सरकार होने का दावा करने वाला निकाय वास्तव में पूर्ण विधितः मान्यता की अन्य शर्तों की तुष्टि किए बिना प्रभावी प्राधिकार धारण करता है। यदि वे शेष शर्तें बाद में पूर्ण हो जाती हैं तो पूर्ण विधितः मान्यता दे दी जाएगी। किंतु यदि स्थाई रूप से उन का अभाव बना रहता है तो मान्यता स्वतः समाप्त हो जाएगी या वापस ले ली जाएगी।

अतः वस्तुतः मान्यता विधितः मान्यता की ओर प्राथमिक कदम के रूप में मानी जा सकती है। सोवियत संघ को 16 मार्च, 1921 को ग्रेट ब्रिटेन द्वारा वस्तुतः तथा बाद में 1 फरवरी, 1924 को विधितः मान्यता प्रदान की गई थी। इसी प्रकार, अबीसीनिया (Abyssinia) पर इटली की विजय को ग्रेट ब्रिटेन द्वारा 1936 में वस्तुतः तथा 1938 में विधितः मान्यता प्रदान की गई थी। पिछले कुछ वर्षों में वस्तुतः मान्यता इथोपिया और फ्रांस के द्वारा सोमाली लैंड को दी गई है। इन मामलों में निश्चित समझौते के अभाव में परिस्थिति की अनिश्चितता के कारण वस्तुतः मान्यता प्रदान की गई थी। इन मामलों में सरकारें कुछ समय के लिए अपने राज्य क्षेत्रों में प्रभावी थीं, किंतु उनके शासन के स्थायित्व का कोई लक्षण नहीं था। एक बार प्रदान की गई वस्तुतः मान्यता को मान्यता प्रदान करने वाले राज्य द्वारा तब वापस लिया जा सकता है, जब वह यह समझता है कि नए राज्य ने राज्य क्षेत्र में प्रशासन करने की क्षमता खो दी है।

यदि विद्यमान राज्य वस्तुतः मान्यता प्रदान करने के कुछ समय उपरांत विधितः मान्यता प्रदान करता है तो विधितः मान्यता का प्रभाव भूतलक्षी तिथि अर्थात उस तिथि से होगा जब वस्तुतः मान्यता प्रदान की गई थी। राज्य को वस्तुतः मान्यता प्रदान करके

टिप्पणी

मान्यता प्रदान करने वाला राज्य लाभों, विशेष रूप से, आर्थिक लाभों को सुनिश्चित करता है। यह उसे वस्तुतः मान्यता प्राप्त राज्य में अपने नागरिकों के हितों को संरक्षित करने के लिए सक्षम बनाता है। उन्हें यह मान्यता प्रदान करने वाले राज्य को राजनीतिक शक्ति के व्यक्तियों को अभिस्वीकृत करने के लिए तथा वस्तुतः मान्यता प्राप्त राज्य में अपने हित तथा व्यापार को संरक्षित करने के लिए भी सक्षम बनाता है। किंतु वस्तुतः मान्यता का प्रभाव वैसा नहीं है जैसा कि विधितः मान्यता का है। सामान्यतः तथ्य रूप में मान्यता प्राप्त राज्य से राजनयिक संबंध नहीं स्थापित किए जाते हैं पुनः वस्तुतः मान्यता प्राप्त राज्यों के प्रतिनिधि को मान्यता प्राप्त करने वाले राज्य के राज्य क्षेत्र के अंतर्गत राजनयिक उन्मुक्तियां नहीं प्राप्त होतीं, किंतु इस संबंध में राज्यों के व्यवहार एक समान नहीं हैं। संयुक्त राज्य के व्यवहार के अनुसार वस्तुतः मान्यता प्राप्त सरकार के प्रतिनिधि राजनयिक उन्मुक्तियों का उपयोग करते हैं।

(2) विधितः मान्यता (De-jure Recognition)

जब वर्तमान राज्य यह समझते हैं कि नया राज्य स्थायित्व तथा स्थिरता सहित राज्यत्व के सभी आवश्यक गुणों को धारण करने में सक्षम है तथा उसको जनसंख्या का समर्थन प्राप्त है, तब प्रदान की गई मान्यता को विधितः मान्यता के रूप में जाना जाता है। अर्थात विधितः मान्यता अंतिम होती है। उदाहरण के लिए, जब इजराइल राज्य बना तब अमेरिका तथा अन्य कई राज्यों ने उसको पूर्ण मान्यता दी, जिसको विधितः मान्यता कहा गया। विधितः मान्यता, वस्तुतः मान्यता को प्रदान किए बिना भी प्रदान की जा सकती है। जब नया राज्य शांतिपूर्ण तथा संवैधानिक रूप से अस्तित्व में आता है, तो सीधे विधितः मान्यता प्रदान की जाती है। किंतु जब राज्य क्रांति के माध्यम से गठित होता है, तब कभी–कभी विधितः मान्यता वस्तुतः मान्यता प्रदान किए जाने के बाद प्रदान की जाती है।

वस्तुतः मान्यता तथा विधितः मान्यता में अंतर

वस्तुतः तथा विधितः मान्यता विधिक अधिकारों तथा बाध्यताओं को प्रदान करने के लिए दी जाती हैं। किंतु इन दोनों के मध्य अंतर होते हैं। जहां तक मान्यता प्राप्त प्राधिकारी के आंतरिक कार्यों का संबंध है वहां तक, वस्तुतः तथा विधितः मान्यता के मध्य कोई अंतर नहीं है। ओपनहाइम के अनुसार, वस्तुतः मान्यता का विधितः मान्यता से कोई भेद नहीं है, क्योंकि मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के न्यायालय में वस्तुतः मान्यता प्राप्त प्राधिकारी की विधायी तथा आंतरिक कार्यवाही को उसी प्रकार माना जाता है जिस प्रकार विधितः मान्यता प्राप्त राज्य सरकार की विधायी तथा आंतरिक कार्यवाहियों को माना जाता है।

जहां तक मान्यता प्राप्त प्राधिकारी के विधायी या अन्य आंतरिक मामलों का संबंध है, मान्यता प्राप्त राज्य के न्यायालयों के समक्ष विधितः मान्यता तथा वस्तुतः मान्यता में कोई अंतर नहीं है। वस्तुतः मान्यता प्राप्त राज्य सरकार के विधायी या अन्य आंतरिक उपाय को उसी प्रकार माना जाता है जैसे विधितः मान्यता प्राप्त राज्य सरकार के विधायी या अन्य आंतरिक उपाय को। लूथर बनाम सागोर, (1921) 3 के0 बी0 पृष्ठ 532, में यह नियम प्रतिपादित किया गया था कि मान्यता प्राप्त प्राधिकारी के आंतरिक कार्य को प्रभावित करने के उद्देश्य से वस्तुतः तथा विधितः मान्यता में कोई अंतर नहीं

टिप्पणी

है। इस नियम को कई अन्य मामलों में भी लागू किया गया है। उदाहरणार्थ, बैंक ऑफ़ इथियोपिया बनाम नेशनल बैंक ऑफ इजिप्ट एंड लिकोरी में न्यायालय ने निर्णय दिया था कि इस तथ्य, कि ब्रिटिश सरकार ने इटली की सरकार को उस समय इटली के नियंत्रण आधीन अबिसीनिया के क्षेत्र की वस्तुतः सरकार होने के रूप में मान्यता दी थी, की दृष्टि में अबिसीनिया में वादी बैंक को विघटित करने तथा समापक नियुक्त करने के इटली के डिक्री को प्रभावी किया जाना चाहिए। पुनः मान्यता प्रदान करने वाले राज्य को न्यायालयों में उन्मुक्ति तथा दोषपूर्ण कार्यों के लिए राज्य का अंतर्राष्ट्रीय दायित्व वही रहता है चाहे उसका शासन वस्तुतः मान्यता प्राप्त सरकार द्वारा चलाया जा रहा हो या विधितः मान्यता प्राप्त सरकार द्वारा। अरंतजाजू मैन्डी मामले में यह निर्णय दिया गया था कि स्पेन की राष्ट्रवादी सरकार जिसे अपने नियंत्रणाधीन स्पेन के भाग के लिए वस्तुतः सरकार के रूप में मान्यता दी गई थी, स्पेन की विधितः मान्यता प्राप्त सरकार द्वारा अपने विरुद्ध संस्थित वाद में अधिकारिता संबंधी उन्मुक्ति की अधिकारी थी।

रूस ने जून 1918 में प्राइवेट या लिमिटेड कंपनियों से संबंधित यांत्रिक आरा मिलों तथा लकड़ी के कार्य करने वाले संस्थापकों के राष्ट्रीयकरण के लिए डिक्री पारित की तथा वादी की मिल तथा रूस में उनसे संबंधित विनिर्मित पदार्थों का अधिग्रहण कर लिया। इसके फलस्वरूप सोवियत सरकार से प्राधिकार प्राप्त पदाधिकारियों ने वादी के कारखाने तथा उसमें पड़े हुए विनिर्मित माल पर कब्जा कर लिया। लंदन में 14 अगस्त, 1920 को एल0 बी0 क्रैस्सिन (लंदन में रूसी वाणिज्यक प्रतिनिधि मंडल का प्रतिनिधि) तथा प्रतिवादियों के मध्य एक संविदा हुई, जिसके द्वारा क्रैस्सिन ने लंदन में व्यापार करने वाली एक फर्म के पदाधिकारियों द्वारा अधिग्रहित माल की कुछ मात्रा प्रतिवादियों को बेच दी। वादी ने उन पर इस आधार पर अधिकार का दावा किया कि माल उनकी संपत्ति है तथा वे यू0 एस0 एस0 आर0 के एक कारखाने से आया है, जो राष्ट्रीयकृत किए जाने के पूर्व उसके स्वामित्व में था। वादी ने तर्क दिया कि डिक्री को अन्य बातों के साथ–साथ इंग्लिश न्यायालय द्वारा मान्यता नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि सोवियत सरकार को यूनाइटेड किंगडम द्वारा मान्यता नहीं दी गई थी। प्रतिवादी ने तर्क दिया कि गणतंत्र सरकार ने जो सभी कारखानों को राष्ट्रीयकृत करने वाली डिक्री पारित की है उस समय रूस की वस्तुतः सरकार थी और इसी प्रकार उसे हिज़ मैजेस्टी सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की गई थी। और डिक्री ऐसी है जिसे न्यायालय मान्यता से इंकार नहीं कर सकता था। न्यायालय ने प्रतिवादी के पक्ष में निर्णय दिया। बैंक्स ने निर्णय दिया था कि इस देश की सरकार ने सोवियत सरकार को रूस में प्रबुद्ध संपन्नता की शक्ति को वास्तव में वस्तुतः मान्यता दी है, इसलिए उस सरकार के कार्य को सम्यक रूप से मान्यता प्राप्त प्रभुत्व संपन्न विदेशी राज्य के कार्यों के कारण सभी संबंधों में उस देश का कार्य न्यायालय द्वारा माना जाना चाहिए।

उक्त मामलों में दिए गए निर्णय से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि विधितः मान्यता तथा वस्तुतः मान्यता के मध्य अंतर का कोई विधिक परिणाम नहीं होता। इन दोनों के मध्य मुख्यतः निम्नलिखित अंतर होते हैं:–

(1) वस्तुतः मान्यता को औपबंधिक होने के कारण विधितः मान्यता की वापसी को न्यायोचित ठहराने वाले आधारों के अतिरिक्त अन्य आधारों पर भी वापस लिया जा सकता है।

(2) वस्तुतः मान्यता प्राप्त राज्य के साथ राजनयिक संबंधों की स्थापना नहीं की जा सकती। राजनयिक संबंध की स्थापना तब की जा सकती है जब राज्य को विधितः मान्यता प्रदान की जाती है। यूनाइटेड किंगडम को सम्मिलित करके कुछ देशों की प्रथा के अनुसार, नियमतः वस्तुतः मान्यता पूर्ण राजनयिक संबंध स्थापित नहीं करती।

टिप्पणी

(3) वस्तुतः मान्यता प्राप्त राज्य के प्रतिनिधियों को पूर्ण राजनयिक उन्मुक्तियां नहीं प्रदान की जातीं, जबकि विधितः मान्यता प्राप्त राज्य के प्रतिनिधियों को ऐसी उन्मुक्तियां प्रदान की जाती हैं।

(4) विधितः मान्यता प्राप्त राज्य मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के राज्य क्षेत्र में स्थित संपत्ति को प्राप्त करने के लिए दावा कर सकते हैं, जबकि वस्तुतः मान्यता प्राप्त राज्य ऐसा दावा नहीं कर सकते। सोवियत सरकार इंग्लैंड में स्थित ज़ारिस्ट अभिलेखागार तथा अन्य संपत्ति पर केवल तब कब्जा कर सकी थी जब इंग्लैंड ने 1924 में उसे विधितः मान्यता प्रदान कर दी थी।

(5) जहां अन्य राज्य के राज्य क्षेत्र के अंतर्गत स्थित संपत्ति पर वस्तुतः तथा विधितः मान्यता प्राप्त दोनों सरकारों द्वारा दावा किया जाता है, वहां सामान्यतः वस्तुतः मान्यता प्राप्त सरकार के दावे की उपेक्षा की जा सकती है।

(6) इसके अतिरिक्त राज्य क्षेत्र जिसको वस्तुतः मान्यता दी गई है कि शासकीय यात्रा तथा उसके संबंध में राज्य के साथ संबंध को न्यूनतम रखा जा सकता है या निवारित किया जा सकता है।

वस्तुतः तथा विधितः मान्यता के मध्य उक्त अंतर यह स्पष्ट करते हैं कि दोनों के मध्य अंतर पूर्णतया राजनीतिक प्रकृति का है।

निर्वासित सरकार को मान्यता

जब उस राज्य को मान्यता प्रदान की जाती है जिसका प्रशासन सरकार द्वारा राज्य के बाहर से संचालित किया जाता है तब सरकार की मान्यता को निर्वाचित सरकार की मान्यता कहा जाता है। साधारणतः निर्वासित सरकार इस मान्यता के साथ संचालित होती है कि भविष्य में वह अपने राज्य में वापस आ जाएगी तथा पुनः शक्ति प्राप्त करेगी। यह स्थिति सामान्यतः उन राज्य क्षेत्रों के मामले में उत्पन्न हो सकती है, जहां राज्य का अधिपत्य अस्थाई रूप से आक्रमणकारियों या अपहारकों द्वारा किया जाता है और सरकार अपने राज्य में अपनी वापसी लंबित रहने के दौरान मित्र राज्य में भाग जाती है। यह स्थिति प्रायः युद्ध के समय होती है, जहां विद्रोही सरकार उस राज्य क्षेत्र के बाहर स्थापित की जाती है, जिस पर वह प्राधिकार का दावा करती है और राज्य क्षेत्र में उसके द्वारा पर्याप्त नियंत्रण स्थापित करने के पूर्व उसे अन्य राज्यों द्वारा मान्यता प्रदान की जा सकती है।

अल्जीरिया में राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा ने काहिरा, ट्यूनिस तथा रबात में 19 सितंबर, 1958 को अल्जीरिया गणतंत्र की अस्थाई सरकार की घोषणा की थी। अल्जीरिया गणतंत्र को 1962 में फ्रांस द्वारा स्वतंत्रता प्रदान किए जाने के पहले ही कई राज्यों द्वारा मान्यता प्रदान कर दी गई थी। इसी प्रकार, 15 नवंबर, 1988 को फिलिस्तीन मुक्ति संगठन ने फिलिस्तीन राष्ट्रीय परिषद या निर्वाचित सांसद के असाधारण सत्र के दौरान

स्वतंत्र फिलिस्तीन राज्य की स्थापना की घोषणा की। निर्वाचित फिलिस्तीन सरकार ट्यूनीशिया में स्थापित थी। भारत तथा अन्य कई राज्यों द्वारा इस तथ्य के उपरांत भी फिलिस्तीन की स्वतंत्रता को मान्यता दी गई कि इसका राज्य क्षेत्र इसराइल के अधिभोग के अधीन है। ऐसे मामलों में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या किसी राज्य को उस समय में भी मान्यता प्रदान की जा सकती है जब राज्य के राज्य क्षेत्र तथा उनके निवासियों पर सरकारी नियंत्रण के संबंध में गंभीर आशंका विद्यमान हो।

टिप्पणी

परंपरागत रूप से अंतर्राष्ट्रीय विधि राज्यत्व के तत्व के रूप में स्थाई तथा प्रभावी सरकार की अपेक्षा करता है। इसमें यह निहित था कि उसमें सरकार के अंगों पर वास्तविक नियंत्रण तथा अंतर्राष्ट्रीय स्थायित्व का पर्याप्त अंश होना चाहिए तथा इसके अभाव में राज्य को मान्यता नहीं दी जा सकती। किंतु वर्तमान समय में, यह स्वीकार किया जाता है कि राज्य कहे जाने के लिए किसी इकाई के लिए प्रभावी सरकार का होना आवश्यक नहीं है। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद आत्मनिर्णय का सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय विधि का मान्यता प्राप्त सिद्धांत हो गया है। क्योंकि प्रभावी सरकार की अवधारणा उक्त सिद्धांत के विपरीत होती है, इसलिए यह राज्यत्व का तत्व नहीं रह गया है। यह निष्कर्ष वहां अनिवार्य प्रतीत होता है, जहां स्थानीय निवासी बलपूर्वक विदेशी राज्य द्वारा उसके राज्य क्षेत्र के युद्धमान आधिपत्य द्वारा आत्मनिर्णय के अधिकार के प्रयोग से रोके जाते हैं। प्रभावी सरकार को धारण किए बिना भी किसी इकाई को राज्य कहा जा सकता है तथा उसे मान्यता दी जा सकती है। इसको मान्यता देना या न देना व्यापक रूप से मान्यता प्रदान करने वाले राज्य की इच्छा पर निर्भर रहता है। मान्यता न देने का अर्थ यह नहीं होता कि इकाई में राज्य के आवश्यक गुण नहीं हैं।

समय पूर्व मान्यता या सहसा मान्यता

नए राज्य को मान्यता तब प्रदान की जाती है जब वह राजत्व के सभी तत्वों को धारण कर लेता है। किंतु मान्यता राजनीतिक कार्य है इसलिए कभी–कभी मान्यता ऐसी इकाई को भी प्रदान कर दी जाती है जो राज्य के सभी गुणों को धारण नहीं करती। ऐसी मान्यता को समय पूर्व मान्यता या सहसा मान्यता देना कहा जाता है। राज्य को दी गई समय पूर्व मान्यता विद्यमान राज्य के मामले में अनाधिकृत या विधि विरुद्ध मध्यक्षेप की कोटि में आती है। ओपनहाइम ने स्पष्ट किया है कि नए राज्य के रूप में असामयिक तथा समय पूर्व मान्यता मूल राज्य की प्रतिष्ठा के उल्लंघन से अधिक है। यह विधि विरुद्ध कार्य है तथा प्रायः कहा जाता है कि ऐसी असामयिक मान्यता मध्यक्षेप के समान है।

सशर्त मान्यता

जब मान्यता प्रदान करने वाला राज्य राज्यत्व की सामान्य अपेक्षाओं के अतिरिक्त नए राज्य द्वारा शर्तों को पूर्ण करने की अपेक्षा करता है, तो उसे सशर्त मान्यता कहते हैं। सशर्त मान्यता की अवधारणा को उस प्रोटोकॉल में पेश किया गया था, जिस पर 28 जून, 1878 को सर्बिया की मान्यता के लिए ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, इटली तथा जर्मनी की ओर से हस्ताक्षर किए गए थे। प्रोटोकॉल के अनुसार, सर्बिया को इस शर्त के अधीन मान्यता दी गयी थी कि वह अपने निवासियों पर कोई धार्मिक भेदभाव नहीं करेगा। मान्यता प्रदान करने वाला राज्य मान्यता के बदले में, अपने विशिष्ट लाभ के लिए शर्त

टिप्पणी

लगाता है। ओपनहाइम ने स्पष्ट कहा है कि मान्यता विभिन्न पहलुओं में न तो संविदात्मक प्रबंध है और न ही राजनैतिक छूट है। यह तथ्यों की विद्यमानता की घोषणा है। ऐसा होने के कारण, इसे उन अपेक्षाओं, जो समुदाय को स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता के लिए अर्हित करती हैं, के लगातार अस्तित्व को सम्मिलित करके अस्तित्व के अतिरिक्त अन्य शर्तों के अधीन करना अनुचित है। इस प्रकार मान्यता प्रदान करते समय लगाई गई कोई शर्त मान्यता के वास्तविक कृत्य के प्रतिकूल होती है। राज्य की मान्यता सशर्त नहीं हो सकती। यदि राज्य एक बार नए राज्य को मान्यता प्रदान कर देते हैं, तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के विचार में मान्यता प्राप्त करने वाला राज्य राज्यत्व के सभी गुणों को धारण करता है। राज्यत्व के गुणों को धारण करने की मान्यता सशर्त नहीं हो सकती। बैटी ने निर्दिष्ट किया है कि शासी प्राधिकार के रूप में नए राज्य के साथ किसी संबंध में इसके राजत्व की मान्यता निहित है। इसका तात्पर्य यह है कि मान्यता सशर्त नहीं हो सकती। या तो यह तथ्य है या तो तथ्य नहीं है। मान्यता का मूल तत्व है कि इसके द्वारा मान्यता प्रदान करने वाला राज्य घोषणा करता है कि मान्यता प्राप्त प्राधिकारी राज्य के विशिष्ट लक्षणों को प्राप्त करता है। इसका तात्पर्य यह है कि मान्यता के लिए शर्त लगाना निरर्थक होता है। यदि मान्यता प्राप्त करने वाले राज्य द्वारा शर्त पूर्ण नहीं की जाती है तो वह मान्यता को निरस्त नहीं करेगा। यद्यपि मान्यता प्राप्त करने वाले तथा मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के मध्य संबंधों के मैत्रीपूर्ण होने की संभावना हो जाती है। इसके फलस्वरूप मान्यता प्रदान करने वाला राज्य राजनयिक संबंधों को विच्छिन्न करने या प्रतिबंध के किसी अन्य रूप को ग्रहण करने के लिए स्वतंत्र है। किंतु जहां तक मान्यता का संबंध है इस पर कोई वास्तविक प्रभाव नहीं पड़ता। शायद इसी कारण से सशर्त मान्यता वर्तमान समय में राज्यों द्वारा नहीं दी जाती।

मान्यता के परिणाम

राज्य की मान्यता का दोहरा परिणाम होता है अर्थात राजनीतिक तथा विधिक। जहां तक राजनीतिक परिणाम का संबंध है, राज्य की मान्यता नये राज्य के साथ अंतर्राष्ट्रीय पारस्परिक क्रिया प्रारंभ करने की मान्यता प्रदान करने वाले राज्य की इच्छा को दर्शित करती है। मान्यता विधितः सुसंगत है, क्योंकि यह प्रमाणित करती है कि मान्यता प्रदान करने वाला राज्य यह समझता है कि उसके मत में नई इकाई अंतर्राष्ट्रीय विषय होने के लिए सभी आवश्यक शर्तों को पूर्ण करती है। इसका तात्पर्य यह है कि राज्य को मान्यता न देना राज्य की शर्तों की विद्यमानता के अनुमोदन न करने का एक प्रकार है। जब किसी राज्य को मान्यता प्रदान की जाती है तब मान्यता प्रदान करने वाला राज्य उस राज्य के संबंध में कुछ अधिकारों को अर्जित करता है। जो निम्न प्रकार से हैं:—

(क) मान्यता प्राप्त राज्य मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के साथ राजनयिक तथा वाणिज्यिक संबंध स्थापित कर सकता है।

(ख) मान्यता प्राप्त राज्य के प्रतिनिधि मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के राज्य क्षेत्र के अंतर्गत राजनयिक उन्मुक्तियों के अधिकारों को प्राप्त कर सकते हैं।

(ग) मान्यता प्राप्त राज्य मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के साथ संधिजात संबंध स्थापित कर सकते हैं। राज्यों द्वारा द्विपक्षीय संधि के निर्माण के लिये एक–दूसरे के साथ उनकी शासकीय मान्यता का साक्ष्य माना जाता है।

(घ) मान्यता प्राप्त राज्य मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के न्यायालय में वाद करने के अधिकारों को प्राप्त कर लेता है।

(ङ) मान्यता प्राप्त राज्य मान्यता प्रदान करने वाले राज्य में स्थित संपत्ति का दावा कर सकता है या उसे प्राप्त कर सकता है।

टिप्पणी

उक्त परिणाम विद्यमान राज्यों को उतने राज्यों को मान्यता प्रदान करने के लिए प्रेरित करते हैं, जितने को उसकी नीतियां मान्यता प्रदान करने के लिए अनुमति प्रदान करती हैं। किंतु यदि राज्य को मान्यता प्रदान नहीं की जाती है तो वह मान्यता के उक्त परिणामों का उपयोग नहीं कर सकता। अतः ये सभी मान्यता न देने की अयोग्यता कही जा सकती हैं। इस प्रकार, नया राज्य मान्यता प्रदान करने वाले राज्यों के साथ सक्रिय संबंध स्थापित करने के लिए सक्षम नहीं होगा, संधियों का निर्णय नहीं कर सकता तथा राजनयिक संबंध स्थापित नहीं कर सकता। किंतु राज्य की मान्यता ना देने का अर्थ यह नहीं है कि नई इकाई मान्यता प्रदान करने वाले राज्यों के संबंध में विधिक इकाई नहीं मानी जाएगी। राज्यों के समन्वय से संबंधित सामान्य अंतर्राष्ट्रीय नियम जैसे खुले समुद्र का प्रतिमान या राज्य क्षेत्रीय अथवा राजनीतिक प्रभुत्व संपन्नता के लिए सम्मान, इत्यादि नए राज्य तथा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के सभी अन्य सदस्यों के मध्य संबंधों में लागू होते हैं। यह आवश्यक है कि संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों में से एक को पूर्ण करने के लिए अर्थात राज्यों के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंधों को विकसित करने के लिए जो चार्टर के अनुच्छेद–1 के परिच्छेद–2 में परिकल्पित है, मान्यता अधिक से अधिक राज्यों को प्रदान की जाए।

क्या मान्यता प्रदान करना राज्य का कर्तव्य है?

यह प्रश्न अत्यधिक विप्रावधानस्पद है। अंतर्राष्ट्रीय विधिशास्त्रियों के मत इस विषय पर पृथक–पृथक हैं। लाओटरपैट का मानना है कि यदि एक बार राज्य राज्यत्व के सभी आवश्यक तत्वों को धारण कर लेता है तो नए राज्य को मान्यता प्रदान करना अन्य सभी राज्यों का कर्तव्य है। विद्यमान राज्यों का कर्तव्य मान्यता प्रदान करना है क्योंकि नए राज्य को अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन विधिक अधिकार तथा कर्तव्य प्राप्त नहीं हो सकते, यदि उसे अन्य राज्यों द्वारा मान्यता नहीं दी जाती है। किंतु उक्त मत को मानने का तात्पर्य यह होगा कि नए राज्य को अधिकार है कि उसे अन्य राज्यों द्वारा मान्यता दी जाए। क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय विधि नए राज्य के किसी ऐसे अधिकार के संबंध में प्रावधान नहीं करती, इसलिए विद्यमान राज्यों का राज्य को मान्यता देने का कोई विधिक कर्तव्य नहीं है। मान्यता प्रदान करना या मान्यता ना देना विधि की अपेक्षा नीति का प्रश्न है इसलिए राज्य की मान्यता राज्य के स्वविवेक पर निर्भर करती है। स्वविवेक निर्णय एक राज्य का प्रभुत्व संपन्न अधिकार है। एक अन्य मत है कि मान्यता राजनीतिक कार्य है। राज्य की मान्यता राज्य के स्वविवेक पर आधारित है इसलिए यह सदैव वैकल्पिक होती है। कुछ मामलों में राज्य को मान्यता नहीं दी जाती, इसके बावजूद कि वह राज्य के सभी तत्वों को धारण करता है। जबकि कुछ अन्य मामलों में राज्य को समय पूर्व मान्यता दे दी जाती है। अंतर्राष्ट्रीय विधि संस्थान का यह कथन था कि मान्यता स्वतंत्र

टिप्पणी

कार्य है। राज्य मान्यता प्रदान करते हैं या मान्यता को रोकते हैं, यह विधि का मामला ना होकर नीति का मामला है। अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा 1949 में तैयार किया गया 'राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य प्रारूप घोषणा' भी सामान्य स्थिति में विद्यमान राज्य द्वारा मान्यता के अधिकार को अधिकृत नहीं करता। राज्य व्यवहार उन मामलों में एक समान है, जहां नया राज्य शांतिपूर्वक तथा संवैधानिक रूप से अस्तित्व में आता है। ऐसे राज्यों को अधिकतम राज्य मान्यता प्रदान कर देते हैं।

कई बार मान्यता उस समय रोक दी जाती है जब नये राज्य को अवैधानिक पाया जाता है या यह पाया जाता है कि वह अंतर्राष्ट्रीय विधि के उल्लंघन से अस्तित्व में आया है। रोडेशिया तथा उत्तरी साइप्रस का तुर्की प्रजातंत्र इस प्रकार के उदाहरण हैं। रोडेशिया के संबंध में मान्यता को राज्यों द्वारा उस समय रोक दिया गया था, जब श्वेत अल्पसंख्यकों द्वारा सत्ता पर कब्जा कर लिया गया तथा एक राज्य के निर्माण का प्रयास किया गया था। दूसरे मामले में मान्यता को वृहद स्तर पर तब रोक दिया गया था जब उत्तरी साइप्रस में एक ऐसी भूमि पर राज्य का निर्माण किया गया जिस पर 1974 में तुर्की के द्वारा अवैधानिक रूप से आक्रमण किया गया था।

यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि राज्य क्यों सामान्यतया एक राज्य को मान्यता प्रदान करते हैं, यदि मान्यता प्रदान करना उनका कर्तव्य नहीं है। स्टार्क के अनुसार विधिक सिद्धांतों तथा पूर्व निर्णयों के अनुसार राज्यों द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है। मान्यता प्रदान करते समय सामान्यतः राज्य यह सुनिश्चित करते हैं कि मान्यता प्रदान किए जाने वाला राज्य कम से कम अपेक्षित विधिक अर्हताओं को धारण करता है। इस पर स्टार्क कहते हैं कि राज्य मान्यता विधिक कार्य है। किंतु व्यवहार में कभी–कभी मान्यता को राजनीतिक कारणों से रोका जाता है, इसलिए कुछ मामलों में यह राजनीतिक कार्य होता है। यदि संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रावधानों को विचारण में लेने के बाद मान्यता के इस पहलू पर विचार किया जाता है तो निष्कर्ष निकलता है कि राष्ट्रों के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास करना तथा विश्व शांति को सुदृढ़ करने के लिए अन्य समुचित उपाय करना जो अनुच्छेद–1 के परिच्छेद–2 के अधीन प्रावधानित हैं तथा अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना जो अनुच्छेद 1 के परिच्छेद 3 के अधीन प्रावधानित है, संयुक्त राष्ट्र की स्थापना का उद्देश्य है। यदि राज्य अन्य राज्यों को मान्यता प्रदान नहीं करते तो संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों के विफल हो जाने की संभावना है, क्योंकि बिना मान्यता प्राप्त राज्य के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखना कठिन होता है और परिणामस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राज्य नए राज्य को मान्यता देने के लिए विधिक कर्तव्य के अधीन हैं, यदि नया राज्य राज्यत्व के सभी आवश्यक गुणों को धारण कर लेता है। नए राज्य को मान्यता ना देना विधि विरुद्ध है। यह अंतर्राष्ट्रीय विधि के मूल सिद्धांतों से असंगत है। मान्यता देने का विधिक कार्य संगठन द्वारा आधिरोपित किया गया है। यदि इसे राजनीतिक अभिप्रेरणा से रोका जाता है तो यह चार्टर के प्रावधानों के उल्लंघन की श्रेणी में आता है। विश्व निकाय से ऐसे राज्यों के विरुद्ध आवश्यक कदम उठाए जाने की अपेक्षा की जाती है, जैसे वह चार्टर के अन्य प्रावधानों

के उल्लंघन के मामले में उठाता है। जहां मान्यता को किसी विद्यमान राज्य द्वारा रोका जाता है, वहां वह मान्यता प्रदान करने के लिए अपने प्रभाव का प्रयोग कर सकता है, ताकि दोनों राज्यों के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित किया जा सके।

मान्यता की वापसी

टिप्पणी

मान्यता की वापसी का तात्पर्य राजनीतिक कारणों के लिए राज्य से वापसी हो सकती है किंतु उसके अस्तित्व से नहीं। एक मत यह है कि वस्तुतः मान्यता प्रकृति में अस्थाई होने के कारण इसको उस समय वापस लिया जा सकता है जब यह स्पष्ट हो जाता है कि मान्यता की आवश्यक शर्तों को पूर्ण किए जाने की कोई संभावना नहीं है। फ्रांस ने अक्टूबर 1918 में, उसी वर्ष जनवरी में फिन्निश गणतंत्र की स्थाई सरकार को प्रदान की गई मान्यता को वापस ले लिया था। इस मत के अनुसार विधितः मान्यता को वापस नहीं लिया जा सकता। इस मत का समर्थन 1933 के मोंटेवीडियो अभिसमय के अनुच्छेद–6 द्वारा किया गया है, जो घोषित करता है कि विधितः मान्यता बिना शर्त तथा अखंडनीय होती है। अंतर्राष्ट्रीय विधि संस्थान ने 1936 में स्वीकृत संकल्प में भी प्रावधान किया था कि एक बार दी गई मान्यता वापस नहीं ली जा सकती। दूसरा मत है कि मान्यता राजनीतिक कार्य है इसलिए कोई ऐसा कारण नहीं प्रतीत होता कि क्यों मान्यता को वापस नहीं लिया जाना चाहिए। बशर्ते मान्यता प्रदान करने के कार्य के समान वह कार्य नीति का कार्य हो। यदि मान्यता प्रदान करने वाला राज्य समझता है कि राज्य ने अपनी स्वतंत्रता खो दी है तो वह बाद वाले राज्य को प्रदत्त मान्यता को वापस ले सकता है। कभी–कभी मान्यता की वापसी मान्यता प्राप्त राज्य के प्राधिकारी को अभिव्यक्त अधिसूचना द्वारा या सार्वजनिक वक्तव्य द्वारा की जाती है। किंतु व्यवहार में मान्यता की वापसी तब की जाती है जब इसकी वापसी के लिए अभिव्यक्त घोषणा हो तथा साथ ही साथ मान्यता वापस किए हुए राज्य के स्थान पर नए प्राधिकारी को मान्यता दी जा रही हो। यदि किसी राज्य का उपबंध के माध्यम से समापन हो जाता है और उस राज्य की सरकार का प्रशासन राज्य के बाहर से निर्वासित थोड़े व्यक्तियों द्वारा संचालित होता है तब ऐसे अवसरों पर मान्यता की वापसी राज्य के राजनयिक प्रतिनिधियों की सूचना द्वारा उसी समय प्रभावी होती है, कि उनके मिशन को समाप्त होना माना जाना चाहिए तथा वह अब से प्रश्नगत राज्य का प्रतिनिधित्व नहीं करते रहेंगे। विलीन या लुप्त राज्य की मान्यता नए प्राधिकारियों की मान्यता में प्रवर्तित हो जाती है। सम्भवतः ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जिसमें मान्यता बिना उत्तराधिकारी राज्य को प्रदान किए किसी राज्य से वापस ली गई हो। जब ग्रेट ब्रिटेन ने 1938 में अबीसीनिया की मान्यता को वापस लिया था तब उसने इथोपियाई साम्राज्य के इटली के उपाबद्ध को विधितः मान्यता प्रदान की थी।

2.3.2 सरकार की मान्यता

राज्य के अस्तित्व में आने के बाद अन्य राज्यों के संबंध में उसकी बाध्यता आंतरिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप प्रभावित नहीं होती। किसी राज्य के सरकार के रूप में परिवर्तन या विरोधी राजनीतिक दल द्वारा मौजूदा सरकार की पराजय उस राज्य का घरेलू मामला है। अतः राज्य की मान्यता सरकार की मान्यता से पूर्णतया भिन्न है। सरकार की मान्यता का अर्थ है कि मान्यता प्रदान करने वाला राज्य सरकार को

अंतर्राष्ट्रीय समागम के लिए राज्य का एकमात्र प्रतिनिधि मानता है। जब राज्य के शासन में परिवर्तन होता है तो उसे अन्य राज्यों द्वारा मान्यता प्रदान किए जाने की अपेक्षा की जाती है। राज्य की सरकार में परिवर्तन या तो सामान्य रूप से अर्थात संवैधानिक तरीकों द्वारा होता है या फिर तब होता है जब सहसा शासन परिवर्तन होता है। जब परिवर्तन सामान्य रूप तथा संवैधानिक तरीके से होता है तब मान्यता का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता अर्थात् मान्यता देना पूर्णतया औपचारिकता होती है। चुनाव के परिणामस्वरूप सरकार में परिवर्तन के बाद नई सरकार की मान्यता को रोकने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। ऐसे मामलों में मान्यता कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं करती और बहुधा अनौपचारिक रूप से और ऐसे ढंग से सामान्य द्विपक्षीय राजनीति की निरंतरता बनी रहती है जिससे मान्यता को जारी रखने के आशय के संबंध में कोई संदेश ना छोड़ें। उदाहरणार्थ, भारत में जब कांग्रेस शासन को 1977 में जनता द्वारा बदला गया या जब 1980 में कांग्रेस सत्ता में आई या जब कांग्रेस राष्ट्रीय मोर्चा सरकार द्वारा 1989 में हटाई गई या जब 1991 में कांग्रेस पुनः सत्ता में आई तब अन्य राज्यों द्वारा शासन को मान्यता देना तनिक भी महत्वपूर्ण नहीं था। इसी प्रकार 2008 में नेपाल में जब संविधान सभा ने राजशाही की समाप्ति के बाद गणतंत्र की घोषणा की तब भी अन्य राज्यों द्वारा मान्यता की आवश्यकता नहीं पड़ी।

टिप्पणी

किंतु जब शासन में परिवर्तन विद्रोह द्वारा या सहसा शासन परिवर्तन द्वारा अर्थात असंवैधानिक तरीके से होता है तब कुछ कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। ऐसे परिवर्तन के कुछ उदाहरण हैं– चीन की साम्यवादी सरकार 1948, ईरान में बजारन सरकार 1979, कम्पुचिया में पोल पोट सरकार 1979–80, अफगानिस्तान में आमीर सरकार, 1987 में फिजी में राबुका सरकार तथा 1999 में पाकिस्तान में जनरल परवेज मुशर्रफ सरकार। कतर में 1995 में वहां के शासक शेख खलीफा बिन हमाद अल थानी को उनके पुत्र द्वारा हटा देना भी शासन के परिवर्तन का उदाहरण है। ऐसे मामलों में नई सरकार से अन्य राज्यों द्वारा मान्यता प्राप्त किए जाने की अपेक्षा की जाती है। सामान्यतः मान्यता तब प्रदान की जाती है जब अन्य राज्यों को उसके स्थायित्व तथा राज्य क्षेत्र के लोगों के ऊपर नियंत्रण की उसकी क्षमता के संबंध में संतुष्टि हो जाती है।

राज्यों की प्रथा विशिष्ट रूप से यूनाइटेड किंग्डम की प्रथा प्रभाव पूर्णता के सिद्धांत पर आधारित है। ब्रिटिश सरकार ने नई सरकार की मान्यता के लिए मानदंड अभिव्यक्त किया है, जो हैः– (क) स्थायित्व की युक्तियुक्त प्रत्याशा, (ख) जनसंख्या के अधिकांश की आज्ञाकारिता, और (ग) संबद्ध राज्य के राज्य क्षेत्र के अधिकतर भाग का प्रभावी नियंत्रण। यदि राज्य की नई सरकार को या तो अभिव्यक्त रूप से या विवक्षित रूप से मान्यता नहीं दी जाती तो कोई औपचारिक शासकीय संव्यवहार संभव नहीं है। संधियों का प्रवर्तन तब तक निलंबित किया जाता है, जब तक नई सरकार को मान्यता नहीं दी जाती। यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि यदि नई सरकार विदेशी राज्यों से मान्यता प्राप्त करने में असफल रहती है तो वह राज्य के अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व को समाप्त नहीं करती या उसे विद्यमान संधि आबद्धताओं से किसी भी शर्त पर स्थाई रूप से मुक्त नहीं करती, यद्यपि यह अंतर्राष्ट्रीय प्रयोजनों के लिए उस राज्य की विधि क्षमता का प्रयोग करने के लिए उस राज्य में व्यवधान अवश्य पैदा करती है।

सरकार की वस्तुतः या विधितः मान्यता

टिप्पणी

राज्य की सरकार को अन्य विद्यमान राज्यों द्वारा वस्तुतः या विधितः मान्यता दी जा सकती है। नई सरकार को वस्तुतः मान्यता वहां प्रदान की जाती है जहां मान्यता प्रदान करने वाला राज्य यह समझता है कि–(क) नई सरकार में स्थायित्व की कमी है या (ख) जहां नई सरकार अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों तथा सिद्धांतों का पालन करने के लिए इच्छुक नहीं है या (ग) जहां व्यक्ति प्रमुख समस्याओं को निबटाने के लिए इच्छुक नहीं हैं। इस प्रकार वस्तुतः मान्यता नियंत्रण के परीक्षण के रूप में सरकार को प्रदान की जाती है। जब विद्यमान राज्यों को स्वयं संतुष्टि हो जाती है कि नई सरकार का प्रभावी नियंत्रण जारी रहेगा, तब वे बाद में विधितः मान्यता प्रदान कर देते हैं।

जहां किसी सरकार को विधितः मान्यता दी गई है और बाद में उसी राज्य क्षेत्र में अन्य सरकार को उसके दावे के आधार पर वस्तुतः मान्यता प्रदान की जाती है, वहां विदेशी राज्यों को उस राज्य क्षेत्र में स्थित संपत्ति के स्वामित्व के संबंध में कुछ समस्याएं उस समय उत्पन्न होती हैं जब वस्तुतः मान्यता तथा विधि की मान्यता प्राप्त सरकारों के मध्य संघर्ष हो रहा होता है। ऐसे मामलों में सामान्यतः विधि की सरकार का दावा वस्तुतः सरकार के दावे पर अभिभावी होता है।

नई सरकार को कई तरीकों से मान्यता दी जा सकती है। नई सरकार के प्रमुख को अधिसूचना भेजकर या घोषणा करके या नई सरकार के प्रमुख को पत्र के माध्यम से राज्य के प्रमुख द्वारा अभिस्वीकृति करके या सरकार के प्रमुख द्वारा नई सरकार के राजदूत को स्वीकार करके मान्यता दी जा सकती है।

जब नई सरकार को मान्यता दी जाती है तो इसे शासकीय संपर्क के प्रयोजनों के लिए वही पुरानी सरकार माना जाता है किंतु जब तक नई सरकार को मान्यता नहीं दी जाती है तब तक शासकीय संपर्क निलंबित रहता है। जब कर्नल राबूका ने 1987 में फिजी में सहसा शासन परिवर्तन द्वारा शासन की शक्ति को ग्रहण किया तब भारत ने उनकी सरकार को मान्यता नहीं दी तथा बाद में फिजी के साथ व्यापारिक तथा तकनीकी सहयोग को भी निलंबित कर दिया। पुनः, संधियों यथा व्यक्तिगत संधियों को भी मान्यता ना प्राप्त सरकार के शासन के दौरान निलंबित कर दिया जाता है, क्योंकि नई सरकार की मान्यता का राज्य की मान्यता से कोई संबंध नहीं होता है। इसलिए शासकीय संपर्क तथा संधियों को समाप्त नहीं किया जाता है बल्कि निलंबित रखा जाता है। इसका अर्थ यह है कि शासकीय संपर्क तथा संधियों को तब पुनः लागू किया जाता है जब पुरानी सरकार पुनः सत्ता में आती है या जब नई सरकार को मान्यता प्रदान कर दी जाती है।

नए राज्य की तरह नई सरकार की मान्यता भी विद्यमान राज्यों के विवेक पर आधारित है। कुछ राज्य नई सरकार को मान्यता देने या मान्यता रोकने के परंपरागत व्यवहार का अनुसरण करते हैं, जबकि कुछ राज्य इसका अनुसरण नहीं करते। परंपरागत व्यवहार का अनुसरण ना करने वाले राज्य उस नीति का अनुसरण करते हैं जिसमें वे औपचारिक मान्यता या मान्यता की औपचारिक रोक के उपरांत भी नई सरकार से संबंध बनाते हैं। उदाहरणार्थ संयुक्त राज्य, यूनाइटेड किंग्डम तथा ऑस्ट्रेलिया ने नई सरकारों को मान्यता देने के व्यवहार का परित्याग कर दिया है। संयुक्त राज्य में नई सरकार को मान्यता ना देने की नीति को 1977 में प्रारंभ किया गया

टिप्पणी

था, जबकि यूनाइटेड किंगडम द्वारा 1980 में इसका अनुसरण किया गया। ऑस्ट्रेलिया ने नई सरकार को मान्यता ना देने की अपनी नीति की घोषणा जनवरी 1988 में की, जिसमें घोषित किया गया था कि वह भविष्य में शासन ग्रहण करने वाली नई सरकार को औपचारिक मान्यता चाहे वस्तुतः हो या विधितः नहीं देगा। किंतु उस सीमा तक तथा उस रूप में जो प्रत्येक मामले की परिस्थितियों द्वारा अपेक्षित हो, नई सरकार के साथ संबंधों के संचालन द्वारा मान्यता को प्रतिस्थापित करेगा।

उक्त राज्यों द्वारा मान्यता ना देने की नीति तथा उसी समय जब परिस्थितियां मांग करें नई सरकारों के साथ संबंध स्थापित करना भविष्य में भ्रम उत्पन्न कर सकता है। ये राज्य उस सरकार के साथ संबंध स्थापित कर सकते हैं जिसने स्थायित्व तथा राज्य क्षेत्र के लोगों के ऊपर नियंत्रण करने की क्षमता अर्जित कर ली है तथा उसी समय वे उन सरकारों के साथ संबंध स्थापित करने से इंकार कर सकते हैं, जो उक्त शर्तों को धारण करती हैं। जहां तक इन राज्यों का संबंध है, नई सरकार को मान्यता देने का विवाद समाप्त हो गया है।

उक्त नीति ने नई सरकारों की मान्यता के विषय के महत्व को कम कर दिया है। इस विषय पर विचार विमर्श अब केवल उन राज्यों तक ही सीमित है, जो सरकारों को मान्यता देते हैं। मान्यता ना देने की नई नीति को स्वीकार किए जाने के पूर्व अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम तथा ऑस्ट्रेलिया द्वारा अनुसरण किए जाने वाले व्यवहार भी महत्वपूर्ण हैं।

टोबर और एस्ट्रेडा सिद्धांत (Tobar and Estrada Theory)

राज्यों ने क्रांतिकारी सरकारों को कई अवसरों पर मान्यता देना इस आधार पर अस्वीकार कर दिया है कि ऐसी सरकारें बल प्रयोग करने के बाद अस्तित्व में आई हैं। पांच केंद्रीय अमेरिकी गणतंत्रों ने 1907 तथा 1923 में संधि की थी, जिसमें इक्वेटर के विदेश मंत्री रॉबर्ट द्वारा प्रतिपादित तथाकथित टोबर सिद्धांत सन्निविष्ट है, जिसमें उन्होंने क्रांतिकारी उपायों द्वारा अस्तित्व में आने वाली किसी सरकार को मान्यता ना प्रदान करने के लिए स्वयं को बाध्य किया है। मैक्सिको के विदेश मंत्री एस्ट्रेडा द्वारा 1930 में प्रतिपादित एस्ट्रेडा सिद्धांत के अनुसार मैक्सिको किसी भी राज्य में क्रांतिकारी परिवर्तन होने के उपरांत भी उससे राजनयिक संबंध स्थापित करता रहेगा। देश में क्रांतिकारी परिवर्तन पर ध्यान दिए बिना राज्यों के साथ राजनयिक संबंध जारी रखना राज्यों का कर्तव्य है। इन दोनों सिद्धांतों ने अंतर्राष्ट्रीय विधि के सामान्य नियम को प्रतिपादित किया है। मान्यता प्रदान करते समय स्थायित्व तथा राज्य क्षेत्र के निवासियों के ऊपर नियंत्रण स्थापित करने की क्षमता को ध्यान में रखना चाहिए। यह भी देखने की अपेक्षा की जाती है कि अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उनका उद्‌भव अंतर्राष्ट्रीय विधि के मूल सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं करता। नई सरकार के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों को कायम रखने के लिए उसे मान्यता प्रदान करना आवश्यक है, यदि मान्यता की शर्तों को पूर्ण किया जाता है। ऐसे अवसरों पर सामान्यतः जो राजनीतिक विचार अधिभावी होते हैं उनको बहुत अधिक वरीयता नहीं दी जानी चाहिए। यदि नई सरकार को मान्यता नहीं दी जाती है तो अंतर्राष्ट्रीय शांति के प्रभावित होने की संभावना है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. किसी राज्य का निर्माण तथ्य के बजाय अन्य राज्यों द्वारा दी गई मान्यता से होना, कौन–सा सिद्धांत है?

   (क) संघटक सिद्धांत (ख) घोषणात्मक सिद्धांत

   (ग) विधिक मान्यता (घ) इनमें से कोई नहीं

4. राज्य को मान्यता मूलतः किस रूप में प्रदान की जा सकती है?

   (क) अभिव्यक्त मान्यता (ख) विवक्षित मान्यता

   (ग) 'क' एवं 'ख' दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं

2.4 राज्यों की समानता

अपनी क्षेत्रीय सीमा, भौगोलिक विशिष्टताओं, जनसंख्या के आकार, धार्मिक और सांस्कृतिक छापों, राजनीतिक प्रणालियों और अन्य कारकों के संदर्भ में राज्यों के विभिन्न चरित्र के उपरांत भी, सदैव यह दावा किया गया है कि राज्य विधिक व्यक्तियों के रूप में समान हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि पर प्रमुख पाठ्यपुस्तकों में से एक के अनुसार, 'राज्यों की संस्था के सभी सदस्य–राज्यों की अंतर्राष्ट्रीय विधि के समक्ष समानता उनके अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व से निकाली गई एक अमूल्य गुणवत्ता है। एक व्यक्ति विधि के समक्ष समान है यदि वह विधि द्वारा संरक्षित है और उसको अपने कर्तव्यों का निर्वहन उसी प्रकार करना है जैसे कि समान परिस्थितियों के अधीन अन्य सभी व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। यह सिद्धांत प्राकृतिक विधि के सिद्धांतों का एक स्वयंसिद्ध सिद्धांत है, जिसके लिए यह 'स्व–स्पष्ट' था, कि सभी व्यक्ति समान हैं, जैसेकि 4 जुलाई, 1776 को संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वतंत्रता की घोषणा द्वारा कई पीढ़ियों के बाद राजनीतिक गतिविधियों में ग्रोशियस (Grotius), हॉब्स (Hobbes), लाक (Locke) और अन्य लोगों के दार्शनिक विचारों का अनुवाद किया गया। हालांकि यह विवाद का विषय है क्या कि ग्रोशियस, जोकि विवादित रूप से अंतर्राष्ट्रीय विधि के सबसे प्रभावशाली संस्थापक हैं, ने राज्यों की विधिक समानता के सिद्धांत की स्थापना की, किंतु इसमें एक व्यापक सहमति है कि यह सिद्धांत मानव समाज में व्यक्तियों तथा राज्यों की संगति में राज्य के मध्य समानता से प्रेरित है।

2.4.1 राज्यों की समानता के सिद्धांत की अर्थवत्ता

व्यक्तियों की समानता ने उनके मध्य की सामाजिक, आर्थिक और अन्य असमानताओं को न अलग किया है न ही करती है, जोकि व्यक्ति की विधिक स्थिति की समानता में उत्पन्न होती है। यदि किसी बौने को एक विशाल के रूप में एक संधि को पूर्ण करने का समान अधिकार है और संधि द्वारा प्रदान किये गये समान दायित्वों के अधीन है, उदाहरण के लिए, दोनों को समुद्र के संसाधनों का दोहन करने का समान अधिकार है और जब उस अधिकार का उपयोग करते हैं तब पर्यावरणीय क्षति से बचने के लिए समान दायित्व हैं, तो परिणाम मात्र प्रतिकृति होगा, या कि उनकी असमानता की तीव्रता

को बढ़ा देगा। अपने अधिक संसाधनों के कारण विशाल बौने की तुलना में समान परिस्थितियों से अधिक लाभ प्राप्त करेगा। इस प्रकार, 'छोटे गणराज्य' और 'शक्तिशाली साम्राज्य' के बीच की असमानता किसी भी तरह से अंतर्राष्ट्रीय संगति के क्षेत्र में समाप्त नहीं हुई है। इसके विपरीत, 'ग्रेट पॉवर्स,' 'सुपरपावर,' या 'हेग्मोनिक पॉवर्स' की घटना स्पष्ट रूप से राज्यों की संगति में असमानताओं की दृढ़ता के साथ जुड़ी है। उदाहरण के लिए, तथाकथित परमाणु शक्तियों या संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों की विधिक स्थिति को देखते हुए इन असमानताओं का विधिक महत्व भी है।

टिप्पणी

फिर, राज्यों की समानता के सिद्धांत का क्या अर्थ है, जिसे संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अध्याय 1, अनुच्छेद 1, 2 में 'संप्रभु समानता' के सिद्धांत के रूप में समकलित किया गया है। हालांकि यह राज्यों के बीच तथ्यात्मक मतभेदों की असमानता के साथ नहीं है, किंतु यह माना जा सकता है कि यह एक गुणवत्ता का एक महत्वपूर्ण तत्व है, जिसको वे सभी साझा करते हैं। साधारण शब्दों में, राज्यों की बहुलता के घटकों के रूप में उनकी प्रकृतिः उनकी सदस्यता जोकि 'राज्यों का समाज' है, जिसे अंतर्राष्ट्रीय विधि के पिछले लेखकों ने मानव जाति के 'परिवार' का नाम दिया था, और आज जिसे आमतौर पर 'अंतर्राष्ट्रीय समुदाय' कहा जाता है।

राज्यों का बाहुल्य और उनकी समान स्थिति

समानता की अवधारणा अनुरूपता को निर्धारित करती है। दूसरे शब्दों में, अवधारणा विशेष गुणों के संबंध में दो या दो से अधिक संस्थाओं के बीच तुलना की संभावना को मानती है। इस प्रकार, यह केवल वस्तुओं की बहुलता वाले ब्रह्मांड में सार्थक है जो कम से कम एक विशेषता साझा करते हैं लेकिन कई अन्य लोगों के संबंध में अलग हैं। समानता की अवधारणा उन संस्थाओं पर लागू नहीं होती है जो सहकर्मी हैं।

इसके विपरीत, राज्य राजनीतिक संस्थाएं हैं जो बहुलता के रूप में मौजूद हैं और इसलिए एक–दूसरे के साथ तुलना की जा सकती है। जैसा कि डिकिन्सन ने इस विषय पर चर्चा करते हुए ऐतिहासिक स्रोतों के अपने शुरुआती विश्लेषण में कहा है, 'राज्यों के बीच समानता सार्वभौमिक साम्राज्य के इनकार का आवश्यक परिणाम है, और विधि द्वारा नियंत्रित अंतर्राष्ट्रीय समाज में एक साथ रहने के लिए अलग–अलग राज्यों के दावे का।' 'समानता की अवधारणा' उन संस्थाओं की बहुलता पर आधारित है जो एक–दूसरे का उल्लेख करते हैं, अपने स्वतंत्र अस्तित्व को पहचानते हैं, उनकी परस्पर तुलना को स्वीकार करते हैं और इसलिए उनकी समानता की स्थिति को स्वीकार करते हैं।

हालांकि, शायद राज्यों की समानता के भौतिककरण के लिए और भी महत्वपूर्ण उनका क्षेत्रीय चरित्र था। सामान्य शब्दों में, क्षेत्रीयता का अर्थ क्षेत्र द्वारा वर्गीकरण का एक रूप, सीमा द्वारा संचार का एक रूप और प्रवर्तन या नियंत्रण का एक रूप है। चूंकि क्षेत्रीय सीमाओं के लिए स्थानिक सीमाएं आवश्यक हैं, एक क्षेत्र को हमेशा दूसरे क्षेत्र द्वारा सीमांकित किया जाता है। उनके स्थानिक अस्तित्व के साथ–साथ उनके बीच एक पदानुक्रमित संबंध को छोड़कर, बहुलता, तुलनात्मकता और राज्यों की अंतर्निहित समानता को क्षेत्रीय अलग–अलग संस्थाओं के रूप में शामिल किया गया है।

बहुवचन राज्यों की इस नई दुनिया के उद्‌भव का अर्थ है कि उनमें से किसी में भी अधिक श्रेष्ठ शक्ति नहीं थी क्योंकि प्रत्येक राजकुमार अब 'अपने स्वयं के साम्राज्य में सम्राट' था (सू रेगो में रेक्स साम्राज्य)। इसका एक दोहरा अर्थ थाः– राजकुमार के पास अपने दायरे में अविभाजित और सर्वोच्च शक्ति थी और वह अन्य राजनीतिक संस्थाओं के साथ अपने संबंधों में स्वतंत्र था। तेजी से खंडित विश्व–घरेलू वर्चस्व, बाहरी समानता और स्वतंत्रता में नए अभिनेताओं की स्थिति के इन आयामों ने उनकी संप्रभुता को मूर्त रूप दिया।

टिप्पणी

राजनीतिक सिद्धांत के यथार्थवादी स्कूल के संस्थापक पिता, हॉब्स के सैद्धांतिक ढांचे में एक बेहतर प्राधिकारी के अस्तित्व के बिना व्यक्तियों के स्थानिक सहअस्तित्व में प्रभावशाली शक्ति का तात्पर्य अराजकता और हर किसी के खिलाफ हर किसी का एक स्थायी युद्ध था। राज्यों के लिए उनके विचार में वही लागू होता है। लेकिन जब व्यक्ति एक सामाजिक अनुबंध के माध्यम से इस भविष्यवाणी को दूर कर सकते थे, हॉब्स ने सोचा कि यह राज्यों के लिए असंभव था। उनकी अंतर्निहित स्वतंत्रता ने उन्हें राज्यों के एक राष्ट्रमंडल में प्रवेश करने से रोक दिया और इस तरह वे एक–दूसरे के साथ सदा युद्ध में रहने लगे।

इन धारणाओं के विपरीत, सामाजिक सहभागिता का एक स्वरूप राज्यों की बहुलता के बीच विकसित हुआ, जो 1648 के वेस्टफेलिया शांति संधियों में उपस्थित था और जिसने एक अंतर्राष्ट्रीय समाज को जन्म दिया। यह प्राकृतिक विधि का विचार था, जो अपने पारंपरिक ईसाई स्रोतों से अलग हो गया था और इस एक कारण पर आधारित था, जिसने उसके धर्मनिरपेक्ष आधार के कारण एक तटस्थ स्थान बनाया जहां परस्पर विरोधी संप्रदायों के अपरिवर्तनीय चरित्र द्वारा बातचीत संभव और अप्रभावित थी।

हॉब्स और उनके बाद के 'यथार्थवादी' शिष्यों की मान्यताओं के विपरीत, राज्यों की बहुलता केवल भौतिक सह–अस्तित्व की स्थिति और प्रकृति की तथाकथित स्थिति की एक प्रति नहीं है जिसमें व्यक्ति नागरिकता की स्थिति में प्रवेश करने से पहले रहते थे। यह दावा कि 'राज्य, जैसे व्यक्ति, केवल सामाजिक जीवन के लिए ही सक्षम होते हैं, यदि वे एक सामान्य शक्ति के साथ खड़े होते हैं', अन्य बातों के अलावा, मूल तथ्य यह है कि राज्यों में प्राकृतिक प्राणी नहीं हैं, लेकिन राजनीतिक रूप से संगठित समाज हैं जिनके सदस्यों ने प्रकृति की स्थिति को छोड़ दिया और नागरिकता की स्थिति हासिल की। जैसे, सफल सभ्यता के उत्पाद होने के नाते, वे क्षेत्रीय रूप से विशिष्ट और स्वतंत्र व्यक्तियों के रूप में सहअस्तित्व करते हैं, जो कि उनके स्वभाव से पारस्परिकता के प्रति अंतर्निहित झुकाव है। सामाजिकता के इस मूल रूप का सबसे बुनियादी नियम स्वतंत्र राज्यों के रूप में उनकी समान स्थिति की मान्यता है। स्वतंत्रता का अर्थ है अन्य राज्यों से स्वतंत्रता। जैसा कि सभी राज्य 'उन्हीं स्थितियों को संतुष्ट करते हैं जिनके अनुसार वे राज्यों के रूप में अर्हता प्राप्त करते हैं,' वे अपनी विधिक स्थिति के संदर्भ में समान हैं।

राज्य–समानता सिद्धांत के अनिवार्य रूप से विधिक चरित्र को देखते हुए, समानता की यह अवधारणा स्पष्ट रूप से क्षेत्रीय आकार, राशि और जनसंख्या, प्राकृतिक संसाधनों, धन, शक्ति या अन्य तथ्यात्मक गुणों के चरित्र के संदर्भ में समानता नहीं रखती है। एमर डी वट्टल के निष्कर्ष के विपरीत कि 'राष्ट्र प्रकृति के समान हैं और

टिप्पणी

प्रकृति से समान दायित्व और समान अधिकार रखते हैं,' 'विधिक समानता का अर्थ कई राज्यों के आकार, शक्ति और अंतर्राष्ट्रीय के बावजूद अधिकारों और कर्तव्यों की समानता नहीं है। विधि और विधि के बीच की समानता के बीच एक स्पष्ट अंतर है। पूर्व विधायक को संबोधित किया जाता है और इसका मतलब है कि विधि को खुद समानता की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए, जिसका अर्थ है कि इसे विनियमित करते समय मध्यस्थता में अंतर नहीं करना चाहिए। जीवन के एक विशेष क्षेत्र उत्तरार्द्ध अदालतों और प्रशासनिक एजेंसियों को संबोधित किया जाता है। विधि के कड़ाई से समान आवेदन की आवश्यकता होती है। अंतर्राष्ट्रीय विधि में केवल बाद का अर्थ लागू हो सकता है। कोई अंतर्राष्ट्रीय विधायिका नहीं है जो बाध्यकारी हो सकती है। अंतर्राष्ट्रीय विधि के बड़े हिस्से में संधि विधि शामिल है। संधियां अनुबंध की असमान स्थितियों को दर्शाती हैं, पार्टियों को उनके अधिकारों और उनके दायित्वों दोनों के संदर्भ में।

एक दूसरी व्याख्या के अनुसार, राज्यों की विधिक समानता का अर्थ समान विधिक क्षमता है–दूसरे शब्दों में, विधिक व्यक्तियों के बीच विधिक भेदों का कोई अस्तित्व नहीं है। सभी विषय अधिकारों और कर्तव्यों का पालन करने के लिए एक ही क्षमता का आनंद लेते हैं जो किसी दिए गए विधिक आदेश को पूरा करती है। जबकि विधिक क्षमता की अवधारणा प्रत्येक विधिक समुदाय की है और इसलिए राज्यों के समाज के लिए महत्वपूर्ण महत्व के रूप में, यह समानता की अवधारणा के लिए शायद ही कोई प्रासंगिकता है। जैसा कि केल्सन बताते हैं कि, 'समान शर्तों के तहत राज्यों के समान कर्तव्य और समान अधिकार हैं' जो सभी प्रकार की असमानताओं को कवर कर सकते हैं क्योंकि सब कुछ 'समान परिस्थितियों' के अर्थ पर निर्भर करता है। एक विशाल और एक बौना–एक बार संदर्भित करने के लिए। वट्टल की समान विधिक क्षमता केवल तभी होती है जब विधि उन पर समान अधिकारों, कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का पालन करता है।

वास्तव में, राज्यों के अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व की अवधारणा समानता के अर्थ की समझ में महत्वपूर्ण तत्व है। यह अंतर्राष्ट्रीय विधिक आदेश के भीतर एक स्थिति है जो राज्यों की परस्पर स्वतंत्र संस्थाओं के रूप में बातचीत करने की क्षमता की रक्षा करती है। यह स्थिति अनिवार्य रूप से स्वतंत्रता द्वारा परिभाषित की गई है। कोई भी राज्य किसी अन्य राज्य से बेहतर नहीं है और सभी राज्य राज्यों की बहुलता में उनकी स्थिति के संबंध में समान हैं। यह राज्यों की समानता का सच्चा स्रोत है–वे समान रूप से स्वतंत्र हैं। इसलिए राज्यों की समानता को 'संप्रभुता का सहसंबंधी' माना जा सकता है। लेकिन किसी राज्य के अस्तित्व का एक अंतर्निहित तत्व अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के सदस्य के रूप में उसकी स्थिति है। इस प्रकार, राज्य की स्वतंत्रता का एक दुगुना जोर है– एक पर। हाथ, यह साथी राज्यों के साथ एक संबंध को परिभाषित करता है; दूसरी ओर, यह सदस्यता की स्थिति की एक विशेषता है, जिसे 'परिवार के राष्ट्र' कहते हैं, जिसे आज बड़े पैमाने पर अंतर्राष्ट्रीय समुदाय कहा जाता है। करीब से निरीक्षण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि संप्रभुता और समानता एक ही अवधारणा है, जिसे विभिन्न कोणों से देखा जाता है। प्रत्येक एक राज्य के संबंध में, संप्रभुता का अर्थ स्वतंत्रता है,

जिसमें स्वायत्तता या आत्मनिर्णय शामिल है। राज्यों के समाज में सदस्यता की स्थिति के संबंध में, यह समानता का अर्थ है।

युग के नियमों के बढ़ते महत्व के मद्देनजर, यह अब एक स्पष्ट सिद्धांत नहीं है, लेकिन यह अभी भी द्वि या बहुपक्षीय संधियों द्वारा बनाए गए अंतर्राष्ट्रीय विधि के संबंध में मान्य है। एक राज्य पर बहुपक्षीय संधि के दायित्वों को अन्य राज्यों के बहुमत मत द्वारा लागू करना विधिक रूप से अस्थिर है। बेशक, यह संभव है कि एक राज्य एक अंतर्राष्ट्रीय संधि को स्वीकार कर सकता है जो एक अंतर्राष्ट्रीय निकाय के अंगों के निर्णय लेने में बहुमत शासन स्थापित करता है। दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में राज्यों का प्रतिनिधित्व है। क्या सभी राज्यों में सदस्यता के लिए समान पहुंच है? क्या सिद्धांत के लिए आवश्यक है कि संगठन के निर्णय में सभी सदस्यों का वजन समान हो? प्रथम विश्व युद्ध के तुरंत बाद, डिकिंसन ने प्रतिनिधित्व किया कि वोटिंग और वित्तीय सहायता की समानता जिसे उन्होंने 'अंतर्राष्ट्रीय प्रशासनिक संघ' कहा था, को काफी हद तक छोड़ दिया गया था। क्या उनकी भविष्यवाणी, कि 'प्रतिनिधित्व की असमानता अंततः अपवाद के बजाय नियम बन जाएगी, सच हो गई है, इस अनुच्छेद में पूरा किया जा सकता है की तुलना में अधिक से अधिक अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के गठन के व्यवस्थित विश्लेषण का मामला है। यह उन राज्यों के समाज का चरित्र है, जिन्होंने सदस्यता की स्थिति को काफी बदल दिया है। अप्रत्याशित रूप से, प्रथम विश्व युद्ध के बाद के राष्ट्रों का विकास द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के संयुक्त राष्ट्र वैश्विक समुदाय के संवैधानिक रूप से व्यक्तिगत राज्य की भूमिका, अधिकारों और दायित्वों का गहरा रूपांतर प्रस्तुत करता है।

टिप्पणी

2.4.2 राज्यों का महासंघ तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि

यूरोपीय राज्यों की स्वतंत्रता और समानता की स्थिति मुख्य रूप से प्राकृतिक विधि के निष्प्रभावी बल पर आधारित थी, जो दूसरे की मान्यता के अर्थ की एक सामान्य समझ के आधार पर थी। लेकिन विधिक रूप से गठित यह समुदाय शांतिपूर्ण नहीं था। जबकि पवित्र रोमन साम्राज्य के खंडहरों से स्वतंत्र राज्यों की बहुलता का उद्भव मध्यकालीन–सामंती समाज के क्षरण की समस्या का समाधान था। यह स्वयं एक बड़ी समस्या बन गया। नई उभरती राजनीतिक संस्थाओं के क्षेत्रीय चरित्र, उनकी भौतिक निकटता, उत्पन्न भू–राजनीतिक संघर्ष ने नई अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली को युद्ध–ग्रस्त बना दिया। जैसा कि आमतौर पर जाना जाता है, युद्धों से बचने की उनकी पद्धति शक्ति संतुलन की अवधारणा थी, जो न केवल एक राजनीतिक रणनीति थी, बल्कि शांति संधि में एक विधिक सिद्धांत भी बन गई।

राज्यों का महासंघ

राज्य की सहमति हमेशा से ही इस बात पर विचार करती रही है कि प्रवचनों में शांतिपूर्ण राज्यों के शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के लिए एक विश्वसनीय पैटर्न कैसे खोजा जाए। यह राज्यों के एक महासंघ की अवधारणा थी– एक विश्व राज्य में सभी राज्यों के संलयन और स्वतंत्र राज्यों की बहुलता के सह–अस्तित्व के बीच एक मध्य पाठ्यक्रम। यह महासंघ किसी राज्य की तरह किसी भी शक्ति को प्राप्त करने का लक्ष्य नहीं रखेगा, बल्कि प्रत्येक राज्य की स्वतंत्रता को अपने आप में संरक्षित करने और

टिप्पणी

सुरक्षित रखने के साथ–साथ अन्य संघटित राज्यों के साथ भी होगा, हालांकि इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें सार्वजनिक रूप से प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। विधि और जबरदस्ती की शक्ति जो उन्हें लागू करती है, जैसा कि पुरुष प्रकृति की स्थिति में करते हैं। प्रारंभिक सैद्धांतिक विकास के बावजूद, राज्यों के महासंघ के विचार के कम से कम कुछ तत्वों को महसूस करने का पहला प्रयास अंतर्राष्ट्रीय शांति प्राप्त करने के साधन के रूप में बीसवीं शताब्दी तक नहीं किया गया था जब प्रथम विश्व युद्ध के बाद राष्ट्र संघ बनाया गया था। अठारहवीं शताब्दी के ज्ञानोदय के दर्शन के लिए, लीग की संस्थागत संरचना, हालांकि मुख्य रूप से तत्कालीन दो महान शक्तियों (संयुक्त राज्य अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन) द्वारा तैयार की गई, ने सदस्य–राज्य समानता के सिद्धांत पर विचार किया। राष्ट्र संघ की वाचा ने एक–दूसरे की क्षेत्रीय अखंडता और स्वतंत्रता का सम्मान करने और बाहरी आक्रमण के खिलाफ इसे संरक्षित करने के लिए सदस्य राज्यों के आपसी वादों की एक प्रणाली स्थापित की। यह सभी सदस्य राज्यों की समान स्थिति के आधार पर संघात्मक एकजुटता का एक पैटर्न था। नतीजतन, वाचा ने एक केंद्रीय प्राधिकरण द्वारा निर्देशित सामूहिक कार्रवाई के उपकरण प्रदान नहीं किए जो कि संघ के उद्देश्यों को लागू करने में सक्षम होंगे। हालांकि प्रिंसिपल एलाइड एंड एसोसिएटेड पॉवर्स ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, और जापान (अमेरिका ने कांग्रेस छोड़ने के बाद अपनी वाचा को मंजूरी देने से इनकार कर दिया) परिषद के स्थायी सदस्य थे, और इसलिए दूसरों की तुलना में 'अधिक समान' थे। असमानता को अनुच्छेद 5 के निर्धारण द्वारा स्पष्ट किया गया था, कि विधानसभा और परिषद– दोनों राष्ट्र संघ के दो अंग – केवल सर्वसम्मति से निर्णय ले सकते थे। दूसरे शब्दों में, वाचा ने सदस्य राज्यों की समानता की रक्षा की है कि इसने क्षैतिज पारस्परिकता का एक उपकरण स्थापित किया है। हालांकि, सामूहिक कार्रवाई की आवश्यकता के साथ राज्यों की स्वतंत्रता के सिद्धांत को समेटने का यह प्रयास विफल रहा। अप्रत्याशित रूप से, संघ अंतरा अवधि में और द्वितीय विश्व युद्ध में अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों के तनाव के तहत ढह गया। इस पतन के बाद, UNO को एक अधिक मजबूत उत्तराधिकारी के रूप में तैयार किया गया, फिर से तत्कालीन महान शक्तियों के तत्वावधान में। राष्ट्र संघ के संघटन और यूएन के चार्टर के शब्दों में कई समानताएं होने के बावजूद, वे अपने सामान्य उद्देश्य, अर्थात अंतर्राष्ट्रीय शांति की खोज में विभिन्न रणनीतियों का पालन करते हैं।

यह निश्चित रूप से दुर्घटना नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र के संस्थापकों ने इसके संस्थापक दस्तावेज 'द चार्टर' को लेबल किया। एक चार्टर में एक विधि का चरित्र होता है, जो शासकों और शासित के पदानुक्रमित संबंध को निर्धारित करता है। यह किसी राज्य या देश की संप्रभु सत्ता से अधिकारों, फ्रेंचाइजी या विशेषाधिकारों का एक अनुदान या गारंटी है। एक विधि ऊर्ध्वाधर एकीकरण का एक उपकरण है, जो एक वाचा से अलग है, जो क्षैतिज एकीकरण का एक रूप है। इस प्रकार, संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर राष्ट्र संघ की वाचा से एक महत्वपूर्ण सम्मान में भिन्न होता है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर ने एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की है, जिसके द्वारा नियंत्रित क्रियाओं के समन्वय के द्वारा सामूहिक लक्ष्यों की खोज के लिए एक तंत्र बनाया जाता है– एक केंद्रीय अंग।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर ने सदस्य राज्यों के बीच संप्रभु समानता के सिद्धांत पर जोर दिया। अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के अपने साधन में पदानुक्रमित है कि यह एक प्राधिकरण स्थापित करता है जो शांति के लिए खतरों को रोकने और हटाने के लिए प्रभावी सामूहिक उपाय कर सकता है। इस उद्देश्य के लिए चार्टर सुरक्षा परिषद को सदस्य देशों की सामूहिकता की ओर से अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा से संबंधित सभी निर्णय लेने का अधिकार देता है। अनुच्छेद 25 में कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र के सदस्य वर्तमान चार्टर के अनुसार सुरक्षा परिषद के फैसलों को स्वीकार करने के लिए सहमत हैं। विधानसभा और परिषद के फैसलों के लिए महासभा और सुरक्षा परिषद दोनों के निर्णय वोट द्वारा लिए जाते हैं। प्रश्न के आधार पर, पांच स्थायी सदस्यों में से प्रत्येक को सुरक्षा परिषद के किसी भी गैर–न्यायिक निर्णय को वीटो करने की शक्ति होने के साथ, एकतरफा और दो–तिहाई बहुमत के बीच की आवश्यकता होती है। अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि उन्हें बनाए रखने के लिए महान शक्तियां किस हद तक तैयार हैं।

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय विधि का विकास

पिछले दो या तीन दशकों में अंतर्राष्ट्रीय विधि के विकास ने परिकल्पना का समर्थन किया है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि की संरचना आम तौर पर सह–अस्तित्व से संवैधानिकता तक विकसित हुई है। सबसे महत्वपूर्ण बदलाव आम हित की मान्यता रही है। एक नैतिक समुदाय के रूप में मानव जाति, जिसे अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा संरक्षित किया जाना है, राज्यों के साथ–साथ वैश्विक राजनीतिक क्षेत्र में विशेष–अभिनेता नहीं है। इस संबंध में एक बड़ी सफलता 1982 के सागर के विधि पर संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन था– 'UNCLOS', जिसने खुले तल के संबंध में 'मानव जाति की साझी विरासत' की अवधारणा को स्थापित किया। गौरतलब है कि इसे 'महासागरों का संविधान' कहा गया है। वास्तव में, अंतर्राष्ट्रीय अंतरराज्यीय संबंधों को क्षैतिज अंतरराज्यीय संबंधों से मानव जाति के वैश्विक समुदाय के हितों की सुरक्षा के लिए स्थानांतरित करने के लिए पहली जगह में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के संवैधानिककरण के लिए पूर्व शर्त है।

राज्यों के वैश्विक संरक्षण और स्रोत

क्या संवैधानिकता की ओर अंतर्राष्ट्रीय समाज के चरित्र में ये बदलाव संप्रभु समानता के सिद्धांत को प्रभावित करते हैं? याद रखें कि इस सिद्धांत को पहली बार सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में प्राकृतिक विधि के स्वयंसिद्ध रूप में घोषित किया गया था और यह एक विशुद्ध रूप से क्षैतिज, असंगठित अंतर्राष्ट्रीय समाज के तत्व के रूप में कार्य करता था। जब दो सौ साल से अधिक अवधि के बाद यह सिद्धांत संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में सकारात्मक विधि बन गया, तो यह केवल एक सीमित तरीके से प्रभावी था क्योंकि उसी समय चार्टर ने संगठित अंतर्राष्ट्रीय समाज में तत्कालीन महान शक्तियों को विशेषाधिकार प्राप्त का दर्जा दिया था। कुछ राज्य दूसरों की तुलना में अधिक समान हैं। लेकिन यह एकतरफा धारणा है। यह एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन के सदस्यों में उनके परिवर्तन के बाद राज्यों की स्थिति के परिवर्तन की उपेक्षा करता है, एक असंगठित या अराजक के क्षैतिज आकार में। समाज, समानता का अर्थ अन्य राज्यों से स्वतंत्रता है। अन्य राज्यों का संबंध और राज्यों के समाज के संबंध कम या ज्यादा

टिप्पणी

समान हैं क्योंकि वे अनिवार्य रूप से क्षैतिज हैं। यह असंगठित समाज एक सामूहिक हित के तत्वों और इसके लिए उपयुक्त संस्थागत उपकरणों का निर्माण करता है। यह एक संगठित समाज के चरित्र को मानता है–हालांकि यह संगठन अल्पविकसित हो सकता है। राज्यों की स्वतंत्रता स्थिति के अनुसार प्रतिबंधित है। राष्ट्र संघ जैसे अपेक्षाकृत ढीले संगठन में, जहां सामूहिक हित का विचार अभी भी भ्रूण था, राज्यों की स्वतंत्रता पर सदस्यता का बड़ा प्रभाव नहीं था। समानता के सिद्धांत को सामूहिक निर्णय लेने में सर्वसम्मति की आवश्यकता थी, जबकि अंतर्राष्ट्रीय न्यायालयों के निर्णय के लिए विवादों को प्रस्तुत करना, अकेले अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों को सख्ती से स्वैच्छिक था। करीब से निरीक्षण करने पर 'सामूहिक' निर्णय लेने की बात करना अनुचित है क्योंकि इसमें प्रतिभागियों के शरीर में एकीकरण की आवश्यकता होती है। संघ की निर्णय लेने की विधा स्वतंत्र राज्यों के दायित्वों के समन्वय का एकमात्र तंत्र थी। इसके विपरीत, 'संयुक्त राष्ट्र–एक अर्ध–सार्वभौमिक संगठन' में अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के सामूहिक हित पर जोर दिया गया है और उसकी प्रभावी खोज के लिए उपयुक्त संस्थागत व्यवस्थाओं की स्थापना की गई है–राज्यों की स्वतंत्रता को काफी सीमित कर दिया गया है। राज्यों की अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा में सामूहिक हित के परिवर्तन ने सुरक्षा परिषद को उस सामूहिक भलाई के प्रावधान के लिए विशेष जिम्मेदारी के साथ छोड़ दिया है। इसके निर्णय सामूहिक रूप से बाध्यकारी हैं और सदस्य राज्यों से अनुपालन की मांग करते हैं। यह उन मामलों में सामान्य पैटर्न है जब स्वतंत्र व्यक्ति सामूहिक रूप से एक समस्या को हल करने के लिए अपने संसाधनों को प्रयोग करते हैं। अपने सदस्यों की भलाई के लिए अंतर्राष्ट्रीय समाज की उपरोक्त जिम्मेदारी व्यक्तिगत राज्यों के घरेलू मामलों में सामूहिक हस्तक्षेप की आवश्यकता को बढ़ाती है। पहले से ही अनुच्छेद 2, 7 का प्रावधान उन उपायों पर लागू नहीं होता है जो सुरक्षा परिषद अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के संबंध में प्रयोग करती है। अधिक से अधिक निर्भरता की दुनिया में, राज्यों के अधिक घरेलू मामले जरूरी राज्यों के वैश्विक समाज के लिए चिंता का विषय बन जाएंगे और संबंधित अंगों की दक्षताओं के विस्तार को जन्म देंगे। अंत में, वैश्विक अंतर्राष्ट्रीय समाज के सार्वभौमिक दावे के साथ भेदभाव के नए तरीके पैदा करने का खतरा आता है। सभी वैश्विक राज्यों का संवैधानिक संगठन मानव जाति के सामान्य हित को सुनिश्चित करता है। यह दावा करता है कि यह आदेश सार्वभौमिक सत्य और न्याय का प्रतीक है। इस सार्वभौमिक क्षेत्र से परे विकल्प या असंतोष के लिए कोई स्थान नहीं है। सार्वभौमिकता नैतिक सार्वभौमिकता के दावे को उत्पन्न करती है। असंतोष और विरोध उत्पन्न होना चाहिए, उन्हें न केवल वर्तमान आदेश के लिए एक चुनौती के रूप में माना जाएगा, बल्कि इसके अंतर्निहित और सार्वभौमिक रूप से वैध सत्य और न्याय से इनकार के रूप में भी माना जाएगा। इस परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक राज्य के अधिकार को एक समान के रूप में मान्यता दिए जाने की संभावना है। सार्वभौमिक समुदाय के एक सदस्य की पहचान को पहचानना और उसका सम्मान करना मुश्किल है जो नैतिक सार्वभौमिकता को मूर्त रूप देने के समुदाय के दावे को नकारता है। इस प्रकार, हमेशा एक बाहरी व्यक्ति के रूप में विघटनकर्ता को बाहर करने के लिए समुदाय का प्रलोभन होता है। अंतर्राष्ट्रीय विधि के इतिहास में कई उदाहरण इस तथ्य की ओर इशारा करते हैं कि गैरविधिक राज्य, दुष्ट राज्य या आपराधिक राज्य की श्रेणियां केवल सैद्धांतिक निर्माणों से नहीं हैं; वे अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष

की संभावनाओं को दर्शाती हैं जो वैश्विक संवैधानिकता द्वारा प्रतिबंधित नहीं हैं–इसके विपरीत, वे इसके द्वारा भी प्रेरित हो सकते हैं।

निष्कर्ष

टिप्पणी

एक राज्य के मौलिक अधिकारों में से एक अन्य सभी राज्यों के साथ समानता है। यह अधिकार अंतर्राष्ट्रीय विधि के एक विषय के रूप में एक राज्य की अवधारणा में निहित है और इसे लंबे समय तक चलने वाले राज्य अभ्यास द्वारा सामान्य मान्यता दी जाती है। राज्यों की समानता के सिद्धांत की सटीक परिभाषा मुश्किल है, हालांकि, चूंकि कई कारक किसी भी विशेष स्थिति में इसके आवेदन को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार, यह विधिक समानता के बीच अंतर करने के लिए सबसे अच्छा है, अर्थात, राज्य समानता की अवधारणा, वैधानिक संबंधों पर लागू होती है जो राज्यों को एक–दूसरे के साथ बनाए रखते हैं और राजनीतिक समानता राज्यों के बीच आर्थिक और सैन्य शक्ति के सापेक्ष वितरण को दर्शाती है।

इसके विधिक प्रभावों में राज्य समानता के सिद्धांत के कई महत्वपूर्ण परिणाम हैं। संभवतः सिद्धांत की सबसे महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति राज्यों की सहमति की आवश्यकता वाले मामलों में एक वोट का अधिकार है। इसका एक स्वाभाविक परिणाम यह है कि हर राज्य का वोट, चाहे वह राज्य कितना भी बड़ा या छोटा क्यों न हो, अन्य सभी राज्यों के व्यक्तिगत मतों के बराबर होता है। विधिक समानता का अर्थ यह भी है कि कोई भी राज्य अन्य राज्यों पर अधिकार क्षेत्र का दावा नहीं कर सकता है और परिणाम के रूप में, एक राज्य अन्य सभी राज्यों की राजनीतिक इच्छा से स्वतंत्र हो जाता है। इससे प्रभुत्व–सम्पन्न उन्मुक्ति की अवधारणा भी प्रवाहित होती है, जो एक राज्य को दूसरे राज्य के न्यायालयों में पहले राज्य की सहमति के बिना अभियोग चलाने से रोकती है। इसी तरह, राज्यों की समानता का तात्पर्य है कि कोई अन्य राज्य किसी अन्य राज्य के आधिकारिक कृत्यों की वैधता पर प्रश्न नहीं उठा सकता है, यह एक नियम है जिसको अमेरिकी विधि में राज्य के सिद्धांत के रूप में जाना जाता है।

विधिक प्रभाव में राज्यों की समानता का सिद्धांत एक तथ्य है, किंतु यह राजनीतिक शक्ति में मतभेदों द्वारा अधिरोपित वास्तविकताओं के विरुद्ध भी परिलक्षित होना चाहिए। राजनीतिक समानता कुछ मानों में एक कल्पना है, क्योंकि राजनीतिक दृष्टि से कुछ राज्य समान हैं। अधिक शक्तिशाली राज्य जो कम शक्तिशाली राज्यों को अनौपचारिक रूप से स्वीकार करते हैं, ऐसी व्यवस्था स्थापित कर सकते हैं भले ही कठोर विधिक व्यवस्था के अंतर्गत, वे समझौते से बाध्य नहीं होंगे।

संयुक्त राष्ट्र के संगठन में विधिक और राजनीतिक समानता के बीच अंतर को भी मान्यता दी गई है। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र का चार्टर स्पष्ट रूप से राज्यों की संप्रभु समानता को मान्यता देता है और महासभा औपचारिक रूप से उस सिद्धांत के अनुसार काम करती है। सुरक्षा परिषद के पांच स्थायी सदस्य संयुक्त राष्ट्र के कार्यों के कई महत्वपूर्ण पहलुओं पर वीटो शक्ति को बरकरार रखते हैं, जैसे कि उपयोग प्रवर्तन उपाय, सदस्यता में प्रवेश, चार्टर में संशोधन और महासचिव का चुनाव। इस तथ्य के बावजूद कि राष्ट्र राज्य समानता के सिद्धांत की सीमाएं पहचानते हैं, जहां राजनीतिक

शक्ति महत्वपूर्ण है, विधिक समानता का सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय विधि के संचालन के लिए आधारभूत है और एक प्रतीकात्मक अवधारणा अधिकांश अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों की औपचारिक संरचना में सम्मिलित है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. राज्यों की समानता का सिद्धांत संयुक्त राष्ट्र चार्टर के किस अध्याय में समकलित किया गया है?

   (क) 01 (ख) 02

   (ग) 03 (घ) 04

6. मानव जाति की साझी विरासत अवधारणा को स्थापित करने वाले 'सागर के कारण' पर संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन कब हुआ?

   (क) 1970 (ख) 1982

   (ग) 1986 (घ) 1990

2.5 राज्यों का अधिकार क्षेत्र

राज्य अधिकारिता शब्द का तात्पर्य उस विधि क्षमता से है जिसको एक राज्य अपने संबंधित राज्य क्षेत्र पर प्रयोग करता है। क्षमता शब्द अधिक व्यापक है तथा यह न्यायिक, विधायी तथा प्रशासनिक क्षमता को सम्मिलित करता है। इस प्रकार नियम बनाने तथा निर्णय करने की शक्ति अर्थात आदेशात्मक या विधायी अधिकारिता तथा उन्हें प्रवर्तित करने की शक्ति अर्थात प्रवर्तनकारी अधिकारिता राज्य की अधिकारिता के अंतर्गत आती है। यह विवक्षित है कि एक राज्य दूसरे राज्य के क्षेत्र में क्षेत्र अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता, जब तक अभिव्यक्त रूप से अनुमति न दी जाए। लोटस वाद में स्थाई न्यायालय ने यह कहा है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि ने यह नियंत्रण उस राज्य पर लगाया है कि वह किसी अन्य राज्य के किसी क्षेत्र में अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता। उक्त से यह प्रतीत होता है कि एक और नियम यह है कि एक राज्य दूसरे राज्य के क्षेत्र में क्षेत्र अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता, जब तक कि इसकी स्वीकृति विधि द्वारा ना हो और दूसरी ओर एक राज्य पूर्ण रूप से उस क्षेत्र के ऊपर अपना क्षेत्र अधिकार प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र है जो उससे संबंधित है। राज्य अधिकारिता के संबंध में अंतर्राष्ट्रीय विधि में कोई निश्चित नियम नहीं है। इस विषय में विधि का विकास मुख्यतः राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायिक विषयों के द्वारा हुआ है। राज्य की अधिकारिता निम्न प्रकार की हो सकती है–

2.5.1 राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता : अर्थ एवं सीमाएं

एक राज्य की अपने राज्य क्षेत्र पर अधिकारिता के होने को राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि राज्य अपने राज्य क्षेत्र के अंतर्गत सभी व्यक्तियों तथा वस्तुओं पर दीवानी तथा दाण्डिक अधिकारिता का प्रयोग करता है। अपनी राज्य क्षेत्रीय परिसीमा के अंतर्गत सभी व्यक्तियों तथा वस्तुओं पर एवं अपनी

टिप्पणी

परिसीमा के अंतर्गत उत्पन्न होने वाले सभी दीवानी तथा दाण्डिक हेतुकों में अधिकारिता को धारण करने के लिये प्रभुत्व संपन्नता को प्रतीक माना जाता है। राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता के सिद्धांत का विस्तार सीमाओं के अंतर्गत भू–राज्य क्षेत्र, राज्य क्षेत्रीय समुद्र, भू–राज्य क्षेत्र के ऊपर वायुमंडल तथा भूमि के नीचे उप–भूमि तक होता है। अपने राज्य क्षेत्र पर राज्य द्वारा अधिकारिता का प्रयोग करना राज्य का अधिकार है। अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा 1949 में तैयार की गयी राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य प्रारूप घोषणा में प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक राज्य को अपने ऊपर तथा उसमें स्थित सभी व्यक्तियों और वस्तुओं के ऊपर अधिकारिता के प्रयोग का अधिकार है। राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता का आधार उस सिद्धांत पर आधारित है जो राज्य क्षेत्र को राज्य की अवधारणा के संघटक तत्व के रूप में मान्यता देता है। इस मत के अनुसार जिसे कभी–कभी क्षेत्र–सिद्धांत भी कहा जाता है, राज्य के राज्य–क्षेत्र का उल्लंघन करना स्वयं राज्य के व्यक्तित्व का तथा उस राज्य में रहने वाले व्यक्तियों का उल्लंघन समझा जाता है। केल्सन ने स्पष्ट किया है कि एक राज्य का राज्य क्षेत्र कोई वस्तु नहीं है या कोई भूमि या भूमि का टुकड़ा नहीं है। यह वह क्षेत्र है जिसको अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा निश्चित किया जाता है।

राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता की सीमाएं

राज्य क्षेत्र के ऊपर राज्य की अन्य अधिकारिता होती है किंतु यह अधिकारिता पूर्ण नहीं होती। राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता के नियम पर सीमाओं को अधिरोपित किया गया है, जो कुछ रूढ़ि से तथा कुछ संधि से विकसित हुए हैं। इसलिए इन सीमाओं को अनन्य राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता के नियम का अपवाद कहा जाता है। ये अपवाद इस प्रकार हैः–

1. राजनयिक अभिकर्ता

राजनयिक अभिकर्ता ग्राही राज्य में विशेषाधिकार तथा उनकी दीवानी तथा दांडिक अधिकारिता से उन्मुक्ति का उपभोग करते हैं। इसमें कोई भी मतभेद नहीं है कि एक राजनयिक अभिकर्ता को उसकी पदावधि के दौरान वहां उस राज्य की दांडिक एवं दीवानी अधिकारिता दोनों से पूर्णः छूट प्रदान की जाती है जहां उनको भेजा जाता है। 1961 के राजनयिक सम्बंध पर वियाना अभिसमय के अनुसार, इस उन्मुक्ति का विस्तार राजनयिक अभिकर्ता के कुटुंब और कर्मचारीवृन्द दोनों तक होता है। उनको उन्मुक्ति मुख्यतया उनके द्वारा निर्वहन किए जाने वाले कार्य की प्रकृति के कारण प्रदान की जाती है।

2. दूतावास

अन्य राज्यों में स्थित दूतावास राज्य की अधिकारिता से उन्मुक्त होते हैं। ग्राही राज्य के अभिकर्ता बिना दूतावास के प्रमुख की सम्मति के विदेशी दूतावास में प्रवेश नहीं कर सकते।

3. विदेशी प्रभुत्व संपन्न

विदेशी प्रभुत्व संपन्न उन्मुक्तियों का उपभोग करते हैं और वे राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता के सिद्धांत के अपवाद हैं। स्कूनर एक्सचेंज बनाम मैकफैडेन, यू0 एस0 सुप्रीम कोर्ट, (1812) 7 क्रांच 116 के मामले में, न्यायालय द्वारा यह संपरीक्षण किया गया था कि पूर्ण

टिप्पणी

तथा आत्यंतिक राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता प्रत्येक प्रभुत्व संपन्न का एक गुण है जो बाह्य राज्य क्षेत्रीय शक्ति प्रदान करने में असमर्थ है। एक प्रभुत्व सम्पन्न किसी भी प्रकार दूसरे प्रभुत्व सम्पन्न के अधीन नहीं होता और उसकी गरिमा तथा अपने राष्ट्र की गरिमा को कम ना करने के लिए आबद्ध है। वह स्वयं को या अपने प्रभुत्व संपन्न अधिकारों को अन्य की अधिकारिता के अंतर्गत रखकर केवल अभिव्यक्त अनुज्ञप्ति के अधीन या इस विश्वास में विदेशी राज्य क्षेत्र में प्रवेश करता है कि उसकी स्वतंत्र प्रभुत्व संपन्नता से संबंधित उन्मुक्ति यद्यपि अभिव्यक्त रूप से निर्धारित नहीं है उसके उपरांत भी विवक्षित है और उसे प्रदान की जाएगी।

विदेशी प्रभुत्व संपन्न को उन्मुक्तियां प्रदान करने के मुख्य रूप से दो आधार होते हैं– पहला, वह अपने राज्य में उच्चतम पद पर आसीन होने के कारण उनकी परिस्थिति एक विशेष प्रकार की होती है। अतः उनको उन्मुक्तियां सभी स्थान पर हर समय दी जाती हैं; दूसरा, प्रभुत्व संपन्न को उन्मुक्तियां देने का आधार उनके प्रतिनिधियों को उन्मुक्तियां देने के समान है। क्रिस्टीना वाद में लॉर्ड राइट ने कहा था कि विदेशी प्रभुत्व संपन्न को उन्मुक्तियां देना अंतर्राष्ट्रीय विधि का एक सामान्य नियम है। अतः वे अन्य राज्य के क्षेत्र अधिकार से उन्मुक्त रहते हैं।

किंतु यह सुस्थापित नहीं है कि क्या विदेशी प्रभुत्व संपन्न से संबंधित उन्मुक्तियां आत्यंतिक हैं या केवल उसके सार्वजनिक कार्यों के संबंध में ही दी जाती हैं। डी0 हैबर बनाम क्वीन ऑफ पुर्तगाल में न्यायालय ने निर्णय दिया है कि ब्रिटिश न्यायालय में विदेशी प्रमुख के विरुद्ध उस राज्य के प्रतिनिधि के रूप में, उसके द्वारा किए गए या नहीं किए गए किसी कार्य के लिए, कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। किसी ब्रिटिश न्यायालय को उसके विरुद्ध किसी परिवाद को स्वीकार करने की अधिकारिता नहीं है।

यद्यपि आत्यंतिक उन्मुक्तियों का सिद्धांत राज्यों द्वारा पहले व्यवहार में लाया जाता था। किंतु विगत वर्षों में कई राज्यों ने इस प्रकार की उन्मुक्तियों को विधान के द्वारा या न्यायिक निर्णय के आधार पर प्रतिबंधित कर दिया है। अतः यह कहा जा सकता है कि एक राज्य दूसरे राज्य के क्षेत्राधिकार से आत्यंतिक उन्मुक्तियों का केवल सार्वजनिक कार्य एवं सरकारी क्रियाकलापों के लिए दावा कर सकता है। उन्मुक्तियां निजी कृत्यों के लिए नहीं दी जातीं।

राज्यों के और उनकी संपत्ति की अधिकारिता पर उन्मुक्तियों पर संयुक्त राष्ट्र का अभिसमय 2004, जो महासभा के द्वारा 2 दिसंबर, 2004 को अंगीकृत किया गया था, में अनुच्छेद 5 में यह प्रावधान किया गया था कि एक राज्य से दूसरे राज्य की अधिकारिता से उन्मुक्तियां प्राप्त करता है, किंतु यह अधिकारिता आत्यंतिक नहीं है। इसके कई अपवाद हैं, जैसे व्यापारिक संव्यवहार, रोजगार की संविदा आदि।

जहां तक पूर्व प्रभुत्व संपन्न को या अपदस्थ प्रभुत्व संपन्न को उन्मुक्तियां प्रदान करने का प्रश्न है, अंतर्राष्ट्रीय विधि में इनके संबंध में नियम सुस्थापित नहीं है। सामान्यतः जब किसी प्रभुत्व संपन्न का कार्य समाप्त हो जाता है तो उसके साथ संबंधित सभी उन्मुक्तियां भी समाप्त हो जाती हैं। इस मत का आधार है राजनैतिक अभिकर्ताओं की उन्मुक्तियां। इनको उन्मुक्तियां उसी समय तक प्रदान की जाती हैं जब तक वे कार्यरत रहते हैं। फिर भी वियाना अभिसमय 1961 के अनुच्छेद–39 परिच्छेद–2

के अनुसार, राजनैतिक अभिकर्ताओं की उन कार्यों के लिए उन्मुक्तियां बनी रहती हैं जिनको उन्होंने उस समय किया था, जब वे मिशन के सदस्य थे। अतः अपदस्थ प्रबुद्ध संपन्न को भी उनके द्वारा किए गए उन कार्यों के लिए उन्मुक्तियां मिलती हैं जिनको कि उन्होंने अपने कार्यकाल के समय किया था।

4. विदेशी प्रभुत्व संपन्न की संपत्ति

टिप्पणी

विदेशी प्रभुत्व संपन्न की संपत्ति राज्य की अधिकारिता से उन्मुक्त रहती है। जब तक विदेशी प्रभुत्व संपन्न की संपत्ति में कुछ हित होता है, तब तक वह उन्मुक्त रहती है। यहां यह महत्वपूर्ण नहीं है कि संपत्ति का प्रयोग किस उद्देश्य के लिये किया गया था। स्कूनर एक्सचेंज बनाम मैकफैडेन, यू0एस0 सुप्रीम कोर्ट (1812) 7 क्रांच 116, में न्यायालय द्वारा यह कहा गया था कि राष्ट्र विदेशी प्रभुत्व संपन्न के स्वायत्त के लिए बंदरगाह में प्रवेश करने वाले सार्वजनिक सशस्त्र जलयानों पर अपनी अधिकारिता नहीं रखते।

5. विदेशी सशस्त्र सेना

राज्य की सशस्त्र सेना अपने राज्य की सेवा के लिए कई अवसरों पर विदेशी राज्य क्षेत्र में जाती है। कुछ लोगों द्वारा ऐसी सेना को बाह्य राज्य क्षेत्रीय माना जाता है, इसलिए यह उस राज्य की अधिकारिता के अंतर्गत रहती है, जिसमें वह संबंधित है। इस प्रकार यदि अपराध इस बल के सदस्यों द्वारा विदेशी राज्य क्षेत्र पर किया जाता है, तो उन्हें स्थानीय सिविल या सैन्य प्राधिकारियों द्वारा दंडित नहीं किया जा सकता। दंड केवल बल के कमान अधिकारी या उनके ही राज्य के अन्य अधिकारियों द्वारा प्रदान किया जा सकता है। किंतु राज्य का व्यवहार भिन्न–भिन्न है। सिद्धांततः, दांडिक मामलों में अन्य राज्यों के बलों के सदस्य स्थानीय न्यायालयों की दांडिक अधिकारिता के अधीन होते हैं और स्थानीय अधिकारिता से उन्मुक्ति तभी मिल सकती है, जब इस संबंध में राज्यों द्वारा कोई संधि की जाए।

6. विदेशी युद्धपोत तथा उनके दल

सामान्य नियमानुसार, राज्य के राज्य क्षेत्रीय समुद्र तथा बंदरगाह सैनिकों के लिए खुले होते हैं, यदि वे विशेष अंतर्राष्ट्रीय संधि या तटीय राज्यों की विशेष राष्ट्रीय विधि द्वारा विवर्जित ना किए गए हों। विदेशी जलयानों को ऐसा माना जाता है जैसे वे अपने ध्वज राज्य के भाग हों तथा जिसके फलस्वरूप उन पर सभी व्यक्तियों तथा सामानों के साथ विदेशी समुद्र में ध्वज राज्य की अधिकारिता के अंतर्गत रहते हैं। उनके विरुद्ध ना तो कब्जे की वापसी के लिए, ना ही टक्कर से हुई क्षति के लिए या उभार पुरस्कार के लिए या किसी अन्य कारण के लिए कोई विधिक कार्यवाही की जा सकती है। तटीय राज्य के किसी अधिकारी को कमांडर की विशेष अनुमति के बिना यान पर जाने की अनुज्ञा नहीं दी जाती। यान की सेवा में रहने वाले व्यक्तियों द्वारा यान पर किए गए अपराध कमांडर तथा उसी राज्य के अन्य प्राधिकारियों की अनन्य अधिकारिता के अधीन रहते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि सैनिक विदेशी समुद्र में जो चाहे कर सकते हैं। उनसे बंदरगाहों, लंगर डालने के स्थानों में व्यवस्था, सफाई और संगरोधन, सीमा शुल्क तथा तत्समान के संबंध में तटीय राज्यों की विधि का स्वेच्छा से अनुपालन करने की प्रत्याशा की जाती है। जो राज्य ऐसा करने से इनकार करते हैं उन्हें निष्कासित किया

जा सकता है और यदि ऐसा या अन्य अवसरों पर वह तटीय राज्य के पदाधिकारियों के विरुद्ध या अन्य राज्यों के विरुद्ध हिंसा का कार्य करता है, तो हिंसा के और कार्य को निवारित करने के लिए उसके विरुद्ध कदम उठाया जा सकता है। किंतु ऐसे मामले में भी सैनिक तटीय राज्य की अधिकारिता के अधीन नहीं आते।

टिप्पणी

इनके अतिरिक्त राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता से अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के पदाधिकारियों तथा उनकी संपत्ति को भी उन्मुक्तियां प्रदान की जाती हैं। संयुक्त राष्ट्र सिद्धांत और उन्मुक्ति अभिसमय, 1946 संयुक्त राष्ट्र के प्रतिनिधियों को विशेष अधिकार तथा उन्मुक्तियों के लिए प्रावधान करता है।

2.5.2 राज्य अधिकारिता के स्वरूप

उक्त व्यक्तियों तथा वस्तुओं को राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व संपन्नता के सामान्य नियम की परिसीमा के अपवाद के रूप में माना जाता है। इन पर परिसीमा बाह्य राज्य क्षेत्रीयता की परिकल्पना के आधार पर लगाई जाती है। यद्यपि ये व्यक्ति सामान्य रूप से राज्य के राज्य क्षेत्र में भौतिक रूप से उपस्थित रहते हैं किंतु अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुसार राज्य अधिकारिता के अंतर्गत नहीं आते। दीवानी तथा दाण्डिक मामलों से संबंधित राज्य की अधिकारिता का विवेचन इस प्रकार हैः–

दीवानी अधिकारिता

राज्य को उन सभी व्यक्तियों के संबंध में दीवानी अधिकारिता का प्रयोग करने का अधिकार है जो उसके राज्य क्षेत्र में पाए जाते हैं। इस प्रकार अन्य देशों के दीवानी मामलों का निर्णय उसके द्वारा किया जाता है यदि वे उसके राज्य क्षेत्र की सीमाओं के अंतर्गत पाए जाते हैं। वह ऐसी अधिकारिता के प्रयोग में उन्मुक्ति का दावा नहीं कर सकता यदि वह यह व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो जाता कि– (i) कुछ विशेष उन्मुक्ति के कारण वह प्रवर्तित स्थानीय विधि के अधीन नहीं है, या (ii) स्थानीय विधि अंतर्राष्ट्रीय विधि से असंगत है, तब वह राज्य की अधिकारिता के अंतर्गत नहीं आएंगे। राज्य वैयक्तिक अंतर्राष्ट्रीय विधि को उन मामलों में लागू कर सकता है जहां विदेशी तत्व सम्मिलित होते हैं। अपने राज्य क्षेत्र में पाए जाने वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त राज्य विदेश में यात्रा करने वाले या निवास करने वाले अपने नागरिकों पर भी अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है। अंतर्राष्ट्रीय विधि उन पर अधिकारिता के प्रयोग से राज्य को नहीं रोकती। ऐसे व्यक्ति उस राज्य की अधिकारिता के अंतर्गत भी आते हैं जिससे वे संबंधित हैं, क्योंकि वे उसकी व्यक्तिगत सर्वोच्चता के अंतर्गत रहते हैं। इस प्रकार अन्य देशीय एक ही समय में दो राज्यों की अधिकारिता के अंतर्गत रहते हैं। अर्थात, उस राज्य की अधिकारिता के अंतर्गत जहां वे निवास करते हैं तथा जहां के वे नागरिक हैं। एक राज्य अपने राज्य क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के ऊपर राज्य क्षेत्रीय सर्वोच्चता के सिद्धांत पर अधिकारिता धारण करता है तथा अपने नागरिकों पर, चाहे वे कहीं भी रहें, व्यक्तिगत सर्वोच्चता के सिद्धांत पर अधिकारिता का प्रयोग करता है। के0 टी0 एम0 एस0 अब्दुल कादिर एवं अन्य बनाम भारत संघ, ए0 आई0 आर0 1977 मद्रास पृष्ठ 396 में मद्रास उच्च न्यायालय ने उचित रूप से निर्णय दिया है कि यद्यपि राज्य की अधिकारिता मुख्य रूप से राज्य क्षेत्रीय है, फिर भी इसकी अधिकारिता का विस्तार इसके राज्य क्षेत्रों के बाहर भी इसके नागरिकों द्वारा किए गए मामलों या कार्यों के

संबंध में हो सकता है। कभी–कभी दो राज्यों की अधिकारिता के अधीन आने वाले अन्य देशों के संबंध में यह समस्या उत्पन्न होती है कि यदि पक्षकारों द्वारा भिन्न–भिन्न दावे किए जाते हैं, तो किस राज्य को वाद का निर्णय करना चाहिए। सुरिंदर कौर संधू बनाम हरबक्स सिंह संधू, ए0 आई0 आर0 1984 एस0 सी0 पृष्ठ 1224 में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि विधियों के संघर्ष का आधुनिक मत उस राज्य की अधिकारिता को मान्यता देता है तथा किसी स्थिति में अधिमान देता है, जिसका विवादों में उत्पन्न होने वाले मामलों से अत्यधिक प्रगाढ़ संबंध है। न्यायालय ने निर्णय में आगे स्पष्ट किया कि सामान्य रूप से अधिकारिता को क्रियात्मक नीति का अनुसरण करना चाहिए। अर्थात व्यक्तिगत प्रस्थिति से संबंधित मामलों में जैसे विवाह तथा अभिरक्षा से संबंधित मामलों में उस स्थान की विधि को लागू करना चाहिए जो पति–पत्नी तथा संतान के कल्याण से घनिष्ठता से संबंधित है। इस मत पर विभिन्न राज्यों के न्यायालयों द्वारा बल दिया गया है।

टिप्पणी

दाण्डिक अधिकारिता

दंड विधि तथा दंड प्रक्रिया की राष्ट्रीय संहिता तथा अंतर्राष्ट्रीय न्यायविदों के प्रेलेखों के विश्लेषण से ऐसा स्पष्ट होता है कि दांडिक अधिकारिता के संबंध में अंतर्राष्ट्रीय विधि में पांच सामान्य सिद्धांत हैं, जिन पर वर्तमान समय में राज्य द्वारा दांडिक अधिकारिता का दावा किया जाता है। ये सिद्धांत इस प्रकार से हैं:–

1) राज्य क्षेत्रीय सिद्धांत

राज्य सभी व्यक्तियों को दंडित कर सकता है चाहे वे अपने नागरिक हों या अन्य देशीय, यदि अपराध उसके राज्य क्षेत्र के अंतर्गत किया जाता है। राज्य क्षेत्रीय दांडिक सक्षमता के सिद्धांत का अनुसरण ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य तथा कई अन्य राज्यों द्वारा किया गया है। राज्य क्षेत्रीय दाण्डिक अधिकारिता विभिन्न सिद्धांतों पर आधारित है। इसका सामान्य औचित्य यह है कि अपराधों का समाधान उन राज्यों द्वारा किया जाना चाहिए जिनकी सामाजिक व्यवस्था निकट से प्रभावित होती है।

दाण्डिक सक्षमता पर राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता उन मामलों में कोई समस्या उत्पन्न नहीं करती, जहां अपराध राज्य के राज्यक्षेत्र के अंतर्गत किया जाता है। किंतु सामान्य रूप से, उन मामलों में समस्या उत्पन्न हो सकती है जहां अपराध की योजना एक राज्य में बनाई जाती है तथा अपराध किसी दूसरे राज्य में किया जाता है। अर्थात जब इसे एक राज्य में प्रारंभ किया जाता है तथा दूसरे राज्य में पूर्ण किया जाता है। ऐसी स्थिति में दाण्डिक अधिकारिता के सिद्धांत को दो भागों में विभाजित किया जाता है– आत्मनिष्ठ राज्य क्षेत्रीय सिद्धांत तथा वस्तुनिष्ठ राज्य क्षेत्रीय सिद्धांत। आत्मनिष्ठ राज्य क्षेत्र सिद्धांत वह है जहां राज्य उन मामलों में अधिकारिता का दावा करता है जिनमें अपराध उसके राज्य क्षेत्र के अंतर्गत प्रारंभ हुआ है किंतु उसके राज्य क्षेत्र के बाहर पूर्ण हुआ है या समाप्त हुआ है, जबकि वस्तुनिष्ठ राज्य क्षेत्रीय सिद्धांत वह है जहां अपराध के तत्वों में से कोई एक उसके राज्य क्षेत्र के अंतर्गत पूर्ण किया जाता है। आत्मनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ तांत्रिक अधिकारिता के दृष्टांत राज्यों के राज्य क्षेत्रों के बाहर किए गए अपराधों पर राज्यों की दांडिक अधिकारिता से संबंधित राष्ट्र संघ की शासकीय रिपोर्ट में दिए गए थे। हावर्ड अनुसंधान प्रारूप अभिसमय 1928 के अनुच्छेद

टिप्पणी

3 द्वारा प्रस्थापना की गई है कि राज्य को राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता की तब अनुज्ञा दी जाएगी जब अपराध पूर्णतया या अंशतया उसके राज्य क्षेत्र के अंतर्गत किया जाता है। राज्य क्षेत्र के अंतर्गत अपराध अंशतः किया गया माना जाता है, जब कोई आवश्यक संघटक तत्व वहां पूर्ण होता है। इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति एक राज्य से गोली मारता है और व्यक्ति दूसरे राज्य में मरता है तो अपराध संभवतः दोनों राज्य में किया गया माना जाएगा। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति सीमा पार से बंदूक से गोली चलाता है तथा पड़ोसी राज्य के अन्य व्यक्ति को मार देता है तो जिस राज्य में बंदूक से गोली चलाई जाती है उसकी अधिकारिता आत्मनिष्ठ है तथा उस राज्य की अधिकारिता वस्तुनिष्ठ है जिसमें गोली चलाने का प्रभाव होता है। वस्तुनिष्ठ दाण्डिक अधिकारिता को ब्रिटिश तथा अमेरिकी न्यायालयों द्वारा मान्यता दी गई है। उनके अनुसार किन्हीं परिस्थितियों में अपराध राज्य के राज्य क्षेत्र के अंतर्गत किया जा सकता है इसलिए वह दाण्डिक न्यायालय द्वारा न्याय योग्य है, चाहे अपराधकर्ता शारीरिक रूप से उसके राज्य क्षेत्र के बाहर हो।

2) राष्ट्रीयता सिद्धांत

राज्य को पूर्णतया विदेश में घटने वाली घटनाओं के संबंध में भी अपने राष्ट्रीयों पर अपनी विधियों को लागू करने का अधिकार है। विदेशियों द्वारा स्वीकार किए गए निष्ठा के साक्ष्य के रूप में तथा राष्ट्रीयता के उत्तरदायित्व की उपेक्षा करने में भी अधिवास तथा अन्य अभिसमय पर विचार करके अधिकारिता को लागू किया जा सकता है। इस प्रकार की अधिकारिता को राष्ट्रीयता सिद्धांत कहा जा सकता है, क्योंकि राज्य क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय सिद्धांत समान अंतर अधिकारिता का सृजन करते हैं। इसलिए कई राज्य राष्ट्रीयता सिद्धांत पर परिसीमा लगाते हैं तथा सामान्यतः यह गंभीर अपराधों तक सीमित होती है। फिर भी यह सिद्धांत ऐसे स्थानों पर किए गए अपराधों के लिए उपयुक्त है जहां पर राज्य क्षेत्रीय सिद्धांत को लागू नहीं किया जा सकता, जैसे अंटार्टिका में जहां क्षेत्र का राज्य क्षेत्रीय सिद्धांत अनुपयुक्त होता है।

3) निष्क्रिय व्यक्तित्व सिद्धांत

अन्य देशीय को विदेश में अपने द्वारा किए गए कार्यों के लिए दंडित किया जा सकता है यदि उसके कार्य राज्य के किसी नागरिक को क्षति पहुंचाते हैं। इस प्रकार की अधिकारिता को निष्क्रिय व्यक्तित्व अधिकारिता कहते हैं। कटिंग मामले में मैक्सिको ने टेक्सास समाचारपत्र में कुछ मान हानिकारक मामलों के प्रकाशन के लिए अमेरिकी नागरिक पर अधिकारिता का दावा किया। मैक्सिको के न्यायालय ने मामले को निर्णीत किया। कुछ राज्यों, जैसे मैक्सिको, ब्राजील, टर्की तथा इटली की दांडिक संहिताओं में निष्क्रिय राष्ट्रीयता सिद्धांत को समाविष्ट किया गया है। यूनाइटेड किंगडम तथा संयुक्त राज्य इस सिद्धांत के औचित्य को स्वीकार नहीं करते।

4) संरक्षणात्मक सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार राज्य की अधिकारिता अपराध द्वारा क्षति राष्ट्रीय हित के निर्देश द्वारा निर्धारित की जाती है। कई राज्य विदेशों में कार्य करने वाले अन्य देशों पर अधिकारिता का दावा करते हैं, यदि ऐसे कार्य स्वयं राज्य की सुरक्षा तथा लोक व्यवस्था के प्रति संकट उत्पन्न करते हैं। ऐसी अधिकारिता को संरक्षणात्मक सिद्धांत कहा जाता

है। संरक्षणात्मक सिद्धांत राज्य के हितों के संरक्षण पर आधारित होता है, जो राज्य के लिए अधिक महत्व का हो सकता है। किंतु ऐसी अधिकारिता के संबंध में राज्यों के व्यवहार समान नहीं हैं। कई राज्य जो इस प्रकार की अधिकारिता का दावा करते हैं कतिपय कार्यों के लिए दंड की धमकी देते हैं। जो या तो स्वयं राज्य के विरुद्ध हो, जैसे घोर राजद्रोह, देशी–विदेशी बैंक नोट तथा इसी प्रकार के कार्य या तो उसके नागरिकों के विरुद्ध हों, जैसे हत्या तथा आगजनी, अपमान वचन तथा अपमान लेख तथा इसी प्रकार के कार्य। वास्तव में, ये राज्य अधिकारिता का प्रयोग केवल तब कर सकते हैं, जब अपराध कार्य करने के बाद अन्य देश का व्यक्ति उनके राज्य क्षेत्र के अंतर्गत पाया जाता है। जब तक अन्य देश का व्यक्ति उनके राज्य क्षेत्र के बाहर रहता है, तब तक उन पर ऐसे राज्यों द्वारा अधिकारिता का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि ऐसे व्यक्तियों को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता, समन तामील नहीं किए जा सकते या पुलिस अन्वेषण नहीं किया जा सकता, सिवा उस स्थान के, जहां अंतर्राष्ट्रीय रूढ़ि से या अभिसमय से प्राप्त अनुज्ञात्मक नियम अस्तित्व में है। लोटस मामले में, स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अधिकृत किया है कि राज्य पर अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा अधिरोपित सबसे महत्वपूर्ण शर्त यह है कि आदेशात्मक नियम के अस्तित्व में अभाव के प्रतिकूल वह किसी अन्य राज्य के राज्य क्षेत्र में किसी रूप में अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता। इस अर्थ में, अधिकारिता निश्चित रूप से राज्य क्षेत्रीय है, अंतर्राष्ट्रीय रूढ़ि से या अभिसमय से प्राप्त आदेशात्मक नियम के आधार के सिवा इसका प्रयोग राज्य द्वारा अपने राज्य क्षेत्र के बाहर नहीं किया जा सकता। इसी क्रम में मद्रास न्यायालय द्वारा निर्णीत के0 टी0 एम0 एस0 अब्दुल कादिर एवं अन्य बनाम भारत संघ ए0 आई0 आर0 1977 मद्रास 386 एक अन्य सुसंगत वाद है।

टिप्पणी

5) सार्वभौमिक सिद्धांत

सार्वभौमिक सिद्धांत के अनुसार अधिकारिता सभी राज्यों को प्राप्त होती है। कई राज्यों ने गैर नागरिकों के कार्यों पर अधिकारिता स्वीकार करने वाले सिद्धांत को सामान्यतः परिसीमाओं के साथ अंगीकार किया है जहां अपराध की प्रकृति को सम्मिलित करके परिस्थितियां अंतर्राष्ट्रीय सार्वजनिक नीति के मामले के रूप में अपराध के कुछ प्रकारों के दमन को न्याय के अनुसार उचित ठहराते हैं। इस प्रकार सार्वभौमिक सिद्धांत के अधीन कार्य करने का दावा करने वाला राज्य राष्ट्रीयता या अपराध करने के स्थान या अभियोजित करने वाले राज्य तथा अपराधी के मध्य किसी संबंध के प्रश्न के उपरांत किसी भी अपराधी पर अधिकारिता के प्रयोग का दावा करता है। सार्वभौमिक अधिकारिता, स्थान, जहां अपराध कार्य किया गया था, अभिकथित या दोष सिद्ध किए गए अपराधी की राष्ट्रीयता, पीड़ित व्यक्ति की राष्ट्रीयता, ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने वाले राज्य से किसी अन्य संबंध के प्रति निरपेक्ष रहते हुए केवल अपराध की प्रकृति पर आधारित है।

रूढ़िजन्य विधि के अधीन, राज्यों के खुले समुद्र पर जल्दस्युता पर सार्वभौमिक अधिकारिता का प्रयोग करने की अनुमति दी गई थी। जलदस्युता के मामले में यह मान्य सिद्धांत है कि सार्वभौमिक सिद्धांत के आधार पर कोई राज्य विदेश में किए गए अपराध पर अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है, चाहे अपराधी की राष्ट्रीयता कोई भी हो। दासत्व, दास का व्यापार तथा वायुयान अपहरण के मामले भी इसी श्रेणी में आते

हैं। ईस्टमैन वाद में इजराइल के सर्वोच्च न्यायालय ने युद्ध अपराधों के विषय में भी सार्वभौमिक सिद्धांत की बात कही थी।

टिप्पणी

कतिपय अपराधों पर राज्यों की सार्वभौमिक अधिकारिता की अवधारणा इस कारण पर आधारित है कि वे ऐसे अपराध हैं, जो सभी राज्यों के हितों को प्रभावित करते हैं और इसलिए यह सार्वभौमिक चिंता के विषय हैं और न्यायोचित रूप से इन्हें अंतर्राष्ट्रीय विधि व्यवस्था पर आक्रमण माना जा सकता है। यह वह अधिकारिता है जो उस स्थान पर जहां अपराध को गठित करने वाला एक कार्य होता है और इसे कार्य करने वाले व्यक्ति की राष्ट्रीयता पर विचार किए बिना अस्तित्व रखता है। यह वह अधिकारिता है जो अपराध की प्रकृति पर निर्भर करती है। यह अभिकथित अपराधी की राष्ट्रीयता या किसी राज्य की अधिकारिता का प्रयोग करने वाले राज्य पर विचार नहीं करती। ऐसी अधिकारिता का प्रयोग एक व्यक्ति का विचारण करने के लिए किसी राज्य द्वारा किया जा सकेगा जिसके बारे में यह अभी कथन किया जाता है कि उसने ऐसा अपराध कार्य किया है।

रूढ़िजन्य विधि के अधीन, राज्यों को खुले समुद्र पर जलदस्युता पर सार्वभौमिक अधिकारिता का प्रयोग करने की अनुज्ञा प्रदान की जाती थी। जलदस्युता के मामले में, यह सुमान्यता प्राप्त सिद्धांत था, कि सार्वभौमिकता सिद्धांत के आधार पर कोई राज्य अपराधियों की राष्ट्रीयता पर विचार किए बिना विदेश में कार्य किए गए एक अपराध पर अधिकारिता का प्रयोग कर सकता था। वर्तमान में, कतिपय अन्य अपराधों के लिए सार्वभौमिकता के सिद्धांत का दावा किया गया है या प्रस्ताव पारित किया गया है। वर्तमान समय में, सार्वभौमिकता सिद्धांत के संबंध में सामान्य अंतर्राष्ट्रीय महत्व के मामलों की कई संधियों में प्रावधान किया गया है, जिसमें नशीले पदार्थों का यातायात, वायुयान का अपहरण तथा तोड़फोड़, रंगभेद, राजनयिकों पर आक्रमण, बंधक बनाना तथा यंत्रणा सम्मिलित हैं। युद्ध अपराध वे हैं, जो सभी राज्यों के न्यायालयों द्वारा विचारणीय होते हैं, इसके उपरांत भी, इन्हें रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्यता दी गई है।

खुले समुद्र पर अधिकारिता

कोई भी राज्य प्राथमिक रूप से खुले समुद्र पर अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए समर्थ नहीं है क्योंकि ना तो यह किसी राज्य की संपत्ति है और ना ही उससे संबंधित है किंतु जलयान तथा उस पर उपलब्ध वस्तुएं तथा व्यक्ति, उस दौरान, जब वे खुले समुद्र पर होते हैं, उस राज्य की अधिकारिता के अधीन रहते हैं, जिसके ध्वज के अधीन चालान संचालित होते हैं। इस संदर्भ में लोटस वाद का विवरण उल्लेखनीय है।

लोटस वाद

खुले समुद्र पर फ्रांसीसी स्ट्रीमर लोटस कांस्टेंट इन कांस्टेंटिनॉपल को जा रहा था, उसके तथा तुर्की के एक जहाज बाज कोर्ट के बीच 2 अगस्त, 1926 को टक्कर हुई। टक्कर के कारण बाज कोर्ट दो भागों में विभक्त हो गया तथा डूब गया। उस पर सवार आठ तुर्की नागरिक भी डूब गए। लोटस ने कांस्टेंटिनॉपल के लिए अपनी यात्रा जारी रखी और वहां तीन अगस्त को पहुंचा। फ्रांसीसी महावाणिज्यक दूत (Consul General) को बिना पूर्व सूचना दिए तुर्की की सरकार द्वारा फ्रांसीसी जहाज लोटस के अधिकारी

लेफ्टिनेंट डैमंस को गिरफ्तार कर लिया गया। बाज कोर्ट के कप्तान हसन बेग, जो टक्कर से बचने वालों में से एक थे, को भी गिरफ्तार कर लिया गया और उनके विरुद्ध दांडिक कार्य प्रक्रिया आरंभ कर दी गई।

जब इस्तानबुल के दांडिक न्यायालय ने मामले की सुनवाई की, तब डैमंस ने तर्क दिया कि तुर्की के न्यायालय को कोई अधिकारिता नहीं है, किंतु इस तर्क को अमान्य कर दिया गया। डैमंस 6000 तुर्की पाउंड जमानत पर 13 सितंबर को मुक्त कर दिए गए। किंतु यह सामान्य आधार है कि डैमंस को 80 दिनों के कारावास तथा 22 पाउंड के जुर्माने की सजा दी गई थी। हसन बेग को इससे भी कठोर दंड की सजा दी गई थी।

टिप्पणी

यह मामला बाद में स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुआ, जिसने यह विचार किया कि क्या अंतर्राष्ट्रीय विधि का कोई ऐसा नियम है जिसका उल्लंघन तुर्की विधि के अनुसरण में डैमंस के अभियोजन द्वारा किया गया है। फ्रांसीसी सरकार ने तर्क दिया कि तुर्की न्यायालय को, अधिकारिता धारण करने के लिए, अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा अधिकारिता के कुछ हक को निर्दिष्ट करने में समर्थ होना चाहिए। दूसरी तरफ तुर्की की सरकार का मत था कि उसे अधिकारिता है, यदि वह अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धांत के विरोध में नहीं है।

न्यायालय ने निर्णय दिया कि यद्यपि यह सत्य है कि सभी विधिक प्रणालियों में दंड विधि की राज्य क्षेत्रीय प्रकृति का सिद्धांत प्रमुख है इसके उपरांत भी सामान्य रूप से यह भी सत्य है कि विधि की सभी प्रणालियों से लगभग सभी राज्य अपनी अधिकारिता का विस्तार राज्य क्षेत्र के बाहर किए गए अपराधों तक भिन्न–भिन्न ढंग से करते हैं, इसलिए दंड विधि की राज्य क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि का आत्यंतिक सिद्धांत नहीं है तथा किसी भी प्रकार से राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व संपन्नता के अनुरूप नहीं है।

इस प्रकार, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि खुले समुद्र में दुर्घटना के मामलों में अंतर्राष्ट्रीय विधि में ऐसे नियम नहीं हैं कि मूल कार्यवाही अनन्य रूप से उसी राज्य की अधिकारिता के अंतर्गत हो, जिसका ध्वज वह धारण करता है।

न्यायालय ने यह भी कहा कि अंतर्राष्ट्रीय विधि का ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है जो विचाराधीन दांडिक कार्यवाही को संस्थित करने से रोकता है। फलस्वरूप, तुर्की ने इस विवेकाधिकार, कि जो अंतर्राष्ट्रीय विधि प्रत्येक प्रभुत्व संपन्न राज्य को प्रदान करती है के आधार पर विवादास्पद दांडिक कार्यवाही संस्थित करके अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों के प्रतिकूल कार्य नहीं किया।

इसलिए न्यायालय ने निर्णय लिया कि लोटस तथा बाज़ कोर्ट की टक्कर के कारण तुर्की विधि के अनुसार डैमंस के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही प्रस्तुत कर के अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया है।

समुद्र विधि अभिसमय 1982 के अनुच्छेद 92 के परिच्छेद 1 के अधीन प्रावधान करता है कि खुले समुद्र पर टक्कर या जलयान से संबंधित नौकाचालन की किसी अन्य घटना की स्थिति में जहाज के स्वामी या जलयान की नौकरी में किसी अन्य व्यक्ति के दांडिक या अनुशासनिक उत्तरदायित्व या तो ध्वज राज्य का या उस राज्य का होगा

टिप्पणी

जिसका वह व्यक्ति नागरिक है। इन्हीं राज्यों के न्यायिक तथा प्रशासनिक पदाधिकारियों के समक्ष दांडिक या अनुशासनिक कार्यवाही की जा सकती है। खुले समुद्र पर समुद्री ध्वज धारण करने वाले राज्य की अधिकारिता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि कतिपय विधि व्यवस्था राष्ट्रीय विधियों के नियम के साथ अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के सहयोग से सृजित की गई है। खुले समुद्र पर अधिकारिता का प्रयोग करते समय दो बातों पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है– प्रथम, राज्य की अधिकारिता को इस प्रकार खुले समुद्र पर अधिकारिता के रूप में नहीं मानना चाहिए तथा इसका विस्तार केवल खुले समुद्र पर जलयानों, व्यक्तियों तथा सामानों तक ही होता है, तथा दूसरे, अधिकारिता मुख्य रूप से, किंतु अनन्य रूप से नहीं, ध्वज राज्य में निहित होती है जिसके अधीन जलयान जलयात्रा करते हैं। यह निहित है कि विशेष मामलों में राज्य सभी समुद्री राष्ट्रों के हित में विदेशी जवानों पर अधिकारिता का प्रयोग कर सकते हैं। ऐसे मामले इस प्रकार हैं–

1) सरगर्मी से पीछा करने का अधिकार

यदि किसी राज्य के राज्य क्षेत्रीय समुद्र में किसी विदेशी व्यापारिक जहाज द्वारा विधि का उल्लंघन किया जाता है तो तटवर्ती राज्य के सैनिक खुले समुद्र में उसका पीछा कर सकते हैं, उसका अभिग्रहण कर सकते हैं तथा परीक्षण के लिए उसे बंदरगाह में ला सकते हैं। खुले समुद्र में पीछा करने का अधिकार केवल तब अनुमति योग्य है, जब उसका प्रारंभ उस समय हुआ हो जबकि व्यापारी जहाज राज्य क्षेत्रीय समुद्र के अंतर्गत होता है या तुरंत वहां से बचकर निकल गया है। पीछा करने का अधिकार उस समय समाप्त हो जाता है, जब व्यापारी जहाज अन्य राज्य की सामुद्रिक पेटी में चला जाता है। यह रूढ़िगत नियम खुला समुद्र जेनेवा अभिसमय, 1958 के अनुच्छेद 123 के अधीन वर्णित किया गया है। बाद में, इसे समुद्र विधि अभिसमय, 1982 के अनुच्छेद 111 के अधीन पुष्ट किया गया, जो अधिकथित करता है कि विदेशी जलयान का सरगर्मी से पीछा तब किया जा सकता है, जब तटवर्ती राज्य के सक्षम प्राधिकारियों को यह विश्वास करने का पर्याप्त कारण है कि जलयान ने उस राज्य की विधियों तथा विनियमों का उल्लंघन किया है। ऐसा पीछा करना तब प्रारंभ किया जाना चाहिए, जब विदेशी जलयान या उसकी नौकाओं में से एक पीछा करने वाले राज्य के आंतरिक सागर खंड, द्वीप समूह खंड, राज्य क्षेत्रीय समुद्र या संलग्न क्षेत्र के अंतर्गत हो तथा राज्य क्षेत्रीय सागर खंड या संलग्न क्षेत्र के बाहर केवल तब तक जारी रह सकता है यदि पीछा करने में बाधा नहीं की जा रही है। परीच्छेद–2 प्रावधान करता है कि सरगर्मी से पीछा करने का अधिकार अनन्य आर्थिक क्षेत्र में या महाद्वीपीय मगन तक भूमि में तथा उसके चारों ओर के सुरक्षा क्षेत्रों में प्रयोज्य तटवर्ती राज्य की विधियों तथा विनियमों के उल्लंघन में आवश्यक परिवर्तन सहित लागू होंगे। उन्हें अनुच्छेद– 111 के परिच्छेद–3 के अधीन अभिव्यक्त रूप से अधिकृत किया गया है कि सरगर्मी से पीछा करने का अधिकार तब समाप्त हो जाता है, जब पीछा किया गया जलयान अपने राज्य के या तीसरे राज्य के राज्य क्षेत्रीय समुद्र में प्रवेश कर लेता है। अनुच्छेद–111 का परिच्छेद–5 प्रावधान करता है कि सरगर्मी से पीछा करने के अधिकार का प्रयोग केवल युद्ध पोतों या सैनिक वायुयान अथवा अन्य पोतों या यान द्वारा किया जा सकता है, जिस पर सरकारी सेवा में रहने का चिन्ह अंकित हो तथा इस रूप में पहचाने जाने योग्य हो और ऐसा करने के लिए प्राधिकृत हो।

टिप्पणी

2) जलदस्युता के संदेह पर निरीक्षण का अधिकार

सभी राष्ट्रों के सैनिकों को खुले समुद्र पर अपना ध्वज दिखा कर संदिग्ध व्यक्तिगत जलयानों को आदेश देने की शक्ति है। यह शक्ति जलदस्युता के विरुद्ध खुले समुद्र की सुरक्षा बनाए रखने के लिए प्रदान की गई है। किंतु इस शक्ति का प्रयोग केवल तब किया जाना चाहिए जबकि संदेह के लिए पर्याप्त आधार हो। यदि इस शक्ति का दुरुपयोग किया जाता है तो राज्य उत्तरदाई होता है तथा राज्य से उन सैनिकों की ओर से प्रतिकर भुगतान करने की अपेक्षा की जा सकती है, जो संदेह के पर्याप्त कारण के बिना विदेशी व्यापारिक जहाज को रोकते हैं तथा निरीक्षण करते हैं। निरीक्षण के अधिकार को समुद्र विधि अभिसमय 1982 के अनुच्छेद 110 के अधीन स्पष्ट रूप से मान्यता दी गई है।

3) जलदस्युता को दंडित करने का अधिकार

अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियम के अनुसार प्रत्येक समुद्री जहाज को जलदस्युओं को दंडित करने का अधिकार है। इस प्रकार, सभी राष्ट्रों के जलयान चाहे वे असैनिक यान हों या अन्य सार्वजनिक यान हों या व्यापारिक जहाज हों, खुले समुद्र पर जलदस्युओं का पीछा कर सकते हैं, उन्हें पकड़ सकते हैं, अभिग्रहण कर सकते हैं तथा अपने देश के न्यायालयों द्वारा परीक्षण तथा दंडित करने के लिए उन्हें अपने देश में ला सकते हैं। इस रूढ़िगत विधि को संधिजात विधि में परिवर्तित कर दिया गया है। खुला समुद्र जेनेवा अभिसमय 1958 का अनुच्छेद 19 प्रावधान करता है कि प्रत्येक राज्य जलदस्यु के जलयान या वायुयान या जलदस्युता द्वारा ग्रहण किए गए तथा जलदस्यु के नियंत्रण के अधीन के जलयान या वायुयान का अधिग्रहण कर सकते हैं तथा व्यक्तियों को गिरफ्तार कर सकते हैं तथा यान की संपत्ति का अभिग्रहण कर सकते हैं। जो राज्य अभिग्रहण करता है, उसके न्यायालय उन दंडों को निश्चित कर सकते हैं, जो अधिरोपित किए जाएंगे तथा सद्भाव में कार्य करने वाले तीसरे पक्षकारों के अधिकारों के अधीन जलयान, वायुयान या संपत्ति के संबंध में की जाने वाली कार्यवाही को भी निश्चित कर सकते हैं। समुद्र विधि अभिसमय, 1982 के अनुच्छेद 105 में भी इसी प्रकार के प्रावधान किए गए हैं। इस अभिसमय का अनुच्छेद 107 प्रावधान करता है कि जलदस्युता के कारण अभिग्रहण केवल युद्ध पोतों या सैनिक वायुयान अथवा अन्य पोतों या यान द्वारा किया जा सकता है, जिस पर सरकारी सेवा में रहने का चिन्ह अंकित हो तथा इस रूप में पहचाने जाने योग्य हो और ऐसा करने के लिए प्राधिकृत हो। इस नियम को इसलिए बनाया गया है क्योंकि जलदस्युता अंतर्राष्ट्रीय अपराध है और ऐसा होने के कारण उन पर सार्वभौमिक अधिकारिता का प्रयोग किया जा सकता है।

4) युद्ध के दौरान युद्धरत देशों के अधिकार

युद्ध के समय, युद्धरत देश न केवल शत्रु के बंदरगाहों तथा अपने राज्य क्षेत्रीय समुद्र में बल्कि उन बंदरगाहों तथा सागर खंड में संलग्न खुले समुद्र के भागों में भी नाकेबंदी को लागू कर सकते हैं तथा ऐसी नाकेबंदी का उल्लंघन करने का प्रयास करने वाले तटस्थ व्यापारिक जहाज का अभिग्रहण कर सकते हैं।

टिप्पणी

5) राष्ट्रीयता विहीन जलयानों का सामना करने का अधिकार

ध्वज न लगाने वाले या जब उन्हें ध्वज दिखाने के लिए कहा जाए तब ध्वज दिखाने से इनकार करने वाले जलयानों को, किसी राज्य के जलयानों द्वारा नियंत्रण में लिया जा सकता है। समुद्र विधि अभिसमय, 1982 के अनुच्छेद 110 का परिच्छेद (ध) प्रावधान करता है कि युद्धपोत खुले समुद्र पर उस विदेशी जलयान का सामना करता है, जो राष्ट्रीयता विहीन है। वह जलयान के ध्वज लगाने के अधिकार को सत्यापित कर सकता है।

वायुयान पर अधिकारिता

वायुयान की राष्ट्रीयता पंजीकृत राज्य द्वारा शासित होती है। यह नियम हवाई नौपरिवहन विनियम अभिसमय (पेरिस अभिसमय), 1919 के प्रावधानों से तथा बाद में शिकागो अभिसमय, 1944 से स्पष्ट है। 1919 का अभिसमय प्रावधान करता है कि पंजीकरण केवल उस राज्य में किया जा सकता है, जिस राज्य का नागरिक वायुयान का स्वामी है, जबकि 1944 का अभिसमय दोहरे पंजीकरण का निषेध करता है। वायुयान पर कारित अपराध अभिसमय (टोक्यो अभिसमय) 1963 प्रावधान करता है कि पंजीयन राज्य की वायुयान पर कारित अपराधों तथा कार्यों पर अधिकारिता होगी, जब वायुयान खुले समुद्र की सतह पर या अन्य राज्यों के राज्य क्षेत्र पर उड़ान में हो। टोक्यो अभिसमय यह भी प्रावधान करता है कि पंजीयन राज्य के अतिरिक्त अन्य राज्य खुले समुद्र पर उड़ान में वायुयान के साथ मध्यक्षेप नहीं कर सकेंगे, सिवा उन मामलों के, जब अपराध का ऐसे अन्य राज्यों पर प्रभाव हो या जब अपराध उसके नागरिकों या स्थाई निवासियों में से किसी एक द्वारा या उनके विरुद्ध कार्य किया गया होगा या जब यह उनकी सुरक्षा के विरुद्ध हो या जब अपराध, वायु सुरक्षा विनियमों के उल्लंघन को सम्मिलित करता होगा या जब अधिकारिता का प्रयोग बहुपक्षीय अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध के अधीन इसकी बाध्यताओं के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो।

हेग अभिसमय, 1970 तथा मॉन्ट्रियल अभिसमय, 1971, जो वायुयान अपहरण से संबंधित है, प्रावधान करता है कि बिना पंजीकरण के भी कुछ मामलों में राज्य वायुयान पर अधिकारिता स्थापित कर सकता है। हैग अभिसमय का अनुच्छेद 4 प्रावधान करता है कि प्रत्येक संविदाकारी राज्य ऐसा उपाय करेगा, जो निम्नलिखित मामलों में अपराध तथा अपराध के संबंध में कथित अपराधी द्वारा यात्रियों या कर्मी दल के विरुद्ध हिंसा के किसी अन्य कार्य पर उसकी अधिकारिता स्थापित करने के लिए आवश्यक हो– (क) जब अपराध उस राज्य में पंजीकृत वायुयान पर कारित किया जाए, (ख) जब वायुयान, जिस पर अपराध कारित किया जाए, वायुयान पर कथित अपराधी के साथ उस राज्य क्षेत्र में उतरता है, (ग) जब उस पट्टेदार को कर्मी दल के बिना पट्टे पर दिए गए वायुयान पर अपराध कारित किया जाए, जिसके कारोबार का मुख्य स्थान यदि पट्टेदार के कारोबार का कोई मुख्य स्थान नहीं है तो, उसका मुख्य निवास स्थान उस राज्य में हो। मांट्रियल अभिसमय अनुच्छेद 5 के अंतर्गत नागरिक विमानन की सुरक्षा के विरुद्ध विधि विरुद्ध कार्यों के दमन के लिए समान प्रावधान करता है। यह प्रावधान यह दर्शित करता है कि विमान पंजीकरण नियम के उपरांत भी सभी वायुयानों पर कार्य अपराधों के संबंध में सार्वभौमिक अधिकारिता को मान्यता दी गई है तथा यह महत्वपूर्ण नहीं है कि

वायुयान अंतर्राष्ट्रीय उड़ान में संलग्न है या घरेलू उड़ान में। किंतु यह नियम सैनिक, सीमा शुल्क या पुलिस सेवा में प्रयुक्त वायुयान पर लागू नहीं होता।

अंटार्कटिका तथा बाह्य अंतरिक्ष पर अधिकारिता

टिप्पणी

खुले समुद्र के समान अंटार्कटिका तथा बाह्य अंतरिक्ष पर सामान्य स्वामित्व होता है तथा ना तो राज्य द्वारा इनको अर्जित किया जा सकता है तथा ना ही कोई राज्य इन पर अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है। किंतु राज्य की अधिकारिता को उसके व्यक्तियों तथा सामानों एवं पदार्थों पर मान्यता दी गई है। जहां तक अंटार्कटिका का संबंध है, अंटार्कटिका संधि 1959 प्रावधान करती है कि यदि एक राज्य के कर्मचारियों, निरीक्षकों तथा वैज्ञानिकों की दूसरे राज्य के अभियानों के कर्मचारियों, निरीक्षकों तथा वैज्ञानिकों के साथ अदला–बदली की जाती है तो वह उन सभी कार्यों या लोगों के संबंध में, जो उस समय घटित होता है, जब वह अपने कार्यों के प्रयोग के प्रयोजन के लिए अंटार्टिका में हो वहां केवल उस संविदाकारी पक्षकार के अधीन होंगे, जिसके भी नागरिक हैं। संधि अधिकारिता के संबंध में किसी अन्य प्रावधान का उल्लेख नहीं करती।

बाह्य अंतरिक्ष संधि, 1966 के अनुच्छेद 8 के अधीन स्पष्ट प्रावधान करती है कि संधि के राज्य पक्षकार, जिसकी रजिस्ट्री पर बाह्य अंतरिक्ष में प्रक्षेपित उपग्रह को लाया जाता है, ऐसे उपग्रह तथा उसके किसी कार्मिक पर बाह्य अंतरिक्ष या आकाश पिंड में रहते समय अधिकारिता तथा नियंत्रण प्रति धारित करेंगे। यदि वापस होते समय उपग्रह उस राज्य की परिसीमाओं से बाहर पाया जाता है, जिसके पंजीकृत पर उसे प्रक्षेपित किया गया था, तो उसके अनुरोध पर पहचान बताने के बाद उसे वापस कर दिया जाएगा।

अपनी प्रगति जांचिए

7. वह विधिक क्षमता क्या कहलाती है, जिसका प्रयोग एक राज्य अपने संबंधित राज्य क्षेत्र पर करता है?

   (क) राज्य अधिकारिता (ख) राज्य सहकारिता

   (ग) अंतर्राष्ट्रीय विधि (घ) संघीय व्यवस्था

8. अंतर्राष्ट्रीय विधि में दांडिक अधिकारिता संदर्भित कितने सामान्य सिद्धांत हैं?

   (क) तीन (ख) चार

   (ग) पांच (घ) छह

2.6 राज्य उत्तराधिकार

अंतर्राष्ट्रीय विधि में राज्य उत्तराधिकार का तात्पर्य किसी राज्य के राज्य क्षेत्र पर अन्य राज्य के प्रतिस्थापन से होता है। यह राज्य क्षेत्रीय परिवर्तन के परिणामस्वरूप एक अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति से दूसरे को अधिकारों तथा कर्तव्यों के अंतरण को ज्ञापित करता है। ओपनहाइम के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तियों का उत्तराधिकार तब होता है जब एक या अधिक अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति अन्य अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति की स्थिति में कतिपय परिवर्तनों के

टिप्पणी

परिणामस्वरूप उसका स्थान ग्रहण कर लेते हैं। वियना में संधि के संबंध में अभिसमय 1978 ने भी राज्य उत्तराधिकार को एक राज्य का दूसरे राज्य द्वारा राज्य क्षेत्र के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के उत्तरदायित्वों को प्रतिस्थापन के रूप में परिभाषित किया है। उत्तराधिकार का मामला उसी समय उत्पन्न होता है जब अंतर्राष्ट्रीय विधि के एक राज्य के अधिकार और दायित्व दूसरे के पास चले जाते हैं। यह परिभाषा अधिदेश तथा न्यास क्षेत्र के उत्तराधिकार को छोड़कर राज्य उत्तराधिकारों के सभी मामलों में लागू होती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि देश तथा न्यास के राज्य क्षेत्र में प्रभुत्व संपन्नता नहीं बल्कि एक विशेष प्रकार की विधिक क्षमता को प्रतिस्थापित किया जाता है। जो राज्य अन्य राज्य के स्थान पर प्रतिस्थापित होता है, उसे उत्तराधिकारी राज्य या कुछ मामलों में नया राज्य कहा जाता है। जिस राज्य को प्रतिस्थापित किया जाता है, उसे मूल या पूर्ववर्ती राज्य कहा जाता है। अंतर्राष्ट्रीय विधि में अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व के उत्तराधिकार का विचार रोमन दीवानी विधि के नियम के आधार पर रोसियस द्वारा प्रस्तुत किया गया था। रोमन विधि के अंतर्गत उत्तराधिकारी मृतक व्यक्ति विधितः उत्तराधिकारी हो जाता था तथा व्यक्ति के अधिकारों और बाध्यताओं को प्राप्त कर लेता था।

2.6.1 राज्य उत्तराधिकार के स्वरूप एवं सिद्धांत

राज्य उत्तराधिकार दो प्रकार का हो सकता है– सार्वभौमिक उत्तराधिकार तथा आंशिक उत्तराधिकार।

1) सार्वभौमिक उत्तराधिकार

जब किसी राज्य का व्यक्तित्व पूर्णतया समाप्त हो जाता है तथा उसका स्थान अन्य अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति द्वारा ले लिया जाता है, तो उत्तराधिकार को सार्वभौमिक या पूर्ण कहा जाता है। ऐसा स्वेच्छा से विलय द्वारा या एक राज्य पर उपाबद्ध द्वारा आत्मसात्करण विलय प्राप्त कर तथा अन्य कई तरीके से हो सकता है। जब 1866 में प्रशा ने हैनोवर को उपाबद्ध कर लिया था, या 1901 में ग्रेट ब्रिटेन द्वारा दक्षिण अफ्रीकी गणतंत्र को, 1910 में जापान द्वारा कोरिया को, 1938 में जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया को उपाबद्ध कर लिया गया था, तो यह पूर्ण या सार्वभौमिक उत्तराधिकार था। सार्वभौमिक उत्तराधिकार उस समय भी होता है जब कोई राज्य अन्य राज्य के साथ स्वेच्छापूर्वक विलय कर लेता है। 1990 में जर्मन स्वतंत्र के साथ जर्मन लोकतांत्रिक गणतंत्र के विलय के फलस्वरुप जर्मनी का एकीकरण सार्वभौमिक उत्तराधिकार का उदाहरण है। ओपनहाइम के अनुसार, जब राज्य भागों में अलग हो जाते हैं जो या तो पृथक अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति हो जाते हैं या अन्य अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तियों द्वारा उपाबद्ध कर लिए जाते हैं तब यह भी सार्वभौमिक उत्तराधिकार का मामला होता है। ऐसे मामलों में जो उत्तराधिकार होता है, उसे सार्वभौमिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि उत्तराधिकारी राज्य अपने पूर्ववर्ती राज्य के सभी अधिकारों तथा बाध्यताओं को ग्रहण नहीं करता बल्कि केवल उसके कुछ भाग को ग्रहण करता है। अधिकारों और बाध्यताओं के शेष भाग अन्य उत्तराधिकारी ग्रहण कर लेते हैं। जहाँ प्रतिस्थापन पूर्ण नहीं बल्कि आंशिक होता है उसे सार्वभौमिक उत्तराधिकार कहना उचित नहीं माना जा सकता।

2) आंशिक उत्तराधिकार

जब राज्य क्षेत्र का कोई भाग मूल राज्य से अलग होता है और मूल राज्य का व्यक्तित्व केवल उसी सीमा तक प्रभावित होता है, जिसके द्वारा राज्य क्षेत्र को अंतरित किया जाता है, तब इसका परिणाम आंशिक उत्तराधिकार होता है। उदाहरणार्थ, आंशिक उत्तराधिकार या तो विलग होकर अर्थात मूल राज्य से पृथक्करण द्वारा, या अध्यर्पण द्वारा या मूल राज्य के एक भाग पर विजय प्राप्त कर होता है। जब राज्य के विभाजन द्वारा अर्थात जब एक राज्य दो या अधिक राज्यों में विभाजित हो जाता है, तो वहाँ भी आंशिक उत्तराधिकार होता है। सोवियत रूस से 1991 में एस्टोनिया, लातीविया तथा लिथुआनिया का विलग होना तथा 1 जनवरी 1998 को चेक तथा स्लोवाक द्वारा चेकोस्लोवाकिया का विभाजन होना आंशिक उत्तराधिकार के उदाहरण हैं। पुनः दिसंबर 1991 में 12 प्रभुत्व संपन्न राज्यों द्वारा सोवियत संघ से तथा 1992 में युगोस्लाविया से स्लोवानिया, मेसिडोनिया, क्रोएशिया एवं बोस्निया तथा हर्जेगोविना और 2011 में सूडान से साउथ सूडान का अलग होना, आंशिक उत्तराधिकार के उदाहरण हैं।

टिप्पणी

राज्य उत्तराधिकार के सिद्धांत

राज्य उत्तराधिकार के संबंध में कई धारणाएं प्रचलन में हैं, जो निम्नलिखित रूप से हैं:–

सार्वभौमिक उत्तराधिकार सिद्धांत

राज्य उत्तराधिकार का प्राचीनतम सिद्धांत इस प्रक्रिया को एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य के प्रतिस्थापन के रूप में मानता है। इस सिद्धांत के अनुसार, उत्तराधिकारी राज्य अपने पूर्ववर्ती राज्य के सभी अधिकारों का उपभोग करता है तथा बाध्यताओं का निर्वहन करता है। नए राज्य को उसके पूर्ववर्ती राज्य के व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी उसी प्रकार माना जाता है, जिस प्रकार वैयक्तिक विधि से एक व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी उसके व्यक्तित्व तथा विधिक संबंधों को जारी रखता है। इस सिद्धांत को सार्वभौमिक उत्तराधिकार सिद्धांत कहा जा सकता है क्योंकि पूर्ववर्ती राज्य के सभी अधिकार तथा कर्तव्य संपदा के रूप में विधितः उत्तराधिकारी को हस्तांतरित हो जाते हैं। इस भाव में, उत्तराधिकार का विचार रोमन विधि से ग्रहण किया गया है, जिसमें उत्तराधिकारी मृतक के व्यक्तित्व को ग्रहण कर उसके सभी अधिकारों तथा दायित्व को ग्रहण कर लेता है। मृत्यु पर उत्तराधिकार के रोमन विधि के सिद्धांत को सर्वप्रथम ग्रोशियस द्वारा अंतर्राष्ट्रीय विधि में राज्य उत्तराधिकार के क्षेत्र में पेश किया गया तथा प्यूफेनडार्फ एवं वाटेल द्वारा स्वीकृत किया गया।

आलोचना

सार्वभौमिक उत्तराधिकार के सिद्धांत में कई कमियां हैं। कई विद्वानों द्वारा इसकी कई आधारों पर आलोचना की गई है। प्रथम, वैयक्तिक विधि के उत्तराधिकार को राज्य उत्तराधिकार के समान मानना अनुपयुक्त है। वैयक्तिक विधि के क्षेत्र में, यह अवधारणा अनिवार्य प्रतिनिधित्व को शामिल करती है, जबकि हीव्टन के अनुसार राज्य उत्तराधिकार के मामले में ऐसा नहीं है। दूसरे, उसके मत में इनमें प्रत्यक्ष त्रुटि यह है कि व्यक्तियों के अधिकार तथा कर्तव्य, राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य से अतुलनीय नहीं हैं। व्यक्तियों के साथ वास्तविक अस्तित्व व्यक्तिगत होता है किंतु राज्यों के लिए काल्पनिक अस्तित्व राज्य के प्रति होता है। तीसरे, इस सिद्धांत के अनुसार उत्तराधिकारी राज्य

को पूर्ववर्ती राज्य की व्यक्तिगत तथा वाणिज्यिक संधियों को शामिल करके सभी संधियों तथा सभी ऋणों एवं संविदाओं द्वारा बाध्य होना माना जाएगा। ऐसी बाध्यताओं का, जो अनन्य रूप से व्यक्तिगत होती हैं, पालन करना कम से कम उत्तराधिकारी राज्य के लिए अत्यधिक सुविधाजनक होता है।

टिप्पणी

निरंतरता का सिद्धांत

उक्त कमियों के कारण राज्य उत्तराधिकार के रोमन विधि सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया गया तथा राज्यों द्वारा व्यवहार में इसे स्वीकार करने की प्रत्याशा नहीं की गई। इन कमियों ने मैक्स ह्यूबर को अन्य सिद्धांत को प्रतिपादित करने के लिए उत्प्रेरित किया, जिसे उन्होंने निरंतरता के या सार्वभौमिक अधिकार के सिद्धांत के रूप में निश्चित किया है। वास्तव में उनका सिद्धांत सार्वभौमिक सिद्धांत का संशोधन है। उनके अनुसार, उत्तराधिकार का सिद्धांत विधि में सामान्य है और यह अनन्य रूप से ना तो वैयक्तिक और ना ही सार्वजनिक विधि से संबंधित है। उत्तराधिकार निरंतरता के साथ प्रतिस्थापन है। उत्तराधिकारी पूर्ववर्ती राज्य का स्थान ग्रहण कर लेता है तथा उसके अधिकारों तथा बाध्यताओं को ग्रहण करता है। पूर्ववर्ती राज्य के सभी लाभ तथा भार उत्तराधिकारी राज्य को हस्तांतरित हो जाते हैं। किंतु उत्तराधिकारी राज्य पूर्ववर्ती राज्य की बाध्यताओं का पालन नहीं करता जो आवश्यक रूप से राजनीतिक चरित्र के हैं। वेस्टलेक द्वारा इस सिद्धांत का पूर्ण रूप से अनुसरण किया गया है।

आलोचना

इस सिद्धांत की आलोचना विभिन्न आधारों पर की गई है। पहले, अध्यर्पण के मामले में यह सिद्धांत पूर्ण रुप से लागू नहीं होता। ह्वीटन के अनुसार, जो राज्य अध्यर्पण करता है, वह अस्तित्व में बना रहता है तथा अन्य राज्य के प्रति उन सभी बाध्यताओं के लिए स्पष्ट रूप से उत्तरदायी बना रहता है, जिन का दायित्व वह ग्रहण कर चुका है; यह तर्क औचित्यपूर्ण नहीं होगा कि तीसरे पक्षकार को राज्य क्षेत्र का अध्यर्पण करके राज्य उस राज्य के प्रति अपनी बाध्यताओं से बच सकता है, जिसके साथ उसका संधि अनुबंध है। दूसरे, यह सिद्धांत राज्यों के व्यवहार से पूर्ण रूप से असंगत होना प्रतीत होता है। पूर्ववर्ती राज्य के अधिकार तथा कर्तव्य, यदि कोई संधि अनुबंध नहीं है तो वे आंतरिक नहीं होते। इस प्रकार, विजयी राज्य भरसक सावधानी ग्रहण करने के आधार पर कार्यवाही करते हैं कि वे विजय द्वारा राज्य अर्जित करें तथा न्यूनतम बाध्यता स्वीकार करें। तीसरे, चाहे जो भी उत्तराधिकार उत्तराधिकारी राज्य स्वीकार करें, वे किसी अधिकार के रूप में नहीं वरन् अनुग्रह के रूप में स्वीकार करते हैं।

नकारात्मक सिद्धांत

सार्वभौमिक उत्तराधिकार सिद्धांत तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के मध्य अनुरूपता की कमी ने एक अन्य सिद्धांत को विकसित किया, जो उक्त सिद्धांतों से भिन्न है। इस सिद्धांत के अनुसार, उत्तराधिकारी राज्य पूर्ववर्ती राज्य के व्यक्तित्व को ग्रहण नहीं करता। यह तर्क दिया जाता है कि उपाबद्ध राज्य क्षेत्र पर पूर्ववर्ती राज्य की प्रभुत्व संपन्नता का परित्याग हो जाता है। तदनुसार, उत्तराधिकारी राज्य राज्य क्षेत्र पर अपने पूर्ववर्ती से शक्ति के अंतरण के कारण अधिकारिता का प्रयोग नहीं करता वरन इस कारण करता है कि उसने अपनी इच्छा द्वारा आदेशित रूप में अपनी प्रभुत्व संपन्नता को विस्तारित

करने की संभाव्यता को अर्जित कर लिया है। उत्तराधिकारी राज्य किसी भी प्रकार से उस राज्य के अधिकारों तथा कर्तव्यों का सम्मान करने के लिए बाध्य नहीं है, जो अस्तित्व में नहीं रह गया है। पूर्ववर्ती राज्य का अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व उसके समापन के साथ लुप्त हो जाता है।

आलोचना

टिप्पणी

इस सिद्धांत की भी आलोचना की गई है। यद्यपि इस सिद्धांत के अनुसार उत्तराधिकार प्रभुत्व संपन्नता के प्रतिस्थापन को सम्मिलित करता है, फिर भी इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि अंतर्राष्ट्रीय विधि नए प्रभुत्व संपन्न राज्य पर कोई बाध्यता अधिरोपित नहीं करती। प्रभुत्व संपन्नता के परिवर्तन का तात्पर्य विधिक व्यवस्था की अपनेआप समाप्ति से नहीं है, बल्कि अधिकार तथा बाध्यता है, जिनका पालन उत्तराधिकारी राज्य द्वारा साम्य, न्याय तथा युक्तियुक्तता के आधार पर किया जाता है। बाध्यताओं का पालन करना राज्य का कर्तव्य हो जाता है क्योंकि वह उससे संलग्न लाभों को स्वीकार करता है। इसके अलावा, नकारात्मक सिद्धांत उन समस्याओं में से किसी को हल नहीं करता, जो प्रभुत्व संपन्नता के परिवर्तन पर उत्पन्न होने के लिए बाध्य हैं।

अंततः, यह प्रतीत होता है कि कोई भी सिद्धांत राज्य उत्तराधिकार की सभी समस्याओं का हल प्रदान नहीं करता। सार्वभौमिक उत्तराधिकार सिद्धांत उत्तराधिकारी राज्य के दृष्टिकोण से अव्यवहार्य है, जबकि नकारात्मक सिद्धांत किसी सामान्य सिद्धांत को स्वीकार करने से इनकार करता है। किसी नियम को लागू करने को राज्य के स्वविवेक पर छोड़ा जाता है, कि कौन नियम उसके हित से सुसंगत है। यह स्वयं उत्तराधिकार द्वारा प्रस्तुत सभी विशिष्ट लक्षणों को ध्यान में रखने के उपरांत विभिन्न मामलों में या विभिन्न समय पर विभिन्न सिद्धांतों को लागू कर सकेगा। इसलिए, विधिक घटनाओं को ध्यान में रखकर राज्य उत्तराधिकार के सभी मामलों में अलग–अलग विचारण किया जाना चाहिए। अकेले कोई सिद्धांत सभी समय में तथा सभी मामलों की आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर सकता।

राज्य उत्तराधिकार से संबंधित विधि

राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व संपन्नता में अध्यर्पण, उपाबद्ध, पृथक्करण, एकीकरण, विलय तथा विघटन तथा अन्य कई रूपों में परिवर्तन लाया जा सकता है। इनके अतिरिक्त, वर्तमान समय में, राज्य उत्तराधिकार का अत्यंत सामान्य रूप कई राज्य क्षेत्रों के पूर्ण प्रभुत्व संपन्नता की उत्पत्ति है, जो अब तक या तो उपनिवेश या न्यास राज्य क्षेत्र थे। परिवर्तन चाहे जिस भी रूप में हो, राज्य उत्तराधिकार से संधि, संविदा, सार्वजनिक अधिकार, व्यक्तिगत अधिकार, सार्वजनिक ऋण, व्यक्तिगत ऋण तथा अपकृत्य के संबंध में कतिपय जटिलताएं विविध निरंतरता भंग होने के कारण उत्पन्न होती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि नए राज्यों के समक्ष यह समस्या उत्पन्न होती है कि कौन–कौन से अधिकार तथा बाध्यताएं न्यायसंगत होंगी। इस प्रकार की समस्या पूर्ण तथा आंशिक उत्तराधिकार दोनों में ही उत्पन्न होती हैं।

राज्य उत्तराधिकार से उत्पन्न होने वाली जटिलताओं को दूर करने के लिए, विधि के कतिपय नियमों का विकास हुआ है, जिन्हें राज्य उत्तराधिकार की विधि कहा जाता

टिप्पणी

है। विधि की यह शाखा मुख्यतः साम्य, तर्क तथा न्याय के सिद्धांतों पर आधारित है। जब एक राज्य दूसरे का स्थान ग्रहण करता है, तब नया राज्य, पूर्ववर्ती राज्य की बाध्यताओं को पूर्ण करने के लिए बाध्य नहीं होता। क्योंकि सामान्यतः उन दोनों के मध्य कोई ऐसी संविदा नहीं होती। किंतु साम्य उत्तराधिकारी राज्य को ऐसी पूर्ण स्वतंत्रता की अनुमति प्रदान नहीं करता। न्यायिक विनिश्चय से यह स्पष्ट होता है कि न्याय तथा तर्क राज्य उत्तराधिकार के नियमों को निर्धारित करने में समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

राज्य उत्तराधिकार की विधि वर्तमान समय में उन सभी समस्याओं का समाधान नहीं करती, जो इससे उत्पन्न हो सकती हैं तथा होती हैं। यह उचित रूप से यह कथित नहीं करती कि पूर्ववर्ती राज्य के कौन से अधिकार तथा कर्तव्य नए राज्य द्वारा ग्रहण किए जाएंगे। अंतर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता तथा विभिन्न राज्यों के राष्ट्रीय न्यायालय स्वीकार करते हैं कि ऐसे नियम, जिन्हें विद्यमान होना कहा जा सकता है, उस स्थिति से उत्पन्न पूर्ण समस्याओं का निराकरण नहीं कर सकते, जिन्हें राज्यों के उत्तराधिकार के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है। राज्य उत्तराधिकार के संबंध में कोई ऐसी रूढ़िजन्य विधि अस्तित्व में नहीं है जो विभिन्न प्रकृति की विभिन्न समस्याओं का निराकरण कर सके। यद्यपि उदाहरणार्थ, व्यक्तिगत अधिकारों तथा निक्षेपकारी संधियों के संबंध में शासित करने वाले नियम अस्तित्व में हैं, फिर भी यह किसी सामान्यकृत अनुमानों के लिए पर्याप्त नहीं है।

अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग

यद्यपि 1924 में स्थापित राष्ट्र संघ अंतर्राष्ट्रीय विधि उत्तरोत्तर संहिताकरण विशेषज्ञ समिति में विस्तार ने भी राज्यों तथा सरकार के, उत्तराधिकार के प्रश्न को संहिताकरण के विषयों की सूची में सम्मिलित करने का अनुरोध किया था, किंतु उनका अनुरोध निष्फल हो गया। संयुक्त राष्ट्र ने स्वीकार किया कि संहिताकरण की योजना में राज्य उत्तराधिकार की समस्या पर अधिक ध्यान देना उचित होगा। कतिपय विख्यात अंतर्राष्ट्रीय विधि के विधिवेत्ताओं के अनुरोध पर, अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग ने 1949 में आयोजित अपने प्रथम सत्र में राज्यों तथा सरकारों के उत्तराधिकार पर संपूर्ण विधि को संहिताकरण के माध्यम से निर्मित करने का निश्चय किया। उस समय आयोग द्वारा इस विषय को प्राथमिकता नहीं दी गई। किंतु अंतर्राष्ट्रीय मंच पर कई राज्यों की उत्पत्ति के कारण आयोग ने अपने 14वें सत्र में महासभा के अनुमोदन पर अपनी कार्ययोजना की प्राथमिकता सूची में इस विषय को सम्मिलित करने का निश्चय किया। आयोग ने 1967 में राज्य तथा सरकार के उत्तराधिकार के विषय पर इस कार्य के लिए नई व्यवस्था की। इस विषय को तीन पृथक शीर्षों में विभाजित किया गया, जो कि इस प्रकार हैं:—

(1) संधियों के संबंध में उत्तराधिकार,

(2) संधियों के अतिरिक्त अन्य अधिकारों तथा कर्तव्य के संबंध में उत्तराधिकार, तथा

(3) अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की सदस्यता के संबंध में उत्तराधिकार।

उक्त विभाजन के आधार पर आयोग ने राज्य उत्तराधिकार के सभी पहलुओं पर विधि को निर्मित करने का निश्चय किया, जो उस समय तक अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की अनिवार्य आवश्यकता हो गई थी। वियना में 22 अगस्त, 1978 को संधियों के संबंध में उत्तराधिकार पर एक अभिसमय अंगीकार किया गया, जिसके द्वारा संधियों के उत्तराधिकार के संबंध में नियम बनाए गए। इसी प्रकार 7 अप्रैल, 1983 को राज्य संपत्ति अभिलेखागार तथा ऋण के संबंध में राज्य उत्तराधिकार पर वियना अभिसमय को अंगीकार किया गया। अंतर्राष्ट्रीय संगठन की सदस्यता के संबंध में उत्तराधिकार के विषय का अध्ययन कुछ समय के लिए छोड़ दिया गया।

टिप्पणी

2.6.2 राज्य उत्तराधिकार के परिणाम

जब कोई राज्य पूर्ववर्ती राज्य का स्थान ग्रहण करता है तब वह पूर्ववर्ती राज्य के कौन–कौन से अधिकारों तथा कर्तव्यों को स्वीकार करेगा यह प्रश्न अनिश्चित ही नहीं विवादपूर्ण भी है। राज्यों के व्यवहार से यह प्रतीत होता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि में इस संबंध में कोई सामान्य नियम नहीं है। राज्य उत्तराधिकार के कुछ परिणाम इस प्रकार हैं:

(1) संधि

संधियों के संबंध में प्रभुत्व संपन्नता के परिवर्तन का प्रभाव इसके विभिन्न प्रकारों तथा विभिन्न परिस्थितियों में निर्माण होने के कारण सदैव विवाद का विषय रहा है। सभी प्रकार की संधियों के संबंध में संभवत कोई एक उत्तर नहीं दिया जा सकता। विभिन्न प्रकार की संधियों पर राज्य उत्तराधिकार का प्रभाव इस प्रकार है:–

(i) व्यक्तिगत संधियां या राजनीतिक संधियां

जो संधियां संविदाकारी पक्षकारों के व्यक्तिगत प्रभाव के कारण की जाती हैं, जैसे जो संधियां शांति, सहबन्ध, पारस्परिक सहायता तथा मैत्री, तटस्थता, प्रत्याभूति, अनाक्रमण तथा शांतिपूर्ण समझौते से संबंधित हैं, वे उत्तराधिकारी राज्यों पर बाध्यकारी नहीं होतीं। ओपनहाइम के अनुसार राजनैतिक संधियों से उद्भूत विलीन राज्य के अधिकारों एवं कर्तव्यों का उत्तराधिकार नहीं होता। पहले वे राज्य के व्यक्तित्व के समापन के साथ समाप्त मानी जाती थीं, किंतु वर्तमान समय में इस नियम को व्यापक रूप से परिवर्तित कर दिया गया है। सामान्यत:, उत्तराधिकारी राज्य उन सभी संदेशों को जारी रखते हैं, जो उनके हित में होते हैं तथा परिवर्तित परिस्थितियों में उनके लिए उपयुक्त होते हैं। संधि को जारी रखना तथा समाप्त करना उत्तराधिकारी राज्य तथा अन्य संविदाकारी पक्षकारों के मध्य संबंधों पर निर्भर करता है। इस प्रकार, उत्तराधिकारी राज्य के स्वविवेक निर्णय पर उन संधियों में से छांटने या चुनने के लिए छोड़ा जाता है, जिनको वह उत्तराधिकार में ग्रहण करता है।

(ii) वाणिज्यिक संधियां

वाणिज्यिक संधियां उत्तराधिकारी राज्यों पर बाध्यकारी नहीं होतीं। केवल उन वाणिज्यिक संधियों को ग्रहण किया जाता है, जो व्यापार की नई व्यवस्था के साथ सामंजस्य स्थापित करती हैं, अन्यथा, वे सामान्य रूप से समाप्त हो जाती हैं।

टिप्पणी

(iii) प्रशासी संधियां

प्रशासी संधियां, जैसे न्यायिक सहायता, दोहरे कर–आरोपण के परिवर्जन की संधियां तथा प्रत्यर्पण संधियां राजनीतिक तत्वों से प्रेरित होती हैं, किंतु वे राजनीतिक संधियों से भिन्न होती हैं। प्रशासन संधियों का निर्माण समुचित न्याय प्रशासन को बनाए रखने तथा कुछ मामलों में अपराधियों के दमन की इच्छा द्वारा अभिप्रेरित होती हैं। ऐसी संधियों को जारी रखना उत्तराधिकारी राज्यों के स्वविवेक निर्णय पर निर्भर करता है। प्रत्यर्पण संधियों के उत्तराधिकार से संबंधित राज्यों की प्रथा एक समान नहीं है। किंतु प्रभावी अंतर्राष्ट्रीय न्यायिक प्रशासनिक प्रणाली को स्थापित करने के लिए तथा अपराधियों का दमन करने के लिए यह वांछनीय है कि ऐसी संधियों को उत्तराधिकारी राज्य द्वारा जारी रखा जाए।

(iv) निक्षेपकारी संधियां

निक्षेपकारी संधियां या वास्तविक संधियां सर्वबंधी अधिकारों को सृजित करती हैं। ऐसी संधियों से ऐसे अधिकारों का सृजन होता है, जो स्थायी प्रकृति के होते हैं, तथा प्रभुत्व संपन्नता का प्रयोग करने वाले राज्य के व्यक्तित्व से स्वतंत्र होते हैं। व्यक्तिगत तथा निक्षेपकारी संधि में अंतर है। व्यक्तिगत संधि संविदा की प्रकृति की होती है जिसका अभिहस्तांतरण नहीं होता। किंतु वास्तविक संधि का अभिहस्तांतरण होता है। निक्षेपकारी संधियां मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं:–

(क) **सुविधाभार** – सुविधाभार, निक्षेपकारी संधियों के उदाहरण हैं। राज्य की प्रभुत्व संपन्नता पर निर्बंधन स्व–अधिरोपित निर्बंधन होता है तथा सुविधाभार की स्वीकृति देना राज्य क्षेत्र के अध्यर्पण के समान नहीं होता। ऐसी संधियों के उदाहरण हैं– नदी तटों तथा अंतर्राष्ट्रीय रेलवे संयोजन, राष्ट्रीय जलमार्गों के नौ–परिवहन के रखरखाव से संबंधित अधिकार, सिंचाई के लिए राष्ट्रीय जल मार्गों से जल ग्रहण करने का अधिकार, मछली मारने का अधिकार।

(ख) **सीमा संविदा** – सीमा रेखाओं का सीमांकन निक्षेपकारी संधियों के अन्य उदाहरण हैं। राज्यों के व्यवहार तथा विधिवेत्ताओं के लेख यह दर्शित करते हैं कि ये भी उत्तराधिकारी राज्य पर बाध्यकारी होती हैं। वैलडाक ने 1968 में संधियों के संबंध में राज्य तथा सरकारों के उत्तराधिकार पर अपनी प्रथम रिपोर्ट में कहा था, कि राज्यों के व्यवहार से स्पष्ट रूप से इस मत के पक्ष में होना प्रतीत होता है, कि संधियों द्वारा स्थापित सीमाएं उत्तराधिकार के तथ्य द्वारा प्रभावित बनी रहेंगी। यदि सीमा रेखा का सीमांकन निश्चित अवधि के लिए की गई संधि के माध्यम से किया जाता है, तो सीमा रेखा संधि के समापन के बाद भी पक्षकारों पर आबद्धकारी होगी।

यद्यपि विधि में यह स्पष्ट है कि संधि द्वारा नियत सीमा रेखा को राज्यों के उत्तराधिकार होने पर प्रश्नगत नहीं किया जाता है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि संधियों द्वारा स्थापित सीमा रेखा को कभी भी प्रश्नगत नहीं किया जा सकता।

(v) बहुपक्षीय संधियां

सामान्यतः बहुपक्षीय संधियां उत्तराधिकारी राज्य द्वारा जारी रखी जाती हैं क्योंकि इनका निर्माण अधिकतर सामान्य विषयों पर होता है, जो बहुधा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के सभी राज्यों के लिए लाभदायक होता है। किंतु, उत्तराधिकारी राज्य सभी मामलों में ऐसी संधियों को जारी रखने के लिए बाध्य नहीं हैं। यदि बहुपक्षीय संधि नए राज्य के हित के अनुरूप नहीं है, तो यह समाप्त की जा सकती है। जब उत्तराधिकारी राज्य किसी बहुपक्षीय संधि को जारी रखने के लिए चुनता है, तब उसे संधि के निक्षेप आगार को लिखित रूप में अधिसूचित करना होता है तथा यदि कोई निक्षेप आगार नहीं है तो संविदाकारी राज्यों या पक्षकारों को लिखित रूप में अधिसूचित करना होता है।

टिप्पणी

(2) अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की सदस्यता

अधिकतर अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के संविधान उत्तराधिकार की संभाव्यता को अपवर्जित करते हैं, इसलिए सदस्यता के उत्तराधिकार का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। ऐसे संगठनों का सदस्य होने के लिए प्रत्येक राज्य से नया आवेदन करने की अपेक्षा की जाती है। इसके उपरांत भी कि उसका पूर्ववर्ती राज्य उस विश्व संगठन का सदस्य था। किंतु, राज्यों के संघ के मामले में नया संघ राज्य नए सिरे से सदस्यता के लिए आवेदन किए बिना, अपने संघटक पक्षकारों की पूर्ण सदस्यता को ग्रहण कर लेता है। इस प्रक्रिया का अनुसरण 1958 में किया गया था, जब 1958 में संयुक्त अरब गणतंत्र ने मिश्र तथा सीरिया की सदस्यता को धारण कर लिया था तथा जब तंजानिया ने 1960 में तंगानिका और जंजीबार के स्थान पर यही किया था।

जब पूर्ववर्ती राज्य के समाप्त हो जाने पर नए राज्य बनते हैं, तब ऐसे राज्यों से अपेक्षा की जाती है कि वे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की सदस्यता के लिए आवेदन करें। चेकोस्लोवाकिया के विघटन के बाद चेक रिपब्लिक तथा स्लोवाकिया संयुक्त राष्ट्र में 19 जनवरी, 1993 में नए सदस्य के रूप में प्रविष्ट हुए।

संयुक्त राष्ट्र में भारत और पाकिस्तान की सदस्यता

जब भारत और पाकिस्तान स्वतंत्र अधिराज्य हुए, तब संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता के उत्तराधिकार के संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ। ब्रिटिश भारत संयुक्त राष्ट्र का मूल सदस्य था। चार्टर पर भारत द्वारा 26 जून, 1945 को हस्ताक्षर किया गया था। और 30 अक्टूबर 1945 को उसका अनु समर्थन किया गया था। जब भारत और पाकिस्तान नए राज्य बने, तब पाकिस्तान से नए सदस्य के रूप में सदस्यता के लिए आवेदन करने की अपेक्षा की गई थी, जबकि भारत को भारतीय स्वतंत्रता अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था आदेश, 1947 के अनुसार संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता को जारी रखना था। इस आदेश की संसूचना भारत के प्रतिनिधि द्वारा 27 अगस्त, 1947 को संयुक्त राष्ट्र को दी गयी थी। जब इन दोनों राज्यों की सदस्यता का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र के सचिवालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया, तब विधिक मामलों के सहायक महासचिव को अपनी राय देने के लिए कहा गया। सहायक महासचिव ने अपनी रिपोर्ट में अधिकृत किया था कि महासचिव के लिए भारत सरकार को यह सुझाव देना उचित होगा कि संप्रभुता में परिवर्तन की दृष्टि से नये भारतीय राज्य की सरकार के प्रमुख या विदेश मंत्री द्वारा भारतीय प्रतिनिधियों को नया

टिप्पणी

साख पत्र जारी करना वांछनीय होगा। उन्होंने रिपोर्ट दी कि आर्थिक और सामाजिक परिषद में भारत के प्रतिनिधियों से और सुरक्षा परिषद में इंडोनेशिया के मामले में विचार विमर्श में भाग लेने वाले भारत के प्रतिनिधियों से नए भारतीय राज्य के विदेश मंत्रालय द्वारा 15 अगस्त, 1947 के बाद जारी किए गए नए साख पत्र को पेश करने का अनुरोध किया जाना चाहिए। इस रिपोर्ट की आलोचना महासभा तथा सुरक्षा परिषद द्वारा की गई। भारत के मामले में संयुक्त राष्ट्र की प्रथा ठोस नहीं थी। भारत की सदस्यता के प्रश्न की अवधारणा संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रावधानों के अनुसार किए जाने की अपेक्षा की गई थी।

संयुक्त राष्ट्र में रूस तथा युगोस्लाविया की सदस्यता

जब सोवियत संघ 1991 में 12 स्वतंत्र राज्यों में विभाजित हुआ तब रूस तथा उन राज्यों को छोड़कर जो पहले से सदस्य थे सभी राज्यों से संयुक्त राष्ट्र के सदस्य होने के लिए नया आवेदन करने की अपेक्षा की गई। रूस की सदस्यता के लिए यह कहा गया कि यह सोवियत संघ का उत्तराधिकारी राज्य है तथा इसलिए इसको सदस्यता के लिए नए आवेदन की आवश्यकता नहीं है। यह दृष्टिकोण उचित नहीं था। यदि रूस को उत्तराधिकारी राज्य मान भी लिया जाए फिर भी इसको नए सदस्य के रूप में आवेदन करना चाहिए था। क्योंकि सोवियत संघ के विघटन के फलस्वरूप सोवियत संघ का समापन हुआ समझा जाना चाहिए था। इस तथ्य के बाद भी रूस को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता मिली जो उचित नहीं थी।

जब 1992 में युगोस्लाविया संघीय गणतंत्र से रोमानिया, मेसिडोनिया, क्रोशिया तथा बाद में बोस्निया तथा हर्जेगोविना का विच्छेदन हुआ तब युगोस्लाविया के राज्य क्षेत्र में बहुत अधिक कमी होने से इसकी सदस्यता इसलिए समाप्त कर दी गई कि राज्यों के विच्छेदन के बाद का युगोस्लाविया पहले वाले युगोस्लाविया की सदस्य को बनाए नहीं रख सकता। इससे संयुक्त राष्ट्र ने नई सदस्यता के लिए आवेदन करने के लिए कहा।

सोवियत संघ और युगोस्लाविया संघीय गणतंत्र का विघटन एक ही प्रकार के मामले थे। फिर भी रूस को संयुक्त राष्ट्र की सदस्य मिली, किंतु युगोस्लाविया को युगोस्लाविया संघीय गणतंत्र की सदस्यता नहीं मिली। संयुक्त राष्ट्र में इस प्रकार के दोहरे मापदंड से यह बात प्रमाणित होती है कि सदस्यता के संबंध में प्रत्येक मामले का मूल्यांकन राजनैतिक कार्य को से प्रेरित रहता है।

(3) सार्वजनिक संपत्ति

राज्य संपत्ति अभिलेखागार तथा ऋण के संबंध में राज्य उत्तराधिकार वियना अभिसमय, 1983 के अनुच्छेद 8 में राज्य संपत्ति से तात्पर्य ऐसी संपत्ति से है जो राज्य उत्तराधिकार के समय विधिक रूप से पूर्ववर्ती राज्य की थी। अंतर्राष्ट्रीय विधि का यह मानना है कि सिद्धांत है कि उत्तराधिकारी राज्य अपने पूर्ववर्ती राज्य की सभी सार्वजनिक संपत्ति तथा उससे संबंधित अधिकारों को ग्रहण कर लेता है।

पूर्ववर्ती राज्य की चल संपत्ति के संबंध में 1983 के वियना अभिसमय में यह प्रावधान है कि जो चल संपत्ति उत्तराधिकारी राज्य के राज्य क्षेत्र में स्थित है वह उत्तराधिकारी राज्य को हस्तांतरित हो जाएगी किंतु जो चल संपत्ति राज्य क्षेत्र के बाहर

स्थित है वह राज्य क्षेत्र के विलगन होने की स्थिति में विलग्न राज्य को साम्यापूर्ण अनुपात में हस्तांतरित होगी। अभिसमय के अनुच्छेद 11 में यह प्रावधान किया गया है कि सामान्यतः ऐसी संपत्ति उत्तराधिकारी राज्य बिना किसी प्रतिकर के ग्रहण करेगा।

(4) राज्य अभिलेखागार

टिप्पणी

वियना राज्य संपत्ति अभिलेखागार तथा ऋण के संबंध में वियना अभिसमय 1983 के राज्य अभिलेखागार से तात्पर्य ऐसे अभिलेखों से है जो राज्य उत्तराधिकार के समय पूर्ववर्ती राज्य के संरक्षण में थे चाहे वे किसी भी तिथि के हों या किसी भी प्रकार के हों। अभिसमय के अनुच्छेद 21 से 24 में यह प्रावधानित है कि सामान्यतया अभिलेखागार उत्तराधिकारी राज्य बिना किसी प्रतिकर के ग्रहण करेगा। ऐसे उत्तराधिकार से तृतीय राज्यों के अधिकारों तथा हितों पर प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

(5) सार्वजनिक ऋण

राज्य संपत्ति, अभिलेखागार तथा ऋण से संबंधित राज्य उत्तराधिकार वियना अभिसमय 1983 में सार्वजनिक या राज्य ऋण को अंतर्राष्ट्रीय संगठन या अंतर्राष्ट्रीय विधि के किसी अन्य विषय के प्रति अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुरूप उत्पन्न पूर्ववर्ती राज्य की किसी वित्तीय बाध्यता के रूप में परिभाषित किया है। सामान्यतः कोई राज्य स्वयं को पूर्ववर्ती राज्य के ऋणों और दायित्वों द्वारा बाध्य नहीं मानता है। राज्य उत्तराधिकार के कई मामलों में इस सिद्धांत का अनुसरण किया गया है। किंतु यदि उत्तराधिकारी राज्य पूर्ववर्ती राज्य के लाभों को स्वीकार करता है तो उसी प्रकार उसके भार को भी स्वीकार करने की नैतिक बाध्यता उसी की है।

(6) संविदा

संविदा के उत्तराधिकार के संबंध में अंतर्राष्ट्रीय विधि में कोई निश्चित नियम नहीं है। राज्यों के व्यवहार से यह दृष्टिगत होता है कि संविदा का उत्तराधिकार उत्तराधिकारी राज्य के स्वविवेक निर्णय पर निर्भर करता है। किंतु रियायती संविदा जो स्थानीय प्रकृति का होता है तथा जो स्थाई अधिकार सृजित करता है का सामान्य रूप से उत्तराधिकारी राज्य द्वारा सम्मान किया जाता है। ऐसे मामलों में जिसका हस्तांतरण होता है वह संविदा न होकर उसके अधीन अर्जित अधिकार तथा उपगत बाध्यताएं होती हैं। माव्रोमैटिस पेलेस्टाइन कंसेशन केस (1925) में स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने निर्णय दिया था कि जो रियायत तुर्की द्वारा यूनानी नागरिकों को प्रदान की गई थी उसका फिलिस्तीन के संबंध में ग्रेट ब्रिटेन, जो आज्ञापक शक्ति है, पर बाध्यकारी होना जारी रहेगा। किंतु रियायती संविदा के उत्तराधिकार के पक्ष में कोई सामान्य नियम प्रतिपादित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक मामले को उसके गुण–दोष पर विनिश्चित किया जाना चाहिए।

(7) अपकृत्य

उत्तराधिकारी राज्य पूर्ववर्ती राज्य के अपकृत्य का नियम उल्लंघन के लिए उनके व्यक्तिगत प्रकृति के होने के कारण अपरिनिर्धारित क्षति को ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं है। अपरिनिर्धारित क्षति का दावा वहां उत्पन्न होता है जहां विवादास्पद मामला

न्यायिक पदाधिकारियों के समक्ष नहीं आया है और प्रतिकर के विवाद का अवधारण सक्षम न्यायालय या अधिकरण द्वारा किया जाना बाकी है। इस संबंध में ब्राउन का वाद प्रमुख है जिसके तथ्य तथा निर्णय उल्लेखनीय हैं।

(8) विधि

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय विधि का यह मान्य सिद्धांत है कि राज्य क्षेत्र पर एक बार लागू की गई विधि केवल प्रभुत्व संपन्नता के परिवर्तन द्वारा परिवर्तित नहीं हो जाती। उत्तराधिकारी राज्य द्वारा भी जारी रखी जाती है, चाहे वह राज्य के नए रुप से अर्जित प्रस्थिति से असंगत ही क्यों ना हो। विधि उस समय तक जारी रहती है जब तक उत्तराधिकारी राज्य द्वारा नई विधियों का अधिनियमन नहीं हो जाता। यदि उत्तराधिकारी राज्य पूर्ववर्ती राज्य की विधि को तथा उससे उद्भूत अधिकारों एवं कर्तव्यों को अपनी इच्छा से जारी रखता है तब उस विधि तथा अधिकार एवं कर्तव्य को न्यायालय द्वारा लागू किया जाना चाहिए।

(9) राष्ट्रीयता

पूर्ववर्ती राज्य के नागरिक राज्य की समाप्ति पर अपनी नागरिकता खो देते हैं। वे उत्तराधिकारी राज्य के नागरिक हो जाते हैं। किंतु आत्मनिर्णय के सिद्धांत तथा मानव अधिकार के नियमों को देखते हुए उचित अवधि के अंतर्गत उनको यह निश्चित करने का अवसर देना वांछनीय है कि वे नए राज्य का नागरिक होने की इच्छा रखते हैं या पूर्वर्ती राज्य का। अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग ने वर्ष 1999 में राज्य उत्तराधिकार के संबंध में नागरिकों की राष्ट्रीयता पर अंतिम प्रारूप लेखों को अंगीकृत किया जिसमें यह कहा गया कि प्रत्येक व्यक्ति को जो राज्य उत्तराधिकार के दिन पूर्ववर्ती राज्य के नागरिक थे उन्हें किसी ना किसी संबंधित राज्य (पूर्ववर्ती या उत्तराधिकारी राज्य) की राष्ट्रीयता प्राप्त करने का अधिकार होगा।

(10) व्यक्तिगत अधिकार

प्रभुत्व संपन्नता के परिवर्तन से प्राप्त व्यक्तिगत अधिकार समाप्त नहीं हो जाते। राज्यों के व्यवहार से यह प्रतीत होता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि में यह नियम बन गया है कि उत्तराधिकारी राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अर्जित व्यक्तिगत अधिकारों को जारी रखे। यूनाइटेड स्टेट्स बनाम पर्चमैन में मुख्य न्यायाधीश ने कहा है कि राष्ट्रों की आधुनिक प्रथा, जो विधि हो गई है तथा जिसे संपूर्ण सभ्य विश्व द्वारा अभिस्वीकार किया गया है तथा अनुभव किया गया है का उल्लंघन होगा, यदि व्यक्तिगत संपत्ति का साधारणतया समपहरण होता है तथा व्यक्तिगत अधिकारों को समाप्त किया जाता है। पोलैंड में जर्मन सेटलर्स वाद में स्थाई न्यायालय ने अपनी सलाहकारी राय में यह कहा था कि प्रभुत्व संपन्नता के परिवर्तन से अर्जित व्यक्तिगत अधिकार समाप्त नहीं हो जाते। अतः यह कहा जा सकता है कि राज्य उत्तराधिकार से प्राप्त व्यक्तिगत अधिकार प्रभावित नहीं होते।

राज्य उत्तराधिकार तथा भारत

भारत एवं पाकिस्तान भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के द्वारा 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुए। भारत में दो स्वतंत्र अधिराज्यों के सृजन से यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या ये दोनों राज्य ब्रिटिश भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप नए बने हैं या यह भारत के राज्य क्षेत्र से उस कतिपय भाग की विलग्नता थी, जिससे पाकिस्तान का गठन

टिप्पणी

हुआ। विभाजन तब माना जाता है जब राज्य कई टुकड़ों में विभाजित हो जाता है तथा उस राज्य क्षेत्र के अंतर्गत दो या अधिक नए राज्य बन जाते हैं, जिसका एक मुख्य उदाहरण सोवियत संघ का 12 गणतंत्रों द्वारा प्रतिस्थापन विभाजन है। इस प्रकार के मामलों में पूर्ववर्ती राज्य का अस्तित्व पूर्णता समाप्त हो जाता है। उसके व्यक्तित्व को दो या अधिक राज्यों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। विलग्नता के मामले में राज्य क्षेत्र के कतिपय भाग विद्यमान राज्य से स्वयं को पृथक कर लेते हैं तथा ऐसे पृथक्करण के उपरांत वे नए अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व को अर्जित कर लेते हैं। ऐसे मामलों में विद्यमान राज्य का व्यक्तित्व केवल उस सीमा तक प्रभावित होता है, जिस सीमा तक वह राज्य क्षेत्र को खोता है। विलग्नता का एक उदाहरण बांग्लादेश है। यदि ब्रिटिश भारत को विभाजन का एक मामला माना जाए तो इसका तात्पर्य यह होगा कि दोनों नए अधिराज्यों ने नया अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व अर्जित किया था तथा यदि इसे विलग्नता का मामला माना जाए तो यह कहा जाएगा कि केवल पाकिस्तान ने अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त किया, जबकि भारत के संबंध में यह माना जाएगा कि वह ब्रिटिश भारत के विधिक व्यक्तित्व को जारी रखे हुए है। ऐसी स्थिति में यदि इस को विभाजन माना जाता है तो उत्तराधिकार के नियम दोनों नए राज्यों पर लागू होंगे। किंतु यदि पाकिस्तान की भारत से विलग्नता मानी जाए तो उत्तराधिकार के नियम केवल पाकिस्तान पर ही लागू होंगे।

पाकिस्तान की स्थिति पर, कोई विवाद नहीं उठा तथा उसको नए राज्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया, किंतु भारत की परिस्थिति पर यह प्रश्न चिन्ह लगा कि क्या भारत ब्रिटिश भारत के व्यक्तित्व को जारी रखेगा। यदि भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 का विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि भारत ने नया अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व अर्जित किया था। यह अधिनियम भारत में दो स्वतंत्र अधिराज्यों को स्थापित करने के लिए बनाया गया था। इस अधिनियम ने स्वयं ब्रिटिश भारत के राज्य क्षेत्र को दो नए अधिराज्यों में विभाजित कर दिया था। यह प्रावधान दो अधिराज्यों को समान आधार देकर बनाया गया था। ब्रिटिश भारत में दो अधिराज्यों की स्थापना स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि संपूर्ण राज्य क्षेत्र को दो नये अधिराज्यों में विभाजित किया गया था तथा अधिकारों, संपत्ति तथा दायित्वों का विभाजन और भारत तथा पाकिस्तान के मध्य अंतर्राष्ट्रीय संविदाओं एवं संधियों से उद्‌भूत अधिकार तथा कर्तव्य भी इस मत का समर्थन करते हैं। यदि यह पाकिस्तान की विलग्नता का मामला होता तो इनके विभाजन का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। किंतु यह ब्रिटिश भारत के विघटन का मामला था। अतः दोनों अधिराज्यों की अंतर्राष्ट्रीय बाध्यता को निर्धारित करने में राज्य उत्तराधिकार के सिद्धांत लागू होते हैं।

भारत की स्वतंत्रता के उपरांत कई राज्य क्षेत्रीय परिवर्तन हुए। उदाहरणार्थ चंद्र नगर, पांडिचेरी तथा भारत के अन्य फ्रांसीसी उपनिवेश फ्रांस द्वारा भारत को अध्यर्पित किए गए। सिक्किम का भारत में विलय हुआ। ये सभी राज्य उत्तराधिकार के मामले हैं। 8 अगस्त, 1949 को भूटान के साथ मैत्री संधि के माध्यम से भारत द्वारा भूटान पर संरक्षण प्राप्त करना भी आंशिक रूप से उत्तराधिकार का मामला है।

संविधान के प्रारंभ के तत्काल पूर्व बेरुबारी संघ संख्या 12 पश्चिम बंगाल प्रांत का भाग था। इसलिए भारतीय संविधान के अधीन इसे पश्चिम बंगाल राज्य में सम्मिलित किया गया था। किंतु 1952 में पाकिस्तान ने तर्क दिया कि बेरुबारी संघ को वास्तव में

टिप्पणी

उस समय के पूर्व पाकिस्तान का भाग होना चाहिए। इस विवाद के निराकरण हेतु 10 सितंबर, 1958 को भारत तथा पाकिस्तान के प्रधानमंत्रियों के मध्य संविदा किया गया। इस संविदा के अधीन बेरुबारी संघ संख्या 12 को इस प्रकार विभाजित किया जाना था कि क्षेत्र के आधे भाग को पाकिस्तान को दिया जाए तथा भारत से संलग्न अन्य क्षेत्र को भारत द्वारा प्रतिधारित किया जाए। तदनुसार, नियत तिथि से संविदा को प्रभावी करने के लिए भारतीय संविधान में 28 दिसंबर, 1960 को संविधान 9वां संशोधन अधिनियम 1960 द्वारा संशोधन किया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान की प्रथम अनुसूची में संशोधन किया गया तथा पश्चिम बंगाल के क्षेत्र को कम कर दिया गया। किंतु अंत में क्षेत्र के विनिमय से संबंधित उक्त संशोधन इस तथ्य के कारण प्रवर्तित नहीं हुआ क्योंकि उसमें कोई नियत तिथि अंकित नहीं थी। अतः संविधान से संलग्न प्रथम अनुसूची अपरिवर्तनीय रही। संशोधन के बाद अध्यर्पण को रोक दिया गया, क्योंकि इसे भारतीय न्यायालय के समक्ष इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि भारत द्वारा राज्य क्षेत्रों का अध्यर्पण अवैध अंतरण होगा। किंतु राम किशोर सेन एवं अन्य बनाम भारत संघ में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय लिया गया कि 9वां संशोधन अधिनियम के तात्विक प्रावधानों को कार्यान्वित करने का भारत संघ का प्रयास पूर्णतः वैध तथा न्यायोचित है। संविदा को कार्यान्वित किए जा सकने के पहले ही पूर्वी पाकिस्तान बांग्लादेश के नाम से 1971 में प्रभुत्व संपन्न प्रजातांत्रिक गणतंत्र बन गया। क्योंकि उक्त राज्य क्षेत्रों का अंतरण ना तो विधितः तथा ना ही वस्तुतः किया गया था। अतः बेरुबारी के अध्यर्पण को राज्य उत्तराधिकार का मामला नहीं माना जा सकता। 9वें संशोधन को परिवर्तित नहीं किया गया। भारत सिंह एवं अन्य बनाम सुकुमार सेन गुप्ता एवं अंत में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया था, कि संविधान का 9वां संशोधन अपालित नियम (Dead Letter) रह गया है तथा प्रवर्तित नहीं किया गया।

बाद में, भारत ने 16 मई, 1974 को बांग्लादेश के साथ एक संविदा किया जिस पर भारत–बांग्लादेश के प्रधानमंत्रियों द्वारा हस्ताक्षर किए गए। इस संविदा के द्वारा बेरुबारी संघ संख्या 12 की सीमा को सम्मिलित करके दोनों देशों के मध्य भू–राज्य क्षेत्र को सीमांकित किया गया। नए संविदा के अधीन 1958 के संविदा के प्रावधानों को मूल रूप से परिवर्तित कर दिया गया। संविदा के अनुच्छेद–1 के अनुसार संधि के अनुसमर्थन के बाद भारत–दक्षिण बेरुबारी संघ संख्या 12 के दक्षिणी भाग के आधे हिस्से को तथा संलग्न अंतः क्षेत्र को प्रतिधारित करेगा। यह प्रावधान स्पष्टतया यह दर्शित करता है कि बेरुबारी संघ संख्या 12 भारत के अविभाज्य अंग के रूप में भारत में बना रहेगा, सिवा बांग्लादेश तथा दहाग्राम एवं अंगारपोट्टा के अंतःक्षेत्र के मध्य गलियारा प्रमाणित होने वाली छोटी पट्टी के, जिसे बांग्लादेश द्वारा प्रतिधारित किया जाएगा। पुनः यह प्रावधान किया गया था कि भारत, बांग्लादेश के दाहाग्राम तथा पानबारी मौजा को जोड़ने के लिए तीन बीघा के लगभग क्षेत्र को बांग्लादेश को शाश्वत पट्टे पर देगा। संविदा की प्रस्तावना अभिव्यक्त रूप से अधिकथित करती है कि संविदा भारत–बांग्लादेश के मध्य भू–राज्य क्षेत्र के सीमांकन को पूर्ण करने के लिए किया जा रहा है। अक्टूबर, 1982 में भारत तथा बांग्लादेश की सरकारों के मध्य पत्रों के आदान–प्रदान द्वारा 1974 के संविधान के अनुच्छेद 1 के मद 14 में शाश्वत पट्टा को स्पष्ट करने के लिए समझौता हुआ। इस समझौते को तीन बीघा के स्थाई पट्टे के रूप

में वर्णित किया गया। 1974 तथा 1982 की संविदा से यह स्पष्ट होता है कि बंगलादेश को भारतीय राज्य क्षेत्रों का अध्यर्पण नहीं हुआ है। जहां तक तीन बीघा के पट्टे का संबंध है, वहां यहां तक स्वीकार किया जाता है कि बंगलादेश को दहाग्राम तथा अंगारपोट्टा पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए उसे समर्थ बनाने हेतु स्थाई पट्टे को स्वीकार किया गया है। इसके उपरांत भी पट्टा कर क्षेत्र की प्रभुत्व संपन्नता भारत में निहित होगी। किंतु बांग्लादेश का शाश्वत में उसे पट्टे पर दिए गए क्षेत्र पर बेरोकटोक कब्जा तथा प्रयोग रहेगा। यह अधिकार पुलिस, अर्धसैनिक तथा सैनिक कर्मचारियों को सम्मिलित करके बांग्लादेश के नागरिकों को प्राप्त होगा। जो बिना पार–पत्र (Passport) या व्यक्तिगत अभिलेखों के और हथियारों को सम्मिलित किए बिना आपूर्ति तथा उपकरण के साथ पट्टाकृत क्षेत्र में आने जाने के अधिकारी होंगे। पुनः सीमा शुल्कों तथा अन्य सामान कर या शुल्क की अदायगी के बिना उस क्षेत्र पर या से समान के लाने तथा ले जाने के अधिकार संविदा द्वारा प्रदान किए गए हैं।

भारत संघ एवं अन्य बनाम सुकुमार सेन गुप्ता एवं अन्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने इसी प्रकार का निर्णय दिया था। मुख्य न्यायाधीश सब्यसाची मुखर्जी ने निर्णय दिया था कि बेरुबारी संघ संख्या 12 को बांग्लादेश को अंतरित नहीं किया गया है। क्योंकि तीन बीघे की प्रभुत्व संपन्नता को प्रतिस्थापित नहीं किया गया है। अतः इसे राज्य उत्तराधिकार का मामला नहीं माना जाएगा।

जम्मू एवं कश्मीर का मामला

भारतीय प्रायद्वीप में 15 अगस्त, 1947 के पूर्व ब्रिटिश भारत के अतिरिक्त कई भारतीय राज्य प्रिंसली स्टेट विद्यमान थे। ये राज्य आकार, प्रस्तुति और स्वायत्तता की मात्रा में अत्यधिक भिन्न थे। किंतु वे चाहे जितने छोटे थे पर ब्रिटिश भारत के भाग नहीं थे। जम्मू तथा कश्मीर राज्य भी ऐसे राज्यों में से एक था। प्रारंभ में ईस्ट इंडिया कंपनी इंग्लैंड में निगमित गैर सरकारी व्यापारिक उपक्रम ने समानता के आधार पर इन राज्यों के शासकों से संधि की थी। कंपनी इन पर किसी सर्वोच्चता या प्राधिकार का दावा नहीं करती थी। भारतीय गवर्नर जनरल लॉर्ड वेलेजली द्वारा प्रारंभ की गई सहायक प्रणाली और संधि ब्रिटिश सरकार के साथ अधीनस्थ सहकारिता में कार्य करने के लिए तथा उसकी सर्वोच्चता को अभिस्वीकार करने के लिए इन राज्यों के शासकों पर आरोपित की गयी।

ब्रिटेन की संसद द्वारा 1858 में भारत सरकार अधिनियम पारित किया गया, जिसको सामान्य रूप से भारत की अपेक्षाकृत बेहतर सरकार के लिए अधिनियम के रूप में जाना जाता है, जिसमें घोषणा की गई थी कि अब से भारत साम्राज्ञी द्वारा तथा उनके नाम से शासित किया जाएगा। अधिनियम में भारतीय राज्यों के शासकों के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा की गई संधियों के संबंध में अनुच्छेद 67 के अधीन प्रावधान किया गया था, जो अन्य बातों के अतिरिक्त यह अधिकथित करता था कि उक्त कंपनी द्वारा की गई सभी संधियां हर मेजेस्टी पर आबद्धकर होंगी तथा इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व उक्त कंपनी द्वारा की गई, उपगत की गई या निष्पादित की गई सभी संविदा, प्रसंविदा, दायित्व तथा व्यवस्था उसी रूप में राज्य परिषद के सचिव के द्वारा तथा उनके विरुद्ध प्रवर्तित की जा सकेगी।

टिप्पणी

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के द्वारा भारत तथा पाकिस्तान स्वतंत्र गणराज्य बने। जिस की धारा 7 के परिच्छेद 1(ख) के अधीन यह प्रावधान किया गया था कि भारतीय राज्यों पर हर मैजेस्टी की संप्रभुता 15 अगस्त, 1947 से समाप्त हो जाएगी। सम्राट तथा भारतीय राज्यों के शासकों के मध्य सभी संधियां तथा संविदा, अनुदान, प्रथा या अन्यथा के माध्यम से सम्राट द्वारा प्रयोग योग्य सभी शक्तियां, अधिकार, प्राधिकार इसके साथ समाप्त हो गए। इसका अर्थ यह है कि सम्राट का भारतीय राज्यों से कोई संबंध नहीं होगा। इस प्रकार, भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम ने राज्यों को सम्राट के प्रति उनकी सभी बाध्यताओं से मुक्त कर दिया। राज्य तकनीकी रूप से तथा वैधानिक रूप से पूर्णरूपेण स्वतंत्र हो गए। 15 अगस्त, 1947 के पूर्व सभी राज्य अंगीकार पत्र पर हस्ताक्षर करके भारत या पाकिस्तान के साथ विलीन हो गए। हैदराबाद, जम्मू एवं कश्मीर तथा जूनागढ़ मात्र ऐसे राज्य थे जिन्होंने 15 अगस्त, 1947 तक अंगीकार पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किए थे।

क्योंकि जम्मू और कश्मीर के शासक भारत या पाकिस्तान में विलीन नहीं हुए, इसलिए राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि में अन्य प्रभुत्व संपन्न राज्यों की तरह स्वतंत्रता प्रभुत्व संपन्न हो गया। राज्य अपने आंतरिक तथा बाह्य मामलों का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र था। राज्य के महाराजा न केवल गणराज्यों में से किसी में अधिमिलन करने के लिए स्वतंत्र थे, अपितु उन्हें स्वतंत्र बने रहने का विकल्प भी था।

पाकिस्तान ने अपने साथ राज्य को विलय करने के लिए दबाव डालने के प्रयास में कश्मीर राज्य पर आक्रमण कर दिया, जो 22 अक्टूबर, 1947 को प्रारंभ हुआ। यद्यपि आक्रमण मुख्यतः पुंछ क्षेत्र के पूर्व सैनिक और अधिकारियों द्वारा किया गया था किंतु इसे जम्मू एवं कश्मीर राज्य के बाहर से अर्थात पाकिस्तान के उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत से किया गया और संचालित किया गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि आक्रमणकारी जम्मू प्रांत के बहुत अधिक भाग को, विशेषरूप से, पुंछ के व्यापक भाग को अपने अधिकार में लेने में सफल रहे, जिस को बाद में आजाद कश्मीर के रूप में घोषित किया गया।

महाराजा ने 24 अक्टूबर, 1947 को सैन्य सहायता के लिए भारत सरकार से अनुरोध किया। भारत ने उस समय तक सहायता प्रदान करने से इनकार किया जब तक अंगीकारपत्र पर हस्ताक्षर नहीं हो जाता। महाराजा ने 26 अक्टूबर, 1947 को अंगीकारपत्र पर हस्ताक्षर किए तथा उसे 27 अक्टूबर, 1947 को स्वीकार किया गया। अंगीकारपत्र के बंधनों द्वारा राज्य की ओर से महाराजा तीन विषयों अर्थात प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों तथा संचार पर भारतीय गणराज्य में विलीन हुए। भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 6 के साथ पठित अभिलेख राज्य की अवशिष्ट प्रभुत्व संपन्नता को पूर्णतया प्रभावित छोड़ा। इस प्रकार राज्य के महाराजा, अंगीकारपत्र के निष्पादन के बाद भी सभी क्षेत्रों में राज्य के प्रमुख रूप से सभी अधिकारों और शक्तियों का प्रयोग करते थे। जो अंगीकारपत्र में अंतर्विष्ट शर्तों के अधीन था। अंगीकारपत्र पर हस्ताक्षर से न तो राज्य पर महाराजा का प्राधिकार समाप्त हुआ और न ही राज्य का व्यक्तित्व समाप्त हुआ। भारत में राज्य के अधिमिलन को इस तथ्य की दृष्टि में आंशिक उत्तराधिकार कहा जा सकता है कि राज्य की प्रभुत्व संपन्नता का कुछ भाग भारतीय अधिराज्य के अधिकार में आया। राज्य अधिकार पत्र में निर्दिष्ट क्षेत्रों अर्थात प्रतिरक्षा,

विदेशी मामले और संचार के अतिरिक्त सभी क्षेत्रों में स्वतंत्र बना रहा। अतः जम्मू–कश्मीर ने अंगीकारपत्र पर हस्ताक्षर करने के उपरांत भी सीमित प्रभुत्व संपन्नता को बनाए रखा।

पाकिस्तान ने भारत में राज्य के विलय को मान्यता नहीं दी। पाकिस्तान ने भारत पर कपट और हिंसा द्वारा विलय करने का आरोप लगाया। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री ने 4 नवंबर, 1947 को लाहौर से प्रसारण में घोषणा की कि कश्मीर का विलय पाकिस्तान की सुरक्षा के लिए व्यापक धमकी है। हम इस विलय को मान्यता नहीं देते। यह तर्क ना केवल गलत है बल्कि आधारहीन है। तथ्य यह है कि महाराजा को पाकिस्तान द्वारा सृजित और दुष्प्रेरित परिस्थितियों के बल के अतिरिक्त भारतीय अधिराज्य में राज्य के विलय के लिए किसी ने बाध्य नहीं किया था। विलय के अभिलेखों पर महाराज द्वारा अपनी इच्छा अनुसार हस्ताक्षर किए गए थे। एक भी भारतीय सैनिक विलय के पूर्व आक्रमणकारियों के विरुद्ध लड़ने के लिए नहीं भेजा गया था। यदि राज्य और महाराज के विरुद्ध किसी हिंसा का प्रयोग किया गया था तो यह वास्तव में पाकिस्तान द्वारा था ना कि भारत द्वारा।

टिप्पणी

जब भारत का संविधान प्रवर्तित हुआ तब जम्मू एवं कश्मीर राज्य के विलय को अन्य विषयों पर भारतीय गणराज्य में नहीं शामिल किया गया था। भारत सरकार ने यह प्रतिबद्धता व्यक्त की थी कि जम्मू एवं कश्मीर राज्य के व्यक्ति अपने संविधान सभा के द्वारा राज्य के आंतरिक संविधान तथा राज्य पर भारत संघ की अधिकारिता की प्रकृति एवं विस्तार का अवधारण करेंगे। जब तक राज्य की संविधान सभा का विनिश्चय नहीं किया जाता तब तक भारत का संविधान राज्य के संबंध में अंतरिम व्यवस्था कर सकता था। सरदार पटेल, प्रधानमंत्री तथा राज्य मंत्री ने संविधान सभा के समक्ष अधिकथित किया था कि विशेष समस्याओं को ध्यान में रखते हुए जिसका जम्मू एवं कश्मीर सरकार सामना कर रही है हमने विद्यमान आधार पर भारत संघ के साथ राज्य के संबंध को जारी रखने के लिए विशेष प्रावधान किए है।

गोपाल स्वामी आयंगर ने 17 अक्टूबर, 1949 को संविधान सभा में विधेयक के अनुच्छेद 306 (क) पर, जो संविधान के अनुच्छेद 370 के अनुरूप है, भाषण दिया कि कश्मीर की परिस्थितियां विशेष हैं तथा विशेष कार्यवाही की अपेक्षा है। विशेष परिस्थिति में आज इनके प्रति उनके द्वारा जो निर्देश दिए गए थे वह हैंः– (1) जम्मू एवं कश्मीर के भीतर युद्ध जारी था; (2) वर्ष के प्रारंभ में युद्ध समाप्ति पर समझौता हुआ था तथा युद्ध बंदी अब भी थी; (3) राज्य की स्थिति अब भी असामान्य एवं असाधारण है; (4) राज्य का एक भाग अब भी विद्रोहियों तथा शत्रुओं के अधिकार में है; (5) जम्मू एवं कश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्र में लंबित है तथा यह कहना संभव नहीं है कि कब हम इस उलझन से मुक्त होंगे; (6) भारत सरकार ने कश्मीर के व्यक्तियों के प्रति कथित संबंधों में प्रतिबद्धता व्यक्त की है जिसमें यह वचन सम्मिलित है कि राज्य के व्यक्तियों को स्वयं यह विनिश्चय करने का अवसर दिया जाएगा कि क्या वे गणतंत्र के साथ रहेंगे या उससे बाहर जाने की इच्छा व्यक्त करेंगे; (7) संविधान सभा के अभिलेख के माध्यम अभिव्यक्त लोगों की इच्छा, राज्य के संविधान और राज्य परिषद की अधिकारिता के क्षेत्र को अवधारित करेगी।

टिप्पणी

उस समय गोपाल स्वामी आयंगर ने यह आशा व्यक्त की थी कि समय के साथ जम्मू एवं कश्मीर उसी प्रकार के एकीकरण के लिए परिपक्व हो जाएगा जैसा कि अन्य राज्यों के मामले में किया गया है। जम्मू एवं कश्मीर राज्य के राज्य क्षेत्र को भारतीय संविधान की प्रथम अनुसूची के भाग (ख) में विनिर्दिष्ट किया गया, जिसके द्वारा राज्य भारत संघ की इकाई बना। राज्य की विशेष परिस्थिति संविधान निर्माताओं को भारतीय संविधान के, जो 26 जनवरी, 1950 से प्रवर्तित हुआ था, अनुच्छेद 370 के अधीन जम्मू एवं कश्मीर राज्य के लिए विशेष प्रावधान करने के लिए उत्प्रेरित किया। अनुच्छेद तब तक प्रवर्तन में बना रहेगा जब तक राज्य के विधान सभा द्वारा यह अनुशंसा नहीं की जाती कि अनुच्छेद को समाप्त किया जाना चाहिए तथा ऐसी अनुशंसा पर राष्ट्रपति इस प्रभाव की सार्वजनिक अधिसूचना जारी करेंगे जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 370 के परिच्छेद 3 के अधीन अधिकथित है।

कश्मीर राज्य की विधानसभा राज्य के लिए संविधान निर्माण करने हेतु 5 नवंबर, 1951 को आहूत की गई। विधानसभा राज्य के भविष्य का विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र थी। वह विनिश्चय कर सकती थी कि क्या राज्य प्रभुत्व संपन्न तथा स्वतंत्र राज्य होगा या भारत संघ का एक भाग होगा। विधानसभा ने 29 सितंबर, 1956 से 19 नवंबर, 1956 तक आयोजित 12वीं बैठक में संविधान निर्माण का कार्य पूर्ण कर लिया। संविधान सभा को 25 जनवरी, 1957 को भंग कर दिया गया। भंग होने के पूर्व संविधान सभा ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 370 में संशोधन या उसके समाप्त करने की अनुशंसा राष्ट्रपति से नहीं की थी और इसी आधार पर जम्मू एवं कश्मीर हाईकोर्ट ने यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 370 जो पहले तत्कालिक प्रावधान था अब स्थाई प्रावधान हो गया है तथा अब इस प्रावधान को ना तो समाप्त किया जा सकता है तथा ना ही इस में कोई संशोधन किया जा सकता है। सुप्रीम कोर्ट ने भी स्टेट बैंक ऑफ इंडिया बनाम संतोष गुप्ता बाद में इस बात का उल्लेख किया कि संविधान सभा के भंग होने के बाद अनुच्छेद 370 को खत्म नहीं किया जा सकता। सुप्रीम कोर्ट ने 2018 में इस बात को पुनः दोहराया कि अनुच्छेद 370 जो जम्मू व कश्मीर को विशेष स्थिति प्रदान करती है उसको समाप्त नहीं किया जा सकता।

व्यापक विचार–विमर्श के उपरांत संविधान को 17 नवंबर, 1956 को अनुमोदित तथा अंगीकार किया गया। धारा 1 से 8 तथा 158 तत्काल प्रवर्तित हुई, जो राज्य के राज्य क्षेत्र, स्थाई निवासियों तथा भारत संघ के साथ राज्य के संबंध के लिए प्रावधान करती थी। शेष धाराएं 26 नवंबर, 1957 को प्रवर्तित की गईं। संविधान अनुच्छेद–3 के अधीन प्रावधान करता है कि जम्मू एवं कश्मीर राज्य भारत का अभिन्न अंग है तथा रहेगा। संविधान सभा को भारत के संविधान के अनुच्छेद 370 में संशोधन या उसके समाप्त करने के लिए भारत के राष्ट्रपति को अनुशंसा करने का भी अधिकार था। यह निर्दिष्ट करता है कि राज्य भारत का अभिन्न अंग हो गया था। इस तथ्य के कारण जम्मू एवं कश्मीर ने अपने अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व को खो दिया। इसके उपरांत भी राज्य की कार्यपालिका और विधायी शक्ति का विस्तार उन सभी मामलों तक है सिवा उनके, जिनके संबंध में संसद को भारतीय संविधान के प्रावधानों के अधीन राज्य के लिए नियम निर्मित करने की शक्ति है।

बाद में भारत में राज्य पुनर्गठन अधिनियम अधिनियमित किया गया। जिसके फलस्वरूप संविधान 7वां संशोधन अधिनियम 1956 अधिनियमित किया गया। इस अधिनियम द्वारा प्रथम अनुसूची प्रतिस्थापित की गई। तब से भारत के राज्यों का संवर्ग राज्यों तथा संघ राज्य क्षेत्रों में विनिश्चित किया गया। जम्मू एवं कश्मीर को राज्य के संवर्ग में रखा गया तथा भारतीय संविधान की प्रथम अनुसूची में प्रविष्टि संख्या 15 में दर्शित किया गया।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

9. राज्य उत्तराधिकार दो प्रकार का हो सकता है : ..... तथा आंशिक उत्तराधिकार।

   (क) नैसर्गिक उत्तराधिकार (ख) पारंपरिक उत्तराधिकार

   (ग) सार्वभौमिक उत्तराधिकार (घ) वैयक्तिक उत्तराधिकार

10. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम किस सन से संबंधित है?

   (क) 1857 (ख) 1947

   (ग) 1950 (घ) 2014

2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ग)
3. (क)
4. (ग)
5. (क)
6. (ख)
7. (क)
8. (ग)
9. (ग)
10. (ख)

2.8 सारांश

अंतर्राष्ट्रीय विधि सदैव इस बात पर बल देती है कि राज्य का राज्य क्षेत्र पर अधिकार तथा नियंत्रण होना चाहिए, किंतु विशेष मामलों में यदि कोई राज्य कुछ अवधि के लिए राज्य क्षेत्र पर अपना नियंत्रण खो देता है फिर भी उसे राज्य क्षेत्र पर कब्जा धारण करने वाला ही माना जाएगा। जिस प्रकार, यदि राज्य के राज्य क्षेत्र का विदेशी राज्य द्वारा बलपूर्वक अधिग्रहण कर लिया गया हो, तो अधिभोगी, अधिग्रहित राज्य क्षेत्र को अपने

टिप्पणी

राज्य क्षेत्र के रूप में मानने का अधिकारी नहीं होता। बेदखल किया गया राज्य अधिभोगी को अप्रदत सभी विधिक अधिकारों को धारण करता है।

सामान्यतया अंतर्राष्ट्रीय विधि में यह माना जाता है कि संरक्षित राज्य का एक तथा एक समान रूप नहीं होता तथा प्रत्येक का निर्धारण संधियों के आधार पर अलग अलग किया जाना चाहिए। किंतु, प्रत्येक मामले में संरक्षक राज्य सामान्यतः संरक्षित राज्य के प्रभुत्व संपन्न अधिकारों में कुछ परिवर्तन करता है। यह संरक्षक राज्य को ना केवल अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के आचरण को बल्कि संरक्षित राज्यों के घरेलू मामलों के विनियमन से संबंधित विभिन्न अधिकारों जैसे सैनिक कमान, न्यास प्रशासन, करो के उद्ग्रहन इत्यादि को भी प्रदान करता है।

"संधियां तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्य स्रोत" पद संयुक्त राष्ट्र चार्टर की उद्देशिका से ग्रहण किए गए हैं। प्रथम पद अंतर्राष्ट्रीय विधि के मूल सिद्धांत "संविदा सर्वथा पालनीय" के सिद्धांत पर आधारित है। अंतिम पद ट्रीटमेंट ऑफ पोलिश नेशनल एंड अदर परसन ऑफ पोलिश ओरिजन में स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा दिए गए सलाहकारी राय के सार को उद्धत करता है।

जब राज्य में इन तत्वों के अस्तित्व को अन्य विद्यमान राज्यों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, तब इसे राज्य की मान्यता कहा जाता है। अतः मान्यता एक ऐसी औपचारिक अभिस्वीकृति है, जो अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के अन्य सदस्यों द्वारा एक नए राज्य को प्रदान की जाती है। ओपन हाइम के अनुसार मान्यता की अभिस्वीकृति यह सिद्ध करती है कि विद्यमान राज्यों के विचार में नया राज्य अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्य राज्यत्व की शर्तों को पूरा करता है ताकि मान्यता प्रदान करने वाले राज्य के विचार में नए राज्य को उन अधिकारों तथा कर्तव्य को धारण करने वाले अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति के रूप में माना जा सकता है, जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय विधि राज्यों को प्रदान करती है।

राज्यों की विधिक समानता का अर्थ समान विधिक क्षमता है–दूसरे शब्दों में, विधिक व्यक्तियों के बीच विधिक भेदों का कोई अस्तित्व नहीं है। सभी विषय अधिकारों और कर्तव्यों का पालन करने के लिए एक ही क्षमता का आनंद लेते हैं जो किसी दिए गए विधिक आदेश को पूरा करता है। जबकि विधिक क्षमता की अवधारणा प्रत्येक विधिक समुदाय की है और इसलिए राज्यों के समाज के लिए महत्वपूर्ण महत्व के रूप में, यह समानता की अवधारणा के लिए शायद ही कोई प्रासंगिकता है। जैसा कि केल्सन बताते हैं कि, "समान शर्तों के तहत राज्यों के समान कर्तव्य और समान अधिकार हैं" सभी प्रकार की असमानताओं को कवर कर सकते हैं क्योंकि सब कुछ "समान परिस्थितियों" के अर्थ पर निर्भर करता है। एक विशाल और एक बौना–एक बार संदर्भित करने के लिए।

एक राज्य अपने राज्य क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के ऊपर राज्य क्षेत्रीय सर्वोच्चता के सिद्धांत पर अधिकारिता धारण करता है तथा अपने नागरिकों पर, चाहे वह कहीं भी रहे, व्यक्तिगत सर्वोच्चता के सिद्धांत पर अधिकारिता का प्रयोग करता है। के0 टी0 एम0 एस0 अब्दुल कादिर एवं अन्य बनाम भारत संघ, ए0 आई0 आर0 1977 मद्रास पृष्ठ 396 में मद्रास उच्च न्यायालय ने उचित रूप से निर्णय दिया है कि यद्यपि राज्य की अधिकारिता मुख्य रूप से राज्य क्षेत्रीय है, फिर भी इसकी अधिकारिता का

विस्तार इसके राज्य क्षेत्रों के बाहर भी इसके नागरिकों द्वारा किए गए मामलों या कार्यों के संबंध में हो सकता है। कभी–कभी दो राज्यों की अधिकारिता के अधीन आने वाले अन्य देशों के संबंध में यह समस्या उत्पन्न होती है कि यदि पक्षकारों द्वारा भिन्न–भिन्न दावे किए जाते हैं, तो किस राज्य को वाद का निर्णय करना चाहिए।

टिप्पणी

खुले समुद्र पर समुद्री ध्वज धारण करने वाले राज्य की अधिकारिता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि कतिपय विधि व्यवस्था राष्ट्रीय विधियों के नियम के साथ अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के सहयोग से सृजित की गई है। खुले समुद्र पर अधिकारिता का प्रयोग करते समय दो बातों पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है। प्रथम, राज्य की अधिकारिता को इस प्रकार खुले समुद्र पर अधिकारिता के रूप में नहीं मानना चाहिए तथा इसका विस्तार केवल खुले समुद्र पर जलयानो, व्यक्तियों तथा सामानो तक ही होता है, तथा दूसरे, अधिकारिता मुख्य रूप से, किंतु अनन्य रूप से नहीं, ध्वज राज्य में निहित होती है जिसके अधीन जलयान जल यात्रा करते हैं। यह निहित है कि विशेष मामलों में राज्य सभी समुद्री राष्ट्रों के हित में विदेशी जवानों पर अधिकारिता का प्रयोग कर सकते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तियों का उत्तराधिकार तब होता है जब एक या अधिक अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति अन्य अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति की स्थिति में कतिपय परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप उसका स्थान ग्रहण कर लेते हैं। वियना में संधि के संबंध में अभिसमय 1978 ने भी राज्य उत्तराधिकार को एक राज्य का दूसरे राज्य द्वारा राज्य क्षेत्र के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के उत्तरदायित्वों को प्रतिस्थापन के रूप में परिभाषित किया है। उत्तराधिकार का मामला उसी समय उत्पन्न होता है जब अंतर्राष्ट्रीय विधि के एक राज्य के अधिकार और दायित्व दूसरे के पास चले जाते हैं। यह परिभाषा अधिदेश तथा न्यास क्षेत्र के उत्तराधिकार को छोड़कर राज्य उत्तराधिकारों के सभी मामलों में लागू होती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यदि देश तथा न्यास के राज्य क्षेत्र में प्रभुत्व संपन्नता नहीं बल्कि एक विशेष प्रकार की विधिक क्षमता को प्रतिस्थापित किया जाता है।

2.9 मुख्य शब्दावली

- **बाध्यकारी** : विवश करने वाली
- **स्वायत्तता** : स्वयं के नियमों के अनुसार चलने की स्वतंत्रता
- **अविभाज्य** : जो विभाजित न हो
- **तटस्थीकृतप्रास्थिति** : निष्पक्षता–अप्रतिभागिताजनित स्थिति
- **विधिशास्त्री** : कानून के विद्वान
- **विधिक** : विधान/नियम से संबंधित
- **मैत्रीपूर्ण** : मित्र–भावना से युक्त
- **अवधारणा** : विचारधारा/संकल्पना
- **व्यवधान** : बाधा, अवरोध, रुकावट

2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

टिप्पणी

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. राज्य के अनिवार्य घटक कौन–कौन हैं?
2. राज्यों के आधारभूत प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
3. सरकार की मान्यता से क्या तात्पर्य है?
4. टोबर और एस्ट्रेडा सिद्धांत क्या है?
5. राज्यों की समानता का क्या आशय है?
6. दांडिक अधिकारिता के सिद्धांत बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. राज्यों के विविध प्रकारों की विवेचना कीजिए।
2. राज्यों के अधिकारों एवं कर्तव्यों पर प्रकाश डालिए।
3. अंतर्राष्ट्रीय विधि में सरकार की मान्यता से क्या तात्पर्य है? विस्तृत विवेचन कीजिए।
4. राज्यों की समानता से आप क्या समझते हैं? सोदाहरण लिखिए।
5. राज्यों के अधिकार क्षेत्र का विश्लेषण कीजिए।
6. राज्य अधिकारिता के स्वरूप का वर्णन कीजिए।

2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अन्तर्राष्ट्रीय विधि और मानवाधिकार–के.सी. जोशी, ईस्टर्न बुक कंपनी
2. Dr. S.K. Kapoor: Human Rights & International Law (Hindi)
3. R. Falk: International Law: A Contemporary Perspective
4. R.P. Anand: Law of the Sea,. Caracas and beyond (1978)
5. O.P. Malhotra: Law of industrial Disputes (1999)
6. Oppenheim: International Law (Volume I, Peace)
7. S. K. Kapoor: International Law
8. M.P. Tandon: International Law (English & Hindi)
9. Robertson, A.H.: Human Rights in the World
10. S.C. Khare: Human Rights in United Nations
11. D.D. Basu: Human Rights in Constitutional Law
12. Nagendra Singh: Protection of Human Rights.

इकाई 3 हस्तक्षेप

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 हस्तक्षेप : प्रकार एवं मानवीय आधार
  3.2.1 हस्तक्षेप के प्रकार
  3.2.2 मानवीय आधार पर हस्तक्षेप
3.3 राज्य का उत्तरदायित्व
  3.3.1 राज्य उत्तरदायित्व : प्रविधि एवं प्रकार
  3.3.2 राज्य उत्तरदायित्व के परिणाम
3.4 राज्य क्षेत्र का अधिग्रहण तथा हानि
  3.4.1 राज्य क्षेत्रअर्जन प्रक्रिया
  3.4.2 राज्य क्षेत्रअधिग्रहण से हानि
3.5 खुला समुद्र
  3.5.1 खुले समुद्र की स्वतंत्रताएं
  3.5.2 अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तल क्षेत्र/प्राधिकरण
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

3.0 परिचय

सभी राज्यों को अपनी इच्छा अनुसार अपने आंतरिक तथा बाह्य मामलों का प्रबंध करने का अधिकार है। यह अधिकार राज्य प्रभुत्व संपन्नता के सिद्धांत के अनुसार प्रदान किया गया है। अधिकारों तथा कर्तव्य का पारस्परिक संबंध होता है। अतः इस अधिकार के तत्समान दूसरे सभी राज्यों का यह कर्तव्य है कि वे अन्य राज्यों के मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें। दूसरे राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप न करने का सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय विधि का एक स्थापित सिद्धांत है। जब हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत का उल्लंघन किया जाता है, अर्थात जब एक राज्य दूसरे राज्य के मामलों में हस्तक्षेप करता है तब अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन इसे हस्तक्षेप कहा जाता है। ओपनहाइम के अनुसार, जब एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य के मामलों में बलपूर्वक तथा अधिनायकवादी हस्तक्षेप निश्चित आचरण या परिणाम आरोपित करने के लिए किया जाता है तब उसे हस्तक्षेप कहा जाता है।

हस्तक्षेप सदैव बलपूर्वक या अधिनायकवादी होता है जिसका तात्पर्य है एक राज्य के द्वारा दूसरे राज्य की सम्मति के बिना हस्तक्षेप करना। पूर्ण हस्तक्षेप सदैव अधिनायकवादी हस्तक्षेप होता है। राज्य कई ऐसे कार्य करते हैं जो दूसरे राज्य के मामलों को प्रभावित करते हैं। किंतु सभी कार्यों को हस्तक्षेप नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए सरकार को मान्यता प्रदान करना या न करना, अभ्यावेदन करना या

टिप्पणी

अभिकथित रूप से दोषपूर्ण कार्य के विरुद्ध प्रतिवाद करना आदि कार्यों को हस्तक्षेप नहीं माना जा सकता, क्योंकि वे बलपूर्वक या अधिनायकवादी नहीं होते। इसी प्रकार राज्य हस्तक्षेप का कार्य किए बिना (यद्यपि यह संधियों जैसे व्यापार तथा शुल्क पर सामान्य संविदा जो व्यापार की स्वतंत्रता में वृद्धि करती है के अधीन कुछ अन्य अंतर्राष्ट्रीय बाध्यता का उल्लंघन हो सकता है) अन्य राज्य से राजनयिक संबंध का विच्छेदन कर सकता है या उसको निर्यात करना बंद कर सकता है या अनुदान देना बंद कर सकता है या उसके उत्पादों का बहिष्कार कर सकता है। यद्यपि ये उपाय कम से कम अप्रत्यक्ष रूप से या आंशिक रूप से न केवल असंतोष प्रकट करने के लिए किए जाते हैं, अपितु राज्य को आचरण के विशिष्ट नियम को मानने या उसे रोकने के लिए भी किए जाते हैं। ऐसा दबाव अधिनायकवादी नहीं होता इसलिए इसे हस्तक्षेप नहीं कहा जा सकता।

हस्तक्षेप संबद्ध राज्य की बाह्य स्वतंत्रता या राज्य क्षेत्रीय या व्यक्तिगत सर्वोच्चता से संबंधित होता है। अतः हस्तक्षेप अन्य राज्य के आंतरिक या बाह्य मामले में किया जाता है तथा हस्तक्षेप उन मामलों को या तो प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। हस्तक्षेप का उद्देश्य हस्तक्षेप करने वाले राज्य की इच्छा अनुसार स्थिति को बनाए रखना है। जिस राज्य में हस्तक्षेप किया जाता है, उस राज्य को ऐसा कार्य करने के लिए विवश किया जाता है जिसे करने की वह इच्छा नहीं रखता या ऐसे कार्य को न करने के लिए विवश किया जाता है जिसे करने की वह इच्छा रखता है।

इस इकाई में हम हस्तक्षेप के प्रकार, इसकी न्यायसंगतता, प्रतिषेध, राज्य का उत्तरदायित्व, राज्यक्षेत्र का अधिग्रहण तथा खुले समुद्र संदर्भित तथ्यों की विवेचना करेंगे।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हस्तक्षेप के प्रकार एवं इसकी न्यायसंगतता को समझ पाएंगे;
- हस्तक्षेप पर प्रतिषेध का आकलन कर पाएंगे;
- राज्य के उत्तरदायित्व से अवगत हो पाएंगे;
- खुले समुद्र की स्वतंत्रताएं एवं अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तल क्षेत्र रेखांकित कर पाएंगे।

3.2 हस्तक्षेप : प्रकार एवं मानवीय आधार

जब एक राज्य अन्य राज्य पर हस्तक्षेप उसके अनुरोध पर या उस राज्य की सम्मति से करता है चाहे वह तदर्थ रूप से या संधि द्वारा अग्रिम में दी गई हो, तब इसे हस्तक्षेप नहीं कहा जाता। एक राज्य के द्वारा दूसरे राज्य से बहुधा सशस्त्र बलों या सैनिक उपकरणों की आपूर्ति के लिए सहायता का अनुरोध किया जाता है तथा तदनुसार उसे सहायता दी जाती है। जब 1957 में सुल्तान के अनुरोध पर मस्कट तथा ओमान की सहायता के लिए ब्रिटिश सेना गई थी या जब जॉर्डन तथा लेबनान में इन राज्यों के अनुरोध पर 1958 में ब्रिटिश तथा अमेरिकी सेना ने कार्यवाही की थी, या जब ब्रिटिश सेना ने 1964 में युगांडा, कीनिया तथा तंगानिका तथा 1965 में जांबिया की सहायता

की थी या वियतनाम के संघर्ष के समय जब अमेरिकी सेना ने वियतनाम के अनुरोध पर उसकी सहायता की थी या जब फ्रांसीसी सेना ने 1968 व 1969 में तथा पुनः 1983 में चाड से सहायता के अनुरोध पर व 1978 में जायरे के अनुरोध पर कार्यवाही की थी या जब 1982 में अमेरिकी, फ्रांसीसी व इटली की सेनाओं ने लेबनान के साथ संविदा के अनुसार कार्यवाही की थी तब इसे हस्तक्षेप नहीं माना गया था। इसी प्रकार, जब भारत ने श्रीलंका में विधि व्यवस्था की स्थिति की पुनर्स्थापना करने में सहायता करने के लिए भारतीय शांति संरक्षण बल भेजा था तथा जब 1988 में मालदीव में सहसा राज्य परिवर्तन की कार्यवाही किए जाने के प्रयास के उपरांत व्यवस्था की पुनर्स्थापना के लिए भारतीय सेना ने सहायता की थी तब इन कार्यवाहियों या मामलों को हस्तक्षेप नहीं माना गया था। ऐसी कार्यवाहियों या मामलों को अनुरोध पर हस्तक्षेप या आमंत्रण द्वारा हस्तक्षेप कहा जाता है। इन मामलों में हस्तक्षेप बलपूर्वक या अधिनायकवादी नहीं था।

टिप्पणी

यहां यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि हस्तक्षेप के लिए अनुरोध राज्य की सरकार द्वारा किया जाना चाहिए। यह इस तर्क पर आधारित है कि सरकार राज्य की अभिकर्ता होती है तथा इसलिए सरकार अपने राज्य के राज्य क्षेत्र में विदेशी सेनाओं को आमंत्रित करने के लिए सक्षम है। किंतु जो सरकार हस्तक्षेप के लिए अनुरोध करती है उसे ऐसा करने के लिए सक्षम होना चाहिए। हस्तक्षेप की वैधता का निर्धारण करने के लिए यह अति आवश्यक है। अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत उस सरकार द्वारा बाह्य सहायता का अनुरोध नहीं किया जा सकता जो व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व नहीं करती या व्यक्तियों के आज्ञा पालन पर नियंत्रण नहीं रखती। यह प्रस्थापना इस सिद्धांत पर आधारित है कि राज्य की सरकार की पहचान तथ्यात्मक मानक के आधार पर की जाती है न कि नैतिक या संवैधानिक मानक के आधार पर। इसका अर्थ यह है कि राज्य की वैध सरकार का प्रभावी नियंत्रण उस समय समाप्त हो गया समझा जा सकता है जब उसने व्यक्तियों का समर्थन खो दिया हो। उसके अनुरोध पर अन्य राज्यों द्वारा दी गई सहायता के आमंत्रण को हस्तक्षेप माना जाएगा।

3.2.1 हस्तक्षेप के प्रकार

हस्तक्षेप के प्रकार हो सकते हैं– सैन्य हस्तक्षेप, ध्वंसात्मक हस्तक्षेप, आर्थिक हस्तक्षेप या राजनीतिक हस्तक्षेप। सैन्य हस्तक्षेप सशस्त्र बलों के प्रयोग द्वारा किया जाता है। यह अन्य राज्य के राज्य क्षेत्र के सैनिक अधिग्रहण, नौसैनिक प्रदर्शन, नौसैनिक नाकाबंदी, अन्य राज्य या उसके नागरिकों की संपत्ति के अभिग्रहण, व्यापार प्रतिबंध, विदेशियों की गिरफ्तारी या विदेशी राजनयिकों के निष्कासन के रूप में हो सकता है। ध्वंसात्मक हस्तक्षेप एक राज्य द्वारा अपने प्रयोजनों के लिए दूसरे राज्य में विद्रोह संघर्ष को उकसाने के आशय से दुष्प्रचार या अन्य कार्यों को निश्चित करता है। व्यापार तथा नौ–परिवहन में हस्तक्षेप, स्थल तथा जल द्वारा पहुंच में रुकावट करना आर्थिक हस्तक्षेप के उदाहरण हैं। राजनयिक हस्तक्षेप धमकी भरी सूचना की संसूचना सम्मिलित करता है, जिसमें सैनिक या अन्य प्रपीड़क कार्यवाही का संभावित प्रयोग भी सम्मिलित है।

किसी राज्य द्वारा अन्य राज्य के संबंध में विदेशी प्रसारण में किसी विचार को व्यक्त करने की कार्यवाही को भी हस्तक्षेप माना गया है यदि उस विचार को दूसरे राज्यों में प्रसारित किया जाता है। यह उस अर्थ में हस्तक्षेप नहीं माना जा सकता जिस में हस्तक्षेप शब्द का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय विधि में किया जाता है।

टिप्पणी

ओपनहाइम ने स्पष्ट किया है कि राज्य बहुधा उन मामलों में हस्तक्षेप शब्द का प्रयोग करते हैं जो अन्य राज्य के आचरण को सम्मिलित करता है। अंतर्राष्ट्रीय विधि में ऐसे मामलों को कठोर अर्थ में हस्तक्षेप नहीं माना जा सकता। ऐसे मामलों में बल प्रयोग का पूर्णतः अभाव रहता है। किसी राज्य द्वारा अपने अधिकारों के संरक्षण के लिए अन्य राज्य के राज्य क्षेत्र में की गई कार्यवाही या समुचित उपाय हस्तक्षेप की श्रेणी में नहीं आते।

हस्तक्षेप की न्यायसंगतता

हस्तक्षेप अवैध रूप से हो सकता है या नहीं यह विवादित प्रश्न है जिस पर विधिशास्त्रियों के मत पृथक–पृथक हैं। कुछ विधिशास्त्रियों का मानना है कि हस्तक्षेप कुछ निश्चित आधारों पर न्यायोचित रूप से किया जा सकता है। जबकि कुछ अन्य विधिशास्त्रियों का मत है कि हस्तक्षेप सभी मामलों में विधि विरुद्ध कार्यवाही होती है। इन दोनों विचारों के अतिरिक्त कुछ अन्य विधिशास्त्री यह मानते हैं कि हस्तक्षेप राजनीतिक प्रकृति का कार्य है। संयुक्त राष्ट्र के अस्तित्व में आने के उपरांत हस्तक्षेप के संबंध में परंपरागत स्थिति में पूर्णरूपेण परिवर्तन हो गया है। एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य पर बल प्रयोग के अधिकार को पूर्ण रूप से रोक दिया गया है, जबकि सुरक्षा परिषद को संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रावधानों के अनुसार बल प्रयोग की शक्ति प्रदान की गई है। इसका अर्थ यह है कि हस्तक्षेप राज्यों द्वारा व्यक्तिगत रूप से तथा सुरक्षा परिषद के प्राधिकरण के अधीन सामूहिक रूप से ही हो सकता है।

राज्यों द्वारा हस्तक्षेप

प्रारंभिक समय में हस्तक्षेप का प्रयोग राज्यों द्वारा अधिकतर राष्ट्रीय नीति के रूप में किया जाता था, जिनमें रोमन साम्राज्य अग्रणी था। कुछ समय पश्चात हस्तक्षेप का प्रयोग निष्पक्ष तथा धार्मिक नियमों को पूर्ण करने के संबंध में किया जाने लगा। अंतर्राष्ट्रीय विधि में इसका पदार्पण उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ जब हस्तक्षेप के सिद्धांत को सर्व–यूरोपीय सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया, जिसे धार्मिक संगठन द्वारा अभिवक्त किया गया था। उस समय इसका प्रयोग यूरोप की क्रांतिकारी सरकारों के विरुद्ध वैध सरकार तथा तंत्र की प्रतिरक्षा के लिए किया जाता था। इस सिद्धांत के आधार पर हस्तक्षेप ऑस्ट्रिया द्वारा नेपुल्स में 1821 में तथा फ्रांस द्वारा स्पेन में 1823 में किया गया था। उस समय संधियों में 'हस्तक्षेप करने के अधिकार' की शर्तों को सम्मिलित किया जाता था, जैसे 1878 की बर्लिन संधि में यूरोपीय देशों को टर्की तथा अफ्रीका के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की अनुमति दी गई थी।

19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में न केवल यूरोपीय देशों की ओर से अपितु संयुक्त राज्य अमेरिका की ओर से भी हस्तक्षेप से भयभीत होकर लैटिन अमेरिकी राज्यों के प्रभाव के अधीन हस्तक्षेप न करने के पक्ष में हस्तक्षेप के सिद्धांत में परिवर्तन किया गया। इसके उपरांत भी कई मामलों में हस्तक्षेप को मान्यता प्रदान की गई थी। उदाहरण के रूप में, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा क्यूबा के मध्य तथा संयुक्त राज्य अमेरिका व पनामा के मध्य 1903 की संधि के प्रावधानों में संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा हस्तक्षेप की अनुमति प्रदान की गई थी।

हस्तक्षेप पर प्रतिषेध

टिप्पणी

हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत का प्रावधान संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2 के परिच्छेद 4 में किया गया है। किंतु इस प्रावधान में स्पष्टता का अभाव है। इसमें एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य के मामलों में बल प्रयोग को प्रतिषिद्ध किया गया है। अनुच्छेद 2 के परिच्छेद 4 में प्रावधान किया गया है कि सभी सदस्य अपने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में, किसी राज्य की राज्य क्षेत्रीय अखंडता या राजनीतिक स्वाधीनता के विरुद्ध अथवा किसी ऐसी रीति से जो संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजनों से असंगत हो, बल का प्रयोग करने की धमकी नहीं देंगे या बल का प्रयोग नहीं करेंगे। अतः यदि कोई सदस्य अंतर्राष्ट्रीय विवाद के समाधान हेतु किसी भी प्रकार से या किसी भी रूप में, जो चार्टर के अधीन अनुमति देने योग्य नहीं है, बल प्रयोग करता है तो वह चार्टर के अधीन अपनी बाध्यताओं का उल्लंघन करता है। इस प्रकार, यह प्रावधान अन्य राज्यों के मामले में हस्तक्षेप करने से अन्य राज्यों को रोकता है। हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत को चार्टर द्वारा दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित किया गया है। यदि दो राज्यों के मध्य विवाद होता है तो चार्टर के अनुच्छेद 2 परिच्छेद 3 के अधीन प्रावधान किया गया है कि विवाद का समाधान शांतिपूर्ण माध्यमों से इस प्रकार किया जाएगा कि अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा व न्याय को भय उत्पन्न न हो। इसका अर्थ यह है कि हस्तक्षेप को किसी भी आधार पर न्यायोचित नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह एक प्रपीड़क कार्यवाही है। इसका मुख्य कारण यह है कि इसमें बल का प्रयोग किया जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा बनाए गए राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य प्रारूप घोषणा में अनुच्छेद 3 के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक राज्य का किसी अन्य राज्य के आंतरिक अथवा बाह्य मामलों में हस्तक्षेप से विरत रहने का कर्तव्य है। महासभा द्वारा भी शांति के आवश्यक तत्व संकल्प के द्वारा हस्तक्षेप की आलोचना की गई है। इस संकल्प में प्रत्येक राज्य से, किसी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कार्य या धमकी से जो किसी राज्य की स्वतंत्रता, स्वाधीनता या अखंडता को प्रभावित करती हो या उसके विरुद्ध हो अथवा गृह संघर्ष को प्रेरित करती हो तथा किसी राज्य में जनता की इच्छा को राज्य से विमुख करती हो, अलग रहने हेतु अनुमोदन किया गया है।

महासभा द्वारा 21 दिसंबर, 1965 को पुनः अंगीकृत राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप की अस्वीकार्यता तथा उनकी स्वतंत्रता व प्रभुत्व संपन्नता की घोषणा को इस दिशा में दूसरा महत्वपूर्ण संकल्प माना गया है। घोषणा में स्पष्ट किया गया है कि एक राज्य को किसी अन्य राज्य के आंतरिक या बाह्य मामलों में किसी भी कारण से प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। जिसके फलस्वरूप, सशस्त्र हस्तक्षेप तथा हस्तक्षेप के किसी अन्य रूप की या राज्य के विरुद्ध या उसके राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक तत्वों के विरुद्ध दी गई धमकी की निंदा की जाती है। महासभा द्वारा स्वीकृत संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुसार राज्यों के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंधों तथा सहयोग से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धांत की घोषणा में पुनः इस संकल्प को दोहराया गया है।

18 नवंबर, 1987 को महासभा द्वारा स्वीकृत अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में बल के न प्रयोग करने की घोषणा प्रावधान करती है कि प्रत्येक राज्य का अपने अंतर संबंधों में किसी राज्य की राज्य क्षेत्रीय अखंडता या राजनीतिक स्वाधीनता के विरुद्ध बल के प्रयोग या

धमकी से या किसी अन्य प्रकार से जो संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजनों से असंगत हो अलग रहने का कर्तव्य है। ऐसा बल प्रयोग या धमकी अंतर्राष्ट्रीय विधि चार्टर का उल्लंघन होता है। यदि संकल्पों को सदस्य राज्यों का मत माना जाए तो निःसंदेह हस्तक्षेप कदापि संभव नहीं है। हस्तक्षेप न करना अब 'सर्वथा पालनीय सिद्धांत', अर्थात सदैव पालन करने हेतु बाध्यकारी सिद्धांत हो गया है।

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा कार्फू चैनल विभाग में हस्तक्षेप की अवैधता की पुनः पुष्टि की गई थी। न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा था कि दूसरे राज्य को निश्चित कार्य करने या निश्चित कार्य को करने से रोकने के लिए विवश करने की दृष्टि से उस राज्य के आंतरिक या बाह्य मामलों में हस्तक्षेप की पहले से ही निंदा की जाती है। इस को अभिव्यक्त रूप से चार्टर द्वारा प्रतिषिद्ध किया गया है। निकारागुआ मामले में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य पर हस्तक्षेप न करना एक रूढ़िगत नियम बन गया है। इसी वाद में न्यायाधीश सेटी कैमारा ने अभिकथित किया है कि हस्तक्षेप न करना 'आवश्यक पालनीय नियम' बन गया है। निःसंदेह एक राज्य अन्य राज्य के मामले में हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त कर सकता है, किंतु ऐसे हस्तक्षेप को समुचित हस्तक्षेप नहीं कहा जा सकता। ऐसे मामलों में हस्तक्षेप उस अधिकार के कारण किया जाता है जिसे कोई राज्य अन्यथा या संधियों के निर्माण के माध्यम से प्राप्त करता है। इन सभी को दृष्टिगत करने से ऐसा प्रतीत होता है कि हस्तक्षेप किसी भी आधार पर उचित नहीं है।

ओपनहाइम ने उचित ही कहा है कि निःसंदेह हस्तक्षेप नियमतः प्रतिबद्ध है। इसका प्रतिषेध प्रत्येक राज्य की प्रभुत्व संपन्नता, राज्य क्षेत्रीय अखंडता तथा राजनीतिक एकता का परिणाम है। किंतु कुछ अपवादिक मामलों में एक राज्य दूसरे राज्य के मामलों में उचित रूप से हस्तक्षेप कर सकता है। ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करने वाले राज्य अपने हस्तक्षेप के प्रकार तथा परिस्थितियों के संबंध में परिसीमाओं के अधीन नहीं हैं, विशेष रूप से उन्हें ऐसा कार्य करना चाहिए जो संयुक्त राष्ट्र चार्टर में वर्णित बल के प्रयोग या धमकी के विरुद्ध प्रतिषेध से संगत हो। इसका कार्य हस्तक्षेप की परिस्थितियों के अनुपात में होना चाहिए तथा परिस्थिति के समाधान के अन्य साधनों के संबंध में यह दर्शित किया जाना चाहिए कि वे असफल हो गए हैं या उनके सफल होने की संभावना नहीं है।

निम्नांकित संदर्भ में एक राज्य न्यायोचित रूप से अन्य राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप कर सकता है–

विदेश में अपने नागरिकों की सुरक्षा करने के लिए

राज्य को विदेशों में अपने नागरिकों को संरक्षण प्रदान करने का अधिकार है, यदि उनके साथ दोषपूर्ण रूप से व्यवहार किया जाता है। नागरिकों के साथ उचित व्यवहार को सुनिश्चित करने के लिए राज्यों को हस्तक्षेप करने का अधिकार है। उन्नीसवीं शताब्दी में तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जब राज्यों के विधिक अधिकारों का उल्लंघन किया जाता था तब आत्म सहायता के लिए सैनिक बल के प्रयोग को पूर्णतया उचित माना जाता था। इस प्रकार आत्म सहायता का प्रयोग उन परिस्थितियों में किया जा सकता था, जब विदेश में रहने वाले किसी राज्य के नागरिकों से न्यूनतम

अंतर्राष्ट्रीय मानक के प्रतिकूल व्यवहार किया जाता था। अब यह आधार हस्तक्षेप का आधार नहीं रह गया है, क्योंकि आत्म सहायता के प्रयोग को अब सामान्यतः आत्मरक्षा के प्रयोग तक ही सीमित कर दिया गया है। हस्तक्षेप में की गई कार्यवाही पूर्णतया आवश्यक हो तथा अनुचित एवं अधिकता में न हो। विदेश में रहने वाले नागरिकों के संरक्षण के आधार पर हस्तक्षेप को न्यायोचित ठहराते समय उक्त आवश्यकताओं पर सम्यक विचारण किए जाने की आवश्यकता हो।

टिप्पणी

जब इंग्लैंड व फ्रांस ने 1956 में स्वेज़ विवाद में इस तर्क के आधार पर मिस्र में हस्तक्षेप किया था कि हस्तक्षेप अपने नागरिकों के जीवन को संरक्षण प्रदान करने के लिए तथा स्वेज़ कनाल को सुरक्षित रखने के लिए किया गया है, तब अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा इस आधार पर इसकी आलोचना और निंदा की गई थी कि इस व्यापक आक्रमण को न्यायोचित नहीं कहा जा सकता जिसका परिणाम व्यापक विनाश तथा जीवन की क्षति करने के रूप में हुआ था।

हस्तक्षेप में की गई कार्यवाही को किए गए दोषपूर्ण कार्य के अनुपात में होना चाहिए। जब संयुक्त राज्य ने 1983 में ग्रेनाडा में हस्तक्षेप किया था तो उस कार्यवाही को न्यायोचित्त ठहराने के आधारों में से एक संयुक्त राज्य के नागरिकों को संरक्षण प्रदान करना तथा द्वीप को छोड़ने की इच्छा रखने वाले किसी व्यक्ति के पलायन को सुविधा पूर्ण बनाना था। संयुक्त राज्य के आक्रमण तथा द्वीप के अधिक्रमण की कार्यवाही को न्यायोचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि हस्तक्षेप के लिए आवश्यक तत्वों का इसमें पूर्ण अभाव था। पुनः अमेरिकी नागरिकों के जीवन को कोई निकट का भय नहीं था। इसी प्रकार, जब संयुक्त राज्य ने 1989 में इस आधार पर पनामा में हस्तक्षेप किया था कि वह अपने आत्मरक्षा के अधिकार के प्रयोग में कार्यवाही कर रहा है तब विश्व समुदाय द्वारा इस कार्यवाही की निंदा की गई थी। संयुक्त राज्य ने संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 51 की सहायता लेते हुए यह तर्क दिया था कि उसने पनामा के नेता नोरेगा के साथ विवाद को शांतिपूर्ण ढंग से निपटाने के उद्देश्य से सभी उपलब्ध राजनयिक साधनों का प्रयोग करने के बाद हस्तक्षेप किया था। महासभा ने कठोरता से संयुक्त राज्य के हस्तक्षेप की कार्रवाई की निंदा की थी तथा इसे अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राज्य की स्वतंत्रता, प्रभुत्व संपन्नता तथा राज्य क्षेत्रीय अखंडता का उल्लंघन बताया था।

आत्मरक्षा

सामान्यतः किसी भी राज्य को आत्मरक्षा में विधि पूर्वक हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त है किंतु हस्तक्षेप करने के अधिकार का प्रयोग केवल प्रवर्तित नियमों के आधार पर ही किया जा सकता है। रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत आत्मरक्षा में हस्तक्षेप करने के अधिकार को आत्म संरक्षण के आधार पर उचित माना जा सकता है। इसकी संपुष्टि कैरोलीन के मामले में भी की गई है। इसमें कहा गया है कि हस्तक्षेप करने का अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है, यदि आवश्यकता तत्काल तथा प्रबल हो और कोई वैकल्पिक साधन व विचार विमर्श के लिए समय न बचा हो। किसी भी परिस्थिति को उस समय तक हस्तक्षेप के लिए आवश्यक नहीं माना जा सकता जब तक संरक्षण के सभी सामान्य साधनों का प्रयोग न कर लिया गया हो। आवश्यकता के मामले में भी राज्य को बल प्रयोग की असीमित अनुचित शक्ति प्राप्त नहीं है। आत्मरक्षा में बल

टिप्पणी

प्रयोग अनुचित या अधिकता में नहीं होना चाहिए। बल प्रयोग आक्रमक द्वारा प्रयोग किए गए बल के अनुपात में ही होना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अधीन आत्मरक्षा में दूसरे राज्य के मामले में हस्तक्षेप करने के राज्य के अधिकार के प्रयोग में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं। चार्टर के अनुच्छेद 51 ने प्रावधान किया गया है कि राज्य को आत्मरक्षा का अंतर्निहित अधिकार प्राप्त है। किंतु आत्मरक्षा में बल का प्रयोग केवल तब किया जाना संभव है, जब उस राज्य पर सशक्त आक्रमण हुआ हो। इसका अर्थ यह है कि जब तक राज्य पर सशस्त्र बलों द्वारा आक्रमण नहीं किया जाता है तब तक उसके द्वारा आत्मरक्षा के अधिकार के प्रयोग में बल का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। यदि पड़ोसी राज्य द्वारा सैनिक तैयारी या आसन्न संकट की धमकी दी जाती है तो दूसरे राज्य द्वारा आत्मरक्षा में आक्रमण करना स्पष्ट रूप से उचित नहीं माना जा सकता। अतः यह जानना आवश्यक है कि किस परिस्थिति को सशस्त्र आक्रमण माना जा सकता है। सशस्त्र आक्रमण का अर्थ केवल स्थाई सशस्त्र बलों द्वारा ही आक्रमण नहीं होता है। एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य के विरुद्ध सशस्त्र टुकड़ियों, समूहों, अस्थाई सैनिकों या किराए के सैनिकों द्वारा सशस्त्र बल का प्रयोग भी सशस्त्र आक्रमण के अंतर्गत आता है। निकारागुआ में उसके विरुद्ध सैनिक तथा अर्धसैनिक कार्यों से संबंधित मामलों में न्यायालय द्वारा यह प्रतिस्थापित किया गया था कि सशस्त्र आक्रमण में न केवल अंतर्राष्ट्रीय सीमा के पार स्थाई सशस्त्र बलों द्वारा कार्यवाही को वरन राज्य की ओर से सशस्त्र गुटों, समूहों, अस्थाई सैनिकों या भाड़े के सैनिकों को भेजने की कार्यवाही को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिनके द्वारा अन्य राज्य के विरुद्ध सशस्त्र बल का इतना गंभीर प्रयोग किया जाता है कि वह नियमित बलों द्वारा संचालित वास्तविक सशस्त्र आक्रमण के समान हो।

सशस्त्र आक्रमण के अंतर्गत राज्य द्वारा बल का अवैध प्रयोग आता है तथा ऐसे मामलों में आत्मरक्षा के अधिकार का प्रयोग केवल उस राज्य द्वारा किया जा सकता है जिस पर आक्रमण किया गया हो। यद्यपि न्यायालय ने निकारागुआ के मामले में स्पष्ट किया है कि हथियारों को प्रदान करने या संभार तंत्रीय या अन्य समर्थन के रूप में विद्रोहियों का समर्थन सशस्त्र आक्रमण के अर्थ के अंतर्गत नहीं आता, किंतु यह विचार अत्यधिक संकीर्ण है तथा इसको स्वीकार किया जाना न्यायोचित नहीं है।

आक्रमण के उपरांत आत्मरक्षा में बल प्रयोग के अधिकार का प्रयोग उस समय तक किया जा सकता है जब तक सुरक्षा परिषद ने अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बनाए रखने का आवश्यक उपाय न कर लिया हो। इसका अर्थ यह हुआ कि बल प्रयोग के अधिकार का परित्याग उस समय कर देना चाहिए जब सुरक्षा परिषद ने आक्रमण को समाप्त करने के उपाय कर लिए हों। यहां यह उल्लेखनीय है कि यदि कोई राज्य सशस्त्र आक्रमण के उपरांत दूसरे राज्य के मामले में हस्तक्षेप करता है तो यह हस्तक्षेप का मामला नहीं रह जाता। ऐसी स्थिति में सशस्त्र संघर्ष का मामला हो जाता है, क्योंकि आक्रमण करने वाले तथा आत्मरक्षा करने वाले दोनों ही राज्यों द्वारा बल का प्रयोग होता है। हस्तक्षेप अवैध कार्य है, किंतु यह तब अवैध नहीं रह जाता जब आक्रमण को निष्फल करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। आक्रमण के बाद आत्मरक्षा के मामले सशस्त्र संघर्ष के समान हो जाते हैं।

आत्मनिर्णय

राज्यों को अन्य राज्यों के मामलों में, उस राज्य के राज्य क्षेत्र में रहने वाले लोगों को उनके आत्मनिर्णय के अधिकार के प्रयोग में सहायता करने के लिए, यदि यह आवश्यक हो तो, सशस्त्र बल द्वारा हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त है। महासभा द्वारा स्वीकृत संकल्प 'आक्रमण की परिभाषा' में स्पष्ट रूप से वंचित व्यक्तियों को आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया है तथा उसको प्राप्त करने के लिए उनको बलपूर्वक संघर्ष करने की स्वतंत्रता तथा अन्य राज्यों से समर्थन प्राप्त करने तथा उसे प्राप्त करने के अधिकार का प्रावधान किया गया है। अन्य राज्य यदि उनको आत्मनिर्णय के अधिकार को प्राप्त कराने में सहायता देते हैं, तो उसे हस्तक्षेप नहीं कहा जाएगा।

टिप्पणी

सामूहिक हस्तक्षेप

संयुक्त राष्ट्र चार्टर में सदस्य राज्य तथा गैर सदस्य राज्यों के विरुद्ध सामूहिक हस्तक्षेप के लिए प्रावधान किया गया है। चार्टर के अनुच्छेद–2 का परिच्छेद–7, सदस्य राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप से संबंधित प्रावधान करता है। इसके अंतर्गत उन मामलों में संयुक्त राष्ट्र को हस्तक्षेप करने के लिए प्राधिकृत किया गया है, जो आवश्यक रूप से किसी राज्य की आंतरिक अधिकारिता के अधीन है। जो मामले आंतरिक मामलों के रूप में राज्य में आरक्षित हैं उनमें यह शांति बनाए रखने के लिए प्रवर्तन कारी उपायों को लागू करने के लिए भी प्रावधान करता है। इस प्रकार चार्टर संयुक्त राष्ट्र को किसी राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की अनुमति देता है। इसका हस्तक्षेप अधिनायकवादी होता है क्योंकि ऐसे हस्तक्षेप में राज्य की सम्मति प्राप्त नहीं होती। केवल सुरक्षा परिषद तथा महासभा को, शांति के लिए संगठित होने के संकल्प के अंतर्गत, विधिक प्रभाव से कार्य करने की और किसी राज्य के मामलों में अधिनायकवादी रूप से हस्तक्षेप करने की क्षमता है। सुरक्षा परिषद की हस्तक्षेप की शक्ति चार्टर के अनुच्छेद 39 के अंतर्गत शांति को संकट, शांति–भंग या आक्रमण की कार्यवाही के निर्धारण तक सीमित है। यदि सुरक्षा परिषद निर्धारण करती है कि शांति को संकट, शांति–भंग या आक्रमण की कार्यवाही अस्तित्व में है तो वह राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकती है।

सुरक्षा परिषद सदस्यों से चार्टर के अनुच्छेद 41 या 42 के अंतर्गत कार्यवाही करने की सिफारिश कर सकती है। अनुच्छेद 41 के अंतर्गत आर्थिक संबंधों तथा रेल, समुद्र, वायु, डाक, तार, रेडियो व संचार के अन्य साधनों को पूर्ण या आंशिक रूप से भंग किया जा सकता है तथा राजनयिक संबंध विच्छेद किया जा सकता है। अनुच्छेद 42 के अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों द्वारा वायु, समुद्र या स्थल सेनाओं के माध्यम से बल प्रदर्शन नाकाबंदी या अन्य कार्यवाही की जा सकती है। यदि संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों द्वारा किसी राज्य के विरुद्ध कार्यवाही की जाती है, तो इसे सामूहिक हस्तक्षेप कहा जाता है। सामूहिक हस्तक्षेप संयुक्त राष्ट्र के गैर–सदस्यों के विरुद्ध भी हो सकता है। संयुक्त राष्ट्र के अनुच्छेद–2 के परिच्छेद–6 में संगठन पर यह सुनिश्चित करने का दायित्व आरोपित किया गया है कि जो राज्य संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं वे जहां तक अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को बनाए रखने के लिए आवश्यक हो इन सिद्धांतों के अनुरूप कार्य करेंगे। यदि वे इसके अनुरूप कार्य नहीं करते हैं तो सुरक्षा परिषद उसी

प्रकार से गैर–सदस्य राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकती है, जैसे वह सदस्यों राज्यों के मामले में करती है।

सामूहिक कार्यवाही अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के अन्य अंगों द्वारा अपनी क्षमता के अंतर्गत कार्य करते हुए भी की जा सकती है। क्षेत्रीय संगठनों के तत्वाधान में की गई कार्यवाही का एक उदाहरण, अफ्रीकी एकता संगठन द्वारा स्थापित सैनिक बल का 1981 में चाड में शांति रक्षण कार्य किया जाना है।

टिप्पणी

3.2.2 मानवीय आधार पर हस्तक्षेप

जब कोई राज्य अपने नागरिकों पर इतना क्रूर अत्याचार करने का अपराध करता है कि वह उनके मूल मानव अधिकारों से उन्हें वंचित कर देता है या मानव जाति के अंतःकरण को प्रभावित करता है, तब उस राज्य में मानवता के हित में हस्तक्षेप किया जा सकता है। मानव अधिकारों के उल्लंघन पर हस्तक्षेप को वर्तमान समय में न्यायोचित कहा जाता है, क्योंकि राज्य द्वारा अपने नागरिकों के विरुद्ध क्रूरतापूर्ण आचरण मानव अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन है। मानव अधिकारों के उल्लंघन में हस्तक्षेप को न्यायोचित नहीं माना जा सकता। किसी राज्य में मानव अधिकारों के उल्लंघन के लिए संयुक्त राष्ट्र चार्टर में राज्यों की बाध्यता केवल मानव अधिकारों के लिए संयुक्त राष्ट्र के सहयोग तक सीमित है। इसलिए कोई व्यक्ति यह तर्क प्रस्तुत नहीं कर सकता कि अनुच्छेद 2 के परिच्छेद 4 के अंतिम वाक्य अथवा किसी ऐसी रीति से जो संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजनों से असंगत हो का अर्थ मानव अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर बल प्रयोग करना है।

1945 से कई राज्यों द्वारा मानवीय आधार पर हस्तक्षेप किए गए हैं जैसे तंजानिया द्वारा युगांडा में 1979 में, फ्रांस द्वारा मध्य अफ्रीका में 1979 में, संयुक्त राज्य द्वारा ग्रेनाडा में 1953 में, पनामा में 1989 में, तथा कोसोवो में 1999 में। इन मामलों से यह प्रतीत होता है कि मानव अधिकारों का उल्लंघन होने पर हस्तक्षेप करना एक नया रूढ़िगत नियम बन गया है। वास्तविकता यह है कि मानव अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर हस्तक्षेप को उचित नहीं माना जा सकता। राज्य का अपने नागरिकों के साथ आचरण उसकी आंतरिक अधिकारिता के अंतर्गत आने वाला मामला है। राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व संपन्न तथा आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत का उल्लंघन मानव अधिकारों के उल्लंघन के लिए नहीं किया जा सकता क्योंकि मानव अधिकारों का उल्लंघन प्रत्येक राज्य की सामान्य घटना है।

यदि राज्यों को मानव अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर हस्तक्षेप करने की अनुमति प्रदान कर दी जाएगी तो सभी राज्यों की स्वतंत्रता तथा सुरक्षा संकट में पड़ जाएगी। विधिक त्रुटि को सुधारने के साधन के रूप में बल प्रयोग की अनुमति नहीं प्रदान की जा सकती। लाटरपैट, जिनको मानव अधिकार की मान्यता का बहुत बड़ा समर्थक माना जाता है, ने यह माना है कि मानव अधिकार के उल्लंघन के आधार पर हस्तक्षेप के सिद्धांतों को कभी भी पूर्ण रूप से निश्चयात्मक अंतर्राष्ट्रीय विधि के भाग के रूप में मान्यता नहीं प्राप्त हुई है। वर्तमान समय में कई राज्यों ने मानवीय विधि के उल्लंघन के आधार पर हस्तक्षेप की निंदा अवैध साधन के रूप में की है। निकारागुआ में उसके विरुद्ध सैनिक व अर्ध सैनिक कार्यवाही से संबंधित मामले में इसे अंतर्राष्ट्रीय

न्यायालय द्वारा भी अवैध माना गया है। न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा है कि मानव अधिकार के सम्मान को सुनिश्चित करने की जानकारी देने के लिए बल का प्रयोग समुचित रूप नहीं हो सकता। अतएव यह कहा जा सकता है कि न तो मानव अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा न ही बल प्रयोग की अंतर्राष्ट्रीय विधि मानव अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर एक राज्य को अन्य राज्य के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप करने की अनुमति प्रदान करती है। मानव अधिकारों को हस्तक्षेप के प्रतिषेध पर सर्वोच्चता प्रदान नहीं की जा सकती।

टिप्पणी

1996 में इराक पर अमेरिकी आक्रमण

इराक द्वारा कुर्द क्षेत्र में एर्बिल व सुलेमानियाह नगर में जो पूर्णतया इराक के राज्य क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं सैन्य बलों की तैनाती के बाद पूर्व के लोगों के दमन को निर्धारित करने के लिए 1996 में इराक के पूर्व क्षेत्र में संयुक्त राज्य का प्रक्षेपास्त्र द्वारा आक्रमण स्पष्ट रूप से अंतर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन था। प्रभुत्व संपन्न राज्य को अपने राज्य क्षेत्र के भीतर कहीं भी अपनी सेनाओं को तैनात करने का अधिकार है। किसी राज्य को अन्य राज्यों के मामले में उनकी सरकार द्वारा दुर्व्यवहार से लोगों को बचाने के लिए हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। ब्रिटेन, जर्मनी, जापान तथा कुछ अन्य राज्यों के अतिरिक्त प्रत्येक राज्य ने प्रभुत्व संपन्न राज्य इराक के राज्य क्षेत्र पर अवैध और मनमाने ढंग से अमेरिका द्वारा किए गए आक्रमण की निंदा की है या इसके प्रति विरोध व्यक्त किया है। मानवीय आधार पर हस्तक्षेप एक भ्रामक सिद्धांत है। निसंदेह मानव अधिकारों का उल्लंघन शांति के लिए संकट उत्पन्न कर सकता है किंतु यह राज्यों की प्रभुत्व क्षमता को समाप्त करने के लिए कारण नहीं माना जा सकता।

2018 में अमेरिका तथा मित्र राज्यों द्वारा सीरिया पर हवाई आक्रमण

अमेरिका, फ्रांस तथा यूनाइटेड किंगडम द्वारा सीरिया में नागरिकों पर रासायनिक शस्त्रों का प्रयोग करने के आरोप पर 2018 में हवाई आक्रमण किया गया। उनका यह आरोप था कि सीरिया की सरकार रासायनिक वस्तुओं के प्रयोग के लिए उत्तरदाई है। इस आक्रमण की रूस व ईरान द्वारा आलोचना की गई थी जबकि सीरिया द्वारा रासायनिक शस्त्रों के प्रयोग से इनकार किया गया था। सीरिया का यह कथन था कि उसने रासायनिक शस्त्रों के निषेध हेतु संघ को हमले के आरोपित स्थानों का अन्वेषण के लिए आमंत्रित किया था। आक्रमण संघ के सदस्यों के पहुंचने और अन्वेषण करने के पहले ही कर दिया गया, जो उचित नहीं था। सीरिया के विदेश मंत्री ने सीरिया पर बर्बरता पूर्ण आक्रमण करने के आरोप लगाए तथा इस कार्यवाही को संघ के अन्वेषण कार्य में बाधा पहुंचाने के लिए किया जाना बताया था।

अमेरिका तथा उसके मित्र राज्यों द्वारा सीरिया पर हवाई आक्रमण को हस्तक्षेप कहा जा सकता है क्योंकि आक्रमण के लिए सुरक्षा परिषद की सम्मति नहीं ली गई थी। रासायनिक शस्त्रों का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय विधि में निषिद्ध है किंतु एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य पर आक्रमण करना भी निषिद्ध है। अमेरिका व अन्य हमला करने वाले राज्यों को संघ द्वारा अन्वेषण होने का इंतजार करना चाहिए था न कि अन्वेषण होने के पूर्व ही सीरिया पर आक्रमण कर देना चाहिए था। इस आक्रमण को अंतर्राष्ट्रीय विधि में न्यायोचित नहीं माना जा सकता।

टिप्पणी

एक राज्य मानव अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर अन्य राज्य के मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकारी नहीं है किंतु यह सिद्धांत सामूहिक हस्तक्षेप के मामले में लागू नहीं होता। यद्यपि चार्टर के अनुच्छेद 2 के परिच्छेद 7 में प्रावधान किया गया है कि यह संयुक्त राष्ट्र को ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए प्राधिकृत नहीं करता जो आवश्यक रूप से किसी राज्य की आंतरिक अधिकारिता में आते हों फिर भी यह प्रावधान चार्टर के प्रयोजनों को पूर्ण करने के लिए की गई कार्यवाही का निषेध नहीं करता चाहे वह अधिनायकवादी हस्तक्षेप ही क्यों न हो। इस प्रकार मानव अधिकार तथा स्वतंत्रता के संरक्षण के जो चार्टर के प्रमुख उद्देश्य हैं, उनके संबंध में हस्तक्षेप का प्रतिषेध संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न अंगों की ओर से अध्ययन, विचार–विमर्श, अन्वेषण तथा अनुमोदन को नहीं रोकता। अनुच्छेद 2 के परिच्छेद 7 में वर्णित सिद्धांत चार्टर के अध्याय 7 के अंतर्गत प्रभावकारी उपायों को लागू करने से नहीं रोकता। दक्षिण अफ्रीका में 1977 में, इराक में 1991 में, सोमालिया में 1992 में तथा रवांडा में 1994 में सुरक्षा परिषद द्वारा मानवीय आधार पर हस्तक्षेप किया गया था।

यदि सुरक्षा परिषद किसी राज्य में मानवीय क्रूरता या बर्बरता को निषेध अधिकार के प्रयोग के कारण रोक पाने में असमर्थ हो जाती है तो जो राज्य उसे रोकने के इच्छुक हैं तथा सक्षम हैं वे आवश्यकता के आधार पर अपवाद के रूप में हस्तक्षेप कर सकते हैं।

मानवीय हस्तक्षेप व सहायता

मानवीय अधिकारों के उल्लंघन परिवर्धन के आधार पर हस्तक्षेप तथा मानवीय सहायता अनुदान एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य को प्रदान किए जाते हैं। मानवीय हस्तक्षेप विधि विरुद्ध तथा संयुक्त राष्ट्र चार्टर के सिद्धांतों के प्रतिकूल है किंतु अंतर्राष्ट्रीय विधि में उन मामलों के लिए कोई स्पष्ट नियम अस्तित्व में नहीं है जिसमें एक राज्य मानव के कष्टों को रोकने के लिए दूसरे राज्य के नागरिकों या बलों को मानवीय सहायता या अनुदान प्रदान करता है। एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य को मानवीय सहायता या अनुदान प्रदान करना अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के प्रतिकूल नहीं है। अतः यह अनुचित नहीं है परंतु इसकी शर्त यह है कि यह रेडक्रॉस के बीच में अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा घोषित मूलभूत सिद्धांतों में से प्रथम व द्वितीय में वर्णित मांगों को पूर्ण करे।

प्रथम सिद्धांत सहायता के प्रयोजन का वर्णन करता है अर्थात सहायता मानवीय कष्ट का निवारण करने एवं उसे कम करने के लिए तथा जीवन एवं स्वास्थ्य सुरक्षा करने के लिए वह मानव जाति के सम्मान को सुनिश्चित करने के लिए होनी चाहिए जबकि दूसरा सिद्धांत यह वर्णन करता है कि सहायता को राष्ट्रीयता, मूल वंश, धार्मिक विश्वास वर्ग या राजनीतिक विचारों के संबंध में कोई विभेद नहीं करना चाहिए।

श्रीलंका में भारतीय अनुतोष मिशन

भारतीय अनुतोष मिशन को जून 1987 में भारतीय तथा अंतर्राष्ट्रीय समाचार माध्यम के प्रतिनिधियों के साथ भारतीय रेडक्रॉस के ध्वज के अधीन श्रीलंका के जाफना के नागरिकों के लिए अनुतोष खाद्य सामग्री लेकर जहाज से भेजा गया था। तब श्रीलंका के नौसैनिक जहाजों ने शस्त्रहीन जहाजों को अपने राज्य क्षेत्रीय समुद्र में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दी थी। बाद में भारत ने लड़ाकू विमान मिराज 2000 के साथ यातायात

विमान से खाद्य सामग्री भेजी। यह मिशन आक्रमक नहीं था बल्कि मानवीय विचार से प्रेरित था।

मिशन पूमलाई (Poomalai) भारतीय तथा विदेशी संवाददाताओं को ले गया था। प्रश्न उठता है कि क्या 'अनुकंपा मिशन या अनुतोष मिशन' को देश की आवश्यक खाद्य सामग्री की उपलब्धि न होने से उत्पन्न असहनीय कठिनाइयों को दूर करने हेतु भेजना अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के अधीन अनुमति देने योग्य है? इस संबंध में अंतर्राष्ट्रीय विधि में किसी नियम के अभाव में यदि यह माना जाए कि अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने मानवीय सहायता या एक राज्य द्वारा दूसरे को सहायता देने के संबंध में कोई नियम प्रतिपादित कर दिया है तो भारत द्वारा मिशन का भेजना वही नियम समझा जाएगा यदि यह दो शर्तों को पूरा करता है।

टिप्पणी

ये दो शर्तें थीं– प्रथम, यदि वह मानवीय कठिनाइयों को दूर करने तथा कम करने तथा जीवन एवं स्वास्थ्य की सुरक्षा करने तथा मानव जाति के गौरव को सुनिश्चित करने के लिए भेजा गया हो। दूसरा, यदि वह जाफना के सभी नागरिकों की सुरक्षा करने के लिए भेजा गया हो। भारत द्वारा मिशन को भेजना विधि विरुद्ध नहीं माना जाएगा यदि उक्त दोनों शर्तें पूरी हो जाती हैं। प्रथम शर्त के संबंध में यह कहा जा सकता है कि मिशन की प्रकृति तथा प्रयोजन के संबंध में कोई संदेह नहीं हो सकता। मिशन जाफना के लोगों के लिए खाद्य सामग्री तथा दवाएं ले गया था। इन सभी सामानों की कमी के कारण वहां असहनीय कठिनाई व्याप्त थी इसलिए इसे मानवीय कठिनाइयों को दूर करने तथा कम करने के एकमात्र प्रयोजन से भेजा गया था। मिशन का भेजना पूर्ण रूप से आवश्यक था तथा यदि इसे न भेजा गया होता तो इसका अर्थ भारत द्वारा उस देश में जो उसके इतने निकट है मानवीय उत्तरदायित्व का पूर्ण परित्याग होता। दूसरी, शर्त के संबंध में यह कहा जा सकता है कि निसंदेह भारतीय सहायता जाफना के लोगों तक सीमित थी क्योंकि जाफना के लोग अत्यधिक पीड़ित थे। उन्हें सहायता की अत्यधिक आवश्यकता थी, किंतु सहायता भेदभाव पूर्ण नहीं थी।

सहायता को जाफना प्रायद्वीप पर हवाई जहाज से गिराया गया था तथा वह केवल जाफना के लोगों के लिए ही थी। इसका अर्थ यह है कि न तो राष्ट्रीयता के आधार पर न ही राजनीतिक विचार के आधार पर कोई भेद किया गया था। यदि सहायता केवल जाफना के तमिलों के लिए ही होती तो यह भेदभाव पूर्ण होता। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत द्वारा प्रदान की गई मानवीय सहायता विधि विरुद्ध नहीं थी। यह मानवीय आधार पर हस्तक्षेप का मामला नहीं था बल्कि मानवीय सहायता का मामला था।

गृहयुद्ध में हस्तक्षेप

किसी राज्य में गृहयुद्ध होता है तब अन्य राज्यों को उससे दूर रहने की आवश्यकता होती है क्योंकि गृहयुद्ध उस राज्य का आंतरिक मामला होता है। किंतु कुछ मामलों में गृहयुद्ध इतना गंभीर रूप धारण कर लेता है कि वह अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बनाए रखने के प्रति संकट उत्पन्न करके संपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को प्रभावित करता है तथा कुछ अन्य मामलों में यह केवल कुछ राज्यों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप

टिप्पणी

से प्रभावित करता है। जिन मामलों में यह अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को प्रभावित करता है वहां सुरक्षा परिषद का यह दायित्व हो जाता है कि वह संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 39 के अधीन मामले का निर्धारण करने के बाद अनुच्छेद 41 या अनुच्छेद 42 के अधीन सामूहिक कार्यवाही करे। सुरक्षा परिषद ने संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अध्याय 7 के अधीन 1961 की कार्यवाही में कांगो में गृहयुद्ध समाप्त करने में सफलता प्राप्त की थी। इसी प्रकार 1991 में सुरक्षा परिषद ने एक संकल्प पारित किया था जिसमें सुरक्षा परिषद को युगोस्लाविया के गृहयुद्ध में हस्तक्षेप करने तथा उसके विरुद्ध शस्त्र व्यापार प्रतिबंधित करने की अनुमति दी गई थी।

इसी प्रकार सुरक्षा परिषद ने 1992 में सोमालिया व 1994 में रवांडा तथा हैती के विरुद्ध चार्टर के अध्याय 7 के अधीन कार्यवाही की थी, जब स्थिति अत्यंत बिगड़ गई थी। उन मामलों में समस्या उत्पन्न होती है जिनमें सुरक्षा परिषद स्थाई सदस्यों के निषेध अधिकार के प्रयोग के कारण अनुच्छेद 39 के अधीन मामले का निर्धारण करने में असफल हो जाती है।

उन मामलों में भी समस्या उत्पन्न होती है जब मामले अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को थोड़ा भी प्रभावित नहीं करते किंतु उसी समय कुछ राज्य कुछ कारणों से उस में रुचि रखने लगते हैं। वे कभी–कभी क्रांतिकारी समूह को दबाने के लिए वैध तथा स्थापित सरकार की सहायता करते हैं या स्थापित सरकार को सत्ताच्युत करने में विद्रोहियों की सहायता करते हैं। यदि अन्य राज्य विद्रोहियों की सरकार को सहायता प्रदान करते हैं तो राज्य का कार्य हस्तक्षेप माना जाएगा।

यदि वैध सरकार का प्रभावी नियंत्रण होना समाप्त हो जाता है और यदि वह जनता का समर्थन खो देती है तो अन्य राज्य द्वारा प्रदान की गई सहायता हस्तक्षेप होगी, चाहे वह वैध सरकार के आमंत्रण पर ही दी गई हो। यह प्रस्थापना इस सिद्धांत पर आधारित है कि किसी देश की सरकार की पहचान तथ्यात्मक मानक के अनुसार की जाती है न कि नैतिक या संवैधानिक मानक के आधार पर। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय राज्य की पहचान करने के लिए उसके उद्‌भव की वैधता, जो पूर्णतया असंगत है, के बदले देश के प्रभावी नियंत्रण के सिद्धांत को मान्यता देता है। इस सिद्धांत को न केवल कई अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थ निर्णयों में मान्यता दी गई है, वरन यह वर्तमान समय की प्रथा से भी स्पष्ट है।

राज्य की सरकार के प्रभाव को निश्चित करने में जो वस्तुनिष्ठ मानक है, कठिनाई के कारण, उसके तहत यह सिद्ध करना कठिन हो जाता है कि किसी विशेष मामले में हस्तक्षेप किया गया है या नहीं। वैध सरकार तथा विद्रोही सरकार द्वारा किया गया दावा तथा प्रतिदावा मामले को वाद–विवाद योग्य तथा विवादास्पद बना देता है। हंगरी, चेकोस्लाविया तथा अफगानिस्तान के मामलों में सोवियत रूस दावा कर रहा था कि उसने इन देशों में इनकी सरकारों के अनुरोध पर हस्तक्षेप किया था जबकि अन्य राज्य उसे हस्तक्षेप की कार्यवाही मानते थे। अनुरोध को प्रामाणिक माना जाए या नहीं, इसका निर्धारण भिन्न–भिन्न मामलों की परिस्थितियों के अधीन किया जा सकता है।

मोनरो सिद्धांत

मोनरो सिद्धांत को संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति जेम्स मोनरो ने प्रतिपादित किया था। उन्होंने 2 दिसंबर, 1823 को कांग्रेस को एक संदेश भेजा था जिसमें उन्होंने अलास्का के रूसी अधिग्रहण के संकट तथा स्पेन–अमेरिका के मामलों में पवित्र संगठन के धमकी भरे हस्तक्षेप के संकट का उल्लेख किया था। इस संदेश में तीन विभिन्न सिद्धांत सम्मिलित थे। प्रथम सिद्धांत जिसे गैर उपनिवेशन का सिद्धांत कहा जाता है में यह प्रतिपादित किया गया था कि अमेरिकी उपमहाद्वीप का कोई भाग किसी यूरोपीय देश की प्रभुत्व संपन्नता के अधीन नहीं होगा। दूसरे सिद्धांत, जिसे हस्तक्षेप न करने का सिद्धांत कहा जाता है, में यह कहा गया था कि अमेरिकी राज्य यूरोपीय राज्यों के युद्धों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। तीसरा सिद्धांत भी हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत से संबंधित था। उन्होंने घोषणा की थी कि संयुक्त राज्य संबद्ध यूरोपीय देशों को अमेरिका के किसी भाग पर अपनी राजनीतिक प्रणाली को विस्तारित करने की अनुमति नहीं देगा। पुनः यदि यूरोपीय देश अमेरिकी उपमहाद्वीप के मामलों में हस्तक्षेप करेंगे तो अमेरिका उसे अमैत्रीपूर्ण कार्य मानेगा।

टिप्पणी

प्रथम सिद्धांत को 1870 में उस समय लागू किया गया, जब राष्ट्रपति ग्रांट ने यह घोषणा की कि कोई यूरोपीय राज्य अमेरिकी राज्य क्षेत्र के किसी भाग को अर्जित नहीं करेगा, चाहे वहां के निवासी ऐसा अनुरोध भी करते हैं। 1895 में इस सिद्धांत को उस समय भी लागू किया गया, जब राष्ट्रपति ने ग्रेट ब्रिटेन तथा वेनेजुएला के मध्य सीमा संघर्ष के संबंध में घोषणा की थी कि वर्तमान उपनिवेश की सीमाओं का विस्तार अनुमति देने योग्य है। इस सिद्धांत को 1940 में पुनः उस समय लागू किया गया जब संयुक्त राज्य ने जर्मनी व इटली को सूचित किया कि पश्चिमी गोलार्द्ध से संबंधित उसकी परंपरागत नीति के अनुसार संयुक्त राज्य पश्चिमी गोलार्द्ध के किसी भौगोलिक क्षेत्र का अंतरण गैर अमेरिकी राज्य से किसी अन्य गैर अमेरिकी राज्य को नहीं करेगा या अंतरण के किसी प्रयास को स्वीकार नहीं करेगा। हस्तक्षेप न करने के दूसरे सिद्धांत को 1862–67 में मैक्सिको में फ्रांसीसी अभियान के संबंध में लागू किया गया था।

अंतर्राष्ट्रीय विधि में मोनरो सिद्धांत की वास्तविक प्रस्थिति विवादास्पद है। ओपनहाइम के अनुसार मोनरो सिद्धांत का व्यापक महत्व राजनीतिक प्रकृति का है न की विधिक प्रकृति का। यह संयुक्त राज्य के मार्गदर्शक सिद्धांतों में से एक है, अतः यह अत्यधिक राजनीतिक महत्व का है। यह सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय विधि का भाग नहीं है क्योंकि इस सिद्धांत को नियम अनुसार कभी भी अंतर्राष्ट्रीय संविदा द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है। यह अर्द्ध विधिक प्रस्थिति का है क्योंकि राष्ट्र संघ की प्रसंविदा का अनुच्छेद 21 प्रावधान करता है कि यह मोनरो सिद्धांत की तरह क्षेत्रीय समझ को प्रभावित नहीं करता। संयुक्त राष्ट्र चार्टर संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों से संगत किसी रूप में अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुव्यवस्था को बनाए रखने के लिए क्षेत्रीय व्यवस्था या अभिकरण के लिए प्रावधान करता है।

ड्रेगो सिद्धांत

अर्जेंटीना के विदेश मंत्री लुईस एम. ड्रेगो ने 29 दिसंबर, 1902 को संयुक्त राज्य को एक पत्र भेजा था जिसमें किसी राज्य द्वारा दूसरे राज्य से ऋण वसूली करने के लिए बल

के स्वीकार्य प्रयोग के सिद्धांत को प्रतिपादित किया गया था। उन्होंने इस सिद्धांत का समर्थन किया था कि ऋण संविदा विधितः संकटकालीन कार्य है, अतः इसे अंतर्राष्ट्रीय विधि की स्वीकृति प्राप्त नहीं है। यद्यपि अर्जेंटीना तथा कुछ अन्य दक्षिणी अमेरिकी राज्यों में 1907 के द्वितीय हेग शांति सम्मेलन में इस नियम को स्थापित करने का प्रयास किया गया था, फिर भी इस सिद्धांत को सामान्यतः मान्यता नहीं दी गई।

टिप्पणी

संयुक्त राज्य अमेरिका की पहल पर सम्मेलन में संविदा ऋणों की वसूली के लिए बल के प्रयोग पर सीमा से संबंधित अभिसमय को स्वीकार किया गया था। अभिसमय के अनुच्छेद 1 के अनुसार संविदाकारी देश दूसरे राज्य की सरकार द्वारा किसी राज्य की सरकार से दावाकृत संविदा ऋण, जो उसके नागरिकों के प्रति बकाया हो, की वसूली के लिए सशस्त्र बल की सहायता लेने के लिए सहमत नहीं है। इस प्रकार, यह अभिसमय सभी संविदा ऋणों की वसूली के लिए हस्तक्षेप न करने का प्रावधान करता है, जबकि ड्रेगो ने केवल ऋण संविदा के लिए सिद्धांत प्रतिपादित किया था।

अपनी प्रगति जांचिए

1. हस्तक्षेप का अनुरोध किसके द्वारा किया जाना चाहिए?
   (क) राज्य न्यायालय द्वारा (ख) राज्य की सरकार द्वारा
   (ग) अनेक राज्यों द्वारा (घ) इनमें से कोई नहीं
2. इनमें से क्या हस्तक्षेप का प्रकार नहीं है?
   (क) सैन्य हस्तक्षेप (ख) ध्वंसात्मक हस्तक्षेप
   (ग) आर्थिक हस्तक्षेप (घ) धार्मिक हस्तक्षेप

3.3 राज्य का उत्तरदायित्व

राज्य को अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत अधिकार तथा कर्तव्य प्रदान किए गए हैं। अधिकार तथा कर्तव्य आपस में एक–दूसरे से संबंधित हैं, इसलिए एक राज्य का अधिकार दूसरे राज्य के कर्तव्य होते हैं। यदि कर्तव्य पालन करने वाला राज्य अपने उन कर्तव्यों का उल्लंघन करता है, जो अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों द्वारा प्रावधानित हैं, तो वह उस राज्य के प्रति उत्तरदाई होता है, जिसके प्रति उसने अपने कर्तव्यों का उल्लंघन किया है। इसका तात्पर्य यह है कि जब अंतर्राष्ट्रीय विधि के किसी नियम द्वारा स्थापित कर्तव्य का उल्लंघन राज्य के किसी कृत्य या लोप द्वारा किया जाता है, तो वह उसके प्रति उत्तरदाई होता है, जिसके प्रति कार्य किया जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा तैयार किए गए प्रारूप के अनुच्छेद 1 में कहा गया है कि अनुच्छेद 2 के अंतर्गत राज्य प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय दोष कार्य के लिए उत्तरदाई होता है और यह सभी राज्यों पर लागू होता है। राज्य उत्तरदायित्व के नियम संधि अथवा रूढ़िगत नियमों से बने हैं। कोरजोफैक्ट्री (इंडिमनिटी) केस के निर्णय में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने कहा था कि "अंतर्राष्ट्रीय विधि का सिद्धांत है तथा विधि की सामान्य संकल्पना भी है कि वचनबद्धता का उल्लंघन करने वाला राज्य प्रति कर देने के लिए

उत्तरदाई है।" इसी प्रकार, कार्फू चैनल मामले में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने पाया कि अल्बानिया अपने राज्य क्षेत्रीय समुद्र में सुरंग को बिछाने के परिणामों के लिए उत्तरदाई है। न्यायालय ने कहा कि "यह गंभीर उपेक्षा अल्बानिया के अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को शामिल करती है।"

टिप्पणी

राज्य उत्तरदायित्व युद्ध तथा शांति दोनों ही स्थितियों में हो सकता है। जहां तक युद्ध के समय में राज्य उत्तरदायित्व का संबंध है, उसे हेग अभिसमय 1907 की भूमि पर युद्ध की विधियों तथा रूढ़ियों से संबंधित अनुच्छेद 3 के अधीन मान्यता दी गई है। यह प्रावधान करता है कि "युद्धरत पक्षकार, जो उक्त अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करते हैं, प्रति कर अदा करने के लिए दायी होंगे। वे अपने सशस्त्र बलों का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों द्वारा कारित सभी कार्यों के लिए दायी होंगे।" लेकिन शांति के दौरान राज्य उत्तरदायित्व को भूमिगत अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं किया गया है।

3.3.1 राज्य उत्तरदायित्व : प्रविधि एवं प्रकार

यद्यपि राज्य उत्तरदायित्व के विषय का अध्ययन 1928 में संहिता करण के लिए अंतर्राष्ट्रीय विधि संहिता करण सम्मेलन में प्रारंभ किया गया था किंतु समय के अभाव के कारण, यह अध्ययन को पूरा करने में असमर्थ रहा। इस विषय में संहिता करण के लिए अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग का ध्यान आकर्षित किया गया। 1949 में प्रथम सत्र में आयोग ने 14 विषयों की सामान्य सूची तैयार की, जो संहिता करण के लिए उपयुक्त थे।

इन विषयों में राज्य उत्तरदायित्व विषय भी शामिल था। महासभा ने 1953 में एक संकल्प स्वीकार करके आयोग से अनुरोध किया कि जब वह वांछनीय समझे, राज्य उत्तरदायित्व शासित करने वाली अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों का संहिताकरण करे। लेकिन समय के अभाव के कारण आयोग को प्रारंभिक रूप से इस विषय पर सामान्य तथा प्रारंभिक विचार विमर्श तक सीमित रहने के लिए विवश किया गया। बाद में महासभा के संकल्प का अनुसरण करते हुए आयोग ने प्राथमिकता देकर इस विषय पर विचार किया।

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1995 में एक संकल्प अंगीकार कर पहले तैयार किए गए अनुच्छेदों पर प्रगति करने का दबाव बनाया। सतत एवं कठोर प्रयासों के पश्चात राज्यों के अंतर्राष्ट्रीय दुष्कार्यों संबंधी उत्तरदायित्व प्रारूप के अनुच्छेदों को आयोग द्वारा 2001 में अंगीकार कर लिया गया। यह अनुच्छेद अंतर्राष्ट्रीय विधि के संहिता करण एवं विकास का मिलाजुला स्वरूप है। अंगीकृत संकल्प जिस के अंतर्गत प्रारूप के अनुच्छेदों का अत्यधिक महत्वपूर्ण होना इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा इन्हें कई मामलों में उदित किया जा चुका है।

राज्य उत्तरदायित्व के प्रकार

राज्य का उत्तरदायित्व दो प्रकार से उत्पन्न हो सकता है– या तो राज्य के स्वयं के कार्यों द्वारा या उसके अपने व्यक्तियों के कार्यों द्वारा। जब अंतर्राष्ट्रीय बाध्यता के उल्लंघन वाला कार्य राज्य की सरकार द्वारा देश पर अथवा उसके प्राधिकार से किसी

टिप्पणी

अन्य व्यक्ति द्वारा किया जाता है, तब कार्य को राज्य का कार्य कहा जाता है। ऐसे दोषपूर्ण कार्यों के लिए उसे उत्तरदाई ठहराया जाता है। राज्य अपने कार्यों के अतिरिक्त अन्य के कार्यों, जैसे अपने अभिकर्ता के, अपने नागरिकों के तथा ऐसे अन्य के जो उस राज्य क्षेत्र के अंतर्गत हैं, के लिए उत्तरदायी होता है। पहले प्रकार के राज्य उत्तरदायित्व को ओपनहाईम द्वारा 'मूल' उत्तरदायित्व तथा दूसरे प्रकार के उत्तरदायित्व 'प्रतिनिधिक' उत्तरदायित्व कहा गया है। यह सत्य है कि कार्यों के दोनों वर्गों के विधिक परिणाम समान नहीं होते किंतु राज्य उत्तरदायित्व के दोनों वर्गों के मध्य कोई मूलभूत अंतर नहीं है। प्रतिनिधिक दायित्व शब्द का प्रयोग निश्चित रूप से त्रुटिपूर्ण है। गैर सरकारी व्यक्तियों के कार्य के लिए राज्य उत्तरदायित्व को उचित रूप से प्रतिनिधिक नहीं कहा जा सकता। उन्हें प्रत्यक्ष तथा परोक्ष उत्तरदायित्व में विभाजित करना उचित है क्योंकि प्रत्यक्ष मामलों में राज्य स्वयं अपने कार्यों के लिए उत्तरदाई होता है, जबकि अप्रत्यक्ष मामलों में उत्तरदायित्व परोक्ष रूप से शामिल है।

राज्य के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष उत्तरदायित्व पर पृथक रूप से विचार करना आवश्यक है–

1. राज्य का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व

जब अंतर्राष्ट्रीय बाध्यता का उल्लंघन राज्य द्वारा किया जाता है, तब वह उसके प्रति उत्तरदाई हो जाता है जिसके अधिकार का उल्लंघन होता है। राज्य विधिक व्यक्ति है, इसलिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस के कार्य को राज्य का कार्य माना जाएगा। राज्य विभिन्न अंगों तथा अभिकर्मों के माध्यम से अपना कार्य करता है तथा यदि कोई दोषपूर्ण कार्य उनमें से किसी एक के द्वारा किया जाता है, तो राज्य उनकी ओर से सीधे उत्तरदाई हो जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा अंगीकृत प्रारूप के अनुच्छेद 4 के अनुसार राज्य के किसी अधिकारी अथवा उसके किसी अंग के आचरण को अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत राज्य द्वारा किया गया कार्य माना जाएगा चाहे वह अंग विधायकी, कार्यकारी, न्याय अथवा अन्य किसी शक्ति से संबंध रखता हो और चाहे उसके कार्य अंतर्राष्ट्रीय अथवा आंतरिक प्रकृति के हैं या वे राज्य के किसी भी संगठन में वरिष्ठ अथवा अधीनस्थ पद पर स्थित हों।

राज्यों के अपयवों के रूप में वर्गीकृत व्यक्ति अभिकरण को भी उत्तरदाई माना जा सकता है। जब वे सरकारी अधिकार के तत्वों के उपयोग किए जाने की शक्ति रखते हैं तथा किसी विशिष्ट मामले में उसी क्षमता में कार्यवाही करते हैं। सार्वजनिक कार्य न करने वाले व्यक्ति अथवा अभिकरण भी समान रूप से उत्तरदाई हो सकते हैं यदि वे राज्य के निर्देशों एवं नियंत्रण के अंतर्गत कार्य करते हैं।

ऐसे अंगों तथा अभिकरणों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं–

(क) अधिशासी तथा प्रशासनिक अंग

राज्य के प्रमुख या सरकार के प्रमुख द्वारा आदेशित या प्राधिकृत अन्य व्यक्ति द्वारा किए गए कार्य से जब अन्य राज्य को क्षति होती है, तब राज्य उनके कार्यों के लिए उत्तरदाई हो जाता है। ऐसे कार्यों को अंतर्राष्ट्रीय दोष कहा जाता है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय दोष या तो उच्चतर प्राधिकारियों द्वारा या गौण या अधीनस्थ अधिकारियों तथा कर्मचारियों

द्वारा कारित किया जाता है, यदि वे उच्चतर प्राधिकारी द्वारा सम आदेशित या प्राधिकृत है। राज्य पर उत्तरदायित्व अधिरोपित करने के लिए उच्चतर तथा अधीनस्थ पदाधिकारियों के मध्य अंतर का कोई महत्व नहीं है। पुलिस अधिकारी द्वारा हिंसा के अनुचित कार्य तथा अपराधी को दंडित करने के लिए उचित कदम न उठाने में भी राज्य का उत्तरदायित्व होगा।

अंतर्राष्ट्रीय दोष और अंतर्राष्ट्रीय अपराध

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय दोष अंतर्राष्ट्रीय अपराध से भिन्न है। अंतर्राष्ट्रीय दोषपूर्ण कार्य का परिणाम अंतर्राष्ट्रीय बाध्यता का उल्लंघन होता है, यदि वह अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के मूलभूत हितों के संरक्षण के संदर्भ संपूर्ण समुदाय द्वारा अपराध माना जाता है। यह कार्य अंतर्राष्ट्रीय अपराध होता है। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बनाए रखने के लिए उपनिवेशीय प्रभुत्व का निषेध या उपनिवेशीय प्रभुत्व को बल द्वारा बनाए रखने के लिए, मानव जाति के संरक्षण के आवश्यक महत्व की अंतर्राष्ट्रीय बाध्यता, जैसे दासता, मानव वध तथा रंगभेद, का बड़े पैमाने पर गंभीर उल्लंघन तथा मानवीय पर्यावरण के परिरक्षण को संरक्षित करने के लिए, अंतर्राष्ट्रीय बाध्यता, जैसे वातावरण या समुद्र के व्यापक प्रदूषण के निषेध का उल्लंघन अंतर्राष्ट्रीय अपराध के उदाहरण हैं। जो अंतर्राष्ट्रीय दोषपूर्ण कार्य अंतर्राष्ट्रीय अपराध नहीं है, वह अंतर्राष्ट्रीय उपचार है।

अंतर्राष्ट्रीय दोष संधियों के उल्लंघन द्वारा या बिना संधियों के उल्लंघन से हो सकता है। जहां तक संधियों से संबंधित उल्लंघन का संबंध है, जो राज्य इसे कारित करता है, वह उस राज्य के प्रति उत्तरदाई है, जिसे उल्लंघन के कारण क्षति हुई है। कोरजोफैक्ट्रीइंडिमनिटी वाद में स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने निर्णय दिया था कि "वचनबद्धता का उल्लंघन प्रतिकर देने की बाध्यता को शामिल करता है।"

राज्य को बिना संधियों के उल्लंघन के भी अन्य राज्यों के दोषपूर्ण कार्यों द्वारा क्षति पहुंचाई जा सकती है। इस प्रकार, राज्य को अनुचित मध्यक्षेप के माध्यम से उसकी स्वतंत्रता के संबंध में या किसी कार्य, जिससे उसके विदेश में रहने वाले नागरिकों में से किसी के शरीर या संपत्ति की सुरक्षा के अधिकारों के संबंध में क्षति कारित की जा सकती है।

वर्तमान समय में, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, करारोपण के संबंध में निजी संपत्ति के साथ दूरगामी मध्यक्षेप, नीति की सीमा, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सार्वजनिक उपयोगिता ने इसे अंतर्राष्ट्रीय विधि के विरुद्ध मानना कठिन बना दिया है। राष्ट्रीय नीति के अनुसार, सार्वजनिक प्रयोजन के लिए बिना भेदभाव के विदेशी संपत्ति का स्वामित्वहरण अवैध नहीं है। लेकिन विदेशी संपत्ति का स्वामित्व हरण अंतर्राष्ट्रीय विधि के विरुद्ध उस समय हो जाएगा, जब राज्य न्यायोचित, पर्याप्त तथा प्रभावी प्रतिकर की तत्काल अदायगी के लिए प्रावधान नहीं करता। विधि विरुद्ध विनियोजन के मामले में स्वामित्व हरण करने वाले राज्य को प्रतिकर के अतिरिक्त क्षतिग्रस्त पक्षकार द्वारा सहे गए किसी नुकसान के लिए नुकसानी अदा करनी चाहिए।

एक राज्य अन्य राज्य के प्रति तब उत्तरदाई नहीं होता, जब कार्य न तो जानबूझकर तथा दुर्भाव से और न ही अपराधिक उपेक्षा से किया गया हो। इस प्रकार, आत्मरक्षा में राज्य द्वारा कारित कार्य अंतर्राष्ट्रीय अपचार में नहीं होगा। ऐसे कार्यों के

टिप्पणी

लिए राज्य उत्तरदाई नहीं होगा, चाहे अन्य राज्यों के लिए यह जितना भी हानिकारक हो। यदि संबद्ध अधिकारी राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत प्राप्त क्षमता या प्राप्त किए हुए निर्देश के विरुद्ध कार्य करता है तो राज्य का उत्तरदायित्व समाप्त नहीं होता। यद्यपि कई न्याय विदों का यह विचार है कि जिन अधिकारियों ने अपने अधिकारों का अनुचित प्रयोग किया है, उनके लिए राज्य को जिम्मेदार ठहराना संभव नहीं है। फिर भी यह मत सही नहीं है, क्योंकि यदि इसे स्वीकार कर लिया जाए, तो राज्य उत्तरदायित्व के सभी नियम भ्रामक हो जाएंगे क्योंकि राज्य अधिकारी को दोषपूर्ण कार्य को करने के लिए कभी भी अनुदेश नहीं देते हैं या प्राधिकृत नहीं करते।

(ख) राजनयिक दूतों के कार्य

यद्यपि राजनयिक दूत उस राज्य में उन्मुक्तियों का उपभोग करते हैं, जहां वे भेजे जाते हैं तथा उस राज्य की अधिकारिता से मुक्त होते हैं, फिर भी राज्य उन क्षति पूर्ण कार्यों के लिए उत्तरदाई हो जाता है, जो उनके द्वारा अपने गृह राज्य के समादेश पर या प्राधिकार से किए जाते हैं। ऐसे क्षति पूर्ण कार्यों के लिए राजनयिक अभिकर्ताओं को व्यक्तिगत रूप से दोष नहीं दिया जाता है।

(ग) स्थलसेना तथा नौसेना के कार्य

राज्य स्थलसेना तथा नौसेना के क्षति पूर्ण कार्यों के लिए उत्तरदाई होगा, यदि कार्य को राज्य द्वारा समादेशित या प्राधिकृत किया गया है। इसके विपरीत, यदि कार्य राज्य के समादेश या प्राधिकार के बिना स्थलसेना तथा नौसेना द्वारा उनके शासकीय कार्यों के प्रयोग में कारित किया जाता है, तो इसे राज्य का कार्य नहीं माना जाएगा तथा इस प्रकार राज्य ऐसे कार्यों के लिए उत्तरदाई नहीं होगा। किंतु यदि सैनिक कोई भ्रांतिपूर्ण कार्य करते हैं या कोई दुस्साहसपूर्ण आचरण करते हैं, तो राज्य को उत्तरदाई माना जाएगा, भले ही वे राज्य द्वारा अधिकार प्राप्त न हों। सशस्त्र बलों की इकाई द्वारा भ्रांतिपूर्ण किंतु अभियोज्य कार्यवाही से उत्पन्न उत्तरदायित्व का उदाहरण 1983 में कोरिया के वाणिज्यिक वायुयान को मार गिराने की सोवियत कार्यवाही है।

(घ) न्यायपालिका के कार्य

राष्ट्रीय विधि का एक मूलभूत सिद्धांत है कि न्यायपालिका स्वतंत्र होती है। लेकिन यह अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से असंगत है। यदि न्यायालय कोई ऐसा निर्णय देता है, जो राज्य की अंतर्राष्ट्रीय बाध्यता के प्रतिकूल है, तो राज्य उत्तरदाई होगा। उदाहरण के लिए, रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा राजदूत के लिए सुनिश्चित उन्मुक्तियों को नामंजूर करने वाला विनिश्चय, जिसमें न्यायधीश अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्य राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता की सीमाओं का उल्लंघन करता है, या ऐसा विनिश्चय, जहां फरार अपराधी से प्रत्यर्पण संधि के प्रावधान के प्रतिकूल व्यवहार किया जाता है, ऐसे मामले हैं जहां, राज्य उत्तरदाई होता है। यदि न्यायालय संधियों को लागू करने तथा अर्थ में त्रुटि कारित करते हैं या संधि को कार्यान्वित करने से इनकार करते हैं, तो उनका निर्णय राज्य को संधि उल्लंघन में शामिल कर लेता है।

(ङ) संघ राज्यों की संघटक इकाई

अंतर्राष्ट्रीय विधि का सामान्य रूप से स्वीकृत सिद्धांत है कि संघ राज्य अपनी संगठन इकाइयों के दोषपूर्ण कार्यों के लिए उत्तरदाई होता है। संघ राज्य यह कह कर अपने

उत्तरदायित्व से नहीं बच सकता कि उसकी अपनी संगठन इकाइयों पर नियंत्रण की संवैधानिक शक्ति पर्याप्त नहीं है। लेकिन यदि संघ का सदस्य राज्य अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व धारण करता है, तो सदस्य राज्य अपने आचरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय रूप से उन कार्यों के क्षेत्र के अंतर्गत पृथक्करणीय होगा, जिसके लिए उसका अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व है। लेकिन ऐसे मामले में भी यदि सदस्य राज्य संघ राज्य के नियंत्रण तथा निर्देशन के अधीन बना रहता है तो संघ राज्य सदस्य राज्य के आचरण के लिए उत्तरदाई होगा।

टिप्पणी

2. राज्य का अप्रत्यक्ष उत्तरदायित्व

राज्य का उत्तरदायित्व अपने नागरिकों तथा अपनी अधिकारिता के अंतर्गत रहने वाले विदेशी नागरिकों को ऐसे कार्यों को करने से रोकना है, जो अन्य राज्यों के प्रति क्षतिकारी हों। यदि कोई दोषपूर्ण कार्य व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा किया जाता है, तो वह राज्य उनके कार्यों के लिए उत्तरदाई है जिससे वे संबंधित हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा अंगीकृत प्रारूप के अनुच्छेद 5 के अनुसार राज्य के किसी व्यक्ति या इकाई द्वारा किया गया कृत्य यदि उसको राज्य के द्वारा अधिकृत किया गया है तब ऐसे कृत्य को राज्य का कृत्य समझा जाएगा और उसके लिए राज्य उत्तरदाई होगा। ऐसे उत्तरदायित्व को अप्रत्यक्ष उत्तरदायित्व कहा जाता है क्योंकि राज्य न केवल अपने अंगों के दोषपूर्ण कार्यों के लिए बल्कि अपने व्यक्तियों के कार्यों के लिए भी उत्तरदाई है। ऐसे मामलों में, राज्य का उत्तरदायित्व अपने लोगों के लिए या अपने अंगों की सम्यक चेतना के लिए उत्पन्न होता है, यदि वह उन्हें निवारण करने में असमर्थ होता है।

व्यक्तियों के दोषपूर्ण कार्यों के लिए राज्य का उत्तरदायित्व निम्न प्रकार से हो सकता है–

(क) सामूहिक हिंसा

राज्य व्यक्तियों के समूह द्वारा या भीड़ द्वारा की गई क्षति के लिए उत्तरदाई होता है। सामूहिक हिंसा के लिए राज्य का उत्तरदायित्व दो प्रकार से उत्पन्न हो सकता है। पहला, राज्य उस स्थिति में उत्तरदाई होगा, यदि युक्तियुक्त पूर्व सावधानी बरतने में या निवारक कार्य करने में पर्याप्त उपेक्षा के कारण सामूहिक हिंसा द्वारा विदेशी सार्वजनिक या व्यक्तिगत संपत्ति को क्षति कारित की जाती है। दूसरे शब्दों में, राज्य का उत्तरदायित्व वहां उत्पन्न होता है जहां राज्य सामूहिक हिंसा को रोकने के लिए सम्यक संचेतना का प्रयोग नहीं करते।

दूसरा, राज्य वहां भी उत्तरदाई है, जहां सामूहिक हिंसा उसके अंगों की तटस्थ प्रवृत्ति के कारण होती है अर्थात यदि दोषपूर्ण कार्य उसके अंगों की अव्यक्त अनुभूति से किया जाता है। उत्तरदायित्व साबित करने के लिए, यह प्रमाणित करना होता है कि हिंसा राज्य की अप्रत्यक्ष अनुमति के कारण हुई।

(ख) विद्रोह तथा गृहयुद्ध में हिंसा

राज्य गृहसंघर्ष के परिणामस्वरुप अन्यदेशीय को हुई क्षति के लिए उत्तरदाई होता है। यह सिद्धांत इस अवधारणा पर आधारित है कि राज्य का यह कर्तव्य है कि वह सम्यक संचेतना द्वारा अपने राज्य क्षेत्र पर क्रांतिकारी हिंसापूर्ण कार्यों को न होने दें।

टिप्पणी

(ग) निगम के कार्यों के लिए राज्य का उत्तरदायित्व

विधिक व्यक्ति, जैसे निगम, व्यक्तियों की तरह उस राज्य की राष्ट्रीयता धारण करते हैं जो उन्हें प्रदान किया जाता है। इस प्रकार, राज्य निगमों के दोषपूर्ण कार्य के लिए उनकी राष्ट्रीयता के आधार पर उत्तरदाई होते हैं। निगम की राष्ट्रीयता की पहचान के संबंध में वहां कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती जहां कंपनी का निगमन और मुख्यालय एक ही राज्य में होता है तथा जिसके अधिकतर धारक उसी राज्य के होते हैं।

राज्य, उस राज्य के प्रति उत्तरदाई होता है जिसके अधिकार का उल्लंघन किया गया हो लेकिन राज्य का उत्तरदायित्व केवल राज्यों तक ही सीमित नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्य विषय भी राज्य के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीय दावा कर सकते हैं, यदि राज्य हानिकर कार्य करता है।

3.3.2 राज्य उत्तरदायित्व के परिणाम

जब कोई राज्य अन्य राज्य को क्षति पहुंचाने वाला कार्य करता है, तब उसे अंतर्राष्ट्रीय बाध्यताओं के उल्लंघन के लिए आवश्यक उत्तरदायित्व को पूरा करना होता है। अंतर्राष्ट्रीय विधि में उत्तरदायित्व पूरा करने का कार्य सामान्यतः क्षतिपूर्ति द्वारा किया जाता है। फैक्ट्रीवाद में स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने निर्णय दिया था कि अंतर्राष्ट्रीय विधि का सिद्धांत है कि वचनबद्धता का भंग पर्याप्त रूप में क्षतिपूर्ति करने की बाध्यता को शामिल करता है।

शब्द क्षतिपूर्ति सामान्य शब्द है तथा राज्य के ऐसे उत्तरदायित्व के पालन या उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिए उपलब्ध विभिन्न ढंगों को शामिल करता है। सामान्य रूप से यह प्रत्यास्थापन या क्षतिपूर्ति या समाधान द्वारा हो सकता है।

(क) प्रत्यास्थापन

वस्तु रूप में प्रत्यास्थापन का तात्पर्य स्थिति को पुनर्स्थापित करने से है, जो अस्तित्व में होती, यदि दोषपूर्ण कार्य या लोप न कारित किया गया होता। इस मामले में गुण–दोष पर निर्भर करता है कि किस प्रकार का कार्य राज्य द्वारा किया जाएगा।

(ख) क्षतिपूर्ति

क्षतिपूर्ति केवल तब दी जाती है जब प्रतिकर का सामान्य रूप प्रत्यास्थापन संभव नहीं है। प्रतिकर के रूप में क्षतिपूर्ति को अंतर्राष्ट्रीय विधि का सिद्धांत माना गया है। फैक्ट्रीवाद में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने कहा है कि "अंतर्राष्ट्रीय विधि का यह सिद्धांत है कि दोष का प्रतिकर क्षतिपूर्ति को शामिल करता है। यह क्षतिपूर्ति का अत्यधिक सामान्य रूप भी है।" क्षतिपूर्ति का विस्तार वाद के गुण–दोष पर निर्भर करता है।

(ग) समाधान

समाधान की परिभाषा किसी ऐसे उपाय के रूप में दी जा सकती है, जिसे कर्तव्य का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति विधि के अधीन या विवाद के पक्षकारों के मध्य करार के अधीन अपनाने के लिए बाध्य हैं तथा जो प्रत्यास्थापन या प्रतिकर के अतिरिक्त है। प्रतिकर के रूप में समाधान को उन मामलों में उपयुक्त माना जाता है, जहां राज्य की गरिमा या व्यक्तित्व को क्षतिग्रस्त किया गया है। ऐसे मामलों में मूर्त क्षति उपलब्ध नहीं

होती थी, इसलिए राज्य ऐसा कार्य करता है जो अन्य राज्य को संतुष्ट कर सके। ऐसे कार्यों में शासकीय खेद प्रदर्शन तथा क्षमा याचना शामिल हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. राज्य उत्तरदायित्व का अप्रत्यक्ष रूप इनमें से क्या नहीं है?
   (क) सामूहिक हिंसा (ख) विद्रोह
   (ग) निगम के कार्य (घ) विश्वयुद्ध में हिंसा
4. अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धांत के अनुसार 'वचनबद्धता का भंग' में क्षतिपूर्ति की बाध्यता शामिल है–
   (क) आंशिक रूप में (ख) पर्याप्त रूप में
   (ग) आधी (घ) दोगुनी

टिप्पणी

3.4 राज्य क्षेत्र का अधिग्रहण तथा हानि

एक राज्य द्वारा राज्य क्षेत्र के अर्जन का अर्थ राज्य क्षेत्र पर प्रभुत्व संपन्नता के अर्जन से है। राज्य उस राज्य क्षेत्र को अर्जित कर सकता है जो पहले से ही किसी अन्य राज्य की प्रभुत्व संपन्नता के अधीन हो या जो किसी राज्य से संबंधित न हो अर्थात राज्य क्षेत्र स्वामीहीन हो। जब अर्जन ऐसे क्षेत्र का किया जाता है जो किसी अन्य राज्य का है तो एक राज्य का क्षेत्र बढ़ जाता है तथा किसी अन्य राज्य के राज्य क्षेत्र की हानि होती है। जब अर्जित किया हुआ क्षेत्र किसी राज्य का नहीं होता तो अर्जन को मूल प्रकार कहा जाता है जिसमें एक राज्य के राज्य क्षेत्र का विस्तार होता है किंतु अन्य राज्य के राज्य क्षेत्र की हानि नहीं होती है। उक्त दोनों प्रकार का अर्जन सामान्य स्वामित्व के क्षेत्र अर्थात उस क्षेत्र से भिन्न है जिसे विधि पूर्वक अर्जित नहीं किया जा सकता जैसे खुले समुद्र या बाह्य अंतरिक्ष ऐसे क्षेत्रों पर स्वामित्व नहीं हो सकता।

3.4.1 राज्य क्षेत्रअर्जन प्रक्रिया

राज्य निम्नलिखित प्रकार से राज्य क्षेत्र को अर्जित कर सकते हैं–

(1) अधिभोग

अधिभोग शब्द की उत्पत्ति रोमन शब्द आक्यूपेशियो (occupatio) से हुई है, जिसका अर्थ होता है स्वामीहीन क्षेत्र का अर्जन, अर्थात ऐसा क्षेत्र जो राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व संपन्नता के अधीन लाए जाने योग्य है किंतु लाया नहीं गया है। इसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय विधि में अधिभोग का अर्थ ऐसे क्षेत्र को किसी राज्य द्वारा अर्जित करना है, जिस पर किसी अन्य राज्य की प्रभुत्व संपन्नता नहीं है। ऐसा क्षेत्र गैर आवासीय हो सकता है जैसे द्वीप या आवासीय हो सकता है किंतु उनके समुदाय को राज्य नहीं माना जाता। ऐसे क्षेत्रों के उदाहरण हैं– ब्रिजाविका, बारिना तथा लीबरलैंड (अप्रैल 13, 2015 तक)। अधिभोग ऐसे क्षेत्र पर भी हो सकता है जिसको किसी अन्य राज्य ने अपनी प्रभुत्व संपन्नता से मुक्त कर दिया है।

टिप्पणी

ईस्टर्न ग्रीनलैंड के मामले में जिसमें नॉर्वे द्वारा ग्रीनलैंड के पूर्वी भाग के अधिभोग के संबंध में नॉर्वे और डेनमार्क के बीच विवाद उत्पन्न हुआ था और स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने निर्णय दिया था कि अधिभोग को प्रभावी होने के लिए उसमें दो तत्वों का होना आवश्यक है। प्रथम, उसमें आशय अर्थात राज्य की ओर से राज्य क्षेत्र को भी नियोजित करने और उस पर प्रभुत्व संपन्नता को स्थापित करने का आशय होना चाहिए। अन्य राज्यों को वर्जित करके स्थाई रूप से अपने राज्य क्षेत्र के रूप में उसे मानने का आशय आवश्यक है। राज्य के आशय का अनुमान क्षेत्र पर उसके व्यक्तियों द्वारा कार्य और प्राधिकृत कार्यों से नहीं लगाया जा सकता। उदाहरणार्थ यदि दावेदार राज्य के मछुआरे किसी गैर आवासीय क्षेत्र में बस जाते हैं तो इसे राज्य की ओर से कब्जा ग्रहण करने के आशय के रूप में नहीं माना जाएगा। फिशरीज मामले में यह कहा गया था कि निजी व्यक्तियों के स्वतंत्र कार्यों का कम महत्व है यदि यह दर्शित नहीं किया जा सकता कि उन्होंने अपनी सरकार से प्राप्त अनुज्ञप्ति या कुछ अन्य प्राधिकार के अनुसरण में कार्य किया है या कुछ अन्य प्रकार से उनकी सरकार ने उन के माध्यम से अधिकारिता की घोषणा की है। दूसरे, किसी क्षेत्र को अर्जित करने वाले राज्य को कब्जा धारण करना चाहिए। कब्जा धारण करना, कार्य या कार्यों की शृंखला को सम्मिलित करना, जिसके द्वारा अधिभोग होगा। राज्य क्षेत्र का कब्जा धारण करता है तथा महा प्राधिकार का प्रयोग करने के लिए कदम उठाता है। यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि अर्जित क्षेत्र के संपूर्ण या उसके एक भाग पर कब्जा होना चाहिए। सामान्यतः क्षेत्र के किसी एक भाग पर कब्जा सभी क्षेत्रों का कब्जा माना जाता है।

इन दोनों शर्तों का अधिभोग के सभी मामलों में पूर्ण किया जाना आवश्यक है। ओपन हाइक के अनुसार इन शर्तों के अतिरिक्त कब्जा किए गए क्षेत्र पर किसी प्रकार का प्रशासन भी नियुक्त करना चाहिए जिससे यह दर्शित हो सके कि क्षेत्र वास्तव में नए कब्जाधारी द्वारा धारण किया जा चुका है। राज्य प्रशासनिक नियंत्रण आपराधिक तथा दीवानी विधि को प्रवर्तित करके किया जा सकता है। अतः अर्जित किए हुए राज्य क्षेत्र में प्रशासन के रूप तथा साधन को प्रभावी होना चाहिए। पर्याप्त प्रशासन आवश्यक होना प्रतीत होता है क्योंकि इसमें स्थिरता तथा स्थायित्व के तत्व होते हैं जो अस्थाई अधिभोग से भिन्न होते हैं। इस प्रकार लिए गए क्षेत्र के लिए अन्य राज्यों को अधिसूचना दिया जाना आवश्यक नहीं है। जैसे ही राज्य द्वारा क्षेत्र का अधिभोग किया जाता है, वैसे ही क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के अंतर्गत आ जाते हैं क्योंकि वे अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हो जाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप, कोई अन्य राज्य ऐसे क्षेत्र का अधिक भोग नहीं कर सकते, जब तक कि अधिभोगी राज्य ऐसे क्षेत्र से अपनी प्रभुत्व संपन्नता को समाप्त नहीं कर लेता या उस पर अपना नियंत्रण खो नहीं देता।

न्यू मूर द्वीप का क्षेत्रफल 12 किलोमीटर है, जो बंगाल की खाड़ी की गंगा ब्रह्मपुत्र घाटी में भारत–बांग्लादेश की सीमा पर स्थित है। इस द्वीप को भारत द्वारा पूर्व भाषा तथा बांग्लादेश द्वारा दक्षिणी तिलपट्टी कहा जाता है। इस द्वीप के भारतीय अधिभोग के दावे पर भारत–बांग्लादेश के बीच विवाद है। भारत द्वारा इस द्वीप के अपने पूर्ण अधिभोग में होने के संबंध में तर्क दिया गया है कि उसने अधिभोग के विषय में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा यूनाइटेड किंग्डम को सन 1971 में अधिसूचित कर दिया था। यद्यपि इस प्रकार अधिभोग में लिए गए क्षेत्र के लिए अन्य राज्यों को अधिसूचना

देना आवश्यक शर्त नहीं है इसके उपरांत भी यह उसके आशय को दर्शित करने तथा उसकी प्रभुत्व संपन्नता के विषय में संदेह को दूर करने के लिए किया गया था। न्यू मूर द्वीप का विवाद स्थाई मध्यस्थम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था जिसमें 7 जुलाई, 2014 को यह विनिश्चय किया गया कि बांग्लादेश द्वारा समुद्र की सीमा नापने का मापदंड उचित नहीं है। यद्यपि द्वीप वर्तमान में समुद्री तह के नीचे चला गया है किंतु यदि भविष्य में यह फिर से द्वीप का रूप धारण कर लेता है तो स्थाई मध्यस्थम न्यायालय के अनुसार यह भारत के क्षेत्र अधिकार में रहेगा।

टिप्पणी

(2) उपाबद्ध

जब एक राज्य अन्य राज्य के राज्य क्षेत्र को बलपूर्वक अर्जित करता है तब उसे उपाबद्ध कहते हैं। अर्जित किया गया राज्य क्षेत्र दूसरे राज्य का एक भाग हो सकता है या उसका पूरा राज्य क्षेत्र भी हो सकता है। अर्जित राज्य क्षेत्र में प्रभुत्व संपन्नता स्थापित किया जाना आवश्यक है। राज्य क्षेत्र के अर्जन के अन्य प्रकारों से उपाबद्ध इसलिए भिन्न है क्योंकि इसमें अर्जन बल के माध्यम से किया जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि अर्जित राज्य क्षेत्र पर कब्जा किया गया हो तथा उसे स्थाई रूप से विनियोजित करने की आशा भी दर्शित की गई हो। आशय को राज्य क्षेत्र से उपाबद्ध करने के लिए कुछ अधिसूचना जारी करके निर्दिष्ट किया जा सकता है तथा कई अन्य राज्यों द्वारा मान्यता भी प्रदान की जानी चाहिए। जब तक राज्य क्षेत्र को उपाबद्ध करने के आशय को निर्दिष्ट नहीं किया जाता है, तब तक अर्जित राज्य क्षेत्र को सैनिक अधिभोग कहा जाएगा। जब अधिभोग तथा आशय के तत्व उपस्थित हों, तब उपाबद्ध को पूर्ण हुआ माना जा सकता है या माना जाता है।

उपाबद्ध तथा संयुक्त राष्ट्र

उपाबद्ध वह तरीका है जिसके माध्यम से कमजोर राज्यों को दखल द्वारा या गुलाम बनाकर अपने राज्य क्षेत्र का विस्तार करने का प्रयत्न करने वाले शक्तिशाली राज्यों द्वारा कमजोर राज्यों का राज्य क्षेत्र अर्जित किया जाता है। किंतु संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के उपरांत विजय द्वारा राज्य क्षेत्र का अर्जन अवैध हो गया है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2 के परिच्छेद 4 में वर्णित किया गया है कि सदस्य राज्य किसी राज्य की राज्य क्षेत्रीय अखंडता या राजनीतिक स्वाधीनता के विरुद्ध किसी ऐसी रीति से, जो संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजनों से असंगत हो बल प्रयोग नहीं करेंगे। पुनः महासभा द्वारा 1970 में स्वीकृत मैत्रीपूर्ण संबंधित सिद्धांत घोषणा स्पष्ट करता है कि किसी राज्य का राज्य क्षेत्र बल की धमकी या बल के प्रयोग के फलस्वरूप अन्य राज्य द्वारा अर्जन का विषय नहीं होगा। किंतु यदि कोई राज्य अन्य राज्य के राज्य क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लेता है तो बल के प्रयोग या धमकी के परिणामस्वरुप राज्य क्षेत्रीय अर्जन को वैध रूप से मान्यता प्रदान नहीं की जाएगी क्योंकि यह राज्य क्षेत्र का उपाबद्ध चार्टर के अनुच्छेद 2 के परिच्छेद 4 का उल्लंघन होगा। 14 दिसंबर, 1974 को स्वीकृत महासभा संकल्प आक्रमण की परिभाषा अनुच्छेद 5 के परिच्छेद 3 के अधीन अधिकृत करती है कि आक्रमण के फलस्वरूप किसी राज्य क्षेत्रीय अर्जन या विशेष लाभ को वैध रूप में मान्यता नहीं दी जाएगी। इसी प्रकार 1988 में महासभा द्वारा स्वीकृत अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में बल के प्रयोग या धमकी से प्रविरत रहने के सिद्धांत की प्रभावकारिता को अभिवृद्धि

की घोषणा में प्रावधान किया गया है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के उल्लंघन में बल के प्रयोग या धमकी के फलस्वरूप राज्य क्षेत्र के अर्जन को विधिक अर्जन के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की जाएगी।

टिप्पणी

इसका अर्थ यह है कि बल प्रयोग के फलस्वरूप राज्य क्षेत्र का अर्जन उस समय अवैध नहीं माना जा सकता जब यह संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों से असंगत नहीं होता, उदाहरणार्थ, यदि कोई राज्य अनुच्छेद 2 के परिच्छेद 4 के उल्लंघन में अपने विरुद्ध प्रयोग किए गए सशस्त्र बलों को रोकने के लिए आत्मरक्षा में कार्य करता है तब वह आक्रमणकारी के किसी राज्य क्षेत्र को अर्जित कर सकता है, जिसका वह युद्ध के दौरान अधिग्रहण करता है।

इराक द्वारा कुवैत का उपाबद्ध

अगस्त 1990 में आक्रमण तथा बल के प्रयोग से कुवैत के उपाबद्ध के बाद इराक ने कुवैत को अपने राज्य में विलीन कर लिया था। तदोपरांत सुरक्षा परिषद ने संकल्प पारित किया कि किसी भी प्रकार से चाहे जो भी कारण हो इराक द्वारा कुवैत के उपाबद्ध की कोई विधिक वैधता नहीं है तथा इसे अकृत तथा शून्य माना जाएगा। परिषद ने मांग की थी कि इराक कुवैत को उपाबद्ध करने के लिए की गई अपनी कार्यवाही को समाप्त करे। इसमें सभी राज्यों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों तथा विशिष्ट अभिकरणों से इस उपाबद्ध को मान्यता न देने तथा ऐसी किसी कार्यवाही अथवा संव्यवहार से अलग रहने को कहा गया था, जिसकी विवेचना उपाबद्ध की अप्रत्यक्ष मान्यता के रूप में की जा सकती है।

(3) अनुवृद्धि

अनुवृद्धि जलाधीन भूमि के उद्‌भव से हुई अभिवृद्धि को कहा जाता है। नया निर्माण केवल विद्यमान नए राज्य क्षेत्र का अंतरण हो सकता है, जैसे– जहां नदी के अंतर्गत या नदी के भाग में किसी द्वीप का निर्माण होता है जो पूर्णतया एक तथा उसी राज्य के राज्य क्षेत्र के अंतर्गत है और ऐसे मामलों में, भूमि की अनुवृद्धि के समान रूप होने के लिए राज्य क्षेत्र में कोई अभिवृद्धि नहीं होती। दूसरी ओर जलाधीन भूमि के अस्तित्व में आने से वास्तव में उस राज्य के राज्य क्षेत्र में विस्तार हो जाता है, जिसमें वह अस्तित्व में आती है। अंतर्राष्ट्रीय विधि का यह रूढ़िगत नियम है कि यदि नए निर्माण के माध्यम से राज्य क्षेत्र में कोई वृद्धि होती है तो संबद्ध राज्य की प्रभुत्व संपन्नता उस पर बिना किसी विशेष प्रयास के स्वतः हो जाती है।

अनुवृद्धि के माध्यम से नई भूमि का उद्‌भव कृत्रिम या प्राकृतिक हो सकता है। यह कृत्रिम तब होता है जब यह मानवीय कार्य का परिणाम हो। यह तब प्राकृतिक माना जा सकता है जब यह प्रकृति के कार्य द्वारा होता है। प्राकृतिक भूमि के उद्‌भव के विभिन्न प्रकारों को निम्न प्रकार से वर्णित किया जा सकता है– केवल कछारी भूमि, नव उत्पन्न द्वीप तथा परित्यक्त नदी तल।

(4) चिरभोग

चिरभोग का तात्पर्य शांतिपूर्वक बहुत अधिक समय तक निरंतर प्रतिकूल कब्जे द्वारा राज्य क्षेत्र का अर्जन होता है। यदि कोई राज्य शांतिपूर्वक, निरंतर, बहुत अधिक समय तक किसी राज्य क्षेत्र पर नियंत्रण रखता है तथा वस्तुतः उस पर कब्जा रहता है, तो

संबंधित राज्य क्षेत्र उस राज्य का भाग हो जाता है। इस व्यवस्था को चिरभोग कहा जाता है।

चिरभोग के माध्यम से राज्य क्षेत्र के अर्जन से पूर्व तीन शर्तों को पूर्ण करने की अपेक्षा की जाती है। प्रथम, राज्य क्षेत्र का कब्जा शांतिपूर्ण व बिना किसी व्यवधान के होना चाहिए। द्वितीय, कब्जा निरंतर होना चाहिए, तथा तृतीय, कब्जा बहुत अधिक समय तक उचित रूप से रहना चाहिए।

टिप्पणी

अवधि भिन्न–भिन्न मामलों में भिन्न–भिन्न हो सकती है जो उनके गुणदोष पर आधारित है। इस प्रकार अपेक्षित अवधि वह मामला है, जिसका विनिश्चय अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय या अधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिए, जिसके समक्ष कोई विशिष्ट मामला न्याय निर्णयन के लिए लाया जाता है।

(5) अध्यर्पण

अध्यर्पण एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य के निश्चित राज्य क्षेत्र पर प्रभुत्व संपन्नता का हस्तांतरण है। जिस राज्य को राज्य क्षेत्र का हस्तांतरण किया जाता है, उसे अर्जनकर्ता राज्य कहा जाता है तथा जो राज्य अपने राज्य क्षेत्र का हस्तांतरण करता है, उसे अध्यर्पणकर्ता राज्य कहा जाता है। अंतर्राष्ट्रीय विधि अध्यर्पण के किसी विशिष्ट तरीके को विहित नहीं करती। किंतु अध्यर्पण के महत्वपूर्ण लक्षणों में से एक यह है कि अध्यर्पणकर्ता तथा अर्जनकर्ता राज्यों को राजी होना चाहिए तथा हस्तांतरण अध्यर्पणकर्ता तथा अर्जनकर्ता राज्यों के मध्य संविदा के माध्यम से प्रभावी होना चाहिए। राज्य को अध्यर्पित करने की संधि का निर्माण दो प्रकार से किया जा सकता है– प्रथम, यह शांतिपूर्ण वार्ता का परिणाम हो सकता है, जैसे विक्रय तथा दूसरा, उस युद्ध का परिणाम हो सकता है जिसकी परिणति शांति भंग में हो। भारत द्वारा फ्रांसीसी राज्य क्षेत्रों जैसे चंदननगर, पांडिचेरी, कारीकल तथा यमन का अर्जन शांतिपूर्ण अध्यर्पण के उदाहरण हैं। ये राज्य क्षेत्र संधियों के निर्माण में परिणित होने वाले शांतिपूर्वक वार्ताओं के उपरांत फ्रांस द्वारा भारत को अध्यर्पित किए गए थे।

अध्यर्पण तथा पट्टा

राज्य क्षेत्र का अध्यर्पण पट्टा द्वारा भी हो सकता है, किंतु पट्टे के सभी मामले अध्यर्पण की श्रेणी में नहीं आते। विशेष पट्टा अध्यर्पण है या साधारण अनुज्ञप्ति, यह ऐसा प्रश्न है जिसका विनिश्चय संधि के पक्षकारों के आशय से किया जाता है। अभिलेख में केवल पट्टा या शाश्वत पट्टा शब्दों के प्रयोग को भी पट्टा नहीं माना जा सकता, यदि पक्षकारों का आशय स्पष्ट रूप से वैसा नहीं है, जिसमें साधारण पट्टा शब्द का प्रयोग किया जाता है।

प्रभुत्व संपन्न राज्य को पट्टे की स्वीकृति द्वारा अन्य राज्य के पक्ष में अपने राज्य क्षेत्र के भाग पर अस्थाई प्रभुत्व संपन्नता को प्रदान करने का अधिकार है। ऐसे मामले में पट्टाधारी राज्य द्वारा अस्थाई प्रबुद्ध संपन्नता का प्रयोग किया जाता है, जबकि पट्टादाता प्रत्यावर्तन में प्रभुत्व संपन्नता को धारण करता है। अस्थाई प्रभुत्व संपन्नता के अंतरण का उदाहरण 1898 में चीन द्वारा ब्रिटेन को हांगकांग का 99 वर्ष की अवधि के लिए पट्टा है। पट्टा 1997 में समाप्त हो गया तथा इसके उपरांत राज्य क्षेत्र चीन को प्राप्त

हो गया। 19 दिसंबर, 1984 को चीन को प्रभुत्व संपन्नता हस्तांतरित करने के लिए व्यवस्था करने हेतु आंग्ल–चीनी संविदा किया गया था।

युद्ध तथा अध्यर्पण

टिप्पणी

युद्ध के फलस्वरूप भी राज्य क्षेत्र के अध्यर्पण हेतु संधि की जा सकती है। सामान्य दृष्टिकोण से अध्यर्पण के मामले उपाबद्ध के समान ही होते हैं किंतु दोनों के मध्य कुछ भिन्नता भी होती हैं। अध्यर्पण में युद्ध के उपरांत शांति संधि की जाती है किंतु उपाबद्ध के मामलों में ऐसी कोई संधि विजयी राज्य तथा पराजित राज्य के मध्य नहीं की जाती है। जब गोवा और भारतीय प्रायद्वीप में स्थित अन्य पुर्तगाली राज्य क्षेत्रों में उन्हें स्वतंत्र कराने हेतु 1961 में भारत द्वारा सैनिक कार्यवाही की गई थी तब भारत द्वारा बल प्रयोग को कई राज्यों द्वारा उक्त राज्य क्षेत्रों का उपबंध माना गया था तथा इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रावधानों का उल्लंघन माना गया था। किंतु यह मामला इस कारण अर्पण का है क्योंकि गोवा, दमन, दीव तथा दादरा नागर हवेली पर भारतीय प्रभुत्व संपन्नता को मान्यता देने के लिए भारत तथा पुर्तगाल के मध्य 31 दिसंबर, 1974 को एक संधि की गई। संधि के अनुच्छेद 1 के अनुसार पुर्तगाल इन राज्य क्षेत्रों पर भारत की पूर्ण प्रभुत्व संपन्नता को उस तिथि से प्रभावी मानता है जब यह भारत के संविधान के अधीन भारत के भाग हो गए थे। पुर्तगाल ने 15 अक्टूबर, 1974 को एक विधि भी अंगीकृत की थी जिसके द्वारा उसने पूर्वक राज्य क्षेत्रों को पुर्तगाल के संविधान से हटा दिया था।

(6) पंचाट

राज्य क्षेत्र न्यायिक निकाय जैसे अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय तदर्थ माध्य अधिकरण या समझौता आयोग द्वारा न्याय निर्णयन के माध्यम से भी राज्य द्वारा अर्जित किए जा सकते हैं। यदि किसी राज्य क्षेत्र जो एक राज्य का भाग है तथा बाद में अन्य राज्य द्वारा आपत्ति उठाए जाने के उपरांत समझौते के लिए न्यायिक निकाय को सौंपा जाता है जो दूसरे राज्य के पक्ष में अध्ययन करते हैं तो इसको पंचायत के माध्यम से हस्तांतरित हुआ माना जाता है किंतु जहां सीमा विवाद के समायोजन या समझौते के अनुसरण में न्यायिक निकाय द्वारा एक राज्य के भाग को दूसरे राज्य को प्रदान किया जाता है, वहां मामला राज्य क्षेत्र के अर्जन के समान नहीं होता। इस प्रकार सामान्य रूप से कच्छ पंचाट के रूप में ज्ञात अधिकरण के अधीन निर्णय के अनुसार पाकिस्तान को कच्छ के रण के 350 वर्ग मील का अंतरण पाकिस्तान द्वारा राज्य क्षेत्र का अर्जन नहीं है। अधिकरण को विवाद को सौंपते समय दोनों पक्षकार इस बात पर सहमत हुए थे कि इस क्षेत्र में पाकिस्तान तथा भारत के मध्य सीमा–रेखा ठीक प्रकार से निश्चित नहीं है। इस प्रकार पंचायत के अधीन निर्णय के अनुसरण में पाकिस्तान को क्षेत्र का अंतरण सीमा विवाद के समझौते के कारण हुआ माना जा सकता है। यह अंतरण भारतीय संविधान में किसी संशोधन की अपेक्षा भी नहीं करता।

(7) जनमत संग्रह

एक राज्य, राज्य क्षेत्र का अर्जन उस समय भी कर सकता है, जब किसी राज्य क्षेत्र के निवासी अन्य राज्य में विलय की इच्छा रखते हैं। निवासियों की इच्छाओं को

सुनिश्चित करने का प्रश्न वहां उत्पन्न होता है जहां किसी राज्य क्षेत्र की स्थिति के संबंध में विवाद हो। प्रथम विश्व युद्ध के बाद 28 मई, 1919 की वर्साय संधि के अनुच्छेद 32–34 के अनुसरण में जनमत संग्रह 1920 में यू कैन तथा माल मेडी के क्षेत्र में किया गया तथा 20 सितंबर, 1920 को यह क्षेत्र बेल्जियम को दे दिया गया था। जनमत संग्रह 1935 में सार बेसिन में किया गया, जिसमें नागरिकों के बहुमत ने जर्मनी के साथ एकीकरण के पक्ष में मतदान किया, जिसे 1 मार्च, 1935 को पूर्ण किया गया।

टिप्पणी

3.4.2 राज्य क्षेत्रअधिग्रहण से हानि

एक राज्य द्वारा राज्य क्षेत्र का अर्जन, अधिभोग के मामले के अतिरिक्त, अन्य राज्य के लिए राज्य क्षेत्र की हानि होती है। इस प्रकार राज्य (i) अध्यर्पण, (ii) अनुवृद्धि, (iii) अधीनीकरण, (iv) चिरभोग,(v) एवं (vi) जनमत संग्रह द्वारा राज्य क्षेत्र को खो सकता है। उक्त के अतिरिक्त एक राज्य को निम्नलिखित अन्य प्रकार से भी राज्य क्षेत्र संबंधी हानि हो सकती है–

(क) विलग्नता – विलग्नता के मामले में एक राज्य अपने राज्य क्षेत्र के एक भाग को खो देता है जिसका अन्य राज्य द्वारा तत्समान अर्जन नहीं किया जाता। ऐसे मामलों में, विलग्नता के बाद, अलग होने वाला भाग नए व पृथक अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व को प्राप्त कर लेता है। विलग्नता या तो शांतिपूर्वक या विद्रोह द्वारा हो सकती है। सोवियत संघ से 1991 में एस्टोनिया, लातविया तथा लिथुआनिया, 2011 में सूडान से साउथ सूडान की विलग्नता शांतिपूर्ण विलग्नता का उदाहरण है जबकि 1971 में पाकिस्तान से बांग्लादेश की विलग्नता विद्रोह द्वारा विलग्नता का उदाहरण है। इन मामलों में सोवियत रूस, सूडान तथा पाकिस्तान ने अपने राज्य क्षेत्र के भाग को खो दिया था किंतु किसी राज्य ने उन्हें अर्जित नहीं किया था। विद्यमान राज्य से विलग होने वाले भाग में राज्य बन गए थे।

विलग्नता का कार्य किसी राज्य के एक भाग द्वारा स्वतंत्रता की एक पक्षीय घोषणा के द्वारा भी हो सकता है। ऐसे मामलों में वर्तमान राज्य अपने क्षेत्र को खो देता है तथा स्वतंत्रता की घोषणा करने वाला भाग एक नए राज्य का अंतर्राष्ट्रीय अस्तित्व ग्रहण कर लेता है।

(ख) मेट्रोपॉलिटन राज्य द्वारा अपने उपनिवेशों को स्वतंत्रता प्रदान करना – मेट्रोपॉलिटन राज्य द्वारा अपने उपनिवेशों को स्वतंत्रता प्रदान करना राज्य क्षेत्र को खोने का एक ऐसा प्रकार है जिसमें एक राज्य राज्य क्षेत्र होता है किंतु अन्य राज्य उस राज्य क्षेत्र को अर्जित नहीं करता। उपनिवेश पृथकता के उपरांत नया तथा पृथक अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व अर्जित करते हैं।

(ग) त्याग– त्याग द्वारा भी एक राज्य अपने राज्य क्षेत्र के किसी भाग को खो सकता है। जब कोई राज्य अपने किसी राज्य क्षेत्र को अपनी प्रभुत्व संपन्नता से मुक्त कर देता है तो उसे मुक्त राज्य क्षेत्र का कहा जाता है। त्याग हमेशा के लिए होना चाहिए। ओपन हाइट के अनुसार राज्य क्षेत्र के त्याग में दो शर्तों को पूर्ण होना चाहिए प्रथम, राज्य क्षेत्र का त्याग वास्तविक रूप से होना चाहिए तथा द्वितीय, राज्य क्षेत्र पर प्रभुत्व संपन्नता छोड़ देने की आशा होनी चाहिए। जब कोई राज्य अपने राज्य क्षेत्र का

त्याग कर देता है तो वह राज्य क्षेत्र किसी अन्य राज्य के द्वारा स्वीकृत कर लिया जा सकता है। सेंट लूसिया द्वीप तथा डेलेगोवा की खाड़ी त्याग के उदाहरण हैं।

(घ) विलोपन – एक राज्य अपने राज्य क्षेत्र को सामान्यतः द्वीप को ज्वालामुखी विस्फोट या अन्य प्राकृतिक आपदा के कारण लॉक होने से खो देता है। भूकंप के परिणामस्वरूप भी किसी द्वीप का लॉक हो सकता है। कई छोटे द्वीप उक्त वर्णित कारणों के कारण पिछले 200 वर्षों में लुप्त हो चुके हैं। पश्चिम बंगाल (भारत) में स्थिति तीन नदियों तथा समुद्र से घिरा हुआ घोरमरा द्वीप, जो 25 किलोमीटर की परिधि में विस्तारित द्वीप था अब केवल 10 किलोमीटर परिधि में बचा है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. राज्य किस प्रकार से क्षेत्रअर्जन कर सकते हैं?

(क) अधिभोग (ख) उपाबद्ध

(ग) अनुवृद्धि (घ) उक्त सभी

6. राज्य 'राज्य क्षेत्र' इनमें से किस स्थिति में नहीं खो सकता?

(क) अर्ध्यपण (ख) अनुवृद्धि

(ग) विस्तार–वृत्ति (घ) अधीनीकरण

3.5 खुला समुद्र

अंतर्राष्ट्रीय विधि के रोलिंग अधिनियम के अंतर्गत खुला समुद्र शब्द का अर्थ समुद्र के उस भाग से है, जो राज्य क्षेत्रीय समुद्र में सम्मिलित नहीं किए जाते हैं। इस नियम को 17 वीं शताब्दी में ग्रोशियस द्वारा अपनी पुस्तक मारे लिब्रम में दर्शाया गया था। बाद में 18वीं शताब्दी के प्रसिद्ध न्यायविदों ने भी खुले समुद्र की स्वतंत्रता का समर्थन किया, जिनमें बायंकरशाक प्रमुख थे। 19वीं शताब्दी के मध्य तक खुले समुद्र की स्वतंत्रता के सिद्धांत को सार्वजनिक रूप से सिद्धांत तथा व्यवहार के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गई थी। इस नियम को 1958 में खुला समुद्र जेनेवा अभिसमय को अंगीकार कर संधि गतिविधि में परिवर्तित कर दिया गया था।

अभिसमय का अनुच्छेद–1 खुला समुद्र को परिभाषित करता है जिसके अनुसार खुला समुद्र वह भाग है जो राज्य के राज्य क्षेत्रीय समुद्र में या राष्ट्रीय जल में सम्मिलित नहीं है। किंतु खुले समुद्र की व्यवस्था को समुद्र विधि अभिसमय, 1982 के अधीन व्यापक रूप से परिवर्तित कर दिया गया है। अनुच्छेद 86 यह प्रावधान करता है कि समुद्र के वे सभी भाग खुले समुद्र के अधीन आएंगे जो अनन्य आर्थिक क्षेत्र में राज्य क्षेत्रीय समुद्र में या राष्ट्रीय जल में या राज्य के द्वीप समूह सागर खंड में सम्मिलित नहीं किए जाते हैं।

इस प्रकार खुले समुद्र का क्षेत्र 1982 के अभिसमय के अंतर्गत पर्याप्त रूप से कम हो गया है।

3.5.1 खुले समुद्र की स्वतंत्रताएं

टिप्पणी

खुले समुद्र की स्वतंत्रता एक मान्यता प्राप्त सिद्धांत था। इस नियम के अनुसार राज्य को खुले समुद्र में नौकाचालन तथा मछली उद्योग की स्वतंत्रता थी। अथवा खुला समुद्र सभी राज्यों के लिए समान था, जिससे कोई राज्य उसके किसी भाग को अपनी राज्य क्षेत्रीय प्रभुत्व संपन्नता का विषय नहीं बना सकता था। क्योंकि खुला समुद्र किसी राज्य का राज्य क्षेत्र नहीं है, अतएव किसी राज्य को नियमित खुले समुद्र के भाग पर अपने प्रशासन अधिकारिता या पुलिस का प्रयोग करने का अधिकार नहीं है। सामान्य नियम के अनुसार खुले समुद्र में चलने वाले जहाज उस राज्य के क्षेत्र अधिकार के अंतर्गत आते हैं जिस राज्य का ध्वज धारण करते हैं। खुला समुद्री राज्य की प्रमुख क्षमता के अधीन कभी नहीं हो सकता। अतएव किसी राज्य को जीवों के माध्यम से खुला समुद्र के किसी भाग को अर्जित करने का अधिकार नहीं है।

विधि राज्यों की विधि तथा सामग्री ध्वज धारण करने वाले राज्यों की राष्ट्रीय विधि के सहयोग के माध्यम से निर्मित की गई है। राष्ट्रों की विधि के निम्नलिखित नियमों को शहरों में एक रूप से मान्यता दी गई है– प्रथम, प्रत्येक राज्य जिसके पास सामुद्रिक ध्वज है को ऐसा नियम प्रतिपादित करना चाहिए जिसके अनुसार जलयान उसके अधीन जलयात्रा करने का दावा कर सकते हैं। अपना ध्वज प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत करते हुए कुछ शासकीय वाउचर प्रदान करना चाहिए। दूसरा, प्रत्येक राज्य को ऐसे सभी विदेशी जलियानों को दंडित करने का अधिकार है जो ऐसा करने के लिए प्राधिकार प्राप्त किए बिना उसके ध्वज के अधीन जलयात्रा करते हैं। तीसरा वे सभी जलयान अपने व्यक्तियों तथा जालों के साथ खुले समुद्र मार्ग में जाते हैं। नियम विरुद्ध तौर पर तो राज्य को दंडित करने का अधिकार है भले ही वह कार्य विदेशियों द्वारा किया गया है। राज्य तब जलयानों का अधिग्रहण कर सकते हैं।

1982 में अनुच्छेद 87 के अधीन प्रावधान किया गया है कि खुला समुद्र सभी राज्यों के लिए खुला है, चाहे वे तटवर्ती राज्य हों या कोई भी। किंतु इस की स्वतंत्रता का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्य नियमों द्वारा कथित शर्तों के अधीन किया जाएगा। समुद्र की स्वतंत्रता का विधान नौवहन की स्वतंत्रता, ऊपरी उड़ान की स्वतंत्रता, अंतः समुद्री तथा नल तंत्रों को फैलाने की स्वतंत्रता का मात्रक तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन अज्ञात अन्य संस्थाओं को निर्मित करने की स्वतंत्रता, मछली मारने की स्वतंत्रता, वैज्ञानिक अनुसंधान की स्वतंत्रता को सम्मिलित करता है। इन स्वतंत्रता का प्रयोग सभी राज्यों द्वारा अन्य राज्यों के हितों का पूरा ध्यान रखते हुए किया जाएगा।

मछली तथा अत्यधिक प्रवासी मछलियों के संरक्षण की प्रबंधन–संविदा

समुद्र विधि अभिसमय, 1982 के अनुच्छेद 87 के अधीन यह प्रावधान किया गया है कि राज्यों को खुले समुद्र पर मछली मारने की स्वतंत्रता होगी। राज्यों के प्रतिबंधित अधिकार पर रोक लगाने के लिए संयुक्त राष्ट्रीय खुले समुद्र पर सम्मेलन द्वारा 4 अगस्त, 1995 को एक अभिसमय अंगीकार किया गया, जिसका शीर्षक था– मछली तथा अत्यधिक प्रवासी मछली के संरक्षण तथा प्रबंधन से संबंधित संयुक्त राष्ट्र समुद्र विधि अभिसमय, 1982, के प्रावधानों के क्रियान्वयन के लिए संविदा। अभिसमय 4 दिसंबर, 1995 से हस्ताक्षर के लिए अभियान आरंभ हुआ। अभिसमय 11 दिसंबर, 2011 को लागू

टिप्पणी

हुआ। अभिसमय राज्यों को अपनी राष्ट्रीय अधिकारिता के अधीन क्षेत्रों में समुद्र पर उत्तरदाई रूप से खुले समुद्र की मछलियों को संरक्षित करने तथा प्रबंधित करने हेतु विधान करता है। पहले से ही सावधानी बरतना, जिसके द्वारा राज्य संरक्षण आत्मिक रूप से कार्य करने के लिए उस समय आबद्ध किए जा सकें जब मछली की पर्याप्तता के बारे में संदेह हो, यह संधि की मुख्य विशेषता है। इस प्रकार अभिसमय विश्व में मछलियों की कमी को दूर करने में सहायक होगा। अभिसमय मछलियों के संरक्षण तथा प्रबंधन के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानक नियत करता है। इसमें समुद्र पर अनुपालन तथा प्रवर्तन हेतु प्रभावी उपाय भी सम्मिलित हैं तथा यह संरक्षण तथा प्रबंधन में सहायता के लिए विकासशील राज्यों की विशेष अपेक्षाओं को मान्यता प्रदान करता है।

जलदस्युता

जलदस्युता का आशय खुले समुद्र पर व्यक्तिगत जलयान द्वारा अन्य जहाजों को लूटने के आशय से किया गया विधि विरुद्ध हिंसात्मक कार्य है। इसको सदैव रिद्धि बहिष्कृत प्रथम मानव जाति का शत्रु माना गया है। अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार जलदस्युता का कार्य करने के कारण अपने राज्य का संरक्षण होता है तथा इसके द्वारा वह अपने राष्ट्रीय चरित्र तथा अपने जलयान तथा वायुयान को भी खो देता है। यद्यपि वह पहले निश्चित राष्ट्रीय ध्वज के अधीन यात्रा करने का अधिकार रखता था, किंतु वह ऐसा अधिकार भी खो देता है क्योंकि यह न्याय की दृष्टि से अंतर्राष्ट्रीय अपराध है। अतः जलदस्युता को प्रत्येक राज्य का शत्रु माना जाता है और वह राज्य जलदस्यु को दंडित कर सकता है, जिसकी अधिकारिता में वह अपराध करता है। जलदस्युता को खुला समुद्र जेनेवा अभिसमय, 1958 के अनुच्छेद 15 के अधीन परिभाषित किया गया था। इसे समुद्र विधि अभिसमय 1982 ने भी अनुच्छेद 101 के अधीन उन्हीं शब्दों में परिभाषित किया है। जलदस्युता की परिभाषा के अनुसार जलदस्युता केवल खुले समुद्र या ऐसे स्थान में हो सकती है जो किसी राज्य के क्षेत्र अधिकार से बाहर हो। जलदस्युता करने वाले जलयान को जलदस्यु जलयान कहा जाता है। जलदस्युता केवल निजी जलयान या वायुयान द्वारा की जा सकती है। किसी सरकारी यान या वायुयान को जलदस्यु उस समय माना जा सकता है यदि वह यान या वायुयान ऐसे व्यक्तियों के प्रभावी नियंत्रण में है जो अभिसमय के अनुच्छेद 101 के अधीन वर्णित किसी कार्य को करने के लिए आशयित हैं। युद्धपोत को जलदस्यु जलयान नहीं माना जाता। किंतु यदि अनुच्छेद 101 में परिभाषित जलदस्युता का कार्य पुष्प युद्धपोत द्वारा किया जाता है, जिन के बेड़े में विद्रोह हो गया हो तथा जलयान या वायुयान पर नियंत्रण स्थापित कर लिया गया हो, तो उसे जल दस्यु जलयान माना जा सकता है। (अनुच्छेद 102)

उपरोक्त परिभाषा का अभिप्राय यह भी है कि राज्य क्षेत्रीय समुद्र में की गई हिंसा को जलदस्युता का कार्य नहीं माना जाएगा। वर्तमान समय में जलदस्युता की उपरोक्त परिभाषा संकीर्ण हो गई है क्योंकि राज्य क्षेत्रीय समुद्र की सीमा 3 नॉटिकल मील से बढ़कर 12 नॉटिकल मील हो गई है तथा अन्य आर्थिक क्षेत्र की अवधारणा के बाद खुले समुद्र का आकार, जहां जलदस्युता होती है पहले की अपेक्षा कम हो गया है। पिछले कुछ वर्षों में जलदस्युता तथा अन्य हिंसक कृत्य राज्यों के राज्य क्षेत्रीय समुद्र में किए गए हैं जिसने जलदस्युता की परिधि को और अधिक विस्तृत बनाने की आवश्यकता उत्पन्न कर दी है। सुरक्षा परिषद ने सोमालिया के जलदस्युता मामले के संबंध में

संकल्प संख्या 1816 (2008) को अंगीकार किया जिसके अंतर्गत परिषद ने वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय नियमों की परिधि को विस्तृत करते हुए राज्य क्षेत्रीय समुद्र में जलयानों के विरुद्ध की जाने वाली कार्यवाही को विशेष रूप से सम्मिलित कर लिया है। उपरोक्त संकल्प केवल सोमालिया के मामले में ही लागू होता है अतः न तो यह समुद्र विधि अभिसमय को प्रभावित करता है तथा न ही यह अंतर्राष्ट्रीय रूढ़िगत नियम का निर्माण करता है।

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय विधि संस्थान ने सन 2009 में एक घोषणा स्वीकार की जिसे जलदस्युता पर नेपल्स घोषणा कहा जाता है और इससे समस्त पक्षों को अपने राष्ट्रों में प्रभावी घरेलू विधि एवं प्रक्रियाओं को विकसित करने एवं उनका पालन करने को कहा गया है जिससे जलदस्युता तथा अन्य सामुद्रिक हिंसा को रोका एवं उनका दमन किया जा सके। इस घोषणा में यह भी कहा गया है कि ऐसे राष्ट्र जिनके पास जलदस्युता एवं अन्य सामुद्रिक हिंसात्मक कार्यवाहीयों के विरुद्ध संघर्ष करने की क्षमता एवं ऐसे अपराधकर्ताओं को दंडित करने की व्यवस्था नहीं है वे अन्य राज्यों के साथ सहयोगात्मक व्यवस्था को स्वीकार कर सकते हैं जिससे समस्या से निबटा जा सके।

सोमालिया के तट पर जलदस्युता

सोमालिया के तट पर वर्ष 2008 में जलयानों के विरुद्ध समुद्र में जलदस्यु तथा सशस्त्र लूट के कार्यों में बहुत अधिक वृद्धि हुई। जलदस्युओं ने 2008 में कम से कम 50 बार आक्रमण किए तथा फिरौती में कई मिलियन डॉलर की रकम संग्रहित की। उन्होंने नागुल क्षेत्र में कम से कम 12 विदेशी पोतों को बंधक बना लिया। सोमालिया की संक्रमण संघीय सरकार के संयुक्त राष्ट्र में स्थाई प्रतिनिधि ने पोत परिवहन व नौ परिवहन के सुरक्षित कार्य के लिए राज्य क्षेत्रीय समुद्र एवं अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तट को सुरक्षा प्रदान करने में अत्यावश्यक सहायता प्रदान करने के लिए 27 फरवरी, 2008 को सुरक्षा परिषद के अध्यक्ष को एक पत्र भेजा। 17 अक्टूबर, 2008 को एक संकल्प अंगीकार किया जिसमें परिषद ने अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार नौसेना जलयानों एवं वायुयान सेना को प्रतिनियुक्त करके सोमालिया के समुद्र तट पर जलदस्युता के विरुद्ध युद्ध में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए समुद्रीय क्रियाकलापों की सुरक्षा के लिए अपेक्षा की। जब स्थिति में सुधार नहीं हुआ तब परिषद ने 20 नवंबर, 2008 को एक अन्य संकल्प को अंगीकार किया, जिसमें यह अवधारणा की गई कि सोमालिया की स्थिति से अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को संकट बना हुआ है तथा यह निर्णय किया गया कि सभी सदस्य राज्य समिति द्वारा नामोदृष्ट किए गए व्यक्तियों को अपने राज्य क्षेत्रों के माध्यम से प्रवेश या अभिवाहन को रोकने के लिए सभी आवश्यक उपाय करेंगे जो सोमालिया के तट पर जलयानों के विरुद्ध समुद्र में या सशस्त्र लूट के लिए समर्थन प्रदान कर रहे हैं।

भूबद्ध राज्य

जिस राज्य की सीमाएं पूर्ण रूप से भूमि से घिरी होती हैं उसे भूबद्ध राज्य कहा जाता है। समुद्र विधि अभिसमय, 1982 के अनुच्छेद 124 (1) (क) के अधीन भूबद्ध राज्य को उस राज्य के रूप में परिभाषित किया गया है, जिस का कोई समुद्र तट नहीं होता। वर्तमान समय में लगभग 30 भूबद्ध राज्य हैं, जिनमें से 14 अफ्रीका में हैं। इस विनिर्दिष्ट

टिप्पणी

भौगोलिक स्थिति के कारण, इन्हें आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार अधिकार व विशेष अधिकार प्रदान किए गए हैं। दो राज्यों से संबंधित नियम खुला समुद्र जिनेवा अभिसमय 1958, राज्य अभिवहन व्यापार अभिसमय 1965 व समुद्र विधि अभिसमय 1982 द्वारा बनाए गए हैं। भू राज्यों को समुद्र तक पहुंचने की तथा समुद्र से अपने राज्य तक पहुंचने की स्वतंत्रता होती है जिससे वे तटवर्ती राज्यों के समान समुद्र की स्वतंत्रताओं का उपभोग कर सकें। इसके लिए ऐसे राज्य अभिवहन (मार्ग में आवागमन) राज्य से यातायात के सभी साधनों द्वारा अभिवहन की स्वतंत्रता का उपभोग करते हैं।

अभिवहन की स्वतंत्रता अभिवहन में यातायात के लिए तथा यातायात के साधनों के लिए प्रदान की जाती है। अभिवहन की स्वतंत्रता के प्रयोग के लिए शर्त तथा प्रकार राज्य तथा अभिवहन राज्य के मध्य संविदा द्वारा नियत किए जाते हैं। भविष्य अधिकतर सुविधाओं की ऐसी स्वीकृति को प्रतिपादित नहीं करता। इसका तात्पर्य यह है कि अभिसमय न्यूनतम विशेष अधिकारों को अनुबंधित करता है, जिन्हें अभिवहन की स्वतंत्रता के लिए भूबद्ध राज्यों को प्रदान किया जाता है। भूबद्ध राज्य को अन्य विशेष अधिकार अभिवहन राज्यों द्वारा संविदा के माध्यम से प्रदान किए जाते हैं।

नेपाल

भूबद्ध राज्य नेपाल भारत तथा चीन के मध्य हिमालय के दक्षिणी भाग में स्थित है। भारत व नेपाल के मध्य 31 जुलाई, 1950 को दो संधियां की गईं पहली, शांति तथा मित्रता की संधि थी व दूसरी, व्यापार तथा वाणिज्य की संधि थी, जिनमें अन्य व्यवस्थाओं के साथ नेपाल को भारत के राज्य क्षेत्र से होकर समुद्र तक पहुंचने के लिए प्रावधान किया गया था। विराम संधि पारस्परिक आधार पर आवागमन सुविधाओं तथा भारतीय राज्य क्षेत्र से होकर नेपाल तक या वहां से भारत तक माल के पुनः निर्यात हेतु प्रावधान करती है।

गहरे समुद्र में खनन कार्य

गहरे महासागर का अत्यंत समतल क्षेत्र महाद्वीपीय सीमा के आगे स्थित है। इसकी गहराई क्षेत्रवार भिन्न–भिन्न है, किंतु सामान्यतः गहराई 5000 मीटर से अधिक होती है। खनिज पदार्थों की व्यापक मात्रा समुद्र तल तथा महासागर तल एवं इसकी उपभूमि में है। यदि इसका अन्वेषण और दोहन किया जाता है, तो यह मानव जाति के लिए आने वाले कई वर्षों के लिए पर्याप्त होंगे। इस क्षेत्र के संसाधनों का अन्वेषण करना अत्यंत कठिन है, किंतु विकसित राज्यों के विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में व्यापक विकास के कारण इनके द्वारा ऐसा करना संभव हो सका है। प्राथमिक रूप से इस क्षेत्र के संसाधनों का अन्वेषण करने के लिए विधि भी बनाई गई है।

3.5.2 अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तल क्षेत्र/प्राधिकरण

1982 का अभिसमय प्रावधान करता है कि इस क्षेत्र में सभी क्रियाकलाप अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तल प्राधिकरण के नियंत्रण के अधीन होंगे। अभिसमय के अनुच्छेद 11 के अधीन क्षेत्र शब्द की परिभाषा दी गई है। इसके अनुसार क्षेत्र का तात्पर्य राष्ट्रीय अधिकारिता की सीमा के बाहर समुद्र तल तथा महासागर तल तथा उसकी भूमि से है। राज्य की अधिकारिता का विस्तार महाद्वीपीय तट–भूमि की सीमा तक है अतः इस भाग को क्षेत्र

से विभाजित कर दिया गया है। अतः क्षेत्र 20 राज्यों के महाद्वीपीय तट–भूमि की सीमा के बाहर होगा। क्षेत्र की विधि स्थिति को अभिसमय में अनुच्छेद 137 के अंतर्गत अधिकथित किया गया है, जिसके अनुसार कोई राज्य क्षेत्र के किसी भाग या इसके संसाधनों पर प्रभुत्व संपन्नता या प्रभुत्व संपन्न अधिकार का दावा नहीं करेगा या प्रयोग नहीं करेगा। न तो कोई राज्य या प्राकृतिक या विधिक व्यक्ति उसके किसी भाग का विनियोजन करेगा। यदि प्रभुत्व संपन्नता या प्रभुत्व संपन्न अधिकारों का दावा या प्रयोग किया जाता है तो इसे मान्यता नहीं दी जाएगी।

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय समुद्री तल प्राधिकरण

अंतर्राष्ट्रीय समुद्री तल प्राधिकरण ऐसा संगठन है जिसके माध्यम से अभिसमय 1982 के राज्य पक्षकार क्षेत्र में क्रियाकलापों का अनुपालन करेंगे, विशेष रूप से क्षेत्र के संसाधनों को प्रकाशित करने की दृष्टि से संगठित तथा नियंत्रित करेंगे। प्राधिकरण के नियंत्रण में अभिसमय के सुसंगत ऐसी आनुषंगिक शक्तियां होंगी जो क्षेत्र में क्रियाकलापों के लिए उन के प्रयोग में निहित एवं आवश्यक हैं।

प्राधिकरण के प्रमुख अंग एक सभा, एक परिषद एवं सचिवालय हैं। इसका एक अंग उद्यम भी है।

सभा (Assembly)

सभा प्राधिकरण का सर्वोच्च अंग है। सभा में प्राधिकरण के सभी सदस्य होते हैं। प्रत्येक सदस्य का एक प्रतिनिधि होता है एवं सभा में उसका एक मत होता है। प्रक्रियात्मक प्रश्नों पर निर्णय सदस्यों के बहुमत द्वारा लिया जाता है। अन्य प्रश्नों पर विनिश्चय सदस्यों के दो तिहाई बहुमत द्वारा किया जाता है। सभा परिषद के सदस्यों को तथा सचिवालय को निर्वाचित करती है। यह परिषद की सिफारिश पर उद्यम के बोर्ड के सदस्यों तथा उद्यम के महानिदेशक को निर्वाचित करती है। यह उन सहायक अंगों को स्थापित कर सकेगी जिन्हें यह इसके कृत्यों के लिए आवश्यक समझती है। सभा क्षेत्र में क्रियाकलापों से उत्पन्न हुई वित्तीय एवं अन्य आर्थिक प्रसुविधाओं को साम्य पूर्ण रूप से विनिश्चित करती है।

परिषद (Council)

परिषद में सभा द्वारा निर्वाचित किए गए प्राधिकरण के 36 सदस्य होते हैं। परिषद के सदस्यों का निर्वाचन 4 वर्षों की एक अवधि के लिए किया जाता है इनका पुनः निर्वाचन भी हो सकता है किंतु चक्रानुक्रम की मान्यता पर सम्यक ध्यान दिया जाता है। परिषद के प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है जबकि प्रक्रियात्मक प्रश्नों पर निर्णय सदस्यों के बहुमत द्वारा किए जाते हैं वहीं अन्य प्रश्नों पर विनिश्चय सदस्यों के दो तिहाई बहुमत तथा मतदान द्वारा किए जाते हैं। परिषद अपने दोनों आयोगों को स्थापित करती है– (1) आर्थिक योजना आयोग, तथा (2) विधिक एवं तकनीकी आयोग।

प्रत्येक आयोग में 15 सदस्य होते हैं जो राज्य पक्षकारों द्वारा निर्दिष्ट प्रत्याशियों में से परिषद द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं।

टिप्पणी

सचिवालय (Secretariat)

प्राधिकरण के सचिवालय में एक महासचिव तथा ऐसे कर्मचारीगण होते हैं जिनकी प्राधिकरण अपेक्षा करता है। महासचिव का निर्वाचन परिषद द्वारा प्रस्तावित अभ्यर्थियों के मध्य से सभा द्वारा 4 वर्षों के लिए किया जाता है। महासचिव का पुनः निर्वाचन हो सकता है।

उद्यम (Enterprise)

उद्यम भी प्राधिकरण का ही एक अंग होता है जो क्षेत्र में क्रियाकलापों का अनुपालन करता है। प्राधिकरण के प्रत्येक प्रमुख अंग तथा उद्यम उन शक्तियों तथा कार्यों के प्रयोग करने तथा कार्य को करने के लिए उत्तरदाई होते हैं जिन्हें अभिसमय के विभिन्न प्रावधानों के अधीन प्रेरित किया गया है। इन प्रमुख अंगों के अतिरिक्त, समुद्र तल विवाद कक्ष के स्थापन हेतु भी प्रावधान किया गया है। अभिसमय प्रावधान करता है कि क्षेत्र के संसाधनों का अन्वेषण तथा दोहन प्राधिकरण के सहयोग से उद्‌गम द्वारा या व्यक्तिगत या राज्य इकाइयों द्वारा किया जाएगा। समुद्र तल क्रियाकलापों की संपूर्ण श्रेणी तथा प्रणालीबद्ध संक्रिया के अन्य पहलू प्राधिकरण की परिषद के अनुमोदन पर प्राधिकरण की सभा द्वारा अनुमोदित किए जाने वाले नियमों, विनियमों तथा प्रक्रियाओं द्वारा शासित किए जाएंगे।

खनिज प्रणाली

खनिज प्रणाली को भी अभिसमय में विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। राज्य निजी या सार्वजनिक शाम अपनी अधिकारिता के अधीन समुद्र तल के क्षेत्र को प्राधिकरण को प्रस्तुत करेगा जिसे वह वाणिज्यिक संभावनाओं के परिपेक्ष्य में उपयोगी मानता है। प्राधिकरण आवेदन पर विचार करने के उपरांत उस क्षेत्र के आधे भाग को दोहन के लिए आवंटित करता है। एक बार खननस्थल प्रदान किए जाने पर खनन कार्य ठेकेदार को अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य प्रारंभ करने के पूर्व दो और अनुमोदनों की आवश्यकता पड़ती है। प्रथम, प्राधिकरण तथा खनिज के मध्य संविदा के प्रारूप में कार्य योजना को प्राधिकरण की परिषद द्वारा अनुमोदित किया जाना होता है। द्वितीय, प्रत्येक ठेकेदार खुदाई कर सकते हैं उसे विनिर्दिष्ट करते हुए उत्पादन प्राधिकार सभी समुद्र तल उत्पादन पर निश्चित की गई सीमा के अंतर्गत परिषद के विधिक तथा तकनीकी आयोग द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए जारी किया जाएगा कि यह अपने बाजार अंश से अधिक नहीं होगा। समुद्र तल खुदाई कार्य से प्राधिकरण द्वारा प्रदत्त वित्तीय तथा अन्य आर्थिक लाभों को गैर विभेदकारी आधार पर अभिसमय के पक्षकारों में वितरित कर दिया जाएगा।

महासभा ने जुलाई 1994 में गहरा समुद्र तल संविदा अंगीकार कर समुद्र विधि अभिसमय 1982 के भाग 11 में इस गहरे समुद्र तल खनन से संबंधित प्रावधानों का संशोधन किया जिससे कि अभिसमय औद्योगिक राष्ट्रों को स्वीकार हो जाए। संविदा की व्याख्या व प्रयोगिकता अभिसमय के प्रावधानों के साथ एक लिखित के रूप में की गई।

समुद्र विधि अभिसमय, 1982 के अंगीकरण के उपरांत विकास की स्थिति

टिप्पणी

समुद्र विधि अभिसमय 1982 को ऐतिहासिक महत्व के रूप में माना जाता है। यह विश्व के सभी लोगों की शांति, न्याय तथा प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। अभिसमय के अनुच्छेद 308 के परिच्छेद 1 के अंतर्गत अभिसमय उस तिथि के 12 माह बाद लागू होना तय हुआ था जब इसको सभी राज्य अनुसमर्थन प्रदान कर देंगे या स्वीकार कर लेंगे। तदनुसार अभिसमय 16 नवंबर, 1994 को लागू हुआ। अभिसमय के प्रवर्तन में आने के पूर्व कुछ महत्वपूर्ण विकास कार्य प्रारंभ हो गए थे, जो इस प्रकार हैं–

प्रारंभिक आयोग

अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तल प्राधिकरण हेतु तथा समुद्र विधि के अंतर्राष्ट्रीय अधिकरण को स्थापित करने हेतु अभिसमय के साथ स्वीकृत समुद्र विधि सम्मेलन के अंतिम अधिनियम द्वारा प्रारंभिक आयोग की स्थापना की गई थी। जब समुद्र विधि अभिसमय को स्वीकार किया गया तब प्राधिकरण तथा समुद्र विधि के अंतर्राष्ट्रीय अधिकरण के अधीन खनन कार्य व्यवस्था के लिए व्यवहार नियम तथा प्रक्रिया को बनाने का कार्य अभिसमय पर हस्ताक्षर करने वाले प्रारंभिक आयोग को सौंपा गया था। किंतु अभिसमय पर 50 राज्यों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने या उसे स्वीकार किए जाने के उपरांत 60 से 90 दिन के मध्य आयोग को बैठक आयोजित करनी थी। तदनुसार बैठक पूर्ण हो गई तब आयोग ने अपना कार्य प्रारंभ किया। आयोग ने प्राधिकरण सभा के प्रथम सत्र के अंत तक प्रारंभिक निकाय के रूप में कार्य किया।

अग्रणी निवेशक

गहरे समुद्र के खनन के संबंध में यह मान्यता दी गई कि उन देशों तथा संघों हेतु प्रावधान किया जाए जो प्रौद्योगिक रूप से समुद्र तल पर खनन कार्य करने में सक्षम हैं। यह यह भी मान्यता दी गई कि जो राज्य विकासशील खनन प्रौद्योगिकी पर अत्यधिक–धन्य नियोजित कर चुके हैं तथा जिन्होंने अभिसमय को स्वीकार किए जाने के पहले इस विशेष क्षेत्र में पूर्व प्रदर्शन किए हैं उन्हें अपना कार्य जारी रखने के लिए उत्साहित किया जाना चाहिए। ऐसे देशों को अग्रणी निवेशक कहा जाता है। इस समूह में ये राज्य शामिल हैं– बेल्जियम, कनाडा, जर्मनी, जापान, नीदरलैंड्स, यूनाइटेड किंगडम तथा संयुक्त राज्य। अन्य समूह में विकासशील देशों या उनके निजी उद्यमों को सम्मिलित किया गया है। निवेशक के रूप में पंजीकरण के लिए पूर्व शर्त यह है कि राज्यों ने अभिसमय पर हस्ताक्षर किए हों।

भारत ने 1987 में समुद्र तल खुदाई कार्य में प्रथम अग्रणी निवेशक के रूप में प्रारंभिक आयोग द्वारा पंजीकरण कराया था। भारत को हिंद महासागर के 8 क्षेत्रों में से एक क्षेत्र में अपेक्षा करने का अनन्य अधिकार प्रदान किया गया। यह निर्णय उद्यम के लिए उसी क्षेत्र में समान वाणिज्यिक महत्व के क्षेत्र को भी आरक्षित करता है। ट्रांसफॉर्मर जापान तथा सोवियत संघ भी 1988 में अन्य क्षेत्र उत्तर पूर्व प्रशांत महासागर में निवेशक के रूप में पंजीकृत किए गए। चीन 1991 में पांचवें राष्ट्र के रूप में समुद्र तल खुदाई कार्य में अग्रणी निवेशक के रूप में पंजीकृत किया गया। इसको उत्तर पूर्व प्रशांत महासागर का अन्वेषण करने के लिए अनन्य अधिकार दिया गया। यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय समुद्री क्षेत्र में अग्रणी निवेशक के रूप में राज्यों के पंजीकरण को, 1982 के

अभिसमय को व्यवहार में लाने की ओर महत्वपूर्ण कदम माना जाता है किंतु फिर भी क्षेत्र का दोहन न केवल प्रौद्योगिकी के अर्जन पर, बल्कि स्वयं अभिसमय के लागू होने पर निर्भर है।

औपबंधिक समझौता

टिप्पणी

कुछ औद्योगीकृत राज्य जैसे जर्मनी कॉमन ग्रेड, ट्रांसफॉर्मर सोवियत संघ, जापान तथा संयुक्त राज्य अमेरिका ने समुद्र तल खुदाई कार्य को विनियमित करने के लिए अंतरिम देशीय विधान पारित किए। अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत इसे संभव बनाने के लिए इसमें से कुछ देशों ने समुद्र तल दोहन के लिए लघु संधि निर्मित करने के लिए प्रस्ताव किया। इस संबंध में 1980 में प्रक्रिया प्रारंभ की गई तथा 1982 में एक अंतरिम बहुपक्षीय संविदा को प्रस्तुत किया गया। इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका, बेल्जियम, कॉमर्स संघीय जर्मन गणतंत्र, फ्रांस, इटली, जापान, नीदरलैंड तथा यूनाइटेड किंगडम द्वारा हस्ताक्षर किए गए। औपबंधिक समझौता 1982 समुद्र तल में खनन कार्य के लिए ढांचा सृजित करने के लिए बनाया गया था जो 1982 के विधि के अभिसमय में सम्मिलित है।

विवादों का समाधान

समुद्र अभिसमय के अनुच्छेद 279 के अधीन राज्य पक्षकारों पर बाध्यता प्रदान की गई है कि वह अपने मध्य किसी भी प्रकार के विवाद का समाधान संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2 63 के अनुसार शांतिपूर्वक करें। यदि पक्षकार शांतिपूर्ण रूप से अपने विवादों का समाधान करने में असफल हो जाते हैं तो किसी भी पक्षकार के अनुरोध पर विवाद को कथित न्यायालय अथवा अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। जिसके समाधान हेतु अभिसमय के हस्ताक्षर, अनुसमर्थन या अंगीकार किए जाने के समय कोई भी राज्य लिखित घोषणा के माध्यम से निम्नलिखित साधनों में से किसी एक अथवा एक से अधिक साधनों का चयन करने के लिए स्वतंत्र होगा–

(i) अंतर्राष्ट्रीय अधिकरण द्वारा उपबंध VI के अधीन

(ii) अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय

(iii) मध्यस्थम अधिकरण द्वारा उपबंध VII के अधीन

(iv) विशेष मध्यस्थम अधिकरण द्वारा उपबंध VIII के अधीन

समुद्र विधि अंतर्राष्ट्रीय अधिकरण

समुद्र विधि अंतर्राष्ट्रीय अधिकरण एक स्वायत्त न्यायिक इकाई है जो उन अधिकृतों में से एक है जिन्हें अभिसमय की व्याख्या एवं निर्वाचन से संबंधित विवादों का निश्चय करने की अधिकारिता प्राप्त है। अधिकरण की स्थापना अभिसमय के पाबंद अधिकृत परिनियम के अनुसार की गई है। अधिकरण तथा संयुक्त राष्ट्र के मध्य उस समय संबंध स्थापित हुआ जब 18 दिसंबर, 1997 को अधिकरण के सभापति व संयुक्त राष्ट्रीय सचिव द्वारा सहयोग व संबंध की एक संविदा को हस्ताक्षरित किया गया।

संयुक्त राष्ट्र अधिकरण को एक स्वायत्त न्यायिक निकाय के रूप में मान्यता देता है। अधिकरण ऐसे राज्यों में अंतर राज्य संगठनों के लिए भी खुला है जो अभिसमय के पक्ष का नहीं है। अधिकरण की अधिकारिता में सभी विवाद तथा प्रस्तुत किए गए

सभी आवेदन एवं किसी अन्य ऐसी संविदा में विनिर्दिष्ट प्रावधान समाविष्ट होते हैं जो अधिकरण को अधिकारिता प्रदान करती है। अधिकरण को अंतर्राष्ट्रीय समुद्री क्षेत्र के क्रियाकलापों से संबंधित विवादों के संबंध में अन्य अधिकारिता प्राप्त है। अधिकरण समुद्र विधि अभिसमय के अनुसार सभी विवादों एवं आवेदनों का अभिनिश्चय करता है।

एम/वी सेगा मामला

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय समुद्र विधि अधिकरण ने 1997 को पहले मामले एम/वी सेगा (सेंट फिन्सेंट एंड ग्रैंडाइन्स बनाम गुयाना) का विनिश्चय किया। इसमें सेंट फिन्सेंट एंड ग्रैंडाइन्स ने तर्क दिया था कि जलयान, उसके नौभार तथा नाविक दल को तत्काल बिना बंध पत्र प्रदान किए मुक्त कर दिया जाए। प्रत्युत्तर दाता ने तर्क दिया कि कोई अवैध कार्य नहीं किया गया है तथा प्रक्रिया का कोई उल्लंघन नहीं किया गया है तथा इस कारण अधिकरण को आवेदक का वाद निरस्त करना चाहिए। अधिकरण ने विनिश्चय किया कि गुयाना एमवी सेगा और उसके नाविक दल को तत्काल निरोधात्मक कार्यवाही से मुक्त करें, किंतु ऐसी मुक्ति साख पत्र या बैंक प्रत्याभूति के रूप में सुरक्षा प्रदान करने पर की जाए।

अपनी प्रगति जांचिए

7. खुले समुद्र की स्वतंत्रता के सिद्धांत को व्यावहारिक मान्यता कब मिली?

   (क) 17वीं शताब्दी (ख) 18वीं शताब्दी

   (ग) 19वीं शताब्दी (घ) 20वीं शताब्दी

8. जलदस्युता का आशय है–

   (क) मत्स्यपालन (ख) वैश्विक समुद्री व्यापार

   (ग) लूट कार्य (घ) वैध समुद्री व्यापार

3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (घ)
3. (घ)
4. (ख)
5. (घ)
6. (ग)
7. (ग)
8. (ग)

3.7 सारांश

टिप्पणी

हस्तक्षेप के लिए अनुरोध राज्य की सरकार द्वारा किया जाना चाहिए। यह इस तर्क पर आधारित है कि सरकार राज्य की अभिकर्ता होती है तथा इसलिए सरकार अपने राज्य के राज्य क्षेत्र में विदेशी सेनाओं को आमंत्रित करने के लिए सक्षम है। किंतु जो सरकार हस्तक्षेप के लिए अनुरोध करती है उसे ऐसा करने के लिए सक्षम होना चाहिए। हस्तक्षेप की वैधता का निर्धारण करने के लिए यह अति आवश्यक है। अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत उस सरकार द्वारा बाह्य सहायता का अनुरोध नहीं किया जा सकता जो व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व नहीं करती या व्यक्तियों के आज्ञा पालन पर नियंत्रण नहीं रखती। यह प्रस्थापना इस सिद्धांत पर आधारित है कि राज्य की सरकार की पहचान तथ्यात्मक मानक के आधार पर की जाती है न कि नैतिक या संवैधानिक मानक के आधार पर।

राज्य उत्तरदायित्व युद्ध तथा शांति दोनों ही स्थिति में हो सकता है। जहां तक युद्ध के समय में राज्य उत्तर दायित्व का संबंध है, हेग अभिसमय 1907 को भूमि पर युद्ध की विधियों तथा रूढ़ियों से संबंधित अनुच्छेद 3 के अधीन मान्यता दी गई है। यह प्रावधान करता है कि "युद्धरत पक्षकार, जो उक्त अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करते हैं, प्रतिकर अदा करने के लिए दायी होंगे। वे अपने सशस्त्र बलों के प्रयोग करने वाले व्यक्तियों द्वारा कारित सभी कार्यों के लिए दायी होंगे।" लेकिन शांति के दौरान राज्य उत्तरदायित्व को भूमिगत अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं किया गया है।

राज्य उस राज्य क्षेत्र को अर्जित कर सकता है जो पहले से ही किसी अन्य राज्य की प्रभुत्व संपन्नता के अधीन हो या जो किसी राज्य से संबंधित न हो अर्थात राज्य क्षेत्र स्वामीहीन हो। जब अर्जन ऐसे क्षेत्र का किया जाता है जो किसी अन्य राज्य का है तो एक राज्य का क्षेत्र बढ़ जाता है तथा किसी अन्य राज्य के राज्य क्षेत्र की हानि होती है। जब अर्जित किया हुआ क्षेत्र किसी राज्य का नहीं होता तो अर्जन को मूल प्रकार कहा जाता है जिसमें एक राज्य के राज्य क्षेत्र का विस्तार होता है किंतु अन्य राज्य के राज्य क्षेत्र की हानि नहीं होती है। उक्त दोनों प्रकार का अर्चन सामान्य स्वामित्व के क्षेत्र अर्थात उस क्षेत्र से भिन्न है जिसे विधिपूर्वक अर्जित नहीं किया जा सकता जैसे खुला समुद्र या बाह्य अंतरिक्ष।

अंतर्राष्ट्रीय विधि के रोलिंग अधिनियम के अंतर्गत खुला समुद्र शब्द का अर्थ समुद्र के उस भाग से है, जो राज्य क्षेत्रीय समुद्र में सम्मिलित नहीं किए जाते हैं। इस नियम को 17वीं शताब्दी में ग्रोशियस द्वारा अपनी पुस्तक मारे लिब्रम में दर्शाया गया था। बाद में 18वीं शताब्दी के प्रसिद्ध न्यायविदों ने भी खुले समुद्र की स्वतंत्रता का समर्थन किया, जिनमें बायंकरशाक प्रमुख थे। 19वीं शताब्दी के मध्य तक खुले समुद्र की स्वतंत्रता के सिद्धांत को सार्वजनिक रूप से सिद्धांत तथा व्यवहार के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गई थी। इस नियम को 1958 में खुला समुद्र जेनेवा अभिसमय को अंगीकार कर संधि गतिविधि में परिवर्तित कर दिया गया था।

अभिसमय का अनुच्छेद–1 खुला समुद्र को परिभाषित करता है जिसके अनुसार खुला समुद्र वह भाग है जो राज्य के राज्य क्षेत्रीय समुद्र में या राष्ट्रीय जल में सम्मिलित नहीं है। किंतु खुले समुद्र की व्यवस्था को समुद्र विधि अभिसमय, 1982 के अधीन व्यापक रूप से परिवर्तित कर दिया गया है। अनुच्छेद 86 यह प्रावधान करता है कि समुद्र के वे सभी भाग खुले समुद्र के अधीन आएंगे जो अनन्य आर्थिक क्षेत्र में राज्य क्षेत्रीय समुद्र में या राष्ट्रीय जल में या द्वीप समूह एक राज्य के द्वीप समूह सागर खंड में सम्मिलित नहीं किए जाते हैं।

टिप्पणी

3.8 मुख्य शब्दावली

- **हस्तक्षेप** : दूसरों के मामलों में दखलअंदाजी।
- **अंतर्राष्ट्रीय** : विश्व स्तर की।
- **न्यायसंगतता** : किसी मामले/विषय में न्यायिक नियम से संबंधित स्थिति।
- **आत्मनिर्णय** : स्वयं का फैसला।
- **गृहयुद्ध** : राज्य/देश के अंदर अपनों के बीच होने वाला युद्ध।
- **सार्वजनिक** : सभी से संबंधित।

3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. हस्तक्षेप का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. हस्तक्षेप की व्यापक संगतता क्या है?
3. राज्य उत्तरदायित्व के प्रकार बताइए।
4. राज्यक्षेत्र अधिग्रहण की क्षतिपूर्ति से क्या तात्पर्य है?
5. खुला समुद्र प्राधिकरण से आप क्या समझते हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. हस्तक्षेप पर प्रतिषेध तथा मानवीय आधार पर हस्तक्षेप की विवेचना कीजिए।
2. राज्य उत्तरदायित्व की प्रविधि एवं परिणाम का विश्लेषण कीजिए।
3. राज्यक्षेत्र अर्जन की प्रक्रियाओं का रेखांकन कीजिए।
4. राज्य क्षेत्र अधिग्रहण से हानि एवं उसकी क्षतिपूर्ति का अवलोकन कीजिए।
5. खुले समुद्र की स्वतंत्रताएं एवं अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तल क्षेत्र संदर्भित तथ्य चिन्हित कीजिए।

3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अन्तर्राष्ट्रीय विधि और मानवाधिकार–के.सी. जोशी, ईस्टर्न बुक कंपनी
2. Dr. S.K. Kapoor: Human Rights & International Law (Hindi)
3. R. Falk: International Law: A Contemporary Perspective
4. R.P. Anand: Law of the Sea,. Caracas and beyond (1978)
5. O.P. Malhotra: Law of industrial Disputes (1999)
6. Oppenheim: International Law (Volume I, Peace)
7. S. K. Kapoor: International Law
8. M.P. Tandon: International Law (English & Hindi)
9. Robertson, A.H.: Human Rights in the World
10. S.C. Khare: Human Rights in United Nations
11. D.D. Basu: Human Rights in Constitutional Law
12. Nagendra Singh: Protection of Human Rights.

टिप्पणी

इकाई 4 तटस्थता

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 तटस्थता की संकल्पना एवं विकास
  4.2.1 राष्ट्र संघ की प्रसंविदा के अधीन तटस्थता
  4.2.2 तटस्थ राज्यों के कर्तव्य एवं अधिकार
  4.2.3 तटस्थता के प्रकार
4.3 व्यक्तिगत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि, राष्ट्रीयता, विदेशी या अन्यदेशीय, प्रत्यर्पण
  4.3.1 व्यक्तिगत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि
  4.3.2 राष्ट्रीयता
  4.3.3 विदेशी या अन्यदेशीय
  4.3.4 प्रत्यर्पण
4.4 राजनयिक राजदूत तथा वाणिज्य–दूत (कौंसल)
  4.4.1 राजनयिक दूतों का वर्गीकरण
  4.4.2 राजनयिक उन्मुक्तियां
  4.4.3 वाणिज्य–दूत (कौंसल)
4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

4.0 परिचय

'न्यूट्रेलिटी' (Neutrality) शब्द लैटिन शब्द 'न्यूटर' (Neuter) से लिया गया है जिसका अर्थ होता है निष्पक्षता या तटस्थता। अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार जो राज्य युद्ध में हिस्सा नहीं लेते हैं वे तटस्थ राज्य कहलाते हैं। ओपनहाइम का मानना है कि तटस्थता तीसरे राज्य द्वारा युद्ध मान राज्यों के प्रति अपनाए गए तथा युद्ध मान राज्यों द्वारा मान्य निष्पक्षता की प्रवृत्ति है जो निष्पक्ष राज्यों व युद्ध मान राज्यों के मध्य अधिकारों व कर्तव्यों का सृजन करती है। तटस्थता युद्ध के समय तीसरे राज्य द्वारा अपनाई गई निष्पक्षता की प्रवृत्ति है। ऐसी प्रवृत्ति को अपनाने वाले राज्य युद्ध में भाग नहीं लेते। इन राज्यों को तटस्थ राज्य कहा जाता है। इस प्रकार तटस्थता युद्ध को हतोत्साहित करती है तथा यदि युद्ध प्रारंभ हो जाता है तो यह युद्ध को सीमित करती है तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को नियमित करती है। जब कोई राज्य किसी युद्ध में तटस्थ रहना चाहता है तब यह वांछनीय है कि वह तत्काल तटस्थता की घोषणा करे। तटस्थ राज्य द्वारा अपनायी गई तटस्थता की प्रवृत्ति को युद्धरत राज्य द्वारा मान्यता दिए जाने की अपेक्षा की जाती है। जब युद्धरत राज्य द्वारा किसी राज्य की तटस्थता की प्रवृत्ति को मान्यता दी जाती है तब युद्धरत राज्यों तथा तटस्थ राज्यों के मध्य संबंध स्थापित हो जाता है और वे एक–दूसरे के विरुद्ध कुछ अधिकारों तथा कर्तव्यों को अर्जित कर लेते हैं, जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय विधि में पूर्ण रूप से मान्यता दी गई है। यह सम्बन्ध उस समय

तक अस्तित्व में रहता है जब तक युद्ध की स्थिति विद्यमान रहती है तथा यह युद्ध के समाप्त होने के साथ अपने आप समाप्त हो जाता है।

प्रस्तुत इकाई में तटस्थता की संकल्पना तथा विकास का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसके अलावा अंतर्राष्ट्रीय विधि, राजनयिक दूत तथा वाणिज्य–दूत (Consul) आदि का विधिवत अध्ययन किया गया है।

टिप्पणी

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- तटस्थता की संकल्पना एवं विकास को समझ पाएंगे;
- तटस्थ राज्यों के कर्तव्यों और अधिकारों के बारे में जान पाएंगे;
- तटस्थता के प्रकारों से परिचित हो पाएंगे;
- व्यक्तिगत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि को जान पाएंगे;
- राष्ट्रीयता के विविध पहलुओं की जानकारी ले पाएंगे;
- प्रत्यर्पण की विवेचना कर पाएंगे;
- राजनयिक उन्मुक्तियों के आधार व अधिकार की व्याख्या कर पाएंगे।

4.2 तटस्थता की संकल्पना एवं विकास

तटस्थता की अवधारणा का संबंध युद्ध की स्थिति से है। यदि युद्ध होता है तो राज्य तटस्थता को अपना सकते हैं। किंतु क्या एक राज्य ऐसी स्थिति में भी तटस्थ रह सकता है जहां युद्ध की स्थिति विद्यमान नहीं रहती, अर्थात अंतर्राष्ट्रीय सशस्त्र संघर्ष के मामलों में जहां अंतर्राष्ट्रीय विधि के अर्थ में युद्ध न हो रहा हो? इस संबंध में यह कहना उचित है कि क्योंकि युद्ध के अधिकांश नियम जो संधियों द्वारा बनाए गए हैं वे अंतर्राष्ट्रीय सशस्त्र संघर्षों में भी लागू किए जाते हैं। अतः तटस्थता के नियम भी सशस्त्र संघर्षों में लागू होंगे। इसके उपरांत की संधियों में भी सशस्त्र संघर्षों में तटस्थता के संबंध में कोई प्रावधान नहीं किया गया है।

उपरोक्त दृष्टिकोण इसलिए उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि हेग अभिसमय को इस अवधारणा पर निर्मित किया गया है कि जब कोई सशस्त्र संघर्ष प्रारंभ हो जाता है तब राज्य अपने आप या तो युद्ध मान राज्य हो जाते हैं या तटस्थ राज्य।

तटस्थता का विकास

सर्वप्रथम, मध्यकाल में राज्यों द्वारा द्विपक्षीय संधियां की गई थीं, जिनमें यह प्रावधान किया गया था कि संधि के पक्षकारों में से कोई भी एक दूसरे के शत्रु को युद्ध के समय में किसी भी प्रकार की सहायता प्रदान नहीं करेगा। 17वीं शताब्दी के अंत तक तटस्थता को एक संस्था के रूप में मान्यता प्रदान की जाने लगी थी, किंतु उस समय भी यह अपनी प्रारंभिक अवस्था में थी। किंतु 18वीं शताब्दी के समय में, विशेष रूप से उत्तरार्द्ध में, इस माने से तटस्थता की अवधारणा का विकास हुआ। क्योंकि युद्धरत राज्य तटस्थ

राज्य तथा उनके राज्य क्षेत्रों को सम्यक सम्मान प्रदान करते थे। 19वीं शताब्दी में तटस्थता की अवधारणा का कई कारणों से विकास हुआ। ये कारण थे – प्रथम, संयुक्त राज्य नेपोलियन युद्धों में 1793 से 1818 तक तटस्थ रहा। इसकी तटस्थता का सम्मान युद्धरत राज्यों द्वारा किया गया। दूसरा, स्विट्जरलैंड तथा बेल्जियम ने अपने स्थायी तटस्थीकरण की घोषणा की। ये प्रत्येक युद्ध में तटस्थ बने रहे। तीसरा, स्वतंत्र जलयान, स्वतंत्र माल के नियम का निर्माण 1856 की पेरिस घोषणा द्वारा किया गया। इसमें प्रावधान किया गया था कि शत्रु के यान पर लादे गए तटस्थ माल, जो युद्ध के लिए भी विनिषिद्ध माल नहीं है, का विनियोजन नहीं किया जाएगा। चौथा, कई विवाचक निर्णयों में तटस्थ राज्यों के अधिकारों व कर्तव्यों को मान्यता प्रदान की गई है। इनमें से अलबामा क्लेमस् आर्बिट्रेशन, 1872 सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। पांचवा, युद्ध उपकरणों तथा संसाधनों के विकास ने भी तटस्थता की विधि के विकास में योगदान दिया है। कर्तव्यों के उल्लंघन का परिणाम तटस्थ राज्य तथा युद्धरत राज्यों के मध्य गंभीर युद्ध के रूप में होता था। यह निश्चित रूप से माना जा सकता है कि 19वीं शताब्दी तक तटस्थता की नीति के नियम स्पष्ट हो गए थे तथा वे रूढ़िगत नियम बन गए थे। द्वितीय हेग सम्मेलन 1907 में तटस्थता का विषय विचार–विमर्श के लिए लाया गया। सम्मेलन ने तटस्थता के रूढ़िगत नियमों का संहिताकरण किया। सम्मेलन में दो अभिसमय का निर्माण किया गया जो तटस्थता से संबंधित थे।

टिप्पणी

4.2.1 राष्ट्र संघ की प्रसंविदा के अधीन तटस्थता

राष्ट्रसंघ ने तटस्थता के सिद्धांत को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। राष्ट्र संघ की प्रसंविदा में दो प्रकार के युद्धों का वर्णन किया गया था, प्रथम जो प्रसंविदा के प्रावधानों के उल्लंघन में न किया गया हो, अर्थात युद्ध जो निश्चित नहीं है, तथा दूसरा, जो प्रसंविदा के प्रावधानों के उल्लंघन में किया गया हो अर्थात निषिद्ध युद्ध। प्रथम प्रकार का युद्ध विधिक युद्ध होता था तथा ऐसे युद्ध के मामलों में, प्रसंविदा के सदस्यों को तटस्थता के परंपरागत अर्थ में अपनी तटस्थता को बनाए रखने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया था। ऐसे युद्धों में, तटस्थता की प्रवृत्ति के संबंध में प्रसंविदा के प्रावधानों द्वारा कोई निषेध या प्रतिषेध नहीं किया गया था। किंतु तटस्थता की अवधारणा व्यापक रूप से उन युद्धों में प्रभावित हुई, जो प्रसंविदा की बाध्यताओं के उल्लंघन में किए जाते थे। क्योंकि ऐसा कोई युद्ध संपूर्ण विश्व का मामला हो जाता था तथा राष्ट्र संघ के सभी सदस्यों से आक्रमण से पीड़ित राज्य को सहायता प्रदान करने की अपेक्षा की जाती है, अतएव कोई राज्य तटस्थता की प्रवृत्ति को स्वीकार नहीं कर सकता था। किंतु किसी ऐसे युद्ध (जो प्रसंविदा के उल्लंघन में किया जाता है) में भी राज्य द्वारा तटस्थता अपनाई जा सकती थी। कोई राज्य तटस्थ रह सकता था, यदि वह किसी विशिष्ट युद्ध में यह निश्चय करता था कि प्रसंविदा के उल्लंघन में युद्ध नहीं हो रहा है। स्टोन के अनुसार राष्ट्र संघ की स्थापना के उपरांत भी तटस्थता के नियम निम्न रूप से प्रवर्तन में लाए जा सकते हैं– (1) राष्ट्र संघ के गैर सदस्यों, जैसे संयुक्त राज्य तथा बाद में जापान, जर्मनी तथा इटली के संबंध में, (2) अनिश्चित युद्धों के संबंध में, अर्थात प्रसंविदा के प्रावधानों के अंतर्गत, (3) निश्चित युद्ध के मामले में भी, जैसे, विशिष्ट सदस्यों के संबंध में, जिन्होंने विशिष्ट मामलों में यह निर्णय किए हैं कि प्रावधान के उल्लंघन में युद्ध नहीं हो रहा है।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र के अधीन तटस्थता

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अधीन सामूहिक सुरक्षा तथा उत्तरदायित्व का प्रावधान राष्ट्र संघ की तरह पुनः किया गया, किंतु इसमें राष्ट्र संघ के प्रावधान की अपेक्षा अधिक दृढ़ता थी। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अधीन सुरक्षा परिषद को वास्तविक शक्ति दी गई तथा उसे किसी राज्य के विरुद्ध शास्ति को लागू करने की क्षमता प्रदान की गई। सुरक्षा परिषद का विनिश्चय संयुक्त राष्ट्र के सभी राज्यों पर विधिक रुप से बाध्यकारी होता है। अनुच्छेद 2 (5) प्रावधान करता है कि सभी सदस्य संयुक्त राष्ट्र को उसके द्वारा की गई किसी कार्यवाही में सहायता प्रदान करेंगे, जिसे वह इस चार्टर के अनुसार करता है। अतः यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि चार्टर के अधीन तटस्थता को निषिद्ध कर दिया गया है। वास्तव में, सैद्धांतिक रूप से संयुक्त राष्ट्र का कोई सदस्य सुरक्षा परिषद द्वारा की गई कार्यवाही में तटस्थ नहीं रह सकता। यह सिद्धांत वास्तव में 'न्यायोचित युद्ध' की पुरानी ग्रोशियन कल्पना पर आधारित है, जिसको अब पुनः प्रारंभ किया गया है और अब वह विश्व राजनीति का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत बन गया है। किंतु इस सिद्धांत को संयुक्त राष्ट्र के व्यवहार में कभी रूपांतरित नहीं किया जा सका। महा शक्तियों के मध्य मतभेद ने भी सुरक्षा परिषद की कार्यवाही पूर्णरूपेण शिथिल कर दी है। एक राज्य निम्नलिखित मामलों में अब भी तटस्थ रह सकता है–

(1) सुरक्षा परिषद की असमर्थता

शांति और सुरक्षा को संकट, शांति भंग या आक्रमण की कार्यवाही के निर्धारण की शक्ति संयुक्त राष्ट्र चार्टर अनुच्छेद 39 के अंतर्गत सुरक्षा परिषद को दी गई है। यह स्पष्ट है कि जहां सुरक्षा परिषद किसी ऐसे राज्य के विरुद्ध प्रवर्तन का उपाय अपनाती है जो शांति भंग करने, शांति को खतरा पहुंचाने या आक्रमण के कृत्यों का दोषी हो तथा सभी राज्यों पर यह बाध्यता अधिरोपित करता है कि वह दोषी राज्य से अपने संबंध तोड़ ले। किंतु ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसमें वह स्थाई सदस्यों के निषेध अधिकार शक्ति के प्रयोग के कारण किसी प्रश्न को निर्धारित करने में ही असफल हो जाए। यदि सुरक्षा परिषद उसको निश्चित करने में किसी भी कारणों से असफल रहती है तो अन्य राज्य सदस्यता की प्रवृत्ति अपना सकते हैं।

(2) आत्मरक्षा

राज्यों द्वारा आत्मरक्षा के अधिकार का प्रयोग चार्टर के अनुच्छेद 51 के अनुसार केवल तब किया जा सकता है, जब उसके विरुद्ध सशस्त्र आक्रमण किया जाए। अतः यदि किसी राज्य द्वारा आत्मरक्षा के अधिकार का प्रयोग किया जाता है तो यह समझा जा सकता है कि राज्यों के मध्य सशस्त्र संघर्ष हो रहा है। यदि सुरक्षा परिषद स्थाई सदस्यों द्वारा निषेध अधिकार शक्ति के प्रयोग के कारण कोई उपाय करने में असफल रहती है, तो दो राज्यों के मध्य सशस्त्र संघर्ष होता रहेगा। ऐसे संघर्ष में अन्य राज्य तटस्थता की प्रकृति अपना सकते हैं।

(3) आंतरिक अधिकारिता

चार्टर के अनुच्छेद–2 के परिच्छेद–7 में प्रावधान किया गया है कि संयुक्त राष्ट्र ऐसे मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा, जो किसी राज्य की आंतरिक अधिकारिता के अंतर्गत हों। किंतु सुरक्षा परिषद अध्याय–7 के अंतर्गत कार्यवाही कर सकती है, यदि वह समझती है की शांति के प्रति संकट, शांति भंग या आक्रमक कार्यवाही अस्तित्व में है।

(4) सशस्त्र संघर्ष में भाग लेने की इच्छा का न होना

जब सुरक्षा परिषद द्वारा की जाने वाली कार्यवाही में किसी राज्य से भाग लेने की अपेक्षा नहीं की जाती है, तो वह सशक्त संघर्ष से अलग रह सकता है। इसके अलावा, किसी विशेष सशस्त्र संघर्ष में, यदि राज्य अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण या कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण भाग लेने की इच्छा प्रकट नहीं करता है, तो वह पुनः तटस्थ बना रहेगा। किंतु जिन मामलों में कोई राज्य या तो अपनी इच्छा से या अन्य कारणों से सशस्त्र संघर्ष में भाग नहीं लेता, उन्हें वास्तविक अर्थ में तटस्थ नहीं माना जा सकता। उनकी प्रस्थिति को 'अर्हित तटस्थता' कहा जा सकता है।

टिप्पणी

(5) चार्टर के हस्ताक्षर कर्ताओं के शत्रु

यद्यपि वर्तमान समय में चार्टर के हस्ताक्षर कर्ताओं के शत्रु संयुक्त राष्ट्र के सदस्य बन गए हैं। अतः यह प्रावधान निरर्थक हो गया है। किंतु चार्टर के निर्माण के उपरांत राज्यों द्वारा तटस्थता की प्रवृत्ति को तब तक स्वीकार किया जा सकता था, जब तक वह संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं बने थे, यदि संयुक्त राष्ट्र के सदस्य द्वारा उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही की जाती।

(6) संयुक्त राष्ट्र से गैर सदस्य

यदि सुरक्षा परिषद द्वारा किसी राज्य के विरुद्ध कार्यवाही की जाती है, तो वह गैर सदस्य राज्यों को या तो तटस्थ बने रहने का निर्देश दे सकती है या जिस राज्य के विरुद्ध कार्यवाही की जा रही है, उस राज्य को कोई सहायता न देने का निर्देश दे सकती है या गैर सदस्यों को कोई निर्देश दे सकती है। जब गैर सदस्य राज्यों को तटस्थ रहने का निर्देश दिया जाता है, तब वे निष्पक्षता की प्रवृत्ति स्वीकार करते हैं।

(7) आत्मनिर्णय

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रावधानों के अंतर्गत राज्य क्षेत्र को स्वतंत्र बनाए रखने हेतु आत्मनिर्णय से बल प्रयोग की अनुमति दी गई है। सशस्त्र संघर्ष के ऐसे मामलों में अन्य राज्य निष्पक्षता की प्रवृत्ति अपना सकते हैं।

(8) युद्धरत द्वारा जीते गए या अधिग्रहित राज्य क्षेत्र की पुनः प्राप्ति

यदि किसी राज्य ने अपने राज्य क्षेत्र को खो दिया है या चार्टर के अनुच्छेद–2 के परिच्छेद–4 के उल्लंघन में बल प्रयोग द्वारा किसी राज्य के राज्य क्षेत्र का अधिग्रहण अन्य राज्य द्वारा कर लिया गया है, तो उस राज्य को अपने खोए हुए राज्य क्षेत्र को वापस प्राप्त करने का अधिकार है। यदि इसका परिणाम सशस्त्र संघर्ष होगा, तो ऐसे मामलों में अन्य राज्य तटस्थता की प्रवृत्ति अपना सकते हैं।

उपर्युक्त ऐसे मामले हैं, जिनमें राज्य सशस्त्र संघर्ष में तटस्थ बने रह सकते हैं। अतः तटस्थता पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुई है। यद्यपि तटस्थता को संयुक्त राष्ट्र चार्टर द्वारा व्यापक रूप से प्रभावित किया गया है, फिर भी यह वैध रूप से अस्तित्व में है।

4.2.2 तटस्थ राज्यों के कर्तव्य एवं अधिकार

अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों द्वारा युद्धरत देशों के संबंध में तटस्थ राज्यों को कुछ अधिकार व कर्तव्य प्रदान किए गए हैं जो कि निम्न प्रकार हैं:–

तटस्थ राज्यों के कर्तव्य

निम्नलिखित ऐसे कर्तव्य हैं जिनके पालन की अपेक्षा तटस्थ राज्यों से की जाती है–

(क) प्रविरत रहना

टिप्पणी

तटस्थ राज्य से सभी युद्धरत राज्यों के प्रति तटस्थता को स्वीकार करने की अपेक्षा की जाती है। इन्हें युद्धरत राज्यों में से किसी को भी प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से कोई सहायता नहीं देनी चाहिए। हेग अभिसमय 5 व 13, क्रमशः स्थल तथा सामुद्रिक युद्ध मित्रता के संबंध में प्रावधान करता है, यह निर्बंधित किया गया है कि युद्धरत राज्यों को सैनिक या नौसैनिक कार्यवाही से संबंधित प्रत्यक्ष रूप से दी गई कोई सुविधा अवैध होगी।

(ख) निवारण

तटस्थ राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने राज्य क्षेत्र में या राज्य क्षेत्रीय समुद्र के अंतर्गत युद्धरत राज्यों को कुछ कार्य को करने से रोके। तटस्थ राज्य को अपने राज्य क्षेत्र में शत्रु के विरुद्ध शत्रुता पूर्ण कार्यवाही को रोकना चाहिए। उसे अपने राज्य क्षेत्र में युद्धरत राज्यों को सहायता देने की तैयारी को भी रोकना चाहिए। तटस्थ राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने राज्य क्षेत्र पर सेनाओं के मार्ग को निषिद्ध करे। युद्ध सामग्री या खाद्य पदार्थों को भेजना भी इसमें सम्मिलित है।

(ग) मौन सहमति

तटस्थ राज्यों की मौन सहमति का कर्तव्य युद्धरत राज्यों के विशेष अधिकारों का सह–संबंधी है। यदि तटस्थ राज्य को युद्धरत राज्यों के वैध अधिकारों के प्रयोग द्वारा आकस्मिक क्षति होती है, तो उसे उनके प्रति मौन सहमति देनी चाहिए। उदाहरणार्थ, युद्धरत राज्यों को प्रवेश तथा तलाशी का तथा समुद्र में अभिग्रहण का अधिकार प्राप्त है। इन अधिकारों के प्रयोग में, यदि तटस्थ राज्यों को कोई हानि हो जाती है, तो उसे उन्हें सहमति देनी चाहिए।

(घ) प्रतिकार तथा प्रत्यावर्तन

तटस्थ राज्य का कर्तव्य है कि वह युद्धरत राज्यों को अपने राज्य क्षेत्र में किसी ऐसे कार्य को करने की अनुमति ना दे, जो युद्ध से संबंधित हो। यदि एक युद्धरत राज्य तटस्थ राज्य के राज्य क्षेत्र में या उसके राज्य क्षेत्रीय समुद्र में कोई कार्यवाही करता है, जिसे विधि तटस्थ राज्य द्वारा रोकने की अपेक्षा करती है, तो पीड़ित युद्धरत राज्य से उसके अपने कर्तव्यों के पालन की असफलता के लिए प्रतिकार या प्रत्यावर्तन की मांग कर सकता है।

(ङ) क्षतिपूर्ति

तटस्थ राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने कर्तव्य के उल्लंघन में युद्धरत राज्यों को प्रति कर प्रदान करे। इस विषय पर अल्बामा आर्बिट्रेशन महत्वपूर्ण वाद है, जिसमें अमेरिकी गृह युद्ध के समय संघीय नौसेना के प्रयोग के लिए कई जलयान ब्रिटेन के कारखानों में बनाए गए थे। ये जलयान उस समय शस्त्र विहीन थे, जब उनको ब्रिटिश बंदरगाह से छोड़ा गया था, किंतु बाद में उन पर तोपें लगाई गईं तथा उस समय सामान्य रूप से यह जानकारी थी कि संघीय सेना द्वारा इनका प्रयोग अमेरिका के विरुद्ध किया

जाएगा। लंदन में अमेरिकी मंत्री ने ब्रिटिश सरकार का ध्यान उन प्रयोजनों के प्रति आकर्षित किया, जिसके लिए उन जलयानों का प्रयोग किया जाना था तथा अमेरिकी मंत्री ने यह भी कहा कि उनकी जल यात्रा तटस्थ राज्य के रूप में ग्रेट ब्रिटेन के कर्तव्य का उल्लंघन होगा। उन प्रतिवादों के उपरांत भी जलयान को प्रस्थान करने की अनुमति प्रदान कर दी गई।

टिप्पणी

संयुक्त राज्य ने ब्रिटिश बंदरगाह में निर्मित संघीय पोतों की लूट के लिए प्रतिकर वसूलने की मांग की, किंतु ब्रिटिश सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन अपने उत्तरदायित्व से इनकार किया। वाशिंगटन संधि, 1871 द्वारा, संयुक्त राज्य अमेरिका मामले को मध्यस्थम अधिकरण को सौंपने के लिए सहमत हुआ। अधिकरण ने कहा कि लिवरपूल के बंदरगाह में जलयान के निर्माण से संबंधित सभी तथ्यों तथा ग्रेट ब्रिटेन से भेजे गए जलयानों के माध्यम से उपकरणों तथा शस्त्रों से स्पष्ट रूप से यह परिणाम निकलता है कि ब्रिटिश सरकार अपनी तटस्थ बाध्यताओं के निर्वहन में सावधानी का प्रयोग करने में असफल रही है, सभी दावों को पूर्ण करने हेतु ग्रेट ब्रिटेन अमेरिका को क्षतिपूर्ति धनराशि प्रदान करेगा। इस निर्णय से यह स्पष्ट होता है कि यदि तटस्थ राज्य अपने कर्तव्यों का उल्लंघन करते हैं, तो वे युद्ध मान राज्यों को प्रतिकर अदा करने के लिए दायी हैं।

तटस्थ राज्यों के अधिकार

तटस्थ राज्यों को इस प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं जिनको अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत मान्यता प्रदान की गई है। ये अधिकार इस प्रकार हैं–

(क) अनतिक्रमणीयता

तटस्थ राज्य का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अधिकार उसके राज्य क्षेत्र की अनतिक्रमणीयता होती है। युद्धरत राज्यों में से किसी एक के द्वारा तटस्थ राज्य के राज्य क्षेत्र में शत्रुता पूर्ण कार्य नहीं किया जा सकता। तदनुसार कॉमर्स राज्य के राज्य क्षेत्र में कोई शत्रुता पूर्ण कार्य न करना युद्धरत राज्यों का कर्तव्य है। युद्धरत राज्य तटस्थ राज्यों के प्रभुत्व संपन्न अधिकारों का सम्मान करने के लिए बाध्य हैं। अभिसमय संख्या 13 का अनुच्छेद–2 तटस्थ राज्य के राज्य क्षेत्रीय समुद्र में शत्रुता पूर्ण कार्य, जिसमें अधिग्रहण, प्रवेश तथा तलाशी सम्मिलित है, को निषेध करता है। अभिसमय का अनुच्छेद–5 तथा राज्य के बंदरगाह या सागर खंड को, शत्रु के विरुद्ध सामान्य कार्यवाही के अड्डे के रूप में, युद्धरत राज्य द्वारा प्रयोग को निषिद्ध करता है।

(ख) अन्य देशों के साथ व्यापार

तटस्थ राज्य युद्ध के राज्यों के अतिरिक्त अन्य राज्यों के साथ व्यापार करने के लिए स्वतंत्र होते हैं। जहां तक युद्धरत राज्यों के साथ तटस्थ राज्यों के अपने नागरिकों के व्यापार को सुरक्षा प्रदान करने के अधिकार का संबंध है वह उन मामलों, जो शत्रु राज्य के लिए निर्दिष्ट हैं, के अभिग्रहण के युद्धरत राज्यों के अधिकारों से संगत है। यह अधिकार युद्धरत राज्य पर तत्समान कर्तव्य अधिरोपित करता है कि वह अपने देशों के साथ तटस्थ राज्यों द्वारा व्यापार करने को ना रोके।

टिप्पणी

(ग) युद्धरत राज्य की अधिकारिता के अंतर्गत तटस्थ राज्य के व्यक्ति तथा संपत्ति

तटस्थ राज्य को यह देखने का अधिकार है कि युद्धरत राज्यों के राज्य क्षेत्र में निवास करने वाले नागरिकों के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जा रहा है। पुनः युद्धरत राज्यों के राज्य क्षेत्र में स्थित उसकी संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया जा रहा है तथा उसे नष्ट नहीं किया जा रहा है। यह अधिकार युद्धरत राज्यों पर तटस्थ राज्य के निवासियों के साथ निष्पक्ष व्यवहार करने का तथा तटस्थ राज्य की संपत्ति का अधिग्रहण ना करने का कर्तव्य निरूपित करता है। यदि अभिग्रहण करना आवश्यक ना हो।

(घ) आश्रय देने का अधिकार

तटस्थ राज्य को किसी व्यक्ति को आश्रय प्रदान करने का अधिकार है, जिनमें वे व्यक्ति भी सम्मिलित हैं, जो युद्धरत राज्य के सशस्त्र बल के सदस्य हैं। यदि युद्धरत राज्य की सेना को आश्रय प्रदान किया जाता है, तो उन्हें निःशस्त्र किया जाएगा तथा आवश्यक सतर्कता के अधीन रखा जाएगा। ऐसे मामलों में उनकी स्थिति युद्ध बंदी की तरह होती है। पुनः तटस्थ राज्य युद्धरत राज्य से संबंधित नष्ट जलयान के घायल या बीमार व्यक्तियों को भी आश्रय प्रदान कर सकता है। यदि ऐसे व्यक्तियों को आश्रय प्रदान किया जाता है तो यथासंभव पूर्ण सावधानी बरती जानी चाहिए, जिससे कि वे पुनः युद्ध की कार्यवाही में भाग न ले सकें। आश्रय को शत्रुतापूर्ण कार्य ना मानना युद्धरत राज्य का कर्तव्य है।

(ङ) प्रतिकर या प्रत्यावर्तन

जिस युद्धरत राज्य की सेना, विधि की अवहेलना में, तटस्थ राज्य के राज्य क्षेत्र का अतिक्रमण करती है, वह सिद्धांततः उसकी प्रभुत्व संपन्नता के प्रति किए गए दोषपूर्ण कार्य के लिए उसे क्षतिपूर्ति देने के लिए बाध्य होता है। यह दोषपूर्ण कार्य आवश्यक रूप से सार्वजनिक होता है तथा क्षतिपूर्ति राष्ट्रीय खेद की समुचित अभिव्यक्ति को प्रकट करता है, कि प्रभुत्व संपन्नता का निरादर किया गया है। पुनः तटस्थ राज्य को, उसके राज्य क्षेत्र के अंतर्गत अभिग्रहित किसी व्यक्ति या संपत्ति की, पूर्ण वापसी की मांग का अधिकार है, जहां तक वापसी करना तथा अभिग्रहण से उत्पन्न क्षति की अदायगी करना अभिग्रहणकर्ता की शक्ति के अधीन आता है।

4.2.3 तटस्थता के प्रकार

तटस्थता युद्ध के समय राज्य द्वारा स्वीकृत निष्पक्षता की प्रवृत्ति है। ऐसी प्रवृत्ति को स्वीकृत करने वाले राज्यों के मध्य कोई अंतर नहीं हो सकता। किंतु यदि कोई राज्य युद्ध से पृथक रहता है, तो उसे तटस्थ राज्य कहा जाता है और उसकी प्रवृत्ति को तटस्थता कहा जाता है। किंतु इस सिद्धांत को उन मामलों से भिन्न किया जाता है जिनमें राज्य कुछ विशेष परिस्थितियों, जैसे आर्थिक या भौगोलिक परिस्थितियों के कारण युद्ध में या सशस्त्र संघर्ष में भाग नहीं लेते। इस स्थिति को पूर्ण तटस्थता के विरोध में समुचित नाम के अभाव में सशर्त तटस्थता कहा जा सकता है। सशर्त तटस्थता तब हो सकती है जब प्रवर्तन कार्यवाही में सुरक्षा परिषद कुछ राज्यों को संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद–48 के अधीन कार्यवाही करने के लिए नहीं कहती है।

ऐसी परिस्थितियों में, यह कहा जा सकता है कि राज्यों को सशस्त्र तटस्थता की स्थिति प्राप्त हुई है। उनसे सुरक्षा परिषद को सहायता देने की मांग की जाती है, क्योंकि उसी समय कुछ विनिर्दिष्ट कारणों से वह ऐसा नहीं कर रहे हैं। पुनः तटस्थता की अवधारणा को उन राज्यों की स्थिति से अलग किया जा सकता है जिन्हें तटस्थीकृत राज्य कहा जाता है। तटस्थीकृत राज्य भविष्य में होने वाले सभी युद्धों में तटस्थ बने रहते हैं। किंतु तटस्थ राज्य केवल विशिष्ट युद्ध में तटस्थ रहते हैं। तटस्थीकृत राज्यों को कभी–कभी शाश्वत तटस्थता या स्थाई तटस्थता को धारण करने वाला भी कहा जाता है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. राष्ट्र संघ की प्रसंविदा में कितने प्रकार के युद्धों का वर्णन किया गया था?
   (क) पांच (ख) चार
   (ग) तीन (घ) दो
2. यदि कोई राज्य युद्ध से पृथक रहता है, तो उसे क्या कहा जाता है?
   (क) युद्धरत (ख) कायर
   (ग) तटस्थ (घ) चतुर

4.3 व्यक्तिगत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि, राष्ट्रीयता, विदेशी या अन्यदेशीय, प्रत्यर्पण

प्रारंभिक अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय विधि का विषय व्यक्ति नहीं वरन राज्य होता था। व्यक्तियों को केवल अंतर्राष्ट्रीय विधि के उद्देश्य के रूप में ही देखा जाता था तथा उनका महत्व केवल अन्यदेशीय की भूमिका तक ही सीमित था। किंतु संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के उपरांत व्यक्तियों की इस स्थिति में अत्यधिक परिवर्तन हुआ।

4.3.1 व्यक्तिगत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि

संयुक्त राष्ट्र ने अपने चार्टर की उद्देशिका में 'हम संयुक्त राष्ट्र के लोग' शब्दों का प्रयोग करके व्यक्तियों की महत्ता को बढ़ाया। यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय विधि प्राथमिक रूप से राज्यों के संबंध को ही विनियमित करती है तथा राज्य ही अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्राथमिक विषय हैं। किंतु केवल राज्य ही अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय नहीं रह गए हैं। इनके अतिरिक्त व्यक्तियों को भी अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुसार अधिकार तथा कर्तव्य प्रदान किए गए हैं। यहां यह भी स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि जब तक अंतर्राष्ट्रीय समुदाय राज्यों से गठित है, व्यक्तियों को अधिकार एवं कर्तव्य उन्हीं के माध्यम से प्राप्त हो सकता है। अंतर्राष्ट्रीय विधि में व्यक्तियों को निम्नांकित अधिकार तथा कर्तव्य प्रदान किए गए हैं–

अंतर्राष्ट्रीय विधि में व्यक्तियों के अधिकार

अंतर्राष्ट्रीय अभिसमयों के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय विधि में व्यक्तियों को कई अधिकार प्रदान किए गए हैं, जैसे कि–

टिप्पणी

(क) मानवाधिकार

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को 1948 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा स्वीकृत किया गया जो व्यक्तियों को विभिन्न अधिकार प्रदान करता है। इसके उपरांत 1966 में महासभा द्वारा दो प्रसंविदाएं अभिस्वीकार की गईं– (1) दीवानी तथा राजनीतिक अधिकारों की प्रसंविदा, तथा (2) आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा। इनमें संविदाकारी पक्षकारों ने घोषणा की कि वे व्यक्तियों को प्रसंविदा में यथा अनुबंधित विभिन्न अधिकारों को प्रदान करेंगे। पुनः महासभा द्वारा नवंबर 1989 को अंगीकृत बाल अधिकार अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय में 18 वर्ष से कम आयु के बालकों को कई अधिकार प्रदान किए गए हैं।

(ख) याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार

मानव अधिकारों के अंतर्गत व्यक्तियों को उनके अधिकारों का उल्लंघन किए जाने पर अंतर्राष्ट्रीय मंचों के समक्ष याचिका प्रस्तुत करने के कई अधिकार प्रदान किए गए हैं। उदाहरणार्थ, दीवानी तथा राजनैतिक अधिकारों की प्रसंविदा का ऐच्छिक नयाचार, 1966 व्यक्तियों द्वारा स्वयं अपने राज्य के विरुद्ध मानव अधिकार समिति के समक्ष याचिका प्रस्तुत करने के लिए प्रावधान करता है। इसी प्रकार, जातीय विभेद के सभी रूपों का उन्मूलन अभिसमय, 1966 भी अनुच्छेद–14 के अंतर्गत ऐसा ही प्रावधान करता है। जातीय विभेद उन्मूलन समिति अभिसमय में वर्णित अधिकारों के उल्लंघन के लिए व्यक्तियों के समूह से संसूचना प्राप्त करता है। उत्पीड़न और अन्य क्रूरता या अमानवीय व्यवहार या दंड के विरुद्ध अभिसमय, 1984 के अनुच्छेद–22 के अधीन भी व्यक्तिगत याचिका का प्रावधान किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय मंचों के समक्ष याचिका प्रस्तुत करने का व्यक्तियों का अधिकार केवल राज्य के निर्देश पर ही उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त कुछ क्षेत्रीय अभिसमय भी याचिका प्रक्रिया के लिए प्रावधान करते हैं, जैसेकि मानव अधिकार यूरोपीय अभिसमय, मानव अधिकार अमेरिकी अभिसमय 1969 आदि। वे अमेरिकी देश जिन्होंने अभिसमय का अनुसमर्थन नहीं किया है, अमेरिकी राज्यों के संगठन के चार्टर तथा मनुष्य के अधिकार तथा कर्तव्य पर अमेरिकी घोषणा 1948 के व्यापक आधार पर अंतर–अमेरिकी आयोग की व्यवस्था के अंतर्गत आते हैं।

(ग) समझौता तथा मध्यस्थम कार्यवाही का अधिकार

राज्यों के नागरिकों के मध्य निवेश विवाद समाधान अभिसमय, जिसको मार्च 1965 में बनाया गया था, सहमति के आधार पर समझौता तथा मध्यस्थम की प्रक्रिया के लिए अधिकार प्रदान करता है, जिससे विदेशी निवेशकों का निवेश प्राप्त करने वाले राज्यों के साथ विधिक विवादों का समाधान करने के लिए उन तक प्रत्यक्ष रूप से पहुंचा जा सके।

अंतर्राष्ट्रीय विधि के विरुद्ध अपराध

अंतर्राष्ट्रीय विधि के विरुद्ध निम्नांकित अपराध दृष्टिगोचर होते हैं–

(क) जलदस्युता का अपराध

परंपरागत रूप से जलदस्युता के अपराध को अंतर्राष्ट्रीय विधि के विरुद्ध अपराध माना गया है। इस अपराध को करने वाले को किसी भी राज्य द्वारा, जो अपराधी को गिरफ्तार करता है, दंड दिया जा सकता है। राष्ट्रों की विधि के अनुसार जलदस्युता

के अपराध के लिए मृत्युदंड दिया जा सकता है। किंतु इससे कम भी हो सकता है। ऐसा विभिन्न राज्यों की राष्ट्रीय विधि पर आधारित होता है। समुद्र विधि अभिसमय, 1982 ने इस रूढ़िगत विधि को अनुच्छेद 101 के अधीन प्रावधान करके संधिगत विधि में परिवर्तित कर दिया है जिसमें प्रावधान किया गया है कि जलदस्युता निम्नांकित अपराधों में से किसी एक को सम्मिलित करती है–

टिप्पणी

(1) व्यक्तिगत जलयान या व्यक्तिगत वायुयान के कर्मी दल या यात्रियों द्वारा व्यक्तिगत लाभ के लिए कारित उल्लंघन या निरोध का कोई अवैध कार्य या लूटपाट का कोई कार्य, जो (i) खुले समुद्र पर अन्य जलयान या वायुयान के विरुद्ध अथवा ऐसे जलयान या वायुयान पर पाए जाने वाले व्यक्तियों या संपत्ति के विरुद्ध, (ii) किसी राज्य की अधिकारिता के बाहर के स्थान में जलयान, वायुयान, व्यक्तियों या संपत्ति के विरुद्ध निर्दिष्ट है।

(2) जलयान या वायुयान को व्यक्तिगत जलयान या वायुयान बनाने के तथ्य के ज्ञान सहित उसकी क्रिया में उचित भागीदारी का कोई कार्य।

(3) उप परिच्छेद (1) तथा (2) में वर्णित कार्यों को उकसाने, आशा पूर्वक सुविधा पूर्ण बनाने का कोई कार्य। अनुच्छेद 100 के अधीन अभिसमय पुनः प्रावधान करता है कि सभी राज्य खुले समुद्र पर या किसी राज्य की अधिकारिता के बाहर किसी अन्य स्थान में जलदस्युता के दमन में पूर्ण संभव सहयोग करेंगे।

(ख) युद्ध के नियमों का उल्लंघन

युद्धरत राज्यों के सशस्त्र बलों के व्यक्तिगत सदस्य युद्ध के नियमों के उल्लंघन के लिए आपराधिक रूप से उत्तरदाई होते हैं तथा अन्य युद्धरत राज्यों द्वारा दंडित किए जा सकते हैं। कुछ मामलों में, अपराध करने वाले व्यक्तियों पर उन्हें अभिरक्षा में रखने वाले राज्य द्वारा राष्ट्रीय अधिकारिता के प्रयोग द्वारा तथा कुछ मामलों में अंतर्राष्ट्रीय प्रक्रिया द्वारा आरोपित किया जाता है। दूसरे विश्व युद्ध के बाद कुछ ऐसे मामले हुए जिनमें अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन उत्तरदायित्व सीधे व्यक्तियों पर आरोपित किया गया तथा जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय प्रक्रिया के अधीन दंडित किया गया। अंतर्राष्ट्रीय सैनिक अधिकरण के चार्टर के अनुसार अधिकरण की अधिकारिता को शांति के विरुद्ध अपराध, युद्ध अपराध तथा मानवता के विरुद्ध अपराध के लिए व्यक्तियों पर लागू किया गया है। राज्य प्रमुख या सरकार की सशस्त्र सेना के उत्तरदाई अधिकारी के रूप में अभियुक्त की शासकीय स्थिति पर विचार दायित्व से उन्हें मुक्त नहीं कर पाएगा, यद्यपि यह दंड को कम कर सकता है।

'टोक्यो विचारण', जापानी प्रमुख युद्ध अपराधियों का विचारण, भी इसी सिद्धांत पर संचालित किया गया था। संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने न्यूरेमबर्ग चार्टर में मान्य सिद्धांतों की अभिपुष्टि की है। अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग ने 1950 में शांति तथा मानव जाति की सुरक्षा के विरुद्ध अपराध प्रारूप संहिता तैयार की थी जिसमें अपराधों के लिए व्यक्तियों के उत्तरदायित्व को वर्णित किया गया है।

(ग) जासूसी का अपराध

हेग विनियम के अनुच्छेद–24 में प्राचीन रुढ़िगत नियम को अधिनियमित किया गया है, जो कि शत्रु तथा किसी राज्य के बारे में सूचना प्राप्त करने के आवश्यक तरीकों के

नियोजन को वर्जित नहीं करता है। किंतु यह उन व्यक्तियों को दंड से नहीं बचा सकता, जो सूचनाओं को प्राप्त करने में लिप्त हैं। जासूसी तथा युद्ध राजद्रोह करने वाले व्यक्तियों को युद्ध अपराधी माना जाता है तथा दंडित किया जा सकता है। जासूसी के अपराध का सामान्य दंड फांसी देना या गोली से मारना है। कभी–कभी इससे कम कठोर दण्ड भी दिया जाता है।

टिप्पणी

(घ) नरसंहार का अपराध

नरसंहार को अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत अपराध माना जाता है जिसके लिए अपराधियों को दंडित किया जाता है, चाहे वे राजनेता हों या लोक अधिकारी हों या व्यक्ति हों। यह नियम महासभा द्वारा दिसंबर 1946 को अभिस्वीकृत संकल्प में बनाया गया था। पुनः महासभा द्वारा दिसंबर 1948 को सामान्य रूप से नरसंहार अभिसमय के रूप में ज्ञात नरसंहार के अपराध का निवारण तथा दंड अभिसमय स्वीकार किया गया। जिसको जनवरी 1951 को प्रवर्तित किया गया। अभिसमय प्रावधान करता है कि संविदाकारी पक्षकार इसकी पुष्टि करते हैं कि नरसंहार, चाहे शांति काल में किया गया हो या युद्ध काल में, अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन अपराध होगा जिसे दंडित करने के लिए वह वचनबद्ध है। अभिसमय के अंतर्गत यह भी प्रावधान किया गया है कि जो नरसंहार करने के अपराध का दोषी पाया जाएगा उसे दंडित किया जाना चाहिए चाहे वह संवैधानिक रूप से उत्तरदाई शासक, लोक अधिकारी या गैर सरकारी व्यक्ति हो।

(ङ) वायुयान अपहरण

व्यक्तियों को वायुयान अपहरण के लिए तथा नागरिक विमानन की सुरक्षा के विरुद्ध कारित विधि विरुद्ध कार्यों के लिए दंडित किया जा सकता है।

(च) राजनयिक कर्मचारियों व अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध अपराध

राजनयिक अभिकर्ताओं सहित अंतर्राष्ट्रीय रूप से संरक्षित व्यक्तियों के विरुद्ध अपराध का निवारण दंड अभिसमय, 1973 तथा बंधक बनाने पर अभिसमय, 1979 अभिव्यक्त रूप से अभिसमय में वर्णित कार्यों के लिए व्यक्तियों के लिए दंड का प्रावधान करता है।

(छ) रंगभेद

रंगभेद दक्षिण अफ्रीका द्वारा अपनी जातीय नीति को दिया गया शासकीय नाम है। रंगभेद का उद्देश्य संपूर्ण अफ्रीका में उत्पन्न राष्ट्रीयता के उपरांत भी उसके अवयस्क गोरों द्वारा देश के शासन को शाश्वत बनाए रखना है। यह नीति मानव अधिकार, नरसंहार, पराधीनता की विधि का उल्लंघन करती है तथा यह मानवता के विरुद्ध अपराध है। इसे समाप्त करने तथा इसको कारित करने वाले को दंड देने के लिए महासभा द्वारा नवंबर 1973 को एक अभिसमय अंगीकृत किया गया था।

पिछले कुछ समय में रंगभेद के भिन्न–भिन्न अपराधों को करने के लिए कई व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। जैसे कि चिली के पूर्व राष्ट्रपति अगस्टो पिनोचेट को लंदन में गिरफ्तार किया गया। उनके ऊपर अपने पदावधि के समय हत्या एवं यातना के आरोप थे। इसी प्रकार जनवरी 2000 में चाड के पूर्व राष्ट्रपति हिस्ने हब्रे को उसी प्रकार के अपराधों के लिए सेनेगल के राज्य अभियोजक द्वारा अभियोजित किया गया। मई 1999 में युगोस्लाविया (पूर्व) के राष्ट्रपति मिलोसेविच को अंतर्राष्ट्रीय आपराधिक अधिकरण द्वारा अभियोजित किया गया।

4.3.2 राष्ट्रीयता

व्यक्तियों की राष्ट्रीयता का निर्धारण राष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुसार किया जाता है। स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने 1923 में घोषणा की थी कि अंतर्राष्ट्रीय विधि की वर्तमान स्थिति में राष्ट्रीयता का प्रश्न एकमात्र राज्य की आंतरिक अधिकारिता के अंतर्गत आता है। ऐसी विधियों को अन्य राज्यों द्वारा मान्यता दिए जाने की अपेक्षा की जाती है। हेग संहिता करण सम्मेलन 1930 द्वारा स्वीकृत राष्ट्रीय विधियों के संघर्ष से संबंधित कुछ प्रश्नों पर अभिसमय का अनुच्छेद–1 प्रावधान करता है प्रत्येक राज्य अपनी विधि के अंतर्गत यह निर्धारित कर सकता है कि कौन उसका राष्ट्रीय होगा। ऐसी विधि को अन्य राज्य द्वारा केवल तब मान्यता दी जाएगी, जब यह अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय, अंतर्राष्ट्रीय रूढ़ियों तथा राष्ट्रीयता के संबंध में सामान्य रूप से मान्य विधि के सिद्धांतों से संगत होगा। अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा यह परिसीमा अन्य राज्यों के हित में निर्धारित की जाती है ना कि व्यक्तियों के हित के लिए।

टिप्पणी

राष्ट्रीय विधि ऐसी अधिकारिता के प्रयोग की अनुज्ञा देती है तथा उन सीमाओं का निर्धारण करती है जिनके अंतर्गत उसका प्रयोग किया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय विधि का यह लक्ष्य है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास एक राष्ट्रीयता हो। मानव अधिकार सार्वभौमिक घोषणा, 1948 के अनुच्छेद–15 के परिच्छेद–1 के अंतर्गत प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रीयता का अधिकार है। अतः राष्ट्रीयता का अधिकार मानव अधिकार है।

राष्ट्रीयता तथा नागरिकता

यद्यपि राष्ट्रीयता तथा नागरिकता शब्दों को कई अवसरों पर पर्यायवाची समझा जाता किंतु ऐसा नहीं है। दोनों ही एक–दूसरे से भिन्न हैं। राष्ट्रीयता राज्य से संबंधित होने का गुण है तथा इसी के द्वारा व्यक्ति विश्व में जाना जाता है। इस प्रकार राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत राज्य तथा व्यक्ति के मध्य विधिक संबंध का सृजन करती है। दूसरी ओर, नागरिकता व्यक्ति तथा राष्ट्रीय विधि के मध्य संबंध को निर्दिष्ट करती है। नागरिकता की अवधारणा अंतर्राष्ट्रीय विधि के लिए असंगत होती है। नागरिक राज्य के सभी दीवानी तथा राजनैतिक अधिकारों को धारण करते हैं, जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका राष्ट्रीयता अधिनियम 1940 के अंतर्गत प्रावधान किया गया है। यह अधिनियम नियम संयुक्त राज्य के अंतर्गत पूर्ण राजनैतिक तथा व्यक्तिगत अधिकारों से संपन्न व्यक्तियों को निर्दिष्ट करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

राष्ट्रीयता अर्जित करने के प्रकार

किसी व्यक्ति द्वारा किसी राज्य की राष्ट्रीयता उस राज्य की राष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुसार ग्रहण की जा सकती है। अर्थात राज्य की राष्ट्रीय विधि यह निर्धारण करती है कि कौन व्यक्ति उस विशेष राज्य का राष्ट्रिक हो सकता है। अतः राष्ट्रीयता को ग्रहण करने का प्रकार एक समान नहीं वरन भिन्न–भिन्न होता है। किसी राज्य की राष्ट्रीयता अर्जित करने के कुछ सामान्य तरीके निम्न प्रकार हैं–

(क) जन्म द्वारा– कई राज्यों द्वारा अपनी राष्ट्रीयता जन्म के आधार पर प्रदान की जाती है। जिन व्यक्तियों का जन्म राज्य की राज्य क्षेत्र सीमा के अंतर्गत होता है, वे उस राज्य की राष्ट्रीयता अर्जित कर लेते हैं। इस सिद्धांत को जस सोली

टिप्पणी

कहा जाता है। यूनाइटेड किंगडम, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा लैटिन अमेरिका के राज्य जस सोली सिद्धांत का अनुसरण करते हैं। भारतीय नागरिकता अधिनियम, 1955 के अंतर्गत जन्म के आधार पर राष्ट्रीय होने का प्रावधान है। 26 जनवरी, 1950 को या उसके उपरांत केवल भारत के राज्य क्षेत्र में जन्म किसी व्यक्ति को भारतीय राष्ट्रीय बना देगा, चाहे माता–पिता दोनों अन्य देशीय हों। किंतु इसमें नागरिकता अधिनियम, 1986 द्वारा संशोधन किया गया है, जो प्रावधान करता है कि 1986 के अधिनियम के आरंभ के समय या उसके उपरांत भारत में जन्मा प्रत्येक व्यक्ति जन्म द्वारा भारत का राष्ट्रीय होगा, यदि उसके माता–पिता में से कोई उसके जन्म के समय भारत का नागरिक हो। नागरिकता संशोधन अधिनियम 2003 ने नागरिकता अधिनियम 1955 में संशोधन किया है। 2003 के अधिनियम के अनुसार भारत में जन्मा प्रत्येक व्यक्ति 26 जनवरी, 1950 को या उसके बाद 01 जुलाई 1987 के पहले या 01 जुलाई 1987 को या उसके बाद किंतु नागरिकता संशोधन अधिनियम 2003 के लागू होने के पहले यदि उसके माता–पिता में से कोई भी उनके जन्म के समय भारत के नागरिक हो। या नागरिकता संशोधन अधिनियम 2003 के लागू होने के उपरांत यदि माता–पिता दोनों भारत के नागरिक हैं या माता–पिता में से एक भारत का नागरिक है और उनमें से एक अवैध प्रवासी नहीं है तो वह भारत का नागरिक हो जाएगा।

(ख) वंश क्रम द्वारा– एक राज्य की राष्ट्रीयता किसी व्यक्ति द्वारा माता–पिता दोनों में से किसी की राष्ट्रीयता के आधार पर भी अर्जित की जा सकती है। इस प्रकार शिशु उस राज्य का राष्ट्रीय हो जाएगा जिस राज्य के राष्ट्रीय उसके माता–पिता हैं। इस सिद्धांत को जस सेंगुइनिस कहा जाता है। जर्मनी तथा फ्रांस इस सिद्धांत के आधार पर राष्ट्रीयता प्रदान करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा यूनाइटेड किंग्डम जस सोली के सिद्धांत के अतिरिक्त इस सिद्धांत को भी मान्यता प्रदान करते है। भारत भी दोनों ही सिद्धांतों को मान्यता प्रदान करता है।

नागरिकता संशोधन अधिनियम 1992 व्यवस्था करता है कि कोई भी व्यक्ति वंशानुक्रम द्वारा भारत की नागरिकता अर्जित करेगा, (i) यदि उसका जन्म उसके जन्म के 1 वर्ष के भीतर या नागरिक संशोधन अधिनियम 1992 के प्रारंभ पर, जो भी बाद में हो या ऐसी अवधि के पर्यवसान पर केंद्रीय सरकार की अनुमति से भारतीय काउंसिल कार्यालय में पंजीकृत किया जाता है या (ii) जन्म के समय उसके माता–पिता में से दोनों भारत सरकार के अधीन सेवा में हैं। यह उल्लेख किया जा सकता है कि कई राज्यों ने, जस सोली के सिद्धांत तथा जस सेंगुइनिस के सिद्धांत, दोनों को ही मान्यता प्रदान की हुई है।

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2003 का अनुच्छेद–4 भारत के बाहर जन्मे व्यक्ति को वंशानुक्रम द्वारा भारत की नागरिकता प्रदान करने का भी उपबंध करता है। किंतु यदि कोई भी अवयस्क, जो इस अनुच्छेद के अंतर्गत भारत का नागरिक बनता है तथा दूसरे देश का भी नागरिक है, वह भारतीय नागरिक नहीं रहेगा, यदि वह 6 माह के भीतर दूसरे देश की नागरिकता का त्याग नहीं कर देता। अधिनियम यह भी उल्लेख करता है कि ऐसे किसी व्यक्ति का रजिस्ट्रेशन

नहीं होगा जब तक की उसके माता–पिता विहित प्रकार से घोषणा नहीं कर देते कि अवयस्क के पास किसी दूसरे राज्य का पासपोर्ट नहीं है।

(ग) देशीयकरण द्वारा– जब कोई व्यक्ति जन्म से एक राज्य की राष्ट्रीयता अर्जित करता है तथा बाद में किसी अन्य राज्य की राष्ट्रीयता अर्जित कर लेता है और इस प्रकार उसकी राष्ट्रीयता परिवर्तित हो जाती है तो इस प्रक्रिया को देशीय करण के माध्यम से राष्ट्रीयता अर्जित करना कहा जाता है। देशीयकरण द्वारा राष्ट्रीयता अर्जित करने के कई प्रकार हैं, जैसे– विवाह, वैधीकरण, विकल्प, निवास का अर्जन, सरकारी पदाधिकारियों के रूप में नियुक्ति तथा आवेदन की स्वीकृति। माता–पिता द्वारा बच्चों को गोद लेना उन्हें अपने माता–पिता की राष्ट्रीयता का हकदार बना देता है। यह कहा जा सकता है कि देशीयकरण द्वारा राष्ट्रीयता प्रदान करने का विवेक अधिकार राज्यों के पास होता है। राज्य उन शर्तों के पूर्ण किए जाने पर राष्ट्रीयता प्रदान करता है जिनको वह उचित समझता है। जो व्यक्ति देशीयकरण के माध्यम से राष्ट्रीयता प्राप्त करना चाहता है उससे आवेदन देने तथा देशीयकरण के माध्यम से राष्ट्रीयता ग्रहण करने के लिए अनुरोध करने की अपेक्षा की जाती है। भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955 की धारा 6 के अंतर्गत प्रावधान किया गया है कि कोई व्यक्ति कुछ शर्तों को पूर्ण होने पर देशीयकरण द्वारा भारतीय नागरिकता ग्रहण कर सकता है।

टिप्पणी

(घ) पुनर्ग्रहण द्वारा– जो व्यक्ति देशीयकरण द्वारा या किन्हीं अन्य कारणों से अपनी राष्ट्रीयता खो देता है, वह पुनः उसी राज्य की राष्ट्रीयता ग्रहण कर सकता है। इस प्रकार के अर्जन को पुनः एकीकरण या पुनर्ग्रहण कहा जाता है। भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955 की धारा 8 का परिच्छेद–2 अवयस्क को न कि वयस्क को, वयस्कता प्राप्त करने की तिथि से एक वर्ष के अंतर्गत आवेदन पर उसकी राष्ट्रीयता के पुनर्गठन की अनुज्ञा प्रदान करता है, यदि वह अपने माता–पिता के कारण भारतीय नागरिकता को खो देता है। वापसी की प्रक्रिया नागरिकता नियमावली के अधीन दी गई है।

(ङ) अधीनीकरण– व्यक्ति राज्य द्वारा विजय प्राप्त करने के उपरांत अधीनीकरण के द्वारा राष्ट्रीयता धारण कर सकता है और जब राज्य के राज्य क्षेत्र का कोई भाग या स्वयं राज्य अन्य राज्य द्वारा अधीन कर लिया जाता है, तब राज्य क्षेत्र के सभी निवासी विजेता राज्य के राष्ट्रीय हो जाते हैं। जब ऑस्ट्रिया को जर्मनी द्वारा अपने में मिलाया गया तब ऑस्ट्रिया के सभी नागरिक जर्मन नागरिक हो गए थे। भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955 की धारा–7 व्यवस्था करती है कि यदि कोई राज्य क्षेत्र भारत का भाग हो जाता है तब उस राज्य क्षेत्र के सभी व्यक्ति केंद्र सरकार द्वारा जारी किए गए आदेश में विनिर्दिष्ट तिथि से स्वतः भारत के नागरिक हो जाएंगे। इस प्रकार जब गोवा, दमन तथा दीव भारत का भाग हो गया, तब गोवा दमन तथा दीव (नागरिकता) आदेश 26 मार्च, 1962 को जारी किया गया, तत्पश्चात वहां के सभी व्यक्ति भारत के नागरिक हो गए।

(च) अध्यर्पण द्वारा– जब किसी राज्य का राज्य क्षेत्र का कोई भाग अन्य राज्य को अर्पित कर दिया जाता है, तब सभी नागरिक समर्पित करने वाले राज्य के राष्ट्रीय को ग्रहण कर लेते हैं।

टिप्पणी

(छ) विकल्प द्वारा– जब राज्य का विभाजन दो या अधिक राज्यों में हो जाता है तब राज्य के नागरिकों को उत्तराधिकारी राज्यों में किसी एक का नागरिक होने का विकल्प प्राप्त होता है। यही सिद्धांत राज्य की अदला–बदली के मामले में भी लागू होता है। विकल्प द्वारा राष्ट्रीयता को ग्रहण करने का व्यापक रूप से प्रयोग 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में निवासियों को यथासंभव उन्हें संरक्षण प्रदान करने के लिए किया गया था।

(ज) पंजीकरण द्वारा– कोई व्यक्ति पंजीकरण द्वारा भी किसी राज्य की राष्ट्रीयता ग्रहण कर सकता है। पंजीकरण के माध्यम से राष्ट्रीयता ग्रहण करने की प्रक्रिया विभिन्न राज्यों में राष्ट्रीय विधि के आधार पर पृथक–पृथक होती है। भारत में पंजीकरण के माध्यम से नागरिकता ग्रहण करने हेतु भारतीय नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा–5 के अधीन प्रावधान किए गए हैं।

राष्ट्रीयता खोने के प्रकार

कोई व्यक्ति किसी राज्य की अपनी राष्ट्रीयता निम्न प्रकार खो सकता हैः–

(क) निर्मुक्ति द्वारा–कुछ राज्य अपने राष्ट्रीयों को उनकी राष्ट्रीयता से निर्मुक्त होने का अधिकार प्रदान करते हैं। यह निर्मुक्ति केवल तब ही संभव हो सकती है जब उसके द्वारा आवेदन किया जाता है तथा यदि यह सम्बद्ध राज्य द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है।

(ख) वंचन द्वारा–किसी राज्य का नागरिक किसी घटना के घटित होने से भी राष्ट्रीयता से वंचित हो सकता है। कई राज्यों के विधान राष्ट्रीयता के वंचन के कई आधारों को मान्यता प्रदान करते हैं। जैसे कि यदि किसी राज्य का नागरिक उस राज्य की अनुज्ञा के बिना विदेशी राज्य के नागरिक व सैन्य सेवा में भर्ती हो जाता है, तब वह अपनी राष्ट्रीयता से वंचित हो सकता है। भारतीय नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा–10 नागरिकता के वंचन का प्रावधान करती है।

(ग) त्याग द्वारा– कोई व्यक्ति राज्य की अपनी राष्ट्रीयता का त्याग कर सकता है। राष्ट्रीयता के त्याग का प्रश्न तब उत्पन्न होता है जब कोई व्यक्ति एक राज्य से अधिक राज्यों की राष्ट्रीयता ग्रहण कर लेता है। ऐसी स्थिति में उसको एक राज्य की राष्ट्रीयता को प्रतिधारित करने तथा अन्य का त्याग करने का विकल्प होता है।

(घ) प्रतिस्थापना द्वारा– कोई व्यक्ति राज्य की राष्ट्रीयता उस समय भी खो सकता है जब वह देशीयकरण द्वारा किसी अन्य राज्य की राष्ट्रीयता ग्रहण कर लेता है। भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955 की धारा–9 की उप–धारा–1 भारतीय नागरिकता की स्वतः समाप्ति के लिए केवल तब प्रावधान करती है, जब भारतीय नागरिक स्वेच्छा से अन्य देश की नागरिकता ग्रहण कर लेता है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि कोई नागरिक दोहरी नागरिकता ना रख सके। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति की नागरिकता एक राज्य से दूसरे राज्य को प्रतिस्थापित हो जाती है। किंतु यह प्रावधान भारत के उन नागरिकों पर लागू नहीं होता जो किसी युद्ध, जिसमें भारत संलग्न है, के समय स्वेच्छा से अन्य देश की

नागरिकता ग्रहण कर लेते हैं, जब तक केंद्रीय सरकार अन्यथा प्रावधान नहीं करती।

(ङ) समापन द्वारा– कोई व्यक्ति समापन द्वारा राज्य की राष्ट्रीयता गंवा सकता है। जैसे कि कुछ राज्यों ने विधायन द्वारा प्रावधान किए हैं कि उनके नागरिकों की नागरिकता उन मामलों में समाप्त हो सकती है जब उन्होंने देश छोड़ दिया है या निश्चित समय अवधि के लिए विदेश में रुक गए हैं।

टिप्पणी

दोहरी नागरिकता

राष्ट्रीयता के निर्धारण के संबंध में राष्ट्रीय विधियों में एकरूपता ना होने के कारण दोहरी राष्ट्रीयता की समस्या उत्पन्न हो जाती है। कोई व्यक्ति एक समय में दो राज्यों की राष्ट्रीयता अर्थात दोहरी राष्ट्रीयता या बहु राष्ट्रीयता ग्रहण कर सकता है। यह कई प्रकार से संभव हो सकता है। जैसे कि यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य देश में अर्थात अपने माता–पिता के देश से पृथक किसी देश में जन्म लेता है तो वह जस सोली के सिद्धांत के अनुसार उस देश का नागरिक होगा जिस देश में वह जन्म लेता है तथा उसी समय जस सेंगुईनिस के सिद्धांत के आधार पर वह उस देश का भी नागरिक हो जाता है जिसके उसके माता–पिता नागरिक हैं। पुनः एक महिला विवाह के उपरांत अपने पति की राष्ट्रीयता अर्जित कर सकती है तथा उसी समय में वह अपनी मूल राष्ट्रीयता को भी निरंतर धारण कर सकती है।

राष्ट्रीय विधियों के मध्य ऐसी परिस्थितियों को रोकने तथा उनका उन्मूलन करने के लिए कुछ प्रयास किए गए हैं। राष्ट्र संघ ने हेग में राष्ट्रीयता विधियों के संघर्ष से संबंधित प्रश्नों के संबंध में अपने 1930 के संहिता करण सम्मेलन में एक अभिसमय को तैयार किया था, जिसमें दोहरी राष्ट्रीयता से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए कई प्रावधान अंतर्विष्ट किए गये थे। अनुच्छेद–5 में प्रावधान किया गया है कि दोहरी राष्ट्रीयता धारण करने वाले व्यक्ति को तीसरे राज्य में उस राष्ट्र का नागरिक माना जाएगा जिस राज्य में उसका नियमित तथा मुख्य अधिवास है या जिसके साथ में अत्यधिक घनिष्ठा से जुड़ा हुआ है। इस सिद्धांत को बहु राष्ट्रीयता के मामले की कमी पर यूरोपीय अभिसमय 1963 के अनुच्छेद–1 के परिच्छेद–1 व 2 में भी सम्मिलित किया गया है। 1930 के अभिसमय का अनुच्छेद–8 से 11 तक विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीयता के लिए प्रावधान करता है। यदि महिला विवाह करती है तो वह अपने पति की राष्ट्रीयता को अपने आप अर्जित कर लेगी। 1930 के अभिसमय को लागू किया गया है किंतु इसको केवल कुछ राज्यों में ही प्रवर्तित किया गया है।

राष्ट्र विहीनता

जब कोई व्यक्ति किसी राज्य की राष्ट्रीयता धारण नहीं करता तो उसे विराष्ट्रीय या राष्ट्र–विहीन कहा जाता है। विराष्ट्रीय व्यक्तियों की परिस्थिति से संबंधित अभिसमय 1954 महासभा द्वारा दिसंबर 1954 में अंगीकृत किया गया, जो 6 जून, 1960 को लागू हुआ। सितंबर 2016 तक अभिसमय के 90 राज्य पक्षकार थे। अभिसमय के अनुच्छेद–1 के अंतर्गत विराष्ट्रिक व्यक्तियों को परिभाषित किया गया है। ऐसे व्यक्ति जिनको किसी भी राज्य द्वारा अपनी विधियों के अंतर्गत अपना नागरिक ना माना जाता हो, किसी भी राज्य के वैधानिक शासन की सामान्य सीमाओं की परिधि से बाहर होते हैं। ऐसी स्थिति

टिप्पणी

में वैधानिक शून्यता के कारण व्यक्तिगत पहचान, संबद्धता व स्थान के बोध का उनमें अभाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसे व्यक्ति औपचारिक रूप से कहीं कार्य नहीं कर सकते, संपत्ति धारण नहीं कर सकते, शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाएं नहीं प्राप्त कर सकते, यात्रा जन्म विवाह या मृत्यु का पंजीकरण नहीं करा सकते या किसी भी राज्य से राष्ट्रीय सुरक्षा नहीं मांग सकते। कोई व्यक्ति जानबूझकर या अनजाने में या आशयपूर्वक विराष्ट्रीय हो सकता है या वह अपनी किसी त्रुटि के बिना भी विराष्ट्रीय हो सकता है। व्यक्ति या तो जन्म द्वारा या जन्म के उपरांत विराष्ट्रीय हो सकता है। जहां धर्माज बालक उस राज्य में जन्म लेता है जिसके राष्ट्रीय विधि के अधीन में अपनी माता की राष्ट्रीयता को अर्जित नहीं करता है या जहां धर्मपुत्र ऐसे राज्य में जन्म लेता है जहां उसके माता–पिता की कोई राष्ट्रीयता नहीं है, वहां बालक विराष्ट्रीय होगा। राष्ट्र विहीनता जन्म के उपरांत भी हो सकती है अर्थात दंड या अन्य कारण से राष्ट्रीयता से वंचित होने या खोने के फलस्वरूप। जिस व्यक्ति ने अन्य राष्ट्रीयता को अर्जित किए बिना अपनी मूल राष्ट्रीयता खो दी हो वह वास्तव में विराष्ट्रीय हो जाता है। ऐसी स्थिति राष्ट्रीयता के निर्धारण के संबंध में विभिन्न राज्यों की राष्ट्रीय विधि में एकरूपता के अभाव के कारण उत्पन्न हो सकती है अर्थात किसी व्यक्ति को किसी अन्य राज्य की राष्ट्रीयता को अर्जित किए बिना उसकी राष्ट्रीयता से वंचित किया जा सकता है। अपने देश से विदेश में पलायन करने वाले शरणार्थी भी विराष्ट्रीय हो सकते हैं। विराष्ट्रीय उन अधिकारों का उपभोग नहीं कर सकते जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय विधि के द्वारा व्यक्ति को प्रदान किया जाता है। उदाहरणार्थ, उनके हितों की संरक्षा किसी भी राज्य द्वारा नहीं की जाती है। उनको उन अधिकारों के उपभोग से भी वंचित किया जाता है जो पारस्परिकता पर आधारित होते हैं। कुछ ऐसे अधिकार हैं जैसे व्यक्तिगत सामर्थ्य, पारिवारिक अधिकार, वैवाहिक व्यवस्था तथा संपत्ति का उत्तराधिकार जिनका व्यक्ति सामान्य रूप से तब तक उपभोग नहीं कर सकता जब तक उसकी व्यक्तिगत प्रस्थिति, जो उन अधिकारों का निर्धारण करती है, संदेहास्पद बनी रहती है।

राष्ट्र विहीनता समाप्त करने के उपाय

किसी व्यक्ति की राष्ट्र विहीनता की स्थिति को समाप्त करने हेतु कुछ प्रयास किए गए हैं। प्रथमतया, सन 1930 में राष्ट्रीयता विधियों का संघर्ष अभिसमय 1930 के अधीन प्रावधान किए गए हैं कि संविदाकारी पक्षकार अपने राज्य क्षेत्र में जन्मे उस व्यक्ति को राष्ट्रीयता प्रदान करने के लिए सहमत होंगे जो राष्ट्र विहीन होगा तथा अनुच्छेद–4 के अधीन उस व्यक्ति को राष्ट्रीयता प्रदान करने के लिए सहमत होंगे जिसने संविदाकारी राज्यों के राज्य क्षेत्र में जन्म नहीं लिया है, यदि व्यक्ति का जन्म के समय उसके माता–पिता में से किसी की भी राष्ट्रीयता उस राज्य की थी। सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा, 1948 प्रावधान करती है कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्रीयता धारण करने का अधिकारी है तथा किसी व्यक्ति की राष्ट्रीयता को मनमाने रूप से नहीं छीना जा सकता। किंतु यह इस संबंध में प्रावधान नहीं करता कि किस प्रकार इस अधिकार का प्रयोग किया जा सकेगा, यदि व्यक्ति राष्ट्र विहीन हो जाता है। राष्ट्र विहीनता के उन्मूलन के लिए या समाप्त करने के लिए बाद में कुछ अभिसमय बनाए गए जैसे कि 1951 का शरणार्थियों की प्रस्थिति से संबंधित अभिसमय तथा 1954 का राष्ट्र विहीनता की प्रस्थिति से संबंधित अभिसमय इस संबंध में सुसंगत हैं। अभिसमय के अंतर्गत

संविदाकारी पक्षकार शरणार्थियों व राष्ट्र विहीनों के समामेलन तथा देशीयकरण को सरल बनाने हेतु वचन देते हैं।

महासभा ने 1954 में भविष्य में राष्ट्रीयता में कमी करने के लिए अभिसमय के निर्माण हेतु दूतों का अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन अंगीकार किया जिसमें कम से कम 20 राज्यों ने ऐसे सम्मेलन में सहयोग करने की अपनी इच्छा की संसूचना महासचिव को दी थी। 1959 में जेनेवा में आयोजित सम्मेलन में जन्म से राष्ट्रीयता में कमी करने का लक्ष्य रखकर प्रावधानों को स्वीकार किया गया। राष्ट्र विहीन व्यक्तियों की प्रस्थिति से संबंधित अभिसमय 1954 को अंगीकार किया गया। 1961 में पुनः न्यूयॉर्क में सम्मेलन आयोजित किया गया तथा राष्ट्रीयता की कमी पर अभिसमय को अंगीकार किया गया।

टिप्पणी

राष्ट्रीय विधि आयोग ने वर्ष 1999 में राज्य उत्तराधिकार के संबंध में नैसर्गिक व्यक्तियों की राष्ट्रीयता पर अंतिम प्रारूप लेखों को अंगीकार किया, जिनमें कहा गया कि प्रत्येक व्यक्ति को जो राज्य अधिकार के दिन पूर्ववर्ती राज्य की नागरिकता या किसी संबंधित राज्य की राष्ट्रीयता प्राप्त करने का अधिकार होगा। इस सब के उपरांत भी यह कहा जा सकता है राष्ट्र विहीनता का उन्मूलन करने या इसमें कमी करने में अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों का केवल सीमित प्रभाव रहा है, क्योंकि राष्ट्र विहीनता को अवधारित करना अभी भी प्रत्येक राष्ट्र की सक्षमता के अंतर्गत है। इस कारण राष्ट्र विहीनता पूर्णतया समाप्त नहीं हो पाई है। यह अपेक्षित है कि राष्ट्र विहीनता का उन्मूलन करने या इसमें कमी करने के लिए राज्यों को प्राथमिकता से प्रयास करना चाहिए। राष्ट्र विहीनता का उन्मूलन करने का एक समुचित प्रकार हो सकता है कि राज्यों पर अपने राज्य क्षेत्र में जन्म लेने वाले सभी व्यक्तियों को अपनी राष्ट्रीयता प्रदान करने की बाध्यता अधिरोपित की जाए। उन्हें राष्ट्रीयता से वंचित नहीं करना चाहिए यदि उन्हें अन्य राज्यों की राष्ट्रीयता प्राप्त नहीं हुई है।

भारत में राष्ट्रीयता की स्थिति

भारत के संविधान में राष्ट्रीयता शब्द के स्थान पर नागरिकता शब्द का उपयोग किया गया है। संविधान का भाग–2 साधारण रूप से यह प्रावधान करता है कि संविधान के प्रारंभ के समय कौन भारत का नागरिक होगा। यह नागरिकता की संपूर्ण विधि को संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा विनियमित किए जाने के लिए छोड़ देता है। संविधान का अनुच्छेद–11 अभिव्यक्त रूप से ऐसे मामलों पर व्यापक विधान अधिनियमित करने के लिए संसद को सशक्त करता है। ऐसी विधि को नागरिकता अधिनियम 1955 द्वारा अधिनियमित किया गया है। यह अधिनियम भारतीय नागरिकता के अर्जन हेतु पांच प्रकारों का वर्णन करता है– जन्म द्वारा, वंश क्रम द्वारा, पंजीकरण द्वारा, देशीय करण द्वारा तथा राज्य क्षेत्र के समामेलन द्वारा। इसके अलावा अवयस्क, पुनर्ग्रहण या पुनर एकीकरण द्वारा राष्ट्रीयता प्राप्त कर सकता है। अधिनियम उन प्रकारों को भी अधिकथित करता है जिनके द्वारा व्यक्ति भारतीय नागरिकता खो सकता है, ये हैं– त्याग, पर्यवसान तथा वंचन किया जाना।

राष्ट्रीयता के अर्जन हेतु विधि को कठोर बनाने के लिए 1986 में अधिनियम को संशोधित किया गया है। अधिनियम में प्रावधान किया गया है कि अब व्यक्तियों को जन्म द्वारा नागरिकता स्वतः प्रदान नहीं की जाएगी। जन्म द्वारा नागरिकता केवल तब प्रदान की जाएगी जब व्यक्ति के माता–पिता में से कोई उसके जन्म के समय भारतीय

टिप्पणी

नागरिक हो। पुनः अधिनियम में पंजीकृत सदस्यगणों द्वारा नागरिकता के लिए पात्रता के लिए निवास की अवधि को क्रमशः 6 माह तथा 5 वर्ष से बढ़ाकर 5 वर्ष और 10 वर्ष कर दिया गया है। शोधन कुछ राज्यों के सीमावर्ती जिलों में जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि के कारण किया गया है किंतु अधिनियम 2001 में निरसित कर दिया गया। भारत में व्यक्ति केवल एक नागरिकता अर्थात भारतीय नागरिकता धारण करता है। यह महत्वपूर्ण है कि वह किस राज्य में निवास करता है। संघ राज्यों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका तथा स्विट्जरलैंड में व्यक्ति दोहरी नागरिकता धारण करता है अतः देश की नागरिकता तथा संघ राज्य की नागरिकता। इस प्रकार भारत की स्थिति उन राज्यों से भिन्न है जहां व्यक्ति को दोहरी नागरिकता प्रदान की जाती है।

नागरिकता अधिनियम 1955 को नागरिकता संशोधन अधिनियम 2003 के माध्यम से संशोधित किया गया। अधिनियम में जन्म एवं वंश क्रम द्वारा नागरिकता के आयोजन से संबंधित उपबंध को संशोधित किया गया। अधिनियम का सबसे महत्वपूर्ण उपबंध विनिर्दिष्ट देशों के भारतीय मूल के व्यक्तियों को प्रवासी नागरिकता प्रदान करना था।

प्रवासी नागरिकता

ऐसे व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने के क्रम में जो भारतीय मूल के थे किंतु बाद में विनिर्दिष्ट देशों के नागरिक बन गए, उनके संबंध में 2003 के अभिसमय में विस्तृत प्रावधान किए गए हैं। अधिनियम की धारा – 7(क)(1) के अंतर्गत व्यवस्था की गई है कि केंद्रीय सरकार, पारस्परिकता की ऐसी शर्तों के अंतर्गत रहते हुए, किसी व्यक्ति को, इस निमित्त आवेदन करने पर भारत के प्रवासी नागरिक के रूप में पंजीकृत कर सकती है, यदि– (क) वह व्यक्ति वयस्क हो तथा भारतीय मूल का हो तथा जो विनिर्दिष्ट देश का नागरिक हो, या (ख) उस व्यक्ति ने पूरी सामर्थ्य से नागरिकता संशोधन अधिनियम, 2003 के प्रारंभ पर या उसके पश्चात विनिर्दिष्ट देश की नागरिकता प्राप्त कर ली हो और वह पहले भारत का नागरिक था, या (ग) वह व्यक्ति खंड (क) या (ख) में वर्णित व्यक्ति का अवयस्क हो।

नागरिकता संशोधन अधिनियम 2003 के उपयोग प्रावधान यह दर्शाते हैं कि ऐसे विदेशी व्यक्ति जो प्रवासी भारतीय नागरिक बन जाते हैं उनकी दोहरी नागरिकता हो जाएगी। किंतु वैज्ञानिक दृष्टि से प्रवासी भारतीय भारत के नागरिक नहीं कहे जाएंगे।

भारतीय प्रवासी नागरिकों के अधिकार

भारतीय प्रवासी नागरिक उन अधिकारों के अधिकारी होंगे जोकि केंद्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त राजपत्र में अधिसूचना जारी करके अधिकथित किए जाएंगे। अधिनियम की धारा 7(ख)(2) के अंतर्गत भारतीय प्रवासी नागरिकों के अधिकारों को निम्न प्रकार वर्णित किया गया है–

(1) लोक नियोजन में अवसर की समानता का अधिकार जैसा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16 के अंतर्गत भारतीय नागरिकों के लिए उपबंधित है।

(2) प्रवासी नागरिक भारत के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति के चुनाव के लिए योग्य नहीं होगा।

(3) प्रवासी नागरिक उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के लिए योग्य नहीं होगा।

(4) प्रवासी नागरिक को मतदाता के रूप में पंजीकृत नहीं किया जाएगा।

(5) प्रवासी नागरिक लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभा या विधान परिषद का सदस्य होने के लिए योग्य नहीं होगा।

(6) प्रवासी नागरिक संघ या किसी राज्य के मामले में संबंधित किसी लोकसेवा या पद पर नियुक्ति के लिए योग्य नहीं होगा जब तक केंद्रीय सरकार के नियमित विशेष आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट न किया जाए। ऐसी प्रत्येक अधिसूचना को संसद के समक्ष अवश्य रखना होगा।

टिप्पणी

कोई भारतीय प्रवासी नागरिक नागरिकता अधिनियम की धारा 7 के अधीन अपनी प्रवासी नागरिकता का त्याग घोषणा के द्वारा कर सकता है जिसको कि केंद्रीय सरकार द्वारा पंजीकृत किया जाएगा। इसके उपरांत वह व्यक्ति भारत का प्रवासी नागरिक नहीं रह जाएगा तथा उसका प्रत्येक अवयस्क बालक भी भारत का प्रवासी नागरिक नहीं रह जाएगा। धारा 60 के अंतर्गत केंद्रीय सरकार को भारत के प्रवासी नागरिक के रूप में किसी व्यक्ति को दिए गए पंजीयन को आदेश द्वारा रद्द करने के लिए भी सशक्त किया गया है। यह प्रावधान वर्णित करता है कि भारत, भारतीय मूल के विदेशी नागरिकों को नागरिकता प्रदान करेगा।

4.3.3 विदेशी या अन्यदेशीय

'एलियन' शब्द सामान्य रूप से बाहरी अंतरिक्ष में अंतरिक्ष यान पर अलौकिक प्राणियों के साथ जुड़ा हुआ है। विधिक पहलू में, हालांकि, यह विदेशी मूल के निवासी को संदर्भित करता है, जो माता–पिता या प्राकृतिककरण के आधार पर नागरिक नहीं है और जो अभी भी एक नागरिक या किसी अन्य देश का विषय है। इसका अनिवार्य रूप से तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो उस राज्य के अतिरिक्त किसी अन्य राज्य में रहते हैं जिनके वे नागरिक हैं। अन्य राज्यों में ऐसे लोगों की उपस्थिति को विधिक रूप से 'विदेशी या अन्यदेशीय' कहा जाता है। 'विदेशी या अन्यदेशीय' शब्द के कई रूप हैं जो इस प्रकार हैं–

- अवैध विदेशी – यह एक ऐसे व्यक्ति को संदर्भित करता है जो किसी देश में बिना किसी विधिक अधिकार के या बिना उचित दस्तावेज के निवास कर रहा है। वे एक अवैध प्रवासन प्रक्रिया के माध्यम से एक देश में प्रवेश कर सकते हैं।
- विधिक विदेशी – यह ऐसे व्यापक व्यक्तियों को संदर्भित करता है, जिन्हें किसी देश में अस्थायी या गैर–अस्थायी जैसे पर्यटक, स्थायी निवासी, छात्र वीजा धारक आदि आधारों पर रहने की अनुमति दी जाती है।
- शत्रु विदेशी – एक शत्रु विदेशी नागरिक जो वर्तमान में जिस देश में रहता है, उसके साथ किसी भी संघर्ष या युद्ध में शामिल होता है।

जब कोई व्यक्ति किसी विदेशी देश में प्रवेश करता है, तो उक्त देश की आंतरिक विधि से बाधित हो जाता है, जब तक कि वह उस विदेशी सरकार का एक राजनयिक एजेंट या मान्यता प्राप्त अधिकारी न हो। एक विदेशी या अन्यदेशीय को उतने अधिकार प्राप्त नहीं होंगे, जितने कि नागरिकों को होते हैं। विदेशी या अन्यदेशीय विदेशी देश में प्रवेश करने या रहने का अधिकार नहीं रखता है। वे कई सख्त नियमों और

टिप्पणी

प्रक्रियाओं के अधीन हैं जैसे कि वीजा प्राप्त करना या राष्ट्रीय पहचान पत्र जिसमें यह विवरण शामिल है कि वे कितने समय तक रह सकते हैं और कहां काम कर सकते हैं आदि। उस राज्य की विधि जिसमें विदेशी या अन्यदेशीय निवास करता है, उस पर लागू होती हैं। उसके मूल देश की कुछ विधि भी उस पर लागू होंगी, किंतु प्रवर्तनीय नहीं होंगी। विदेशी या अन्यदेशीय को आमतौर पर वोट देने की अनुमति नहीं होती है और न ही वह सरकारी अधिकारी बन सकता है। हालांकि, वह अपने स्थानीय निवास के लिए कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा। सभी बुनियादी मानवाधिकार संधियां जैसे कि मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा विदेशी या अन्यदेशीय पर लागू होती हैं। देशों के बीच संबंधों की शत्रुतापूर्ण प्रकृति के कारण देश में रहने वाले अन्य विधिक विदेशी या अन्यदेशीय के साथ व्यवहार की अपेक्षा शत्रु विदेशी या अन्यदेशीय के साथ व्यवहार अलग हो सकती है।

विदेशी या अन्यदेशीय का प्रवेश

देशों के लिए अपने देश में विदेशी या अन्यदेशीय का प्रवेश और उनका स्वागत करना अनिवार्य नहीं है, जब तक कि राज्यों द्वारा पुष्ट किसी संधि द्वारा निर्दिष्ट नहीं किया जाता है। यह पूरी तरह से प्रत्येक राज्य के विवेक पर निर्भर है और इसके प्रादेशिक वर्चस्व द्वारा हर राज्य अपने क्षेत्र के पूरे या हिस्से से विदेशी या अन्यदेशीय को बाहर करने के लिए सक्षम है। एक देश को अपने नागरिकों की तुलना में, विदेशी या अन्यदेशीय के अनुकूल व्यवहार करने की भी अनुमति है। उदाहरण के लिए, डेनमार्क में विदेशी या अन्यदेशीय को अपनी भूमि रखने की अनुमति नहीं है। विदेशी या अन्यदेशीय को किसी देश में प्रवेश करने की अनुमति नहीं देना अंतर्राष्ट्रीय अपराध नहीं है। विदेशी या अन्यदेशीय के मूल देश के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों जैसे कई कारणों के आधार पर देश विदेशी या अन्यदेशीय के प्रवेश से इनकार कर सकते हैं। एक देश वह आधार प्रदान करने के लिए उत्तरदायी नहीं है जिस के कारण विदेशी को देश में प्रवेश करने से मना किया गया था। हालांकि, सामान्य रूप से राज्य गैर–प्रवेश के कारणों को प्रस्तुत नहीं करता है। विदेशी या अन्यदेशीय का प्रवेश सशर्त होता है। राज्य इस बारे में कोई भी विधि प्रस्तुत कर सकता है, जिसको वह सही मानता है। यह आमतौर पर राज्य की आंतरिक आर्थिक और विदेशी नीतियों को ध्यान में रखने के बाद अधिरोपित की जाती है। विदेशी या अन्यदेशीय जैसे छात्र वीजा धारकों और पर्यटकों को लगभग सभी देशों में स्वतंत्र रूप से प्रवेश प्रदान किया जाता है। अप्रवासी, हालांकि कुछ सख्त नियमों के अधीन होते हैं। कभी–कभी सामाजिक, शारीरिक और नैतिक रूप से योग्य नहीं होने वाले विदेशी या अन्यदेशीय को भी प्रवेश नहीं दिया जा सकता है। ऐसी कई संधियां उपलब्ध हैं जो किसी देश में विदेशी नागरिक के प्रवेश के अधिकार की अनुमति देती हैं। इस विषय पर 1961 का राजनयिक संबंधों पर वियना अभिसमय एक प्रसिद्ध अभिसमय है। इसमें कहा गया है कि न केवल राजनयिक मिशन के सदस्य अपितु दल के अन्य सदस्य, जैसे कोरियर, भी प्रवेश करने का अधिकार रखते हैं। किसी विदेशी देश में प्रवेश करने का अधिकार राजनयिक विशेषाधिकार के आधार पर किसी अन्य राज्य की भूमि को पार करने के लिए भी हो सकता है, ताकि उस राज्य के क्षेत्र तक पहुंचा जा सके जिसमें राजनयिक मान्यता प्राप्त है। इन विशेषाधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों के सदस्य और अंतर्राष्ट्रीय संगठन के सदस्य तक भी

विस्तारित किया गया है। इन प्रावधानों के समान प्रावधान 1963 के कांसुलर संबंधों पर वियना अभिसमय में भी दिए गए हैं।

विदेशी या अन्यदेशीय का निष्कासन

टिप्पणी

निष्कासन का अर्थ सामान्य रूप से किसी संगठन से बाहर निकलने के लिए बाधित करना है। इसी तरह, एक विदेशी के निष्कासन का अर्थ है, किसी भी विधि के उल्लंघन के कारण या अन्य कोई कारण जिसको राज्य उपयुक्त मानता हो, क्षेत्र से एक विदेशी का निर्वासन। जिस किसी की उपस्थिति को अवांछनीय माना जाए, उसे निर्वासित करना राज्य का अधिकार है। एक विदेशी जिसको निष्कासित कर दिया गया है, उसको राज्य के क्षेत्र को एक निर्धारित समय अवधि के भीतर छोड़ना आवश्यक होता है। उन्हें आमतौर पर व्यक्तिगत मामलों को निबटाने के लिए पर्याप्त समय प्रदान किया जाता है। इसे 'निर्वासन' शब्द के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। निष्कासन का अर्थ है क्षेत्र के भीतर रहने का निषेध जबकि निर्वासन क्षेत्र से व्यक्ति को हटाने और उन्हें उनके मूल देश में वापस भेजना होता है। निर्वासन निष्कासन के आदेश का निष्पादन है। निष्कासन सजा का एक रूप नहीं है, बल्कि यह एक कार्रवाई है जो एक देश की सरकार द्वारा एक विदेशी नागरिक को उसके क्षेत्र छोड़ने के लिए पुनर्निर्देशित करने के लिए की जाती है। निष्कासन की प्रक्रिया को किसी भी विदेशी को शिकायत या क्षति के बिना प्रभावी ढंग से किया जाना चाहिए। किसी विदेशी को निष्कासित किया जा सकता है, चाहे वह पर्यटक के रूप में हो, या वहां स्थाई रूप से बस गया हो अगर सरकार ऐसा महसूस करती है। इस अधिकार का सरकारों द्वारा दुरुपयोग नहीं किया जाना चाहिए, जो भेदभावपूर्ण आधार पर शत्रु विदेशी या अन्यदेशीय को निष्कासित कर सकते हैं। विदेशी या अन्यदेशीय आमतौर पर निष्कासित कर दिए जाते हैं क्योंकि वे 'अवांछनीय' होते हैं। उनकी अवांछनीयता राज्य द्वारा निर्धारित मानदंड की संख्या पर आधारित है। प्रत्येक देश विदेशी या अन्यदेशीय की अवांछनीयता पर अपनी कसौटी पर भिन्न हो सकता है। ये मापदंड युद्ध या शांति जैसे समय के अनुसार भी बदल सकते हैं। युद्ध की स्थिति में, राज्य अपने शत्रु देश के किसी भी और सभी विदेशी या अन्यदेशीय को निष्कासित कर सकता है। हालांकि यह निर्णय कठोर है, यह अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत न्यायोचित है। शांति के समय में विदेशियों या अन्यदेशियों का निष्कासन अलग–अलग हो सकता है और कई कारणों से हो सकता है। यह कानूनों के उल्लंघन के कारण, राज्य की सुरक्षा के विरुद्ध अपराध, जासूसी और इसी प्रकार के अन्य कारणों से हो सकता है। उदाहरण के लिए, बफलो मामले में एक इतालवी को वेनेजुएला से निष्कासित कर दिया गया था और यह माना गया था कि एक राज्य के पास निष्कासन का सामान्य अधिकार है, लेकिन इसका उपयोग केवल विशेष परिस्थितियों में ही किया जा सकता है तथा उस रूप में पूर्ण किया जा सकता है, जो उस व्यक्ति के लिए कम से कम हानिकारक हो। इसके अलावा, निष्कासन का सटीक कारण भी प्रदान किया जाना चाहिए, जब अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण इसके लिए मांग करता है। निष्कासन के आदेश को न्यायिक रूप से चुनौती देने का अधिकार सभी विदेशी या अन्यदेशीय को प्रदान नहीं किया गया है। न्यायपालिका को इन आदेशों की समीक्षा करने का अधिकार केवल सीमित परिस्थितियों में ही प्रदान किया गया है। कई राज्यों ने अनुसंधात्मक संधियां की हैं जो विदेशी या अन्यदेशीय को इस आदेश को

चुनौती देने की अनुमति प्रदान करते हैं सिवा उसके जब विदेशी सुरक्षा से संबंधित मामलों में विदेशी को निष्कासित किया जा रहा हो। न्यायिक समीक्षा एक परिदृश्य में संभव है, जिसमें विदेशी विदेशी नहीं बल्कि राज्य का नागरिक होने का दावा करता है। यह अव्यवहार्य है जब रक्षा, जासूसी या देश की सुरक्षा की चिंता के किसी कार्य के लिए एक विदेशी का विचारण किया जा रहा है।

टिप्पणी

विदेशी या अन्यदेशीय के अधिकार

विदेशी या अन्यदेशीय के अधिकारों पर विधि अब भी अत्यधिक क्षीण है हालांकि, कई समझौतों और संधियों के आधार पर उनको नागरिकों के समान अधिकार, कुछ अपवादों के साथ, प्रदान किए गए हैं। उदाहरण के लिए, विदेशी या अन्यदेशीय को समानता का अधिकार प्रदान किया जा सकता है, लेकिन मत देने का अधिकार नहीं। वे उस देश के सभी बुनियादी मानवाधिकारों के अधिकारी हैं, जिसमें वे रहते हैं, इसलिए वे शांति से रह सकते हैं। विदेशी या अन्यदेशीय के पास नागरिकों को उपलब्ध सभी प्रक्रियात्मक अधिकार हैं। विदेशी या अन्यदेशीय को कई नागरिक और राजनीतिक अधिकार प्रदान नहीं किए जा सकते हैं। उन्हें सार्वजनिक कार्यालय रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और उन्हें कुछ व्यवसायों में नियोजित होने के अवसर से भी वंचित किया जा सकता है जैसे कि राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित। उनके व्यक्तिगत अधिकार वैसे ही हैं जैसे कि अन्य नागरिकों के हैं। विदेशी या अन्यदेशीय को न्यायालयों तक पहुंचने का अधिकार है और यदि उनके किसी भी अधिकार का उल्लंघन किया गया है तो वे विधि की सुरक्षा प्राप्त कर सकते हैं। किसी भी देश के विदेशी या अन्यदेशीय को उचित मानक ट्रीटमेंट दिया जाना चाहिए। इसमें अंतर्राष्ट्रीय न्यूनतम मानक उपचार मौजूद है। 1985 में संयुक्त राष्ट्र ने विदेशी या अन्यदेशीय नागरिकों के मानवाधिकारों की घोषणा की। घोषणा में, गैर–नागरिकों को विदेशी या अन्यदेशीय कहा गया है। अनुच्छेद 5–10 उन अधिकारों के बारे में बात करता है जो उनके लिए उपलब्ध हैं। इनका वर्णन नीचे किया गया है–

1. लोगों को उसी देश के नागरिकों के समान व्यवहार प्रदान करना चाहिए जिसमें वे निम्न अधिकारों के संबंध में रहते हैं– व्यक्ति का जीवन और सुरक्षा का अधिकार, जिसमें मनमानी गिरफ्तारी या स्वतंत्रता के खिलाफ स्वतंत्रता शामिल है न्यायालयों के समक्ष निजता, परिवार, घर या पत्राचार के साथ मनमाना या गैरविधिक हस्तक्षेप, एक दुभाषिया की निःशुल्क सहायता सहित, भाषा, संस्कृति और परंपरा को बनाए रखने का अधिकार विदेश में धन हस्तांतरित करने का अधिकार।
2. निम्न अधिकारों को विदेशी या अन्यदेशीय को तब तक प्रदान किया जाना चाहिए जब तक वे राष्ट्रीय सुरक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य या नैतिकता या दूसरों के अधिकारों और स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं करते। देश छोड़ने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, संचालन की स्वतंत्रता और देश की सीमाओं के भीतर अपने निवास स्थान का चयन करने की स्वतंत्रता, जीवनसाथी और नाबालिग या आश्रित बच्चों का एक वैध विदेशी के साथ रहने का अधिकार, जैसा कि राष्ट्रीय विधि द्वारा प्रावधान किया गया हो।

3. विधिक तौर पर रहने वाले विदेशी या अन्यदेशीय देश को निम्न अधिकार प्रदान किए जाने चाहिए, जब तक वे देश के विधियों का पालन करते हैं और लोगों के रीति–रिवाजों और परंपराओं का सम्मान करते हैं– सुरक्षित और स्वस्थ कामकाजी परिस्थितियों, उचित मजदूरी और समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार, ट्रेड यूनियनों में शामिल होने का अधिकार, सामाजिक सेवाओं, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा और सामाजिक संरक्षण का अधिकार।

टिप्पणी

4. घोषणा में विशेष रूप से वर्णित विदेशी या अन्यदेशीय के अतिरिक्त अधिकार हैं– यातना या क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक दंड से संरक्षण। विदेशी की मुक्त सहमति के बिना चिकित्सा या वैज्ञानिक प्रयोग के अधीन लाए जाने से स्वतंत्रता। देश से मनमाने या गैरविधिक निष्कासन के विरुद्ध संरक्षण। स्वयं को निष्कासन से बचाने का अधिकार राष्ट्रीय सुरक्षा के बाध्यकारी कारणों की अन्यथा आवश्यकता को छोड़कर। किसी भी समय उस देश के वाणिज्य दूतावास या राजनयिक मिशन, जिससे वह संबद्ध है, के साथ संवाद करने का अधिकार। एक राज्य मनमाने ढंग से विदेशी, या मुआवजे के बिना संपत्ति को जब्त नहीं कर सकता है, या विदेशी या अन्यदेशीय को किसी भी पूर्व संभावित संकट से बचाने के लिए कोई प्रयास नहीं कर सकता है। जैसा कि 'द माव्रोमैटिस फिलिस्तीन कंसेशनस, ग्रीस बनाम ब्रिटेन (1924)' में कहा गया है। यह अंतर्राष्ट्रीय विधि का एक प्राथमिक सिद्धांत है कि एक राज्य अपने विषयों की रक्षा करने का अधिकारी होता है, जब दूसरे राज्य द्वारा अंतर्राष्ट्रीय विधि के विपरीत कृत्य से क्षतिग्रस्त होता है, जिसके लिए वह साधारण माध्यमों के द्वारा संतुष्टि प्राप्त करने में असमर्थ रहा है।

विदेशी या अन्यदेशीय और भारतीय

भारतीय विधि विशेष रूप से 'विदेशी' शब्द को परिभाषित नहीं करती है, हालांकि यह भारतीय विधि के कई हिस्सों में दिखाई देता है। 'विदेशी या अन्यदेशीय' शब्द बहुत व्यापक है और शरणार्थियों को भी सम्मिलित करता है। शरणार्थियों पर भारतीय नीति बहुत ही उदार है और भारत ने तिब्बत, म्यांमार, बांग्लादेश और श्रीलंका सहित उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों से कई हजारों शरणार्थियों को समायोजित किया है। चूंकि यह ठीक से परिभाषित नहीं है, इसलिए विदेशी शब्द में पर्यटक और मेडिकल वीजा धारक और स्थायी निवासी भी शामिल हो सकते हैं। भारत का संविधान स्पष्ट रूप से एक नागरिक और एक गैर–नागरिक के बीच स्पष्ट अंतर पर प्रकाश डालता है। भारतीय नागरिकों को मिलने वाले सभी मौलिक नागरिक और राजनीतिक अधिकार गैर–नागरिकों पर लागू नहीं होते हैं। 'नागरिक' और 'व्यक्ति' शब्द का उपयोग यह परिभाषित करता है कि किस पर क्या लागू होता है। भारत में नागरिकों के साथ–साथ विदेशियों के लिए भी कई मौलिक अधिकार हैं और वे हैं–

अनुच्छेद 14 – विधि के समक्ष समानता का अधिकार और विधियों की समान सुरक्षा।

अनुच्छेद 20 – अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में सुरक्षा का अधिकार।

अनुच्छेद 21– जीवन की सुरक्षा का अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार।

अनुच्छेद 21A – प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार।

टिप्पणी

अनुच्छेद 22 – कुछ मामलों में गिरफ्तारी और निरुद्धता के विरुद्ध सुरक्षा का अधिकार।

अनुच्छेद 23 – मानव तस्करी और बाधित श्रम का निषेध।

अनुच्छेद 24 – बच्चों को रोजगार का प्रतिषेध।

अनुच्छेद 25 – अंतःकरण और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता का अधिकार।

अनुच्छेद 26 – धार्मिक मामलों के प्रबंधन के लिए स्वतंत्रता का अधिकार।

अनुच्छेद 27 – किसी भी धर्म के प्रचार के लिए करों के भुगतान से स्वतंत्रता का अधिकार।

अनुच्छेद 28 – कुछ शिक्षा संस्थानों में धार्मिक शिक्षा या पूजा में भाग लेने से स्वतंत्रता का अधिकार।

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि शत्रु विदेशी या अन्यदेशीय को अनुच्छेद 22 के अन्तर्गत प्रत्याभूति की कोई सुरक्षा प्रदान नहीं की गई है। निम्नलिखित मौलिक अधिकार केवल भारतीय नागरिकों पर लागू होते हैं, विदेशी या अन्यदेशीय पर नहीं। ये मौलिक अधिकार हैं–

अनुच्छेद 15 – निर्धारित आधार पर कोई भेदभाव नहीं।

अनुच्छेद 16 – सार्वजनिक रोजगार में आरक्षण।

अनुच्छेद 19 – स्वतंत्रता के छह प्रकार।

अनुच्छेद 29 – अल्पसंख्यकों की भाषा, धर्मग्रंथों और संस्कृति का संरक्षण।

अनुच्छेद 30 – अल्पसंख्यकों का शैक्षिक संस्थान स्थापित और संचालन करने का अधिकार।

4.3.4 प्रत्यर्पण

परिभाषा

प्रत्यर्पण (Extradition) शब्द दो लैटिन शब्द इक्स (Ex) तथा ट्रैडिटम (traditum) से उत्पन्न हुआ है। सामान्यता इसका तात्पर्य 'अपराधियों का परिदान', 'फरारी का समर्पण' या 'फरारी को सौंपना' से है।

ओपन हाइम के अनुसार, "प्रत्यर्पण अभियुक्त या दोष सिद्ध व्यक्ति का उस राज्य द्वारा, जहां वह अपराध का अभियुक्त है या अपराध के लिए दोष सिद्ध किया गया है, उस राज्य द्वारा सौंप देना है, जिसके राज्य क्षेत्र में वह रहता है।"

प्रत्यर्पण विधि

प्रत्यर्पण विधि दूरी विधि है इसका प्रभाव राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि दोनों में ही होता है। किसी व्यक्ति के प्रत्यर्पण करने या ना करने का निर्णय राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा किया जाता है किंतु इसमें दो राज्यों के शामिल होने के कारण तथा राज्य की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धता के क्रियान्वयन के कारण भी अंतर्राष्ट्रीय विधि का भाग होता है।

इस संबंध में समय–समय पर राज्यों द्वारा प्रत्यर्पण के लिए बहुपक्षीय संधि के निर्माण के लिए कई प्रकार प्रयास किए गए हैं किंतु वे प्रत्यर्पण के संबंध में सामान्य नियम को बनाने के प्रयास में असफल हो गए हैं।

टिप्पणी

वर्तमान समय में किसी बहुपक्षीय संधि या अभिसमय के अभाव में राज्यों द्वारा प्रत्यर्पण द्विपक्षीय संधियों के आधार पर किया जाता है, जिन में राष्ट्रीय विधि के अनुसार प्रावधान किए जाते हैं। इस प्रकार कई राज्यों में राष्ट्रीय विधि है, जिनमें उन्होंने भगोड़े अपराधियों के प्रत्यर्पण के संबंध में नियम बनाए हैं। उदाहरण के लिए भारत द्वारा प्रत्यर्पण के संबंध में भारतीय प्रत्यर्पण अधिनियम 1962 में नियम बनाए गए हैं। भारत द्वारा प्रत्यर्पण केवल तब किया जाता है, जब अधिनियम में अधिकथित शर्तें पूरी हो जाती हैं। इसी तरह, अन्य राज्यों में भी प्रत्यर्पण विधियां हैं। द्विपक्षीय संधियों तथा कई राज्यों की राष्ट्रीय विधियों तथा राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायिक विनिश्चयों ने प्रत्यर्पण के संबंध में कतिपय सिद्धांत विकसित किए हैं जो अंतर्राष्ट्रीय विधि के सामान्य नियम माने जाते हैं। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण नियम निम्न प्रकार हैं–

प्रत्यर्पण संधि

प्रत्यर्पण के लिए प्रथम तथा सबसे महत्वपूर्ण शर्त है राज्यक्षेत्रीय राज्य तथा निवेदक राज्य के बीच संधि का अस्तित्व में होना। कुछ राज्य जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, बेल्जियम और नीदरलैंड बिना संधि के प्रत्यर्पण नहीं करते। भारत ने विगत वर्षों में कई राज्यों के साथ प्रत्यर्पण संधियां की हैं, जैसे–1987 में कनाडा के साथ, 1992 में यूनाइटेड किंगडम के साथ, 1998 में रूस के साथ, 1999 में अमेरिका और यूएई के साथ, 2000 में स्पेन के साथ, 2003 में फ्रांस और दक्षिण अफ्रीका के साथ, 2004 में कुवैत और साउथ कोरिया के साथ, 2008 में ऑस्ट्रेलिया के साथ तथा 2013 में बांग्लादेश और थाईलैंड के साथ। भारत ने पाकिस्तान के साथ भी प्रत्यर्पण संधि के लिए प्रस्ताव रखा था किंतु पाकिस्तान ने उस प्रस्ताव को यह कहकर ठुकरा दिया कि इस प्रकार की संधि के लिए अभी समय परिपक्व नहीं है।

यद्यपि प्रत्यर्पण के लिए संधि का होना आवश्यक है, संधि की कठोर अपेक्षा अपराध के दमन में एक प्रकार का व्यवधान कहा जा सकता है। प्रत्यर्पण संधियां राजनीतिक रूप से संवेदनशील होती हैं और इनके निर्माण में सावधानी तथा व्यापक विचार–विमर्श की अपेक्षा की जाती है, इसीलिए राज्यों द्वारा प्रत्यर्पण संधियों का निर्माण बहुत अधिक नहीं हुआ है और अपराधी ऐसे राज्यों में आश्रय पा जाते हैं जिनके साथ निवेदक राज्य की कोई संधि नहीं है।

राजनीतिक अपराधियों का प्रत्यर्पण

अंतर्राष्ट्रीय विधि का यह रूढ़िगत नियम है कि राजनीतिक अपराधियों का प्रत्यर्पण नहीं किया जाता। भारतीय परिषद अधिनियम 1962 धारा 31 (क) के अधीन इसी प्रकार का प्रावधान किया गया है। वर्तमान समय में, राजनीतिक अपराधियों का प्रत्यर्पण ना करना अंतर्राष्ट्रीय विधि का सामान्य नियम बन गया है। यह प्रत्यर्पण के अपवादों में से एक है।

राजनीतिक अपराधियों के प्रत्यर्पण ना करने के कारण

1. यह नियम मानवता के प्रारंभिक विचारण पर आधारित है कि कोई राज्य किसी व्यक्ति का प्रत्यर्पण करना पसंद नहीं करेगा यदि वह अपराधी नहीं है। यदि वह प्रत्यर्पण करता है, तो वह प्राकृतिक न्याय की विधि के अनुसरण में नहीं होगा।
2. यदि राजनीतिक अपराधियों का प्रत्यर्पण किया जाता है तो ऐसी संभावना होती है कि उनके साथ उचित व्यवहार नहीं किया जाएगा।

टिप्पणी

3. यह नियम अतिरिक्त विधिक प्रकृति के किसी राजनीतिक अपराधी को संरक्षण भी प्रदान करता है, जिसका निवेदक राज्य उसके विरुद्ध प्रयोग करने का प्रयास करता है।
4. अन्य देशों में राजनीतिक अपराधियों के शरण लेने का उद्देश्य वह नहीं है, जो सामान्य अपराधियों का है।
5. राजनीतिक अपराधी राज्य के लिए उस प्रकार खतरनाक नहीं होते हैं, जैसे कि सामान्य अपराधी हो सकते हैं।

दोहरी अपराधिकता का सिद्धांत

दोहरी अपराधिकता का सिद्धांत निर्दिष्ट करता है कि प्रत्यर्पण के लिए किसी अपराध को दोनों ही राज्यों में मान्य होना चाहिए। यदि यह सम्भवतः पूर्ण नहीं होगा तो किसी व्यक्ति का प्रत्यर्पण नहीं हो सकता। यह सिद्धांत इस विचारणा पर आधारित प्रतीत होता है कि यह राज्य के अंतःकरण पर आघात पहुंचाने वाला है, यदि उसे किसी ऐसे व्यक्ति का प्रत्यर्पण करना होगा जब उसकी अपनी विधि उसे अपराधी नहीं मानती हो।

सामान्यतया, प्रत्यर्पण संधियों में अपराधियों की सूची सन्निहित होती है।

विशिष्टता का नियम

इस सिद्धांत के अनुसार, निवेदक राज्य द्वारा भगोड़े का परीक्षण केवल उस अपराध के लिए किया जाता है, जिसके लिए उसका प्रत्यर्पण किया गया है। यह नियम कपटपूर्ण प्रत्यर्पण के विरुद्ध भगोड़ों को संरक्षण प्रदान करने के लिए बनाया गया है। यह नियम प्रत्यर्पण से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय विधि का एक सर्वमान्य नियम है।

प्रथम दृष्टया साक्ष्य

अभियुक्त के अपराध का प्रथम दृष्टया साक्ष्य होना चाहिए। व्यक्ति का प्रत्यर्पण करने से पहले, राज्य क्षेत्रीय राज्य को स्वयं का समाधान करना चाहिए कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया साक्ष्य है, जिसके लिए प्रत्यर्पण की मांग की जाती है।

प्रथम दृष्टया साक्ष्य के नियम को प्रतिपादित करने का उद्देश्य कपट पूर्ण प्रत्यर्पण की जांच करना है। राज्य क्षेत्रीय राज्य को यह देखना चाहिए कि मांग किसी राजनीतिक कारणों द्वारा प्रेरित ना हो। भारतीय प्रत्यर्पण अधिनियम इस आवश्यकता का प्रावधान धारा 7 (4) के अधीन करता है। इसके अतिरिक्त, राज्य अपनी संधियों में इस प्रकार के प्रावधान को शामिल करते हैं।

अपने राष्ट्रिकों का प्रत्यर्पण

यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है कि एक राज्य, विदेश में अपराध कारित करने के बाद अपने देश में वापस भाग आने वाले व्यक्तियों का प्रत्यर्पण उस देश को करेगा या नहीं? राज्यों का अभ्यास इस पर भिन्न–भिन्न है। कई राज्यों ने, जैसे इटली, जर्मनी, स्विट्जरलैंड तथा फ्रांस ने अपने राष्ट्रिकों को विदेशी राज्य को प्रत्यर्पण ना करने के सिद्धांत को स्वीकार किया है। जो इस मत का समर्थन करते हैं कि राष्ट्रीय न्यायाधीशों को नैसर्गिक न्यायाधीश माना जाता है। विदेशी न्यायाधीशों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, विदेश में परीक्षण करने के लिए अपने राष्ट्रिकों का प्रत्यर्पण करना राज्य के सम्मान के विरुद्ध है।

सैनिक अपराधी

प्रत्यर्पण संधियां सामान्यतया सैन्य अपराधों को विवर्जित करती हैं। व्यापक रूप से, सैन्य अपराधों को 2 संवर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहला, वह अपराध जो सामान्य अपराधिक विधि के अधीन है और दूसरा वह, जो विनिर्दिष्ट रूप से सैन्य मामलों से संबंधित है। केवल दूसरे अपराध को सैन्य अपराध माना जाता है, जिस के संबंध में प्रत्यर्पण लागू नहीं होगा।

टिप्पणी

वित्तीय प्रकृति के अपराध के लिए प्रत्यर्पण

वित्तीय अपराध के अपराधी के लिए प्रत्यर्पण के संबंध में अंतर्राष्ट्रीय रूढ़िगत नियमों में ऐसा कोई नियम नहीं है जिससे यह निषिद्ध हो। इस तथ्य के बावजूद राज्यों द्वारा वित्तीय अपराध के अपराधी के प्रत्यर्पण को अभ्यास में नहीं लाया गया है। ऐसे अपराधों के संबंध में प्रत्यर्पण के प्रति राज्यों के तटस्थ दृष्टिकोण वित्तीय दायित्व से बचने के लिए अन्य राज्यों में अपराधियों के भागने को प्रेरित करते हैं। भविष्य में राज्य अपने हित में अपनी प्रत्यर्पण संधियों में वित्तीय प्रकृति के अपराधों के लिए प्रत्यर्पण के प्रावधानों को शामिल करेंगे।

विदेशों में कारित किए गए अपराधों के लिए विदेशी राष्ट्रिकों का प्रत्यर्पण

अन्य देशीयों का विदेशों में कारित किए गए अपराधों के लिए प्रत्यर्पण नहीं किया जाता। उनका परीक्षण केवल उस राज्य में किया जा सकता है तथा उसी राज्य में उन्हें दंड दिया जा सकता है, जिसमें अपराध किया गया है। उनका प्रत्यर्पण उस राज्य में नहीं किया जा सकता, जिसमें अपराध का गंभीर तथा तत्काल प्रभाव होता है। ऐसा अधिकारिता की समस्याओं के कारण होता है।

प्रत्यर्पण और मानव अधिकार उल्लंघन

अंतर्राष्ट्रीय विधि में पहले एक व्यक्ति के प्रत्यर्पण के समय मानव अधिकार संबंधी रक्षा उपायों का प्रावधान नहीं था, लेकिन वर्तमान में मानव अधिकारों के रक्षा उपायों पर प्रत्यर्पण संधि बनाते समय विचार किया जाता है। अनेक यूरोपीय देश जैसे स्विट्जरलैंड, ऑस्ट्रिया एवं जर्मनी अपनी प्रत्यर्पण विधियों में उस सिद्धांत को अंगीकार करते हैं जिसमें कि प्रत्यर्पण नहीं किया जाता यदि राज्य का निवेदन करने में प्रक्रिया मानवाधिकारों पर यूरोपीय अभिसमय के प्रतिकूल है। यद्यपि सभी मानव अधिकारों के अभिकथित उल्लंघनों के आधार पर प्रत्यर्पण नहीं करना राज्यों द्वारा स्वीकृत नहीं किया जाता है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में प्रत्यर्पण विधि द्विपक्षीय संधियों तथा राष्ट्रीय विधियों पर आधारित है। इन नियमों का कई राज्यों में पालन किया जाता है, इसलिए यह माना जा सकता है कि यह अंतर्राष्ट्रीय विधि के सामान्य नियम हो गए हैं।

भारत में प्रत्यर्पण विधि

भारत में सर्वप्रथम 1930 में प्रत्यर्पण अधिनियम अधिनियमित किया गया था। इससे पूर्व भारत में प्रत्यर्पण का विनियमन ब्रिटिश प्रत्यर्पण अधिनियम 1870 के आधार पर किया जाता था।

भारतीय प्रत्यर्पण अधिनियम 1962 में लागू किया गया। इस अधिनियम की धारा 2(द) के अधीन प्रत्यर्पण संधि शब्दों को इस अर्थ में परिभाषित किया गया है कि 15 अगस्त, 1927 के पूर्व की गई सभी प्रत्यर्पण संधियां भारत पर आबद्धकर होंगी। इस प्रकार वे सभी संधियां जो 1947 के पूर्व (ब्रिटिश) भारत द्वारा की गई थी, भारत द्वारा जारी रखी गईं।

टिप्पणी

वर्ष 2002 से 7 दिसंबर, 2016 तक 62 व्यक्तियों को दूसरे राज्यों के द्वारा संधियों के आधार पर भारत में प्रत्यर्पण किया जा चुका है जबकि भारत ने 49 व्यक्तियों का प्रत्यर्पण किया है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा कब स्वीकृत किया गया?

   (क) 1947 में (ख) 1948 में

   (ग) 1949 में (घ) 1950 में

4. व्यक्तियों की राष्ट्रीयता का निर्धारण किसके नियमों के अनुसार किया जाता है?

   (क) राष्ट्रीय विधि के (ख) अंतर्राष्ट्रीय विधि के

   (ग) न्यूटन के (घ) डार्विन के

4.4 राजनयिक राजदूत तथा वाणिज्य–दूत (कौंसल)

विदेशों में निवासार्थ भेजे गए राज्यों के प्रतिनिधियों को राजनयिक दूत कहा जाता है। यह उन दोनों देशों के मध्य महत्वपूर्ण संबंध व सामंजस्य स्थापित करने का कार्य करते हैं। इस प्रकार ये कूटनीतिक कार्य करते हैं जिसका तात्पर्य अंतर्राष्ट्रीय विधि में राज्य पारस्परिक संबंध स्थापित करना, उनको बनाए रखना तथा राजनीतिक या विधिक सम व्यवहार पूर्ण करना होता है। वर्तमान समय में राजनयिक दूतों की संस्था ने एक विस्तृत एवं महत्वपूर्ण रूप धारण कर लिया है।

राज्य द्वारा राजनीतिक दूतों को भेजने तथा स्वीकार करने की प्रथा प्राचीन काल से ही चलन में रही है। राजनयिक दूतों को अस्थाई रूप से कुछ विशेष प्रयोजन के लिए अन्य देशों में भेजा जाता था तथा प्रयोजन पूरा हो जाने पर उनको वापस आना होता था। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक स्थाई दूतावास सामान्य संस्था बन गए तथा बाद में उनको अधिकार, कर्तव्य तथा उन्मुक्तियां भी प्रदान कर दी गईं, जिन की प्रकृति लगभग एक समान थी। इसने अंतर्राष्ट्रीय विधि के कुछ रूढ़िगत नियमों के विकास को प्रेरित किया। सर्वप्रथम 1815 के वियना कांग्रेस ने राजनयिक प्रतिनिधियों के पद के लिए अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियम को संहिताबद्ध किया। इसके उपरांत संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1961 में वियना सम्मेलन में एक अभिसमय स्वीकार किया जिसे राजनयिक संबंधों पर वियना अभिसमय 1961 के नाम से जाना जाता है जिसका इसके उपरांत संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1961 में विनाश सम्मेलन में एक अभिसमय स्वीकार किया जिसे राजनयिक संबंधों का परवाना अभिसमय 1961 के नाम से जाना जाता है।

जिसे 22 राज्यों द्वारा अनु समर्थन प्रदान किया गया। फरवरी 2017 तक 191 राज्य अभिसमय के पक्षकार बन गए थे।

4.4.1 राजनयिक दूतों का वर्गीकरण

टिप्पणी

राजनयिक दूत कई प्रकार के होते हैं। यह वर्ग अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रारंभिक अवस्था में अस्तित्व में नहीं था किंतु 16वीं शताब्दी में राजनयिक दूतों के दो वर्गों के मध्य भेद धीरे–धीरे विकसित हुआ तथा स्थाई दूतावास से सामान्य प्रचलन में आने के उपरांत 17वीं शताब्दी के मध्य तक इन दोनों वर्गों को सामान्यतः मान्यता प्रदान की गई। एक वर्ग विशेष दूत जिनको राजदूत कहा जाता है तथा दूसरा सामान्य दूत जिनको निवासी कहा जाता है। राजदूतों को अधिक सम्मान प्रदान किया जाता था तथा उनको अन्य दूतों की अपेक्षा वरीयता प्रदान की जाती थी, किन्तु वरीयता के विषय पर सदैव विवाद की स्थिति बनी रहती थी। 18वीं शताब्दी में एक अन्य वर्ग पूर्ण अधिकार युक्त मंत्री को स्थापित करके विवाद को समाप्त करने का प्रयास किया गया। वियना कांग्रेस, 1815 ने राजनयिक दूतों को तीन वर्गों में वर्गीकृत कर दिया। प्रथम राजदूत, द्वितीय पूर्ण अधिकार युक्त मंत्री व विशेष दूत तथा तृतीय कार्य दूत। 1818 में इसमें चौथा वर्ग जोड़ा गया। किंतु वियना अभिसमय 1961 के अंतर्गत राजनयिक दूतों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है। अभिसमय में निवासी मंत्री के वर्ग की व्यवस्था नहीं की गई है। 1961 के अभिसमय के अंतर्गत राजनयिक दूतों का वर्गीकरण उनको प्रदान किए गए अधिकारों तथा उनमुक्तियों के अनुसार किया गया है।

(1) राजदूत

राजदूत अपने राज्य प्रमुख के व्यक्तिगत प्रतिनिधि होते हैं अतः उन्हें विशेष सम्मान दिया जाता है। जब वे पोप द्वारा भेजे जाते हैं तब उन्हें पोप दूत या धर्म दूत कहा जाता है। जब चीन तथा अमेरिका ने राजनयिक संबंध स्थापित किया था तो दूतावास के प्रमुख को संपर्क अधिकारी के प्रमुख के रूप में जाना जाता था। इस वर्ग के प्रतिनिधि महामहिम कहलाने के अधिकार का दावा कर सकते हैं।

(2) पूर्णाधिकार युक्त मंत्री या विशेष दूत

ये अपने राज्य प्रमुख के व्यक्तिगत प्रतिनिधि नहीं माने जाते हैं, अतः इनको राजदूत के समान विशेष सम्मान नहीं दिया जाता है। यदि इनको महामहिम की उपाधि दी जाती है तो इसका कारण केवल शिष्टाचार होता है। यह उनका अधिकार नहीं होता है। ये व्यक्तिगत रूप से राज्य प्रमुख के साथ विशेष अधिकार प्राप्त व्यवहार का उपभोग भी नहीं करते। जब ये प्रत्यय–पत्र प्रस्तुत करते हैं तब राज्य प्रमुख से इनकी व्यक्तिगत भेंट होती है। इसके अतिरिक्त, अन्य मामलों में इनके तथा राजदूतों के मध्य कोई अंतर नहीं होता।

(3) कार्यदूत

ये राज्य प्रमुख द्वारा प्रत्यय नहीं किए जाते हैं अपितु विदेश कार्यालय द्वारा विदेश कार्यालयों को प्रेषित किए जाते हैं। अतः ये राज्य में पहुंचने पर प्रत्यय पत्र विदेशी मामलों के मंत्री को प्रस्तुत करते हैं। ये सम्मानों तथा अधिकारों का उपयोग नहीं करते जो राजनयिक प्रतिनिधियों के अन्य वर्गों को प्राप्त होता है। कार्यदूत या तो स्थाई रूप

से या अस्थाई रूप से नियुक्त किए जाते हैं, किंतु व्यावहारिक रूप से कभी भी इनकी स्थाई नियुक्ति नहीं की जाती है।

राजनयिक दूतों के कार्यों का निर्धारण अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों तथा राज्यों की राष्ट्रीय विधियों द्वारा किया जाता है। वियना अभिसमय के अंतर्गत राजनयिक दूतों के विभिन्न कार्यों का उल्लेख किया गया है, जोकि इस प्रकार है–

टिप्पणी

(1) प्रतिनिधित्व करना

राजनयिक दूत जिस राज्य में अपने राज्य के दूत के रूप में जाते हैं वहां अपने राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे वहां सूचना के संबंध में अपने राज्य के प्रमुख तथा विदेश मंत्री के प्रवक्ता होते हैं। प्रतिनिधित्व करने का उत्तरदायित्व सामान्यतः मिशन के प्रमुख का होता है, किंतु इस कार्य को मिशन के अन्य सदस्यों को भी अपने स्तर से करना होता है।

(2) संरक्षण प्रदान करना

राजनयिक दूत अपने राज्य के तथा उसके नागरिकों के हितों तथा उनकी संपत्ति को संरक्षण प्रदान करते हैं। ये राष्ट्रीय विधि द्वारा विहित सीमाओं के भीतर कार्य करते हैं। यह सीमा अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा नहीं वरन् राष्ट्र की विधि तथा प्रेषक राज्य के विनियमों के द्वारा निर्धारित की जाती है।

(3) बातचीत

बातचीत करना राजनयिक दूत का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य होता है। वे प्रेषक राज्य का प्रतिनिधित्व करते हुए ग्राही राज्य के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने व रखने के लिए प्रेषक राज्य की ओर से विभिन्न बिंदुओं पर ग्राही राज्य के साथ बातचीत करते हैं तथा समय–समय पर प्रेषक राज्य को बातचीत के परिणाम आदि की सूचना देने का कार्य भी करते हैं जिसकी उनसे अपेक्षा की जाती है।

(4) संपरीक्षण

राजनयिक दूतों से अपेक्षा की जाती है कि ग्राही राज्य की घटनाओं तथा घटना के परिणामों को, विशेष रूप से उन घटनाओं को जिनका प्रभाव प्रेषक राज्य पर पड़ता है, की जानकारी समय–समय पर प्रेषक राज्य को संप्रेषित करें।

(5) मैत्रीपूर्ण संबंधों की अभिवृद्धि

राजनयिक दूतों से प्रेषक राज्य तथा ग्राही राज्य के मध्य महत्वपूर्ण संबंधों में अभिवृद्धि करने की अपेक्षा की जाती है। उनका यह भी कार्य होता है कि वे दोनों राज्यों के मध्य आर्थिक, संस्कृतिक तथा सामाजिक संबंधों को विकसित करें। इसके अतिरिक्त वे वाणिज्य दूतों के कार्यों को भी कर सकते हैं।

4.4.2 राजनयिक उन्मुक्तियां

राजनयिक दूतों को अंतर्राष्ट्रीय विधि के द्वारा उन्मुक्तियां प्रदान की जाती हैं, जिस संबंध में कुछ बिंदु निम्न प्रकार से हैं–

(1) बाह्य राज्य क्षेत्रीय सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार राजनयिक दूत ग्राही राज्य की राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता के अंतर्गत नहीं आते। उन्हें सदैव प्रेषक राज्य की राज्य क्षेत्रीय अधिकारिता के अधीन

होना ही माना जाता है। यद्यपि राजनयिक दूत शारीरिक रूप से ग्राही राज्य में रहते हैं किंतु फिर भी ऐसा समझा जाता है कि सभी प्रयोजनों के लिए वे प्रेषित राज्य में रहते हैं। इस सिद्धांत को काल्पनिक सिद्धांत के रूप में भी माना जाता है जिसका कारण यह है कि बाह्य राज्य क्षेत्रीयता मात्र कल्पना पर आधारित होती है। इस सिद्धांत को आधुनिक न्याय विधि द्वारा अमान्य माना गया है। विभिन्न राष्ट्रीय न्यायालयों के विशेषज्ञों ने भी इस सिद्धांत को अमान्य घोषित किया है।

टिप्पणी

(2) प्रतिनिधित्व सिद्धांत

इसमें राजनयिक दूतों को प्रेषक राज्य के राज्य प्रमुख का दूत या व्यक्तिगत प्रतिनिधि माना जाता है। अतः इनको वही विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं जो राज्य प्रमुख को प्रदान किए जाते हैं। किंतु इस सिद्धांत की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि किसी भी प्रकार से राजनयिक दूतों को राज्य प्रमुख की उन्मुक्तियां प्रदान करना तर्कसंगत नहीं है अतः न्यायालयों ने प्रभुत्वसत्ताधारी तथा राजनयिक उन्मुक्तियों के मध्य समानता को स्वीकार नहीं किया है।

(3) कार्यात्मक सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार राजनयिक दूतों को उन्मुक्तियां तथा विशेष अधिकार उनके कार्यों की प्रकृति के कारण प्रदान किए जाते हैं क्योंकि उनका कार्य विशेष प्रकृति का होता है। प्रेषक राज्य की विधि तथा अन्य प्रक्रियाओं से उन्मुक्तियां इसलिए प्रदान की जाती हैं जिससे वे स्वतंत्रतापूर्वक अपने कार्यों को पूर्ण कर सकें। जिन विशेष कार्यों के अनुपालन की अपेक्षा राजनयिक दूतों से की जाती है उनके लिए उन्मुक्तियां तथा विशेष अधिकार प्रदान करना आवश्यक होता है। यदि उनके कार्यों में स्थानीय प्रशासन द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है तो उनके लिए अपने कार्य को निष्पादित करना अत्यधिक कठिन हो जाता है। इस प्रकार कार्यात्मक सिद्धांत व्यवहारिक आवश्यकता पर आधारित है।

राजनयिक दूतों की उन्मुक्तियां तथा विशेष अधिकार

उन्मुक्तियां का सिद्धांत पूर्व काल से ही राज्यों के द्वारा पालन किया जाता है तथा यह सभी राज्यों द्वारा मान्यता प्राप्त भी है। यह उन सभी उन्मुक्तियों को अधिकृत करता है जो कि राजनयिक दूतों को प्रदान की जाती हैं। ये उन्मुक्तियां तथा विशेषाधिकार इस प्रकार हैं–

(1) राजनयिक दूतों की अनतिक्रमणीयता

राजनयिक दूत को व्यक्तिगत सुरक्षा प्रदान की जाती है। यह व्यवस्था वियना अभिसमय, 1961 के स्वीकार किए जाने के बहुत पूर्व से चलन में है और इसे इस रूप में मान्यता भी प्राप्त है। वियना अभिसमय में इस का प्रावधान अनुच्छेद 29 के अंतर्गत किया गया है। अनुच्छेद 19 ग्राही राज्यों के तथ्य समान कर्तव्य को अधिक कथित करता है। स्वयं ग्राही राज्य का यह कर्तव्य होता है कि वह किसी ऐसे कार्य को न करे जो राजनयिक दूतों के लिए क्षतिपूर्ण हो तथा यदि किन्हीं अन्य व्यक्तियों द्वारा उसके विरुद्ध किसी प्रकार का क्षतिपूर्ण आचरण करने का प्रयास किया जाए तो उस का निवारण करे।

यद्यपि राजनयिक दूतों को सुरक्षा प्रदान की जाती है किंतु इस उन्मुक्ति को कुछ विशेष परिस्थितियों में नहीं प्रदान किया जाता है जिसको इस व्यवस्था के अपवाद के

टिप्पणी

रूप में माना जा सकता है। ग्राही राज्य विशेष मामलों में राजनयिक दूतों को गिरफ्तार या अनिरुद्ध कर सकता है। उदाहरणार्थ, उस राजनयिक को गिरफ्तार किया जा सकता है जो नशे में सार्वजनिक स्थान पर भरी हुई पिस्टल लिए हुए हो। यदि राजनयिक दूत ऐसा हिंसक कार्य करता है जिससे ग्राही राज्य की आंतरिक व्यवस्था में इस प्रकार से व्यवधान उत्पन्न हो जाता है जिसको रोकने के लिए उसे पर विरोध में रखना आवश्यक हो जाता है तो उसे तत्काल गिरफ़्तार किया जा सकता है। तदोपरांत उचित समय के अंतर्गत उसको प्रेषक राज्य में भेज देना चाहिए।

(क) मिशन के कर्मचारी वृंद की अनतिक्रमणीयता

वियना अभिसमय के अनुच्छेद 37 का परिच्छेद 2 उन उन्मुक्तियों का वर्णन करता है जो मिशन के प्रशासनिक तथा तकनीकी कर्मचारी वृंद के सदस्यों को प्रदान की जाती है। मिशन के प्रशासनिक और तकनीकी कर्मचारी वृंद के सदस्यों को यदि वे ग्राही राज्य के नागरिक अथवा स्थाई निवासी नहीं है तो अनुच्छेद 12 से 35 तक में विनिर्दिष्ट विशेष अधिकार तथा उन्मुक्तियां प्रदान की जाती हैं। किंतु ग्राही राज्य की उस दीवानी तथा प्रशासनिक अधिकारिता से उन्मुक्ति जो अनुच्छेद 31 के परिच्छेद 1 में विनिर्दिष्ट है, नहीं मिलेगी यदि उनके कार्य राजनयिक प्रतिनिधियों के कार्यों के अतिरिक्त होते हैं।

(ख) कुटुंब के सदस्यों की अनतिक्रमणीयता

राजनयिक दूतों तथा प्रशासनिक एवं तकनीकी कर्मचारी वृंद के कुटुंब के सदस्यों की उन्मुक्ति का प्रश्न इस कारण विवादास्पद है कि इस संबंध में राज्यों के व्यवहार पृथक–पृथक हैं। किंतु यह विवाद वियना अभिसमय द्वारा हल कर दिया गया है, जो प्रावधान करता है कि राजनयिक अभिकर्ता दूत के कुटुंब के उन सदस्यों को, जो राजनीतिक पद धारण करते हों, उन्मुक्ति तथा विशेष अधिकार प्रदान किया जा सकता है, यदि प्रथम, वे ग्राही राज्य के राष्ट्रीय या स्थाई निवासी न हों तथा दूसरे, जब तक वे उनकी गृहस्थी के भाग हों।

(2) परिसर की अनतिक्रमणीयता

स्थाई राजनयिक मिशन को परिसर की आवश्यकता होती है, जहां से वह अपने कार्य कर सके। अतः ग्राही राज्य को मिशन के लिए परिसर की व्यवस्था करने में प्रेषक राज्य की सहायता करनी चाहिए। मिशन को अपने परिसर में प्रेषक राज्य के ध्वज तथा प्रतीक चिन्ह के प्रयोग करने का अधिकार है जिससे स्पष्ट रूप से उनकी पहचान की जा सके। रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि में बहुत पूर्व से ही ऐसे परिसरों की अनतिक्रमणीयता को मान्यता प्रदान की जाती रही है। वियना अभिसमय अनुच्छेद 22 के अधीन अंतर्राष्ट्रीय विधि के इस रूढ़िगत नियम को सम्मिलित कर प्रावधान करता है कि मिशन का परिसर अनतिक्रमणीय होगा।

ग्राही राज्य का यह विशेष कर्तव्य है कि वह किसी घुसपैठ या क्षति के विरुद्ध मिशन के परिसर का संरक्षण करने के लिए तथा मिशन की शांति में बाधा या उसकी गरिमा को क्षति का निवारण करने के लिए समुचित उपाय करे।

यद्यपि राजनयिक दूतों के परिसर को सुरक्षा प्रदान की जाती है किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि परिसर की अनतिक्रमणीयता पूर्ण है। वियना अभिसमय के अनुच्छेद 41 के परिच्छेद 3 के अंतर्गत प्रावधानित है कि मिशन के परिसर का उपयोग इस अभिसमय में या सामान्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्य नियमों द्वारा या प्रेषक राज्य

व ग्राही राज्य के मध्य किए गए विशेष अनुबंधों द्वारा मिशन के अधिकृत प्रत्याशियों द्वारा असंगत रीति से नहीं किया जाना चाहिए। यदि परिसर की अनतिक्रमणीयता का दुरुपयोग किया जाता है तो ग्राही राज्य को निष्क्रिय होकर इसे सहन करने की आवश्यकता नहीं होती है।

(3) स्थानीय अधिकारिता से उन्मुक्ति

टिप्पणी

राजनयिक दूतों को स्थानीय न्यायालय की अधिकारिता से उन्मुक्ति प्रदान की जाती है। यह उन्मुक्ति दांडिक अधिकारिता या दीवानी व प्रशासनिक अधिकारिता के संबंध में प्रदान की जाती है।

(क) दांडिक अधिकारिता

वियना अभिसमय के अनुच्छेद 31 का परिच्छेद 1 प्रावधान करता है कि राजनयिक दूत ग्राही राज्य की दांडिक अधिकारिता से उन्मुक्त होंगे।यह प्रावधान अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियमों के समान है। दांडिक अधिकारिता से उन्मुक्तियों के कोई अपवाद नहीं हैं। अतः ग्राही राज्य को किसी भी परिस्थिति में राजनयिक दूतों को अभियोजक करने तथा दंडित करने का अधिकार नहीं होता। किंतु इसका यह अर्थ नहीं माना जा सकता कि राजनयिक दूत को जैसा वह चाहे वैसा करने का अधिकार प्राप्त है।

(ख) दीवानी तथा प्रशासनिक अधिकारिता

यह अंतर्राष्ट्रीय विधि का मान्यता प्राप्त सिद्धांत है कि राजनयिक दूत दीवानी तथा प्रशासनिक अधिकारिता से उन्मुक्त होते हैं। ऋण के संबंध में ग्राही राज्य के दीवानी न्यायालय में उनके विरुद्ध किसी भी प्रकार की दीवानी कार्यवाही नहीं की जा सकती। उन्हें ऋण के भुगतान न करने हेतु न तो गिरफ्तार किया जा सकता है तथा ना ही ऋण हेतु उनके फर्नीचर तथा इसी प्रकार के अन्य सामानों का अधिग्रहण किया जा सकता है। उन्हें अपने ऋण का भुगतान न करने पर राज्य छोड़ने से रोका नहीं जा सकता तथा इसी कारण उनके पार–पत्र (passport) को निरस्त नहीं किया जा सकता। वियना अभिसमय के अनुच्छेद 37 के परिच्छेद 1 के अंतर्गत भी इस प्रकार का प्रावधान किया गया है। किंतु अभिसमय उन स्थितियों को भी विनिर्दिष्ट करता है, जिनमें दीवानी तथा प्रशासनिक अधिकारिता के प्रयोग से उन्मुक्ति प्रदान नहीं की जाती है।

(4) साक्ष्य देने में उन्मुक्ति

राजनयिक दूत साक्षी प्रदान न करने के लिए ग्राही राज्य के दीवानी या प्रशासनिक न्यायालयों में साक्षी के रूप में उपस्थित होने से उन्मुक्त रहते हैं। वियना अभिसमय के अनुच्छेद 31 परिच्छेद 2 दो प्रावधान करता है कि कोई राजनयिक दूत साक्षी के रूप में साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए बाध्य नहीं होगा।

(5) करों तथा सीमा शुल्कों से उन्मुक्ति

वियना अभिसमय 1961 का अनुच्छेद 34 प्रावधान करता है कि राजनयिक दूत को सभी शुल्क व करों से छूट प्राप्त होती है, चाहे वह व्यक्तिक या स्थावर संपत्ति संबंधी हो या चाहे राष्ट्रीय क्षेत्रीय या नगरपालिका हो। इस संबंध में उन्मुक्ति पहले शिष्टाचार के कारण प्रदान की जाती थी किंतु अभिसमय ने इसे प्रयोज्य नियमों की अत्यधिक सुस्पष्ट परिभाषा तथा अपवादों के साथ सम्मिलित किया है।

टिप्पणी

(6) व्यक्तिगत यात्री सामानों के निरीक्षण से उन्मुक्ति

राजनयिक दूतों को यात्री सामानों के निरीक्षण तथा निरोध से छूट है, किंतु सीमा शुल्क विभाग के निरीक्षण से राजनयिक के निजी सामानों को छूट प्रदान करने का सामान्य व्यवहार सीमित कर दिया गया है। व्यक्तिगत यात्री सामानों का निरीक्षण राजनयिक दूतों या उनके अभिकर्ताओं की उपस्थित में किया जा सकता है, यदि यह आशंका करने का गंभीर आधार है कि उनके द्वारा लाई गई वस्तुएं शासकीय प्रयोग के लिए नहीं हैं। कोई प्रतिषिद्ध आयात तथा निर्यात ग्राही राज्य के नियमों के अधीन होता है। यह प्रावधान वियना अभिसमय के अनुच्छेद 36 के परिच्छेद 2 में किया गया है।

(7) संसूचना की स्वतंत्रता

राजनयिक दूत शासकीय प्रयोजनों हेतु भेजे जाने वाले राज्य में कोई सूचना संप्रेषित करने के लिए स्वतंत्र है। अभिसमय का अनुच्छेद 27 प्रावधान करता है कि संसूचना की स्वतंत्रता पत्र वाहन तथा संकेत संदेश को सम्मिलित करती है। यह अनुच्छेद राजनयिक दूत की अनतिक्रमणीयता की भी पुनः अभिपुष्टि करता है।

(8) संचालन तथा यात्रा की स्वतंत्रता

वियना अभिसमय का अनुच्छेद 26 प्रावधान करता है कि राजनयिक दूत ग्राही राज्य के राज्य क्षेत्र में यात्रा करने के लिए स्वतंत्र है। किंतु यह स्वतंत्रता प्रतिषिद्ध सुरक्षा क्षेत्र के लिए नहीं है। ऐसे क्षेत्रों में यात्रा से संबंधित विधियां तथा विनियम ग्राही राज्य द्वारा निर्मित विधियों के अधीन होते हैं।

(9) उपासना करने का अधिकार

राजनयिक दूत को परिसर के अंतर्गत अपने धर्म की उपासना करने का अधिकार प्राप्त होता है। किंतु वे ग्राही राज्य के राष्ट्रीय व्यक्तियों को उपासना में भाग लेने हेतु आमंत्रित नहीं कर सकते। उनको ग्राही राज्य में अपने धर्म का प्रचार करने का अधिकार नहीं है।

(10) सार्वजनिक सुरक्षा के प्रावधानों से उन्मुक्ति

वियना अभिसमय के अनुच्छेद 33 के अधीन राजनयिक दूत को नियुक्त किए जाने वाले राज्य के लिए की गई सेवाओं के संबंध में ग्राही राज्य के सामाजिक सुरक्षा के प्रावधानों से छूट प्राप्त होती है।

(11) स्थानीय तथा सैनिक बाध्यताओं से उन्मुक्ति

वियना अभिसमय का अनुच्छेद 35 प्रावधान करता है कि राजनयिक दूत को ग्राही राज्य की स्थानीय तथा सैनिक बाध्यताओं जैसे अपेक्षित सैनिक बाध्यता से संबद्ध बाध्यताओं से छूट प्राप्त होती है।

ये उन्मुक्तियां तथा विशेष अधिकार राजनयिक दूतों को प्रदान किए जाते हैं किंतु समय–समय पर ग्राही राज्य मिशन के सदस्यों को इन्हें राजनीतिक कारणों से या अन्य कारणों से प्रदान नहीं करते, जिनका अंतर्राष्ट्रीय विधि में कोई आधार नहीं है। ईरान द्वारा 1979 में तेहरान में अमेरिकी दूतावास के कर्मचारियों की गिरफ्तारी अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्थापित नियमों तथा वियना अभिसमय के प्रावधानों के उल्लंघन का स्पष्ट उदाहरण है।

उन्मुक्ति का अधित्याग

जो उन्मुक्तियां राजनयिक दूतों को प्रदान की जाती हैं उनका अधित्याग किया जा सकता है। उन्मुक्तियों के अधिकार के संबंध में नियम बनाने का मुख्य कारण यह है कि उनके दुरुपयोग पर रोक लगाई जा सके। सदैव यह माना गया है कि अधिकारिता से उन्मुक्ति का अधित्याग प्रेषक राज्य द्वारा किया जा सकता है। प्रेषक राज्य मिशन के प्रमुख राजनयिक दूत तथा अधीनस्थ पदाधिकारियों की उन्मुक्तियों का अधित्याग कर सकता है।

टिप्पणी

राजनयिक मिशन का समापन

राजनयिक मिशन के समापन को दो रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है– (1) व्यक्तिगत रूप से मिशन के प्रमुख की सेवा का समापन, तथा (2) पूर्ण रूप से मिशन का समापन।

(1) मिशन के प्रमुख की सेवा का समापन

मिशन के प्रमुख की सेवा का समापन निम्न प्रकारों से किया जा सकता है–

(क) समयावधि की समाप्ति

यदि किसी दूत को प्रत्यय पत्र सीमित अवधि के लिए प्रदान किया गया है तो उस अवधि के समाप्त होने पर उसके मिशन का समापन हो जाता है। उदाहरणार्थ अस्थाई प्रत्यय पत्र किसी राजदूत की वापसी तथा उसके स्थान पर नए राजदूत की नियुक्ति के मध्य के समय राजनयिक रूप से राज्य का प्रतिनिधित्व करने के उद्देश्य से किसी व्यक्ति को दिया जा सकता है।

(ख) राजनयिक दूत की वापसी

राजनयिक दूत को वापस बुलाने की शक्ति प्रेषक राज्य में निहित होती है। जब प्रेषक राज्य द्वारा राजनयिक दूत को वापस बुलाया जाता है तो सामान्यतः मिशन समाप्त हो जाता है। राजनयिक दूत को वापस बुलाने का प्रयोग व्यक्तिगत दुर्व्यवहार पर अपना असंतोष दर्शित करने के लिए या ग्राही राज्य के साथ नीतिगत मतभेद को व्यक्त करने के लिए किया जाता है।

(ग) ग्राही राज्य के अनुरोध पर

राजनयिक मिशन तब समाप्त हो जाता है जब इस संबंध में ग्राही राज्य द्वारा अनुरोध किया जाता है।

(घ) राजनयिक दूत के कार्य के पूर्ण होने पर अधिसूचना

प्रेषक राज्य अधिसूचना द्वारा मिशन का समापन कर सकता है, यदि राजनयिक दूत का कार्य समाप्त हो जाता है। वियना अभिसमय का अनुच्छेद 33 प्रावधान करता है कि राजनयिक दूत का कार्य प्रेषक राज्य द्वारा ग्राही राज्य को यह सूचित किए जाने पर समाप्त हो जाता है कि राजनयिक दूत का कार्य समाप्त हो गया है।

(ङ) अग्राह्य व्यक्ति

यदि राजदूत को ग्राही राज्य द्वारा अवांछनीय घोषित कर दिया जाता है तो राजनयिक मिशन समाप्त हो जाता है। राजनयिक दूत को अवांछनीय व्यक्ति घोषित करना ग्राही राज्य का अधिकार है, जिसका प्रयोग वह बिना कोई कारण बताए कर सकता है।

सामान्यतः राजनयिक दूत की अस्वीकार्यता का प्रश्न उसकी ओर से घोर दुराचरण के आधार पर उत्पन्न होता है। इस आधार पर मिशन को समाप्त करने के पहले प्रेषक राज्य को ग्राही राज्य द्वारा सूचना देना आवश्यक होता है।

(2) पूर्ण रूप से मिशन का समापन

टिप्पणी

राज्य को पूर्ण रूप से राजनीतिक मिशन का समापन करने का अधिकार प्राप्त है। ऐसी स्थिति तब उत्पन्न होती है जब प्रेषक तथा ग्राही राज्य के मध्य युद्ध प्रारंभ हो जाता है। युद्ध ना होने वाले सशस्त्र संघर्ष के मामले में राजनयिक मिशन सभी मामलों में समाप्त नहीं होता है। चीन के साथ 1962 में तथा पाकिस्तान के साथ 1965 में भारत के सशस्त्र संघर्ष के मामले में राजनीतिक संबंध समाप्त नहीं हुआ था। किंतु 1971 के सशस्त्र संघर्ष में भारत तथा पाकिस्तान ने अपने मिशन को बंद कर दिया था। उपर्युक्त के अतिरिक्त राजनयिक मिशन का स्वयं समापन तब हो जाता है जब प्रेषक या ग्राही राज्य अन्य राज्य में स्वैच्छिक विलय द्वारा मिल जाता है। मिशन के समापन पर संबद्ध व्यक्तियों के कार्य समाप्त हो जाते हैं।

राजनयिक दूत तथा भारत

अक्टूबर, 1965 में भारत वियना अभिसमय का पक्षकार बना। वियना अभिसमय को लागू करने हेतु संसद ने 1972 में राजनयिक संबंध वियना अभिसमय अधिनियम को अधिनियमित किया। इस अधिनियम से संलग्न अनुसूची में जो प्रावधान किए गए हैं, उन सभी प्रावधानों से भारत में विधि की शक्ति प्राप्त होगी। अनुसूची में यह स्पष्ट किया गया है कि वियना अभिसमय के अनुच्छेद 22, 23, 24 तथा 27 से 40 तक भारत में लागू होंगे। अधिनियम की धारा 2 की उप धारा 2 केंद्र सरकार को समय–समय पर अनुसूची में संशोधन करने हेतु सशक्त करती है। अधिनियम से संबंधित अनुसूची राजदूतों के उन विशेष अधिकारों व उन्मुक्तियों के संबंध में प्रावधान करती है जो वियना अभिसमय द्वारा प्रदान किए गए हैं। किंतु अधिनियम की धारा 4 व्यवस्था करती है कि भारत में अन्य राज्यों के राजनयिक दूतों को उन्मुक्तियां पारस्परिकता के आधार पर प्रदान की जाएंगी।

सीमा शुल्क के संबंध में राजनयिक दूतों की उन्मुक्ति के संबंध में अधिनियम द्वारा उल्लेखनीय प्रतिबंध लगाया गया है। अभिसमय अनुच्छेद 36 के अंतर्गत प्रावधान करता है कि ग्राही राज्य विभिन्न विधियों व नियमों के अनुसार शासकीय उपयोग की वस्तुओं तथा राजनीतिक दूत या उसके कुटुंब के सदस्यों के व्यक्तिगत उपयोग की वस्तुओं के प्रवेश की अनुज्ञा देगा तथा उन्हें सभी सीमाशुल्कों व करों तथा अन्य संबद्ध प्रभावों से छूट प्रदान करेगा।

4.4.3 वाणिज्य–दूत (कौंसल)

विदेशों में विभिन्न प्रयोजनों के लिए निवास करने वाले राज्यों के अभिकर्ताओं को कौंसल कहा जाता है। मुख्य रूप से ये नियुक्त करने वाले राज्य के वाणिज्य इत्यादि हितों की संरक्षा करने के लिए भेजे जाते हैं। वस्तुतः, कौंसल संस्थान का विकास प्रारंभिक रूप से वाणिज्य की संरक्षा के लिए हुआ था, किंतु वर्तमान समय में ये अन्य प्रयोजनों के लिए भी भेजे जाते हैं।

कौंसल राजनयिक अभिकर्ता नहीं होते और इसलिए इन्हें वे उन्मुक्तियां तथा विशेषाधिकार नहीं प्राप्त होते, जो राजनयिक अभिकर्ता को प्रदान किए जाते हैं।

टिप्पणी

कौंसल तथा राजनीतिक अभिकर्ता में, विशेषकर उनकी नियुक्ति तथा कार्य के संबंध में कई भिन्नताएं हैं। प्रथम, राजनयिक अभिकर्ता राज्य के राजनीतिक प्रतिनिधि होते हैं, किंतु कौंसल अपने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की पूर्णता में राज्य के प्रतिनिधि नहीं होते। दूसरे, राजनयिक अभिकर्ता के मामले में, राज्य के प्रमुख द्वारा अन्य राज्य को प्रत्यय पत्र दिया जाता है, किंतु कौंसल के मामले में एकस्व पत्र या अनुज्ञा पत्र अर्थात मान्यता पत्र भेजने वाले राज्य के प्रमुख द्वारा जारी नहीं किया जाता, यद्यपि उस पर उसके द्वारा हस्ताक्षर किए जाते हैं। तीसरे, राजनयिक प्रतिनिधि जब भेजे जाने वाले राज्य में पहुंचते हैं, तभी से वे कई विशेषाधिकार के हकदार हो जाते हैं, जबकि कौंसल के मामले में, उसकी नियुक्ति की संसूचना विदेशी सरकार को दी जाती है। ये अपना कार्य केवल तब प्रारंभ करते हैं, जब अनुमति पत्र ग्राही राज्य द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। चौथा, दोनों प्रकार के प्रतिनिधियों के कार्य भिन्न–भिन्न होते हैं।

कई अवसरों पर, विशेषकर छोटे राज्य केवल कौंसल को ही भेजते हैं तथा ऐसे राज्य कौंसल को अपने कार्यों के साथ राजनयिक अभिकर्ताओं के कार्य को भी करने देते हैं। किंतु ऐसा करने पर कौंसल ना तो राजनयिक अभिकर्ता हो जाते हैं ना ही उन्हें वे विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां प्राप्त हो जाती है, जो राजनयिक अभीकर्ताओं को प्रदान की जाती हैं।

वियना अभिसमय का अनुच्छेद 17(1) प्रावधान करता है कि कौंसलीय अधिकारी द्वारा राजनयिक कार्यों को करने से उसे राजनयिक विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों का दावा करने का अधिकार नहीं होगा।

कौंसलीय संबंध पर विधि

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1963 में आयोजित सम्मेलन में कौंसलीय संबंध वियना अभिसमय को स्वीकार कर कौंसलीय संबंधों के रूढ़िगत नियमों को संहिताबद्ध किया गया। अभिसमय 19 मार्च, 1967 को प्रवृत्त हुआ, जब 22 राज्यों द्वारा इसका अनुसमर्थन किया गया। अभिसमय के प्रावधान मुख्यतः रूढ़िगत विधि तथा अंतर्राष्ट्रीय अभिसमयों विशेषकर कौंसलीय अभिसमयों में पाए जाने वाले सुसंगत नियमों पर आधारित हैं। अभिसमयों के निर्माण में राज्यों के उस अभ्यास पर सम्यक ध्यान दिया गया, जो आंतरिक कौंसलीय विनियमों में स्पष्ट था, जहां तक वे अंतर्राष्ट्रीय विधि के मूल सिद्धांत के अनुरूप थे। अभिसमय के मई 2016 तक 179 राज्य पक्षकार थे।

कौंसल का वर्गीकरण

कौंसलों को वियना अभिसमय के अनुच्छेद 9 में चार संवर्गों में विभाजित किया गया है जो निम्न प्रकार हैं–

1. महाकौंसल
2. कौंसल
3. उपकौंसुल
4. कौंसलीय अभिकर्ता

महाकौंसल, कौंसल ऑफिस का प्रमुख होता है, जबकि कौंसल, महाकौंसल द्वारा नियुक्त किए जाते हैं तथा द्वितीय स्थान धारण करते हैं। उपकौंसल तथा कौंसलीय अभिकर्ता भी महाकौंसल द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। वियना अभिसमय में कौंसल के

वर्गीकरण के संबंध में रुढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि के वर्गीकरण में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।

मान्यता पत्र

कौंसल अपना कार्य केवल उस समय प्रारंभ करता है ,जब उनका अनुमति पत्र अर्थात मान्यता पत्र ग्राही राज्य द्वारा स्वीकार किया जाता है। राज्य मान्यता पत्र को स्वीकार करने से इंकार कर सकता है तथा इसके लिए उसे किसी कारण को बताने की आवश्यकता नहीं होती।

टिप्पणी

कौंसल के कार्य

कौंसल के विभिन्न कार्यों का उल्लेख वियना अभिसमय के अनुच्छेद 5 में किया गया है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण कार्य निम्न प्रकार से हैं–

1. ग्राही राज्य तथा उसके राष्ट्रिकों के वाणिज्य हितों का संरक्षण करना।
2. दोनों राज्यों के बीच वाणिज्यिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक संबंधों के विकास को अग्रसर करना तथा उनके बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों को बढ़ाना।
3. ग्राही राज्य के वाणिज्यिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक जीवन की दशाओं और विकासों का अभिनिश्चय करना।
4. अपने राष्ट्रिकों को पार पत्र तथा ग्राही राज्य के राष्ट्रिकों को वीजा जारी करना।
5. हस्ताक्षर, विवाह, जन्म तथा मृत्यु के पंजीकरण का परीक्षण कराने में अपने राष्ट्रिकों को सहायता प्रदान करना।
6. अवयस्कों और पूर्ण हैसियत ना रखने वाले अपने राष्ट्रिकों को सहायता प्रदान करना।
7. भेजे जाने वाले राज्य के जलयानों और वायुयानों के संबंध में पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण के अधिकार का प्रयोग करना।
8. अपने राष्ट्रिकों के साथ संसूचना का अधिकार तथा उन तक पहुंच रखने का अधिकार।

इनके अतिरिक्त वे अन्य सौंपे गए कार्यों को भी कर सकते हैं।

इललीगल डिटेंशन ऑफ कुलभूषण जाधव

कुलभूषण जाधव जो भारतीय नागरिक हैं तथा पूर्व नौसेना अधिकारी हैं को पाकिस्तान ने भारत के लिए जासूसी करने के अपराध में गिरफ्तार किया और मिलिट्री कोर्ट के द्वारा उसको फांसी की सजा सुनाई गई। भारत ने इसका विरोध किया तथा अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में यह सुनिश्चित करने को कहा कि जाधव को सभी विकल्पों पर विचार करने से पहले फांसी ना दी जाए। भारत ने यह तर्क दिया कि जाधव को कौंसलीय पहुंच के अधिकार से वंचित रखा गया। अतः यह वियना अभिसमय का पाकिस्तान द्वारा उल्लंघन है। न्यायालय ने यह परीक्षण किया कि अभिसमय पाकिस्तान पर लागू होता है और न्यायालय ने फांसी की सजा पर रोक लगा दी।

कौंसल के विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां

यद्यपि कौंसलों को वे सभी उन्मुक्तियां नहीं प्रदान की जातीं जो राजनयिक अभिकर्ताओं को दी जाती हैं, फिर भी उन्हें प्रेषक राज्य के प्रतिनिधि होने के कारण कुछ

विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां प्राप्त होती हैं। इनकी उन्मुक्तियां वियना अभिसमय के भाग 2 में उल्लिखित हैं। ये निम्न प्रकार से हैं–

1. कौंसल का परिसर अनतिक्रमणीय होता है। उसके कार्यालय के प्रधान की सम्मति के बिना कोई व्यक्ति कौंसल के परिसर में प्रवेश नहीं कर सकता।
2. अनुच्छेद 34 प्रवधान करता है कि राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित विधियों तथा विनियमों के अधीन कौंसल को ग्राही राज्य के संपूर्ण राज्य क्षेत्र में आने–जाने की स्वतंत्रता है।
3. अनुच्छेद 36 के अनुसार कौंसल को प्रेषक राज्य को किसी भी सूचना को भेजने की स्वतंत्रता है।
4. अनुच्छेद 41 के अनुसार कौंसलीय अधिकारियों को गंभीर अपराध करने पर सक्षम न्यायिक प्राधिकारी के विनिश्चय के बिना गिरफ्तार या निरुद्ध नहीं किया जा सकता। ग्राही राज्य द्वारा किसी निरोध, गिरफ्तारी व अभियोजन की सूचना प्रेषक राज्य के कौंसलीय प्रमुख को दी जाएगी।
5. अनुच्छेद 43 प्रावधान करता है कि कौंसलीय अधिकारी अपने पदीय कर्तव्यों के संबंध में ग्राही राज्य की सिविल या दांडिक अधिकारिता के अधीन नहीं होंगे, किंतु वे उन कार्यों के लिए जिम्मेदार होंगे, जिनको प्रेषक राज्य के अभिकर्ता के रूप में नहीं किया गया है।
6. कौंसलीय अधिकारियों को अप्रत्यक्ष कर के अतिरिक्त सभी स्थानीय शुल्कों तथा करों, संपदा, उत्तराधिकार या विरासत शुल्कों से छूट होगी।
7. अनुच्छेद 50 के अनुसार कौंसलीय अधिकारी और उनके परिवार को वैयक्तिक सेवाओं में छूट होगी।

कौंसल की उन्मुक्तियां तथा विशेषाधिकार उनके कार्य की आवश्यकता पर आधारित हैं, इसका तात्पर्य यह है कि किसी कौंसल को उन्मुक्ति प्राप्त नहीं होगी, यदि यह उसके कार्यों के लिए आवश्यक नहीं है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. विदेशों में निवासार्थ भेजे गए राज्यों के प्रतिनिधियों को क्या कहा जाता है?

   (क) सामाजिक दूत (ख) राजनयिक दूत

   (ग) मेघदूत (घ) यमदूत

6. विदेशों में विभिन्न प्रयोजनों के लिए निवास करने वाले राज्यों के अभिकर्ताओं को क्या कहा जाता है?

   (क) कौंसल (ख) पर्यटक

   (ग) नेता (घ) समाजवादी

4.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (ग)

3. (ख)
4. (क)
5. (ख)
6. (क)

टिप्पणी

4.6 सारांश

तटस्थता की अवधारणा का संबंध युद्ध की स्थिति से है। यदि युद्ध होता है तो राज्य तटस्थता को अपना सकते हैं। किंतु क्या एक राज्य ऐसी स्थिति में भी तटस्थ रह सकता है जहां युद्ध की स्थिति विद्यमान नहीं रहती, अर्थात अंतर्राष्ट्रीय सशस्त्र संघर्ष के मामलों में जहां अंतर्राष्ट्रीय विधि के अर्थ में युद्ध न हो रहा हो? इस संबंध में यह कहना उचित है कि क्योंकि युद्ध के अधिकांश नियम जो संधियों द्वारा बनाए गए हैं वे अंतर्राष्ट्रीय सशस्त्र संघर्षों में भी लागू किए जाते हैं। अतः तटस्थता के नियम भी सशस्त्र संघर्षों में लागू होंगे। इसके उपरांत की संधियों में भी सशस्त्र संघर्षों में तटस्थता के संबंध में कोई प्रावधान नहीं किया गया है।

राष्ट्रसंघ ने तटस्थता के सिद्धांत को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। राष्ट्र संघ की प्रसंविदा में दो प्रकार के युद्धों का वर्णन किया गया था, प्रथम जो प्रसंविदा के प्रावधानों के उल्लंघन में न किया गया हो, अर्थात युद्ध जो निश्चित नहीं है, तथा दूसरा, जो प्रसंविदा के प्रावधानों के उल्लंघन में किया गया हो अर्थात निषिद्ध युद्ध। प्रथम प्रकार का युद्ध विधिक युद्ध होता था तथा ऐसे युद्ध के मामलों में, प्रसंविदा के सदस्यों को तटस्थता के परंपरागत अर्थ में अपनी तटस्थता को बनाए रखने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया था। ऐसे युद्धों में, तटस्थता की प्रवृत्ति के संबंध में प्रसंविदा के प्रावधानों द्वारा कोई निषेध या प्रतिषेध नहीं किया गया था। किंतु तटस्थता की अवधारणा व्यापक रूप से उन युद्धों में प्रभावित हुई, जो प्रसंविदा की बाध्यताओं के उल्लंघन में किए जाते थे। क्योंकि ऐसा कोई युद्ध संपूर्ण विश्व का मामला हो जाता था तथा राष्ट्र संघ के सभी सदस्यों से आक्रमण से पीड़ित राज्य को सहायता प्रदान करने की अपेक्षा की जाती है, अतएव कोई राज्य तटस्थता की प्रवृत्ति को स्वीकार नहीं कर सकता था। किंतु किसी ऐसे युद्ध (जो प्रसंविदा के उल्लंघन में किया जाता है) में भी राज्य द्वारा तटस्थता अपनाई जा सकती थी। कोई राज्य तटस्थ रह सकता था, यदि वह किसी विशिष्ट युद्ध में यह निश्चय करता था कि प्रसंविदा के उल्लंघन में युद्ध नहीं हो रहा है।

संयुक्त राष्ट्र ने अपने चार्टर की उद्देशिका में 'हम संयुक्त राष्ट्र के लोग' शब्दों का प्रयोग करके व्यक्तियों की महत्ता को बढ़ाया। यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय विधि प्राथमिक रूप से राज्यों के संबंध को ही विनियमित करती है तथा राज्य ही अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्राथमिक विषय हैं। किंतु केवल राज्य ही अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय नहीं रह गए हैं। इनके अतिरिक्त व्यक्तियों को भी अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुसार अधिकार तथा कर्तव्य प्रदान किए गए हैं। यहां यह भी स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि जब तक अंतर्राष्ट्रीय समुदाय राज्यों से गठित है, व्यक्तियों को अधिकार एवं कर्तव्य उन्हीं के माध्यम से प्राप्त हो सकता है।

व्यक्तियों की राष्ट्रीयता का निर्धारण राष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुसार किया जाता है। स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने 1923 में घोषणा की थी कि अंतर्राष्ट्रीय विधि

की वर्तमान स्थिति में राष्ट्रीयता का प्रश्न एकमात्र राज्य की आंतरिक अधिकारिता के अंतर्गत आता है। ऐसी विधियों को अन्य राज्यों द्वारा मान्यता दिए जाने की अपेक्षा की जाती है। हेग संहिता करण सम्मेलन 1930 द्वारा स्वीकृत राष्ट्रीय विधियों के संघर्ष से संबंधित कुछ प्रश्नों पर अभिसमय का अनुच्छेद–1 प्रावधान करता है प्रत्येक राज्य अपनी विधि के अंतर्गत यह निर्धारित कर सकता है कि कौन उसका राष्ट्रीय होगा। ऐसी विधि को अन्य राज्य द्वारा केवल तब मान्यता दी जाएगी, जब यह अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय, अंतर्राष्ट्रीय रूढ़ियों तथा राष्ट्रीयता के संबंध में सामान्य रूप से मान्य विधि के सिद्धांतों से संगत होगा। अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा यह परिसीमा अन्य राज्यों के हित में निर्धारित की जाती है ना कि व्यक्तियों के हित के लिए।

टिप्पणी

विदेशों में निवासार्थ भेजे गए राज्यों के प्रतिनिधियों को राजनयिक दूत कहा जाता है। यह उन दोनों देशों के मध्य महत्वपूर्ण संबंध व सामंजस्य स्थापित करने का कार्य करते हैं। इस प्रकार ये कूटनीतिक कार्य करते हैं जिसका तात्पर्य अंतर्राष्ट्रीय विधि में राज्य पारस्परिक संबंध स्थापित करना, उनको बनाए रखना तथा राजनीतिक या विधिक सम व्यवहार पूर्ण करना होता है। वर्तमान समय में राजनयिक दूतों की संस्था ने एक विस्तृत एवं महत्वपूर्ण रूप धारण कर लिया है।

राज्य द्वारा राजनीतिक दूतों को भेजने तथा स्वीकार करने की प्रथा प्राचीन काल से ही चलन में रही है। राजनयिक नई दूतों को अस्थाई रूप से कुछ विशेष प्रयोजन के लिए अन्य देशों में भेजा जाता था तथा प्रयोजन पूरा हो जाने पर उनको वापस आना होता था। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक स्थाई दूतावास सामान्य संस्था बन गए तथा बाद में उनको अधिकार, कर्तव्य तथा उन्मुक्तियां भी प्रदान कर दी गईं, जिस की प्रकृति लगभग एक समान थी। इसने अंतर्राष्ट्रीय विधि के कुछ रूढ़िगत नियमों के विकास को प्रेरित किया। सर्वप्रथम 1815 के वियना कांग्रेस ने राजनयिक प्रतिनिधियों के पद के लिए अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियम को संहिताबद्ध किया। इसके उपरांत संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1961 में वियना सम्मेलन में एक अभिसमय स्वीकार किया जिसे राजनयिक संबंधों पर वियना अभिसमय 1961 के नाम से जाना जाता है जिसका इसके उपरांत संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1961 में विनाश सम्मेलन में एक अभिसमय स्वीकार किया जिसे राजनयिक संबंधों का परवाना अभिसमय 1961 के नाम से जाना जाता है। जिसे 22 राज्यों द्वारा अनु समर्थन प्रदान किया गया। फरवरी 2017 तक 191 राज्य अभिसमय के पक्षकार बन गए थे।

विदेशों में विभिन्न प्रयोजनों के लिए निवास करने वाले राज्यों के अभिकर्ताओं को कौंसल कहा जाता है। मुख्य रूप से ये नियुक्त करने वाले राज्य के वाणिज्य इत्यादि हितों की संरक्षा करने के लिए भेजे जाते हैं। वस्तुतः, कौंसल संस्थान का विकास प्रारंभिक रूप से वाणिज्य की संरक्षा के लिए हुआ था, किंतु वर्तमान समय में ये अन्य प्रयोजनों के लिए भी भेजे जाते हैं।

कौंसल राजनयिक अभिकर्ता नहीं होते और इसलिए इन्हें वे उन्मुक्तियां तथा विशेषाधिकार नहीं प्राप्त होते, जो राजनयिक अभिकर्ता को प्रदान किए जाते हैं।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **अवधारणा** : मन में किसी कल्पना या विचार का बनना।

- **विवाचक** : मध्यस्थ।
- **प्रसंविदा** : करार, इकरारनामा।
- **प्रत्यावर्तन** : वापस आना।
- **प्रतिकर** : विक्षेप, प्रतिशोध, क्षतिपूर्ति।

टिप्पणी

4.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. तटस्थता की अवधारणा का संबंध किससे है?
2. संयुक्त राज्य ने ब्रिटिश बंदरगाह में निर्मित संघीय पोतों की लूट के लिए क्या वसूलने की मांग की?
3. प्रारंभिक अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय विधि का विषय क्या होता था?
4. विराष्ट्रीय या राष्ट्र–विहीन किसे कहते हैं?
5. कौंसल किन्हें कहा जाता है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. तटस्थता की संकल्पना और उसके विकास की विवेचना कीजिए।
2. तटस्थ राज्यों के विभिन्न कर्तव्यों तथा अधिकारों की व्याख्या कीजिए।
3. राष्ट्रीयता एवं नागरिकता की विधिवत समीक्षा कीजिए।
4. विदेशी अथवा अन्यदेशीय किन्हें कहते हैं? इनके प्रवेश तथा निष्कासन पर प्रकाश डालिए।
5. राजनयिक दूतों का वर्गीकरण कीजिए तथा राजनयिक उन्मुक्तियों की विवेचना कीजिए।

4.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अन्तर्राष्ट्रीय विधि और मानवाधिकार–के.सी. जोशी, ईस्टर्न बुक कंपनी
2. Dr. S.K. Kapoor: Human Rights & International Law (Hindi)
3. R. Falk: International Law: A Contemporary Perspective
4. R.P. Anand: Law of the Sea,. Caracas and beyond (1978)
5. O.P. Malhotra: Law of industrial Disputes (1999)
6. Oppenheim: International Law (Volume I, Peace)
7. S. K. Kapoor: International Law
8. M.P. Tandon: International Law (English & Hindi)
9. Robertson, A.H.: Human Rights in the World
10. S.C. Khare: Human Rights in United Nations
11. D.D. Basu: Human Rights in Constitutional Law
12. Nagendra Singh: Protection of Human Rights.

इकाई 5 संधियाँ तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय आचरण

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 संधियाँ और अंतर्राष्ट्रीय आचरण
  5.2.1 संधियों के प्रकार
  5.2.2 संधियों के कुछ सामान्य सिद्धांत
  5.2.3 अन्य अंतर्राष्ट्रीय आचरण
5.3 1949 के जिनेवा सम्मेलन
5.4 अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान
5.5 राज्यों के मध्य मतभेद निबटाने हेतु युद्ध के अतिरिक्त उपाय
5.6 युद्ध सम्बन्धी विधि, जल, थल व वायु युद्ध सम्बन्धी विधि, युद्ध बंदियों व अन्य बंदियों (बीमार तथा घायल) के साथ व्यवहार, नाकाबंदी, विनिषिद्ध माल, युद्ध अपराध
5.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.8 सारांश
5.9 मुख्य शब्दावली
5.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.11 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

5.0 परिचय

संधि शब्द का तात्पर्य एक ऐसी लिखित संविदा से है जिसके द्वारा दो या दो से अधिक राज्य या अंतर्राष्ट्रीय संगठन, अंतर्राष्ट्रीय विधि के क्षेत्र के अंतर्गत कार्य करते हुए, संबंधों का सृजन करते हैं या सृजित करने की आशा रखते हैं। प्राचीन अंतर्राष्ट्रीय विधि यह निर्धारित नहीं करती कि संधि सदैव लिखित ही होनी चाहिए, फिर भी राज्य द्वारा मौखिक संविदा नहीं की जाती। संधि विधि पर वियना अभिसमय, 1969 प्रावधान करता है कि संधियों का निर्माण केवल लिखित रूप में होना चाहिए। मौखिक अनुबंध न तो सुस्पष्ट होता है और न ही स्थाई। संधि के पक्षकार या तो राज्य या राज्य तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठन, या अंतर्राष्ट्रीय संगठन हो सकते हैं। तीसरा, संधि का उद्देश्य पक्षकारों के मध्य संबंध सृजित करना होता है। संबंध विधिक या राजनीतिक अथवा नैतिक हो सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि संधि या संधि के प्रावधान सदैव कोई बाध्य कर बाध्यता ही नहीं आरोपित करते या पक्षकारों के मध्य विधिक संबंध सृजित करने के लिए ही आशयित नहीं होते। संधि को अंतर्राष्ट्रीय विधि के क्षेत्र के अंतर्गत लागू होना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय विधि ही केवल ऐसी विधिक प्रणाली नहीं है, जिसके अंतर्गत राज्य संविदा करते हैं। कुछ संविदाएं वैयक्तिक अंतर्राष्ट्रीय विधि के सामान्य सिद्धांतों द्वारा शासित होती हैं।

प्रस्तुत इकाई में संधियों के प्रकार, उनके निर्माण तथा सामान्य सिद्धांतों का विधिवत अध्ययन किया गया है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- संधियों के अर्थ के बारे में जान पाएंगे;
- संधियों के निर्माण व उनके सिद्धांतों को समझ पाएंगे;
- अंतर्राष्ट्रीय आचरण के मुख्य तत्वों से अवगत हो पाएंगे;
- अंतर्राष्ट्रीय विवादों व उनके हल का विश्लेषण कर पाएंगे;
- विभिन्न युद्ध विधियों की व्याख्या कर पाएंगे।

टिप्पणी

5.2 संधियाँ और अंतर्राष्ट्रीय आचरण

1949 में अंतर्राष्ट्रीय आयोग द्वारा संहिताकरण के लिए चुने गए विषयों में संधि विधि को सम्मिलित किया गया। जब आयोग ने 1966 में संहिता करण का कार्य पूर्ण कर लिया, तब महासभा ने 1968 में अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा तैयार किए गए प्रारूप अनुच्छेद पर विचार करने हेतु संयुक्त राष्ट्र संधि विधि सम्मेलन आयोजित किया। सम्मेलन में संधि विधि पर वियना अभिसमय को स्वीकार किया गया। अभिसमय में उद्देशिका तथा 85 अनुच्छेद हैं तथा इसको 8 भागों में विभाजित किया गया है। अभिसमय 27 जनवरी, 1980 को प्रभाव में आया।

अभिसमय उन्हीं राज्यों के मध्य लागू होता है जो उसके पक्षकार बन गए हैं। जो राज्य अभिसमय के पक्षकार नहीं हैं उनके द्वारा बनाई गई सेधियां रूढ़िगत नियमों द्वारा अर्थात प्राचीन विधि से ही लागू होती हैं। वियना अभिसमय स्पष्ट प्रावधान करता है कि संधि का तात्पर्य राज्यों के मध्य लिखित रूप में की गई ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संविदा से है, जो अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा शासित होती है। इस प्रकार, राज्य तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के की गई संविदा अभिसमय के क्षेत्र अंतर्गत नहीं आती।

5.2.1 संधियों के प्रकार

संधियों को निम्नांकित तीन वर्गों में बांटा जा सकता है:–

1. द्विपक्षीय संधियां : द्विपक्षीय संधि उस संधि को कहते हैं जिसमें संधि से उत्पन्न अधिकार तथा बाध्यता केवल दो पक्षकारों तक ही सीमित रहती है। इसको कभी–कभी द्विदलीय संधि भी कहा जाता है, यद्यपि यह शब्द उचित प्रतीत नहीं होता है। कई द्विपक्षीय संधियां वैयक्तिक विधि संविदा के समान होती हैं, इसलिए उन्हें कभी–कभी संधि–संविदा भी कहा जाता है।

2. अनेक पक्षीय संधियां : जिन संधियों में कई राज्य पक्षकार होते हैं, उन्हें अनेक पक्षीय संधि कहा जाता है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के सभी या अधिकतर सदस्य इनके पक्षकार नहीं हो सकते, जैसा कि बहुपक्षीय संधियों के मामले में होता है। अनेक पक्षीय संधियों के निर्माण का उद्देश्य पृथक–पृथक होता है। ये या तो विनिर्दिष्ट क्षेत्र के अंतर्गत शांति तथा सुरक्षा बनाए रखने के लिए या पक्षकारों के मध्य व्यापार में वृद्धि करने या व्यापार का विकास करने के लिए या अन्य अधिकारों तथा बाध्यता को सुरक्षित करने के लिए बनाई जाती हैं।

3. बहुपक्षीय संधियां : बहुपक्षीय संद्धियां उन संद्धियों को कहते हैं, जिनमें सभी राज्य पक्षकार हो सकते हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय विधि के सामान्य सिद्धांतों को या अन्य राज्यों तथा संधि के पक्षकारों के सामान्य संबंध के मामलों को निबटाने के लिए सामान्य रूप को प्रतिपादित करती हैं। बहुपक्षीय संधियों के संबंध में यह कहा जाता है कि ये अंतर्राष्ट्रीय विधायक का कार्य करती हैं। इन में अंतर्राष्ट्रीय विधायक होने की झलक होती है, फिर भी इन्हें ऐसा कहना अनुचित होगा क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय विधायक शब्द वास्तविकता से अधिक दिखावटी है।

टिप्पणी

संधि के संभावित पक्षकार (Possible parties of Treaty)

राज्यों के अलावा , अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठन भी संधि करने के लिए सक्षम होते हैं। इस प्रकार, संयुक्त राष्ट्र तथा उसके विशिष्ट अभिकरण अपने कार्यों को करने के लिए संधि कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र ने सदस्य तथा गैर सदस्य राज्यों के साथ कई संविदा की हैं। किंतु अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा की गई संधि वियना अभिसमय के क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आती। ऐसी संधियां पृथक अभिसमय के अनुरूप शासित होती हैं , जिनको 1986 में अंगीकृत किया गया है।

संधियों का निर्माण (Formation of Treaties)

अंतर्राष्ट्रीय विधि संधियों के निर्माण के लिए किसी विशेष प्रारूप को निर्धारित नहीं करती। इस प्रकार, इस संबंध में कोई सुपर प्रक्रिया नहीं है। पक्षकार संधि की भाषा या भाषाओं पर सहमत होने के लिए स्वतंत्र हैं, जिन पर उन्हें विवाद के मामले में प्रामाणिक माना जाता है। फिर भी संधि बनाने के कुछ प्रक्रम होते हैं, जिन्हें सामान्य रूप से राज्य संधि को निर्मित करते समय स्वीकृत करते हैं। ऐसे प्रक्रम निम्न प्रकार हैं–

1. **संविदाकारी राज्यों द्वारा व्यक्तियों का प्रत्यायन (Accrediting of persons by the contracting States)** : संधियों के निर्माण में प्रथम पद राज्यों द्वारा प्रतिनिधियों या पूर्ण अधिकारी दूत की नियुक्ति होता है। प्रतिनिधियों को संधि करने के लिए आवश्यक प्राधिकार से युक्त होना चाहिए। प्रतिनिधियों से अपनी संपूर्ण शक्ति के आदान–प्रदान की अपेक्षा की जाती है। संपूर्ण शक्ति तब आवश्यक नहीं होती जब संधि राज्य की ओर से राज्य प्रमुख, सरकार के प्रमुख, विदेशी मामलों के मंत्री, राजनयिक मिशन के प्रमुख तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन या संगठन में प्रत्याशित प्रतिनिधियों द्वारा की जाती है। इन अधिकारियों को राज्य का पदेन प्रतिनिधित्व करने वाला माना जाता है।
2. **वार्ता (Negotiation)** : संविदाकारी राज्यों द्वारा प्रत्येक व्यक्ति वार्ता की कार्यवाही करते हैं। वार्ता के समय, वार्ता करने वाले पक्षकारों के प्रस्ताव पेश तथा उन पर विचार–विमर्श किया जाता है। तत्पश्चात विचारों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है तथा उन पर स्थाई रूप से सहमति प्रदान की जाती है। संधि पर वार्ता करते समय, प्रतिनिधि अपनी सरकार से विचार–विमर्श कर सकते हैं।
3. **अंगीकरण (Adoption)** : जब राज्य संधि पर बातचीत कर चुकते हैं, तब वे संधि के प्रावधानों को निश्चित करके तथा उसके मूल पाठ को तैयार करके उसका प्रारूप निर्धारित करते हैं। जब राज्य इस मूल पाठ के प्रति अपनी सहमति

टिप्पणी

व्यक्त कर देते हैं, तो यह कहा जाता है कि वे इसे स्वीकार कर रहे हैं। द्विपक्षीय संधि में, संधि के मूल पाठ का अंगीकरण अनौपचारिक कदम माना जाता है, किंतु जहां कई राज्य मूल पाठ को तैयार करने में भाग लेते हैं, वहां मामला अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। ऐसे मामले में सामान्य नियम यह है कि उन सभी राज्यों की सम्मति मूल पाठ के अंगीकरण के लिए आवश्यक है। तथापि, अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में तैयार किए गए मूल पाठ के लिए सर्वसम्मति का होना आवश्यक नहीं है तथा सामान्य व्यवहार नहीं है।

4. **राज्यों की सम्मति (Consent of the States)** : राज्यों पर संधियां उसी समय बाध्यकारी होती हैं जब वे संधि के लिए अपनी सहमति प्रदान कर देते हैं। अतएव राज्यों की सम्मति संधि के निर्माण में बहुत अधिक महत्वपूर्ण प्रक्रम है। सम्मति निम्न प्रकार से प्रदान की जा सकती है–

   (क) हस्ताक्षर द्वारा सम्मति: अंगीकरण के बाद, संधि के पाठ को संविदाकारी पक्षकारों के प्रतिनिधियों द्वारा हस्ताक्षरित किया जाता है। संधि का पाठ मत संग्रह, हस्ताक्षर या आद्याक्षर द्वारा अधिप्रमाणित तथा विनिश्चायक माना जाता है।

   (ख) लेख–पत्र के आदान–प्रदान द्वारा सम्मति : संधि पर सहमति लेख–पत्रों के आदान–प्रदान द्वारा दी जा सकती है, यदि संधि इस विषय के लिए प्रावधान करती है कि लेख–पत्र के आदान–प्रदान से संधि पर राज्यों की सम्मति स्वीकार योग्य होगी।

   (ग) अनु समर्थन द्वारा सम्मति : जब राज्य के प्रतिनिधि द्वारा हस्ताक्षरित संधि की पुष्टि राज्य द्वारा कर दी जाती है, तब पुष्टि के कृत्य को अनु समर्थन कहा जाता है। वियना अभिसमय का अनुच्छेद 2 (1) (ख) अनु समर्थन को परिभाषित करता है, जिसके अनुसार राज्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किसी संधि से आबद्ध होने की सम्मति देता है।

   (घ) स्वीकृति द्वारा सम्मति : स्वीकृति वह परंपरागत तरीका है, जिसके द्वारा राज्य कुछ दशाओं में उस संधि के पक्षकार हो सकते हैं, जिस पर उन्होंने हस्ताक्षर नहीं किया है। स्वीकृति के अधिकार का निर्धारण संधि के प्रावधानों द्वारा किया जाता है तथा यदि संधि में स्वीकृति से संबंधित कोई प्रावधान नहीं है तो राज्य केवल सभी राज्यों की सम्मति से संधि को स्वीकार कर सकते हैं। जब कोई राज्य स्वीकृति के द्वारा संधि का पक्षकार बनता है, तब अनु समर्थन की आवश्यकता नहीं होती।

5. **संधियों का लागू होना (Enforcement of treaties)** : संधियों का लागू होना उनके प्रावधानों के अनुसार होता है। वियना अभिसमय का अनुच्छेद 24 प्रावधान करता है कि कोई संधि उसी प्रकार से तथा उस तिथि से लागू होती है जैसा की संधि में प्रावधान किया जाए या जैसा वार्ताकारी राज्यों के मध्य संविदा किया जाए। यदि किसी संधि में इस विषय में कोई प्रावधान नहीं किया जाता है तो संधि उस समय से लागू होती है जब सभी वार्ताकारी राज्यों की ओर से संधि से बाध्य होने की सम्मति प्रदान कर दी जाती है।

6. **पंजीकरण तथा प्रकाशन (Registration and publication)** : संधि के लागू होने के उपरांत उसको संयुक्त राष्ट्र महासचिव द्वारा पंजीकृत किया जाना होता है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर का अनुच्छेद 102 (1) प्रावधान करता है कि चार्टर लागू होने के उपरांत संयुक्त राष्ट्र के किसी सदस्य द्वारा की गई प्रत्येक संधि तथा प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय संविदा को यथासंभव शीघ्र सचिवालय में पंजीकृत किया जाएगा तथा सचिवालय द्वारा प्रकाशित किया जाएगा।

टिप्पणी

5.2.2 संधियों के कुछ सामान्य सिद्धांत

संधियों के विषय में सामान्य रूप से प्रयोग किए जाने वाले कुछ सिद्धांत निम्न प्रकार हैं–

संविदा सर्वदा पालनीय

इस सिद्धांत का तात्पर्य है कि राज्य संधियों के अधीन बाध्यताओं को सद्भाव से पूर्ण करने के लिए बाध्य हैं। संधियों से उत्पन्न बाध्यताओं का श्रद्धापूर्वक पालन करना राज्यों के कर्तव्यों में से एक है। अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा तैयार किए गए राज्यों के अधिकार तथा कर्तव्य घोषणा प्रारूप में अभिव्यक्त रूप से अनुच्छेद 13 के अधीन प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक राज्य का कर्तव्य संधियों से उत्पन्न बाध्यताओं का सद्भाव से पालन करना है। यह प्रारंभिक तथा सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत सिद्धांतों में से एक है। संविदा सर्वदा पालनीय सिद्धांत को वियना अभिसमय में भी सम्मिलित किया गया है। अभिसमय की उद्देशिका में स्पष्ट किया गया है कि स्वतंत्र सम्मति तथा सद्भाव के सिद्धांत तथा संविदा सर्वदा पालनीय नियम की सार्वभौम मान्यता है। अनुच्छेद 26 के अंतर्गत अभिसमय अभिव्यक्त रूप से यह प्रावधान करता है।

पक्षकारों की स्वतंत्र सम्मति

संधि केवल उन राज्यों पर बाध्यकारी होती है जो अपनी सम्मति देते हैं। पक्षकारों की पारस्परिक सम्मति आवश्यक है। संधि द्वारा आबद्ध होने के लिए राज्य की सम्मति हस्ताक्षर, संधि होने वाले लेख पत्रों के आदान–प्रदान, अनु समर्थन, स्वीकार करने, अनुमोदन या स्वीकृति द्वारा या किसी अन्य प्रकार से व्यक्त की जा सकती है, यदि उसके लिए सहमति हुई हो। संधियों के सिद्धांत में से एक यह है कि संधि द्वारा आबद्ध किए जाने वाले राज्य की सम्मति स्वतंत्र होनी चाहिए। यदि राज्य अपनी स्वतंत्र सम्मति नहीं देते हैं या अन्य शब्दों में, यदि राज्य की सम्मति कपट द्वारा या राज्य के प्रतिनिधि के भ्रष्टाचार द्वारा या राज्य के प्रतिनिधि के प्रपीड़न द्वारा या धमकी या बल के प्रयोग द्वारा या राज्य के प्रपीड़न द्वारा प्राप्त की गई है, तो संधि शून्य मानी जाएगी। यदि समिति द्वारा राज्य की सम्मति त्रुटिपूर्ण या भूलवश दी गई है तो वह राज्य पर बाध्यकारी नहीं होगी, चाहे सम्मति स्वतंत्र हो।

निर्बंधन

जब राज्य संधि के कुछ भागों को स्वीकार करता है तथा इसके द्वारा संधि के लागू होने में संधि के कुछ प्रावधानों को विधिक प्रभाव से पृथक कर देता है तब यह माना जाता है कि राज्य ने संधि को निर्बंधनों के साथ स्वीकार किया है। निर्बंधन की परिभाषा वियना अभिसमय के अनुच्छेद 2 (1)(घ) में दी गई है। इसके अनुसार निर्बंधन का तात्पर्य ऐसे एक पक्षीय कथन से है, जो राज्य द्वारा किसी संधि पर हस्ताक्षर करने, उसका अनु समर्थन

करने, उसे स्वीकार करने, उसका अनुमोदन करने या उसे स्वीकृति प्रदान करते समय किया गया हो, चाहे उसकी शब्द रचना या उसका नाम जो भी हो। इसके द्वारा राज्य का आशय संधि के कुछ प्रावधानों को उस राज्य पर लागू होने में उसके विधिक प्रभाव को पृथक करना या उपांतरित करना है। इस प्रकार राज्य संधि को कुछ शर्तों के अधीन स्वीकार कर सकता है, यदि निर्बंधन संधि द्वारा प्रतिषिद्ध नहीं है।

टिप्पणी

पैक्टाटर्टीस नेक नोसेंट नेक प्रोसेंट

संधियों का यह सामान्य सिद्धांत है कि केवल संविदाकारी पक्षकारों पर ही लागू होती हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग ने विचार व्यक्त किया है कि ऐसे सामान्य नियमों पर बहुधा सभी राज्यों की सम्मति प्रतीत होती है, जो न केवल संविदा विधि की सामान्य अवधारणा पर आधारित हैं, बल्कि राज्यों की प्रभुत्वसंपन्नता तथा स्वतंत्रता पर भी निर्भर करते हैं। ये नियम वियना अभिसमय के अनुच्छेद 34 के अधीन सम्मिलित किए गए हैं। कुछ मामलों में संधियां तीसरे राज्य के लिए अधिकारों तथा बाध्यताओं का सृजन करती हैं। ऐसे मामले निम्न प्रकार हैं–

1. जहां संधि तीसरे राज्यों के लिए बाध्यताओं का प्रावधान करती है।
2. जहां संधि तीसरे राज्यों के लिए अधिकारों का प्रावधान करती है।
3. जब संधि अंतर्राष्ट्रीय रूढ़ि का सृजन करती है।

अवश्य पालनीय

अंतर्राष्ट्रीय विधि में कई ऐसे सिद्धांत हैं जिनका पालन सभी राज्यों को करना चाहिए। उनका अनुपालन न करना विधिक प्रणाली के मूलभूत आधार को प्रभावित कर सकता है, जिससे वे स्वयं संबंधित हैं। अतः ऐसे सिद्धांतों को संधियों का निर्माण करके परिवर्तित नहीं किया जा सकता। ये सिद्धांत अवश्य पालनीय की प्रकृति को धारण करते हैं। यदि ऐसी संधि की जाती है जिससे इन सिद्धांतों का उल्लंघन होता है तो संधि को अवैध माना जाएगा। इस संबंध में भी वियना अभिसमय का अनुच्छेद 53 प्रावधान करता है जिसके अनुसार वे संधिया शून्य होंगी जो किए जाने के समय सामान्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनिवार्य प्रतिमानों के विरुद्ध हैं। अभिसमय के प्रयोजनों के लिए ऐसे प्रतिमानों को सभी राज्यों के अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा स्वीकार किया जाता है तथा मान्यता दी जाती है। ऐसे प्रतिमानों को केवल उसी प्रकृति की सामान्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के बाद के प्रतिमानों द्वारा बदला जा सकता है। यदि संधि स्वयं अवश्य पालनीय नियम को बदलने के लिए बनाई जाती है तो संधि शून्य नहीं होगी।

संधि का अंशतः पालन

कुछ ऐसे न्यायविद हैं जो यह विचार व्यक्त करते हैं कि केवल संधि के आवश्यक या महत्वपूर्ण या तात्विक शर्त का उल्लंघन अन्य पक्षकार को संपूर्ण संधि को समाप्त करने का अधिकारी बनाता है। अन्य न्यायविद यह विचार व्यक्त करते हैं कि संधि की किसी शर्त का उल्लंघन अन्य पक्षकार को संपूर्ण संधि को समाप्त करने के लिए अधिकारी बना देता है। एक राज्य द्वारा संधि के तात्विक प्रावधान का उल्लंघन दूसरे राज्य को या तो संधि को समाप्त करने या पूर्णतः या अंशतः संधि के प्रारंभ को निलंबित करने का अधिकारी बना देता है। किंतु वियना अभिसमय इस के संबंध में कोई विशेष प्रावधान

नहीं करता, जिसे एक राज्य द्वारा संधि के आवश्यक प्रावधान के उल्लंघन के आधार पर दूसरे राज्य द्वारा संधि को समाप्त करने के लिए लिया जा सकता है। ओपनहाईम के अनुसार उल्लंघन की जानकारी होने के पश्चात उल्लंघन के आधार पर संधि को रद्द करने के अधिकार का प्रयोग उचित समय के अंतर्गत किया जाना चाहिए। यदि ऐसा अधिकार धारण करने वाला राज्य उचित समय में इस अधिकार का प्रयोग नहीं करता, तो यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि ऐसे अधिकार को छोड़ दिया गया है। राज्य द्वारा केवल विरोध व्यक्त करना न तो रद्द करना है, न ही रद्द करने के अधिकार को आरक्षित करना है।

टिप्पणी

रिबस सिक स्टैंटिबस

'रिबस सिक स्टैंटिबस' का अर्थ है कि संधियां जिन परिस्थितियों में निर्मित की गई थीं, यदि उन परिस्थितियों में मूलभूत परिवर्तन हो जाता है, तब उनका समापन किया जा सकता है। यह वह सिद्धांत है, जिसे कई संधियों में अभिव्यक्त रूप से पहले सम्मिलित किया जाता था तथा इसी कारण इसे खंड के रूप में जाना जाता है। किंतु यह सामान्य सिद्धांत हो गया तथा प्रत्येक संधि में यह शर्त निहित रहती है कि यदि परिस्थितियों में मूलभूत परिवर्तन के कारण, पक्षकार द्वारा संधि की बाध्यताओं का पालन नहीं किया जा सकता, तो वह संधि के समापन के लिए इसका आधार ले सकता है। रिबस सिक स्टैंटिबस सिद्धांत के संबंध में यह माना जा सकता है कि इसका आधार न्यायिक है, यदि इसका परीक्षण कई राज्यों की राष्ट्रीय विधियों में संविदा की विफलता के सिद्धांत के समान किया जाए। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 56 के अधीन विफलता के सिद्धांत को मान्यता प्रदान की गई है, जो पक्षकार को संविदा को समाप्त करने का अधिकार प्रदान करते हैं, यदि उन परिस्थितियों में अत्यधिक परिवर्तन हो गया है , जिनमें संविदा की गई थी। वियना अभिसमय के अनुच्छेद 62 के अंतर्गत इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है।

संधियों की अविधिमान्यता

पक्षकारों द्वारा की गई संधियों को निम्न आधारों पर अविधिमान्य ने किया जा सकता है–

1. **प्रतिनिधियों के समुचित प्राधिकार का अभाव (Lack of proper authority of representatives)**– यदि प्रतिनिधि को विशेष प्रतिबंध के अधीन प्राधिकार किया गया है, तो उस प्रतिबंध का पालन न करना संधि को अविधिमान्य बना सकता है, यदि प्रतिबंध की सूचना अन्य वार्ताकार राज्यों को दे दी गई हो।
2. **त्रुटि (Error)** : वियना अभिसमय के अनुच्छेद 48 के अनुसार संधि को अविधिमान्य किया जा सकता है, यदि संधि में त्रुटि हो। राज्य संधि को अविधिमान्य करने के लिए संधि की त्रुटि का आश्रय ले सकता है, यदि त्रुटि उस तथ्य या स्थिति से संबंधित है, जिसे राज्य द्वारा उस समय अस्तित्व में होना माना जाता है, जब संधि की गई थी तथा ऐसा तथ्य या स्थिति संधि द्वारा आबद्ध होने की उसकी सम्मति का आवश्यक आधार था।
3. **कपट (Fraud)** : वियना अभिसमय के अनुच्छेद 49 के अनुसार यदि किसी राज्य को किसी अन्य राज्य के कपट पूर्ण आचरण द्वारा संधि करने के लिए उत्प्रेरित किया जाता है तो संधि अविधिमान्य हो जाती है।

टिप्पणी

4. **प्रतिनिधि का भ्रष्टाचार (Corruption of representative)** : वियना अभिसमय का अनुच्छेद 50 प्रावधान करता है कि संधि और विधि मान्य हो जाती हैं, यदि राज्य की सम्मति किसी राज्य द्वारा उसके प्रतिनिधि को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नष्ट करके प्राप्त की गई है। भ्रष्टाचार में ऐसे तथ्य निहित रहते हैं, जो प्रतिनिधि पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

5. **प्रतिनिधि का प्रपीड़न (Coercion of a Representative)** : यदि किसी राज्य के प्रतिनिधि को ऐसा कोई कार्य करके या भय दिखा कर उसकी सम्मति प्राप्त करने के लिए प्रपीड़ित किया जाता है, तो वियना अभिसमय के अनुच्छेद 51 के अनुसार संधि अविधिमान्य होगी।

6. **राज्य का प्रपीड़न (Coercion of State)** : अभिसमय का अनुच्छेद 52 प्रावधान करता है कि वह संधि अविधिमान्य होगी, जो संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में समाविष्ट अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों का उल्लंघन करके बल प्रयोग का भय दिखाकर या बल प्रयोग द्वारा प्राप्त की गई है। इस प्रावधान से स्पष्ट होता है कि आर्थिक तथा राजनीतिक प्रपीड़न संधि को अविधिमान्य नहीं करेगा। संभवतः ऐसा इस कारण है कि राजनीतिक तथा आर्थिक दबाव का प्रवर्तन राज्यों के मध्य संबंधों की सामान्य कार्यवाही है।

7. **अवश्य पालनीय (Jus Cogens)** : वियना अभिसमय का अनुच्छेद 53 प्रावधान करता है कि यदि संधि अंतर्राष्ट्रीय विधि के सामान्य सिद्धांतों के विरुद्ध है तो वह अविधिमान्य होगी।

उक्त आधारों में से किसी भी आधार पर संधि को अविधिमान्य माना जाएगा, किंतु अधिकतर मामलों में संधि केवल शून्यकरणीय होती है। ऐसे मामलों में पक्षकार को संधि की विधि मान्यता को चुनौती देने का अधिकार है किंतु ऐसा करना उसके लिए आवश्यक नहीं है।

संधियों की समाप्ति (Termination of Treaties)

जब संधि का समापन हो जाता है, तो इसे संधि की समाप्ति माना जाता है किंतु समाप्ति शब्द के कई अर्थ होते हैं। समाप्ति का अर्थ सभी मामलों में संधि की समाप्ति से नहीं होता। यद्यपि द्विपक्षीय संधियों के मामले में, संधि उस समय समाप्त हो जाती है, जब एक पक्षकार संधि से अलग हो जाता है किंतु बहुपक्षीय संधि के मामले में स्थिति भिन्न होती है। बहुपक्षीय संधि में, एक पक्षकार के अलग हो जाने पर सभी पक्षकारों के मध्य संधि समाप्त नहीं हो जाती। संधि उसी प्रकार बनी रहती है, जैसे पहले अस्तित्व में थी, सिवा इसके कि संधि का उस राज्य में बाध्यकारी प्रभाव नहीं रह जाता, जो संधि से अलग हो गया है। वियना अभिसमय के भाग 4 के अनुभाग 3 में संधि समाप्त होने के कई प्रकारों का उल्लेख किया गया है जो कि इस प्रकार हैं–

1. **पक्षकारों की सम्मति द्वारा (By consent of parties)** : कोई संधि अन्य संविदा कार्य राज्यों से परामर्श के उपरांत सभी पक्षकारों की सहमति से किसी भी समय समाप्त हो सकती है। यह प्रावधान वियना अभिसमय के अनुच्छेद 54 (ख) के अधीन किया गया है।

टिप्पणी

2. **प्रत्याख्यान द्वारा (By denunciation)** : कई संधियाँ निश्चित अवधि के लिए या विशिष्ट तिथि या घटना तक के लिए की जाती हैं। ऐसे मामलों में संधि में विहित अवधि के समापन पर या तिथि के व्यतीत होने पर या घटना के घटित होने पर संधि स्वतः समाप्त हो जाती है। किंतु उन संधियों के विषय में जिन में ऐसा प्रावधान नहीं किया जाता, कोई पक्षकार प्रत्याख्यान द्वारा संधि को समाप्त कर सकता है।

3. **दूसरी संधि द्वारा (By concluding another Treaty)** : वियना अभिसमय के अनुच्छेद 59 के अनुसार कोई संधि समाप्त समझी जाएगी, यदि उस संधि के सभी पक्षकार उसी विषय–वस्तु के संबंध में बाद में कोई अन्य संधि कर लेते हैं। पहले वाली संधि समाप्त समझी जाएगी, यदि बाद में की गई संधि से यह प्रतीत होता है कि पक्षकारों का आशय यह है कि वह विषय नई संधि से शासित हो।

4. **तात्विक भंग द्वारा (By material breach)** : जहां तात्विक उल्लंघन संधि के आवश्यक प्रावधान का उल्लंघन है और उल्लंघन एक पक्षकार द्वारा किया जाता है, वहां यह दूसरे पक्षकार को संधि को समाप्त करने का अधिकार प्रदान करता है। वियना अभिसमय का अनुच्छेद 61 भी इस संबंध में प्रार्थना करता है, कि किसी द्विपक्षीय संधि का किसी एक पक्ष द्वारा किया गया त्रिभंग दूसरे पक्ष को संधि समाप्त करने के लिए आधार के रूप में उसे भंग करने का अवलंब लेने का अधिकारी बना देता है। तात्विक भंग की परिभाषा अभिसमय के अनुच्छेद 60 के परिच्छेद 3 के अधीन दी गई है।

5. **पालन की असंभवता (Impossibility of Performance)** : संधि को बनाने के पश्चात संधि के बाहर होने वाली घटनाओं या होने वाले विकास के कारण संधि को समाप्त किया जा सकता है, यदि घटना या विकास संधि के पालन को असंभव बना देता है। किसी पक्षकार का लुप्त होना संधि को स्वतः विघटन के लिए आधार है, यदि पक्षकार का उत्तराधिकारी नहीं होता।

6. **संधि के प्रावधानों के अनुसार (According to provisions of Treaty)** : कोई संधि अपने प्रावधानों के अनुसार समाप्त हो सकती है। उदाहरणार्थ, यदि कोई संधि नियत अवधि के लिए की गई है, तो यह उस अवधि के समापन के उपरांत समाप्त हो जाती है या यदि कोई संधि विशिष्ट उद्देश्य के लिए की गई है, तो वह उस उद्देश्य के पूर्ण होने के उपरांत समाप्त हो जाती है। वियना अभिसमय का अनुच्छेद 54 (क) संधि के समापन के लिए प्रावधान करता है।

7. **अवश्य पालनीय विधान के आविर्भाव द्वारा (By emergence of Jus Cogens)** : यदि सामान्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के किसी नए अनिवार्य प्रतिमान का आविर्भाव हुआ है तथा विद्यमान संधि उस प्रतिमान के विरुद्ध है, तब संधि समाप्त हो जाएगी। अवश्य पालनीय विधान के प्रारंभ पर संधि के समापन के संबंध में प्रावधान वियना अभिसमय के अनुच्छेद 64 के अधीन किया गया है।

8. **परिस्थितियों में मौलिक परिवर्तन द्वारा (By fundamental change of circumstances)** : वियना अभिसमय का अनुच्छेद 62 प्रावधान करता है कि परिस्थितियों में मौलिक परिवर्तन होने के कारण संधि समाप्त हो जाती है।

उक्त आधारों में से कई रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि के दीर्घकाल से स्थापित नियमों पर आधारित हैं। किंतु इनमें से कुछ को अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियम को स्पष्ट करने के लिए अत्यंत सावधानी से निर्मित किया गया है।

5.2.3 अन्य अंतर्राष्ट्रीय आचरण

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय आचरण के अंतर्गत वे अंतर्राष्ट्रीय संगठन आते हैं, जिनका अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान है। ये लगभग सार्वभौमिक प्रकृति के होते हैं, किंतु ये संगठन राज्यों का स्थान नहीं लेते तथा राज्यों को आदेश भी पारित नहीं करते। अतः इनको अंतर्राष्ट्रीय सरकार की प्रकृति का नहीं माना जा सकता। ये संगठन कुछ विशेष उद्देश्य के लिए राज्य द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संधियों या संविदा के आधार पर स्थापित किए जाते हैं। इनके अपने अंग होते हैं तथा इनके अधिकार तथा उत्तरदायित्व इनके सदस्यों के अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों से भिन्न होते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के मुख्य तत्व (Main elements of International Organisations)

1. अंतर्राष्ट्रीय संगठन राज्यों के संगठन होते हैं अतः इनको अंतर सरकारी संगठन भी कहा जाता है, जिन के सदस्य राज्यों के शासकीय सरकारी प्रतिनिधिमंडल होते हैं। अंतर सरकारी संगठनों के अतिरिक्त कुछ गैर सरकारी संगठन भी इस संवर्ग में आते हैं। इनमें धार्मिक, वैज्ञानिक कोमा सांस्कृतिक कोमा लोक उपकारी कोमा तकनीकी या आर्थिक समूह सम्मिलित होते हैं। गैर सरकारी संगठनों के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य संघ, अंतर संसदीय संघ, श्रमिक संघों का संघ, अंतर्राष्ट्रीय महिला लोकतांत्रिक संघ तथा अंतर्राष्ट्रीय रेड क्रॉस आते हैं।
2. अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना राज्य द्वारा संधि के माध्यम से की जाती है, जो अंतर्राष्ट्रीय संगठन का संघ घटक लिखित होता है? शत–शत संघर्ष में राज्य द्वारा परमाणु शस्त्रों के प्रयोग की वैधता में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने सरकारी राय में स्पष्ट रूप से विकसित किया है कि अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के संगठन लिखित भी एक विशेष प्रकार की संधि है। इसके अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र व्यापार तथा विकास सम्मेलन व संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम आते हैं, जिनको संयुक्त राष्ट्र की संरचना के अधीन महासभा के संकल्पों द्वारा स्थापित किया गया है।
3. अंतर्राष्ट्रीय संगठन विशेष उद्देश्यों के लिए स्थापित किए जाते हैं जो संघ घटक अभिलेखों में वर्णित किए जाते हैं। सशस्त्र संघर्ष में राज्य द्वारा परमाणु शस्त्रों के प्रयोग की वैधता से संबंधित मामले में भी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने अपनी सहकारी राय में निर्दिष्ट किया है कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हैं, इसके उपरांत भी वे राज्यों की तरह सामान्य क्षमता धारण नहीं करते।
4. अंतर्राष्ट्रीय संगठन अंतर्राष्ट्रीय अधिकारों तथा कर्तव्यों को धारण करने में समर्थ होने के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व धारण करते हैं। कभी–कभी वे अपने व्यक्तित्व की घोषणा अपने संविधान में करते हैं तथा कम से कम स्वायत्त कार्यवाही के लिए विधितः अपने सामर्थ्य की घोषणा निश्चयपूर्वक करते हैं।
5. अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की स्थापना अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार की जाती है। इसका तात्पर्य है कि सामान्यतः इनके क्रियाकलाप अंतर्राष्ट्रीय विधि के सामान्यतः मान्य सिद्धांतों तथा नियमों के अंतर्गत सीमित होते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का वर्गीकरण (Classification of International Organisations)

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है। ये तदर्थ, अस्थाई या स्थाई संगठन हो सकते हैं। इनको कार्यों या प्रयोजनों के आधार पर भी विभाजित किया जा सकता है जैसे कि न्यायिक, समझौताकारी, सरकारी, प्रशासनिक, समन्वयकारी या विधायी संगठन। इनका विभाजन इन के उद्देश्यों की प्रकृति के आधार पर भी किया जा सकता है अर्थात एक उद्देश्य या बहुउद्देशीय संगठन। भौगोलिक क्षेत्र, अर्थात सार्वभौमिक (वैश्विक) या क्षेत्रीय संगठन के आधार पर भी विभाजन किया जा सकता है। मुख्यतः अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **सामान्य सदस्यता तथा सामान्य उद्देश्य के संगठन** : ऐसे संगठनों का क्षेत्र सार्वभौमिक होता है तथा इनमें सभी राज्य सदस्य हो सकते हैं। ये विभिन्न कार्यों को करते हैं, जैसे– शांति तथा सुरक्षा स्थापित करना, सामाजिक आर्थिक सहयोग स्थापित करना, मानव अधिकारों का संरक्षण करना, सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा वैज्ञानिक क्रियाकलापों का विकास तथा आदान–प्रदान करना।
2. **सामान्य सदस्यता तथा सीमित उद्देश्य का संगठन** : ऐसे संगठनों को भी क्रियात्मक संगठन ही कहा जाता है क्योंकि वे विशेष कार्य के लिए बनाए जाते हैं; किंतु इनमें अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के सभी सदस्य बन सकते हैं। ऐसे संगठनों के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास बैंक, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन आते हैं।
3. **सीमित सदस्यता तथा सामान्य उद्देश्यों के संगठन** : ऐसे संगठनों की सदस्यता केवल विशिष्ट राज्य ही ग्रहण कर सकते हैं। अतः इन्हें क्षेत्रीय संगठन भी कहा जा सकता है। इन का गठन व्यापक सुरक्षा, राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक कारणों तथा उत्तरदायित्व के लिए किया जाता है। ऐसे संगठनों के अंतर्गत अमेरिकी राज्यों का संगठन, अफ्रीकी एकता संगठन तथा अरब लीग आते हैं।
4. **सीमित सदस्यता तथा सीमित उद्देश्य का संगठन** : इसके अंतर्गत वे संगठन आते हैं जिनकी सदस्यता विशिष्ट क्षेत्र के राज्य ही ग्रहण कर सकते हैं तथा जो विनिर्दिष्ट या सीमित उद्देश्य हेतु गठित किए जाते हैं। ऐसे संगठनों के अंतर्गत उत्तर अटलांटिक संधि संगठन तथा वारसा संधि संगठन आते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से संबंधित विधि (Law related to International Organisations)

अंतर्राष्ट्रीय विधि की इस शाखा का विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ। इस विधि में अंतर्राष्ट्रीय संगठन के सदस्य राज्यों तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ संबंध को विनियमित करने वाले नियम सम्मिलित रहते हैं, जबकि आंतरिक विधि, आंतरिक विधिक संबंधों जैसे प्रक्रिया का नियम, वित्तीय नियम तथा कर्मचारियों के भी नियमों को सम्मिलित करता है। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की विधि के स्रोत हैं– (1) संगठनों द्वारा की गई संधियां तथा संविदा, (2) अन्य संधियां, (3) अंतर्राष्ट्रीय संधि, (4) प्रक्रिया के नियम, वित्तीय विनियम तथा कर्मचारियों की नियमावली, तथा (5) अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के कुछ संकल्प। संयुक्त राष्ट्र का चार्टर अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का प्रमुख स्रोत है, जो न केवल

संयुक्त राष्ट्र से संबंधित बल्कि अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से भी संबंधित सामान्य सिद्धांतों तथा प्रति मानव को प्रतिपादित करता है। प्रतिमाओं को स्थापित करने वाले स्रोतों में कई अंतर्राष्ट्रीय संविदा सम्मिलित हैं, जिनमें सार्वभौमिक प्रकृति के अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ राज्यों के संबंध में उनका प्रतिनिधित्व वियना अभिसमय भी सम्मिलित है।

टिप्पणी

संगठनों का विधिक व्यक्तित्व (Legal personality of International Organisations)

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के अनुसार संगठन अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति होते हैं तथा अंतर्राष्ट्रीय अधिकारों व कर्तव्य को धारण करने में समर्थ होते हैं तथा इनमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दावा करके अपने अधिकारों को बनाए रखने की क्षमता होती है। इसके अतिरिक्त, किसी राष्ट्र द्वारा सशस्त्र टकराव में परमाणु हथियारों के उपयोग की वैधानिकता पर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा मांगे गए परामर्श हेतु अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने कहा कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय होते हैं जिसके द्वारा राज्यों के विपरीत एक सामान्य क्षमता होती है। अंतर्राष्ट्रीय संगठन विशेषज्ञता के सिद्धांतों द्वारा शासित होते हैं। उन राज्यों द्वारा शक्ति प्रदान होते हैं जिन्होंने उसे शक्ति संयुक्त संगठित किया है जिसकी सीमाएं साझा हितों तक कार्य करने की होती हैं जिनके लिए संबंधित राज्यों के द्वारा उन्हें दायित्व सौंपा गया है।

अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की विधि क्षमता उन्हें स्थापित करने वाली संधियों से तथा सामान्य अंतर्राष्ट्रीय विधि से प्राप्त होती है। संधियों के लिए सामान्य रूप से संगठनों के संविधान में प्रावधान किया जाता है। सामान्यतः नियम अनुसार एक अभिसमय अर्थात संधि विधि अभिसमय का निर्माण किया गया है जिसके अंतर्राष्ट्रीय संगठन पक्षकार होते हैं। यह वांछनीय है कि सदस्यों के राष्ट्रीय विधायकों में, संगठनों के अस्तित्व के लिए प्रावधान किया जाए, जिससे राष्ट्रीय प्रयोजनों के लिए इस क्षमता की प्रभावी विधिक मान्यता को सुनिश्चित किया जा सके।

अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के विधिक कार्य (Legal Functions of International Organisations)

अंतर्राष्ट्रीय संगठन अंतर्राष्ट्रीय विधि के क्षेत्र में कई विधि कार्यों को करने के लिए समर्थ हैं। इन कार्य में से कुछ इस प्रकार हैं–

1. **संधि करने की शक्ति (Power to make treaty)** : अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का संधि करने का अधिकार विभिन्न संगठनों के संविधान पर आधारित रहता है। यद्यपि ऐसे अधिकार संगठनों के संविधानों में अभिव्यक्त रूप से नहीं दिए जाते, फिर भी उनके संविधान के प्रावधानों के अर्थ द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि विधिक रूप से यह शक्ति उनमें निहित है। संयुक्त राष्ट्र ने राज्यों तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों दोनों के साथ कई संधियों को किया है। संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य संगठनों ने राज्यों के साथ मुख्यालय अनुबंध तथा अन्य संगठनों के साथ सहयोग का अनुबंध किया है, यद्यपि संविधायी अभिलेखों में इस प्रकार के अनुबंधों के लिए कोई अभिव्यक्त प्राधिकार सम्मिलित नहीं किया गया है। यह अनुबंध अंतर्राष्ट्रीय संधि माने जाते हैं।

टिप्पणी

2. **अंतर्राष्ट्रीय दावा करने की क्षमता (Capacity to make International Claims)** : दावा करने की क्षमता विशिष्ट संगठनों की विधि व्यक्तित्व की क्षमता तथा उनके उद्देश्य तथा कार्यों के परिपेक्ष्य मैं संविधान अभिलेखों के अर्थ पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने सर्वसम्मति से यह निर्णय दिया था कि संयुक्त राष्ट्र विधिक व्यक्ति है तथा इसमें संगठन की प्रत्यक्ष क्षति के लिए सदस्यों तथा सदस्य राज्यों के विरुद्ध दावा करने की क्षमता है।

3. **क्रियात्मक संरक्षण (Functional Protection)** : कुछ अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में प्रत्येक संविदाकारी पक्षकार के राज्य क्षेत्र में कार्यों को करने की विधिक क्षमता होती है। अंतर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संगठन को प्रत्येक संविदा कार्य पक्षकार के राज्य क्षेत्र में ऐसी विधिक क्षमता प्रदान है जो उसके कार्यों को करने के लिए आवश्यक हो अर्थात स्वयं संगठन के हितों के प्रशासनिक तंत्र इसकी संपत्ति तथा परिसंपत्ति तथा उसके हितों, जिसका यह संरक्षक है, को क्रियात्मक संरक्षण प्राप्त है। जहां तक संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अधीन संरक्षण का संबंध है, चार्टर अभिव्यक्त रूप से इसके लिए प्रावधान नहीं करता।

4. **अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का उत्तरदायित्व (Liabilities of International Organisations)** : वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय विधिक सिद्धांत तथा अंतर्राष्ट्रीय विधिक प्रथा इस बात को मान्यता प्रदान करते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन अपने अंगों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय विधि के उल्लंघन की दशा में अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व के विषय हैं। बाह्य अंतरिक्ष के संग समन्वय तथा प्रयोग से संबंधित सिद्धांतों में यह प्रतिपादित किया गया है कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन तथा उसके सदस्य राज्य बाह्य अंतरिक्ष में उस अंतर्राष्ट्रीय संगठन द्वारा किए गए कार्यों द्वारा कार्य क्षति के लिए जिम्मेदार हैं।

5. **विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां (Privileges and Immunities)** : अंतर्राष्ट्रीय संगठन अपने कार्य को प्रभावी रूप से करने हेतु अपनी परिसंपत्तियों, मुख्यालयों तथा अन्य संस्थाओं की तथा अपनी व्यक्तिगत व संगठन में प्रत्येक सदस्य राज्यों के प्रतिनिधियों की सुरक्षा के लिए कुछ न्यूनतम स्वतंत्रता की अपेक्षा करते हैं। अतः उनके प्रतिनिधियों को विशेष अधिकार तथा उन्मुक्तियां प्राप्त होती हैं। कुछ संगठन अभिव्यक्त रूप से विशेष अधिकार तथा उन्मुक्तियों के लिए प्रावधान करते हैं जिन्हें उनके प्रतिनिधियों को प्रदान किया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. अंतर्राष्ट्रीय आयोग द्वारा संहिताकरण के लिए चुने गए विषयों में संधि विधि को कब सम्मिलित किया गया था?

   (क) 19949 में (ख) 1950 में

   (ग) 1969 में (घ) 1960 में

2. संधियों को कितने वर्गों में बांटा जा सकता है?

   (क) पांच (ख) तीन

   (ग) दो (घ) चार

5.3 1949 के जिनेवा सम्मेलन

टिप्पणी

द्वितीय विश्व युद्ध में क्योंकि युद्धरत राज्यों ने पहले के अभिसमय में अंतर वेस्ट सिद्धांतों का दुरुपयोग किया था, इसलिए 23 से 30 अगस्त, 1948 को आयोजित अंतर्राष्ट्रीय रेडक्रॉस सम्मेलन स्टॉकहोम में यह भी तय किया गया कि विद्यमान प्रावधानों का विस्तार एवं संहिताकरण कर दिया जाए। सम्मेलन में चार अभिसमय बनाए गए जिनकी स्वीकृति जिनेवा में अगस्त 1949 को हुई थी ये अभिसमय थे––

1. युद्ध क्षेत्र में सशस्त्र बलों के घायल एवं बीमारों की दशा के सुधार हेतु अभिसमय
2. समुद्र में सशस्त्र बलों के घायल, बीमार एवं क्षतिग्रस्त जलयान के सदस्यों की दशा के सुधार हेतु अभिसमय
3. युद्ध बंदियों के साथ व्यवहार से संबंधित अभिसमय
4. युद्ध के समय सामान्य नागरिकों के संरक्षण से संबंधित अभिसमय

उक्त सभी अभिसमय अक्टूबर 1950 को लागू हुए थे। इनके द्वारा व्यक्तियों के विभिन्न वर्गों के लिए बहुत से मान गए नियमों का प्रावधान किया गया था। उदाहरण के लिए युद्ध के मैदान के साथ–साथ समुद्र में सशस्त्र सेनाओं के घायल व बीमार व्यक्तियों के लिए तथा युद्ध के समय युद्ध बंदियों एवं सामान्य नागरिकों के लिए किए गए प्रावधान। अभिसमय उनका संरक्षण करने वाली शक्तियों अंतर्राष्ट्रीय रेडक्रॉस कमेटी तथा अन्य मानवतावादी संगठनों के ऊपर आरोपित किए। उक्त अभिसमय केवल अंतर्राष्ट्रीय सशस्त्र संघर्षों में लागू होता है जिस की परिभाषा सभी चार अभिसमय के अनुच्छेद 2 में दी गई है। क्योंकि घोषित युद्ध के सभी मामले या किसी अन्य सशस्त्र संघर्ष जो दो या दो से अधिक उचित संविदा कार्य पक्षकारों के मध्य उत्पन्न हुआ हो चाहे उसको किसी के द्वारा युद्ध की स्थिति की मान्यता न दी गई हो। ये अभिसमय उन सशस्त्र संघर्षों मैं भी लागू होते हैं जहां लोग ऑफ निवेशक सत्ता एवं विदेशी अधिक हो के विरुद्ध आत्मसमर्पण के अधिकार के प्रयोग के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यह विधि तथा जिनेवा विधि जो 100 शस्त्र संघर्ष में प्रयोज्य है, इतनी घनिष्ठता से अंतर संबंधित है कि दोनों ने धीरे–धीरे एक पूर्ण पद्धति का निर्माण किया है जो आज अंतर्राष्ट्रीय मानवीय विधि के रूप में मान्य है।

अंतर्राष्ट्रीय मानवीय विधि के मुख्य उद्देश्य हैं– प्रथम, सशक्त संघर्ष में सामान्य नागरिकों या घायल योद्धा तथा युद्ध बंदियों को संरक्षण प्रदान करना तथा द्वितीय, ऐसे शस्त्रों के प्रयोग को निषेध करना जो मानव को अनावश्यक रूप से पीड़ा पहुंचाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय मानवीय विधि के नियम सशस्त्र संघर्षों में सामान्य नागरिकों, घायल योद्धा तथा युद्ध बंदियों को संरक्षण प्रदान करने में बहुत ही उपयोगी साबित हुए हैं।

जिनेवा अभिसमय 1949 पर प्रथम तथा द्वितीय अतिरिक्त नयाचार

समय के साथ यह प्रतीत हुआ कि जिनेवा अभिसमय 1949 का क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत नहीं है कि इसके अंतर्गत सभी सशस्त्र संघर्ष आ जाते हों। संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार सम्मेलन 1968 जो तेहरान में आयोजित हुआ था में यह कहा गया था कि आक्रमण से अद्‌भुत मानव अधिकारों की व्यापक अस्वीकृति या दुखद परिणाम या अन्य सशस्त्र संघर्ष के परिणाम मानव को बहुत ही अधिक दुख पहुंचाते हैं। इस बात पर जोर

दिया गया था कि अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की यह बाध्यता है कि वह इस प्रकार की परेशानियों को समाप्त करने में सहयोग करे। प्रस्ताव जिसका शीर्षक सशस्त्र संघर्षों में मानव अधिकार था ने यह स्पष्ट किया कि अंतरिक्ष सशस्त्र संघर्षों के समय भी मानवीय सिद्धांत लागू होते हैं और इसलिए सामान्य नागरिकों, युद्ध बंधुओं एवं सभी प्रकार के सशस्त्र संघर्षों के सभी युद्धों एवं युद्ध बंदियों के बेहतर संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए उपायों की अपेक्षा की गई।

टिप्पणी

महासभा में सभी सशस्त्र संघर्षों में मूलभूत मानवीय विधि सिद्धांतों के प्रयोग की आवश्यकता को मान्यता दी गई तथा महासचिव को विद्यमान मानवीय अंतर्राष्ट्रीय अभिसमयों के बेहतर प्रयोग को सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाने, अतिरिक्त अभिसमय की आवश्यकता अथवा सामान्य नागरिकों तथा सभी सशस्त्र संघर्षों के योद्धाओं का बेहतर संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए अन्य विधिक कार्य के अध्ययन के लिए कहा गया। महासचिव ने सशस्त्र संघर्षों में मानव अधिकार पर 1969 में रिपोर्ट प्रस्तुत की। द्वितीय रिपोर्ट में सशस्त्र संघर्ष की विधि का आधुनिकीकरण करने की अपेक्षा की गई थी।

अंतर्राष्ट्रीय रेडक्रॉस समिति मानवी विधियों की आधुनिक हकीकत करने के लिए सक्रिय हुई। अंतर्राष्ट्रीय मानवी विधि के पुनरपुष्टिकरण एवं विकास पर एक कूटनीतिक सम्मेलन 1974 में जिनेवा में आयोजित किया गया। वार्षिक सत्र 1977 तक आयोजित किए गए तथा इसने जून 1977 को अंतर्राष्ट्रीय रेडक्रॉस समिति के तत्वधान के अधीन जिनेवा सम्मेलन 1949 के दो अतिरिक्त नयाचार अंगीकार किए। प्रथम नयाचार का संबंध अंतर्राष्ट्रीय सशस्त्र संघर्षों के शिकार हुए लोगों के संरक्षण से था जिसमें संघर्षरत क्षेत्रों में व्यावसायिक मिशन में लगे हुए पत्रकारों के संरक्षण हेतु विनिर्दिष्ट प्रावधान भी सम्मिलित थे। द्वितीय नयाचार का संबंध ऐसे सशस्त्र संघर्ष के शिकार व्यक्तियों के संरक्षण से था जो किसी राज्य की सीमा के अंतर्गत संविदाकारी पक्षकारों के सशस्त्र समूहों तथा अन्य समूहों के मध्य हुआ हो। दोनों ही नयाचार दंगे, हिंसा आदि के कृत्यों और इसी प्रकार की प्रकृति के अन्य कार्यों जो सशस्त्र संघर्ष हो द्वारा आंतरिक अशांति के मामलों में लागू नहीं होता– इन दो नयाचारों में अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार प्रसंविदा 1966, मानव अधिकार की सार्वभौमिक घोषणा 1949 तथा यूरोपीय मानव अधिकार अभिसमय 1950 के कई प्रावधान सम्मिलित किए गए थे। ये दोनों नयाचार 12 दिसंबर, 1979 को बर्न में हस्ताक्षर के लिए रखे गए थे। प्रथम नयाचार दिसंबर 1979 को लागू हुआ।

जिनेवा अभिसमय, (1949) पर तीसरा अतिरिक्त नयाचार (2005)

जिनेवा अभिसमय पर तीसरा अतिरिक्त प्रोटोकॉल 8 दिसंबर, 2005 को सदस्य राज्यों के राजनयिक सम्मेलन में अंगीकृत किया गया जिसके द्वारा राष्ट्रीय राहत के लिए रेडक्रॉस एवं रेडक्रीसेंट के अतिरिक्त रेडक्रिस्टल को अतिरिक्त प्रतीक चिन्ह के रूप में मान्यता प्रदान की गई। विशेष प्रतीक चिन्ह का उपयोग समान रूप से होगा। तृतीय नयाचार प्रतीक चिन्ह का व्यापक स्तर पर राजनीतिकरण हो गया क्योंकि कुछ राज्यों ने नए प्रतीक चिन्ह की रचना का विरोध किया। यद्यपि अनेक पक्षकारों ने सर्वसम्मति से इसे स्वीकार किए जाने की आशा व्यक्त की थी किंतु कुछ इस्लामिक राज्यों ने इसे स्वीकार किए जाने के विरुद्ध मतदान किया एवं कुछ राज्यों ने मतदान से अपने को

टिप्पणी

अलग रखा। महासभा की 2006 में हुई छठी समिति में जिनेवा अभिसमय पर तीसरे अतिरिक्त नयाचार की स्थिति पर एक्शन अंगीकार किया जिसमें यह कहा गया कि क्रिस्टल कम क्रश एवं प्रेस एंड शब्दों का समान अर्थ है इसका उद्देश्य युद्ध को यह बताना है कि जिनेवा अभिसमय, 1949 के अन्तर्गत सामान्य नागरिक इमारतें एवं वाहन जिनमें ये चिन्ह लगे होंगे उन्हें सुरक्षित रखा जाएगा तथा उन्हें नष्ट नहीं किया जाएगा।

चारों जिनेवा अभिसमय (1949) और इसके तीन नयाचार वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय मानवीय विधि के मुख्य स्रोत एवं आधार का सृजन करते हैं। इनमें श्रेणियों के व्यक्तियों के संरक्षण हेतु बहुत से ऐसे प्रावधान अंतर लिस्ट हैं जो सशस्त्र संघर्ष के पक्षकारों के लिए मानवता के हित में परीक्षण करने के लिए अपेक्षित हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

3. संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार सम्मेलन 1968 कहां आयोजित हुआ था?

   (क) लंदन (ख) मास्को

   (ग) तेहरान (घ) दिल्ली

4. जिनेवा अभिसमय पर तीसरा अतिरिक्त प्रोटोकाल सदस्य राज्यों के राजनयिक सम्मेलन में कब अंगीकृत किया गया?

   (क) 1 दिसंबर, 2005 को (ख) 31 दिसंबर, 2005 को

   (ग) 8 दिसंबर, 2005 को (घ) 1 जनवरी, 2006 को

5.4 अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान

विवाद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के साथ अटूट रूप से जुड़े हुए हैं। संख्या वृद्धि करते हुए, विवाद अब केवल मुख्यतः राज्यों के बीच ही नहीं बल्कि राज्यों और अन्य पार्टियों जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और अन्य गैर–राज्य प्रतिभागियों के बीच भी हैं और इन प्रतिभागियों के बीच पारस्परिक रूप से भी हैं। इस संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र का चार्टर (यूएन) एक प्रमुख भूमिका निभाता है, विशेषरूप से, राज्यों के बीच विवादों के बारे में। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2 (3) में कहा गया है कि सभी सदस्य राज्यों को अपने अंतर्राष्ट्रीय विवादों को शांति से इस तरह से निबटाना होगा कि अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा और न्याय, खतरे में न पड़ें। संयुक्त राष्ट्र महासभा के एक संकल्प में 1982 में इस दृष्टिकोण की फिर से पुष्टि की गई, जो कि अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण निबटान पर तथाकथित मनीला घोषणा है।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर इस तरीके से या अन्य तरीकों से विवादों को हल करने की आवश्यकता नहीं है, पक्ष अपने विवाद निबटान तंत्र को चुनने के लिए स्वतंत्र हैं। अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के ढांचे में संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 33 में विवादों, जैसे– बातचीत, पूछताछ, मध्यस्थता, सुलह और न्यायिक निबटान को हल करने के लिए चुनने के लिए कई विकल्प प्रदान करता है। मुक्त विकल्प के बावजूद मनीला घोषणा पार्टियों के विधिक दायित्व को उनके विवाद के शांतिपूर्ण समाधान खोजने और कार्रवाई से बचने स्थिति को बढ़ा सकती है।

राज्यों के लिए विवाद निबटान के तरीके और प्रक्रियाएं भी काफी हद तक गैर–राज्य अभिनेताओं पर लागू होती हैं। प्रशांत विवाद निबटान के ये विभिन्न रूप इस सामान्य शोध मार्गदर्शिका के विषय हैं। इसके अलावा, इंटरनेशनल (कमर्शियल) आर्बिट्रेशन, परमानेंट कोर्ट ऑफ आर्बिट्रेशन और इंटरनेशनल कोर्ट ऑफ जस्टिस पर रिसर्च गाइड उपलब्ध हैं। विदेशी निवेश और निवेश मध्यस्थता से संबंधित विवादों पर जानकारी और संसाधन विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर शोध गाइड में पाए जा सकते हैं।

टिप्पणी

अंतर्राष्ट्रीय विवादों की अवधारणा

अब तक, कोई संधि नियम नहीं है जो यह परिभाषित करे कि अंतर्राष्ट्रीय विवाद क्या है। ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी ने विवादों को एक संघर्ष या विवाद के रूप में प्रसारित किया, विशेष रूप से एक जिसने एक विशेष कानून को जन्म दिया है (गार्नेर, 1999, श्रेयर, 2008, पी 1 में उद्धृत)।

माव्रोमटाऐस मामले में, पीसीएलजे ने एक विवाद को विधि या तथ्य के आधार पर असहमति के रूप में परिभाषित किया। बुल्गारिया, हंगरी और रोमन के बीच शांति संधियों की व्याख्या पर अपनी सलाहकार राय जिसमें दो पक्षों ने कुछ संधि दायित्वों (श्रेयर, 2008, पी 2) के प्रदर्शन या गैर–प्रदर्शन के प्रश्नों के बारे में स्पष्ट रूप से विपरीत विचार रखे। मेरिल्स (1998, जैसा कि बिल्डर, 1986 में उद्धृत किया गया है) परिभाषाओं को स्पष्ट और अधिक विशिष्ट बनाता है। उनके अनुसार, एक विवाद को विशिष्ट असहमति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, तथ्य की बात है, एक कानून या नीति जिसमें एक दावा अस्वीकार, काउंटर दावा या दूसरे द्वारा इनकार। श्रेयर (2008) नोट करता है कि विवाद का अस्तित्व पार्टियों के बीच संचार की एक निश्चित डिग्री को दबा देता है। इस मामले को दूसरे पक्ष के साथ उठाया गया होगा जिसने केवल अप्रत्यक्ष रूप से दावेदार की स्थिति का विरोध किया होगा।

जब भी इस तरह की असहमति में सरकार, संस्थाएं, न्यायविद्, निगम या दुनिया के विभिन्न हिस्सों में निजी व्यक्ति शामिल होते हैं, तो एक अंतर्राष्ट्रीय विवाद कहा जा सकता है। विशेष रूप से आज के समय में एक अंतर्राष्ट्रीय विवाद की परिभाषा यह है कि एक विवाद में कम से कम एक पार्टी तो एक राज्य या एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन होता है, दूसरी पार्टी एक अन्य राज्य, एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन या एक भिन्न राज्य से एक प्राकृतिक या विधिक व्यक्ति है।

असहमति विशिष्ट होनी चाहिए। इसका मतलब यह है कि इसमें एक यथोचित परिभाषित विषय होना चाहिए, ताकि कोई कह सके कि कम से कम नाममात्र का, विवाद किस बारे में है। इसके अलावा, असहमति में परस्पर विरोधी दावे शामिल होने चाहिए। इसका मतलब यह है कि एक पक्ष को जो चाहिए या वह प्रकट करना चाहिए या मानना चाहिए कि वह दूसरे पक्ष के सम्मान का हकदार है, जिसे दूसरे पक्ष को अपने इनकार या उसके परस्पर विरोधी दावों को प्रकट करना है। यह अभिव्यक्ति बयानों, राजनयिक नोट्स, विशिष्ट कार्यों या अन्यथा (बिलडर, 1986) के माध्यम से हो सकती है।

इसलिए, विवाद नापसंद या शत्रुता के सामान्य दृष्टिकोण से अधिक है। दो राष्ट्रों में एक–दूसरे के खिलाफ दुश्मनी की सामान्य भावना हो सकती है और अभी तक कोई विशिष्ट या विशेष असहमति नहीं है, जिसे विवाद के रूप में पहचाना जा सकता है।

इसके विपरीत, दो राष्ट्र मित्रवत शर्तों पर राजी हो सकते हैं, फिर भी एक विशेष असहमति है जिसे एक विवाद माना जा सकता है।

विवादों के निबटान के साधन

टिप्पणी

मोल भाव : बातचीत अंतर्राष्ट्रीय विवादों को निबटाने का सबसे पुराना, सबसे आम और सबसे सरल तरीका है। यह अंतर्राष्ट्रीय विवादों के निबटान की दिशा में पहले कदम के रूप में शांतिपूर्ण निबटान की बड़ी संधियों द्वारा मान्यता प्राप्त है। अधिकांश संधियाँ अनिवार्य मध्यस्थता या न्यायिक बंदोबस्त से पहले एक शर्त पर समझौता करके विवाद का निबटारा करने में असफल हो जाती हैं। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 33 (1) में निर्धारित विवादों के शांतिपूर्ण निबटान के साधनों की सूची में बातचीत पहले स्थान पर है।

बातचीत में संबंधित पक्षों के बीच विचार–विमर्श के साथ विरोधी पदों और विचारों को समझने और मतभेदों को समेटने के विचार–विमर्श होते हैं। यह विरोधी सामग्री के स्पष्टीकरण और व्याख्या के लिए बहुत अनुकूल है। यह विवादों को निबटाने का सबसे संतोषजनक साधन है क्योंकि यह एक स्वैच्छिक द्विपक्षीय और स्व–सहायता साधन है। पक्ष सीधे प्रक्रिया में लगे हुए हैं। प्रक्रिया में किसी तीसरे पक्ष द्वारा हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है।

हालांकि, विवाद हमेशा विवादों या पक्षों के बीच मतभेदों के समाधान तक पहुंचने में सफल नहीं होते हैं। इस प्रकार, पक्षों को अपने विवादों और मतभेदों के समाधान के लिए तीसरे पक्ष के हस्तक्षेप की आवश्यकता है। यहाँ विवाद निबटान के अन्य राजनयिक तरीकों का महत्व आता है।

पूछताछ : बातचीत द्वारा विवाद के सफल निबटान को रोकने वाली सामान्य बाधाओं में से एक है उन तथ्यों का पता लगाना जो विवादों के बीच मतभेदों को जन्म देते हैं। अधिकांश अंतर्राष्ट्रीय विवादों में तथ्यों के बिंदुओं पर सहमत होने में पार्टियों की अक्षमता या अनिच्छा शामिल है। इसमें विवादों के शांतिपूर्ण निबटान के साधन के रूप में जांच की प्रक्रिया का महत्व बताया गया है।

कई द्विपक्षीय समझौतों का निष्कर्ष निकाला गया है, जिसके तहत विवादित तथ्यों पर संबंधित पक्षों को रिपोर्ट करने के कार्य के लिए तथ्य–खोज आयोगों की स्थापना की गई है। इसके अलावा, जांच की प्रक्रिया ने विवादों के शांत समाधान के लिए संधियों में अभिव्यक्ति पाई है।

1899 और 1907 के दो हेग सम्मेलनों ने अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के लिए औपचारिक संस्थानों के रूप में जांच के आयोगों की स्थापना की। उन्होंने नामों का एक स्थायी पैनल प्रदान किया जिसमें से पार्टियां आयुक्तों का चयन कर सकती थीं। एक जांच आयोग का कार्य निष्पक्ष और कर्तव्यनिष्ठ जांच के माध्यम से तथ्यों को स्पष्ट करके विवादों के समाधान की सुविधा प्रदान करना था। जांच आयोग की रिपोर्ट को तथ्य–खोज तक सीमित किया जाना था और विवाद के निबटारे के लिए किसी भी प्रस्ताव को शामिल करने की उम्मीद नहीं की गई थी।

राष्ट्र संघ की स्थापना के साथ, जांच के साधनों को एक नया महत्व मिला। पूछताछ और सुलह को विवाद के शांतिपूर्ण निबटान के लिए एकल प्रक्रिया के अभिन्न अंग के रूप में देखा गया था। यह इस पृष्ठभूमि के प्रकाश में है कि संयुक्त राष्ट्र का चार्टर विशेष रूप से अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण निबटान के तरीकों में से एक के रूप में जांच को सूचीबद्ध करता है।

टिप्पणी

विवाद निबटान के एक अलग तरीके के रूप में पूछताछ पक्ष से बाहर हो गई है। इसका उपयोग विवाद निबटान के अन्य तरीकों के हिस्से के रूप में किया गया है। इसका उद्देश्य विवादित तथ्यों की एक निष्पक्ष खोज का उत्पादन करना है और इस प्रकार अन्य शांतिपूर्ण विधियों द्वारा विवाद के निबटान के लिए रास्ता तैयार करना है। पक्ष जांच के निष्कर्षों को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं हैं, हालाँकि, वे हमेशा उन्हें स्वीकार करते हैं।

जांच का उपयोग अंतर्राष्ट्रीय संगठनों, जैसे संयुक्त राष्ट्र और इसकी विशेष एजेंसियों के व्यवहार में स्पष्ट हुआ है। सामान्य तथ्य–खोज के संदर्भ में विवाद निबटान के अन्य तरीकों के हिस्से के रूप में जांच का उपयोग किया गया है।

मध्यस्थता, सुलह और अच्छे कार्यालय

मध्यस्थता, सुलह और अच्छे कार्यालय विवादों के शांतिपूर्ण निबटान के तीन तरीके हैं, जिनके द्वारा तीसरे पक्ष को निबटान तक पहुंचने में विवाद के लिए पक्षों की सहायता करना चाहते हैं। सभी में पार्टियों की मदद करने के लिए एक कथित रूप से उदासीन व्यक्ति, राज्य, आयोग या संगठन का हस्तक्षेप शामिल है। जब पक्ष बातचीत करने के लिए तैयार नहीं होते हैं या प्रभावी ढंग से बातचीत करने में विफल होते हैं, तो किसी मध्यस्थता, सुलह या अच्छे कार्यालयों के माध्यम से किसी तीसरे पक्ष द्वारा सहायता प्राप्त करने के लिए आवश्यक हो सकता है। इस सहायता का अनुरोध एक या दोनों पक्षों द्वारा किया जा सकता है या यह किसी तीसरे पक्ष द्वारा स्वेच्छा से पेश किया जा सकता है।

हालांकि मध्यस्थता, सुलह, और अच्छे कार्यालयों की सामान्य विशेषताओं में कोई अंतर नहीं है, थर्ड पार्टी की भागीदारी की डिग्री के अनुसार उनके बीच एक सैद्धांतिक और व्यावहारिक अंतर किया जा सकता है और एक हद तक विवादकारी को प्रक्रियाओं के परिणामों को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाता है।

मध्यस्थता एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से एक बाहरी पार्टी (तृतीय पक्ष) विवादों को एक साथ लाने का प्रयास करती है और एक समझौते तक पहुंचने में सहायता करती है। तीसरा पक्ष विवाद के लिए पक्षकारों को अपनी सहायता प्रदान करता है। शुरू में विवादों की सहमति आवश्यक नहीं है, लेकिन उनकी सहमति के बिना कोई मध्यस्थ कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है।

वह खुद को बातचीत को संभव और अविवेकपूर्ण बनाने से संतुष्ट नहीं करता है। उनसे समाधान के लिए ठोस प्रस्ताव और विवाद से संबंधित ठोस मुद्दों के निबटान की अपेक्षा की जाती है। हालांकि, उनके प्रस्ताव सिफारिशों से ज्यादा कुछ नहीं दर्शाते हैं। उनके पास विवादित पर कोई बाध्यकारी बल नहीं है। विवाद के पक्षकार उसके प्रस्तावों को स्वीकार करने या अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हैं।

टिप्पणी

सुलह एक विशेष रूप से गठित अंग का उल्लेख करके एक विवाद को निबटाने की एक प्रक्रिया है जिसका कार्य तथ्यों को स्पष्ट करना और संबंधित पक्षों के लिए एक निबटान के प्रस्तावों का सुझाव देना है। हालांकि, मध्यस्थों के प्रस्तावों की तरह, पार्टियों पर कोई बाध्यकारी बल नहीं है जो उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हैं। जैसा कि मध्यस्थता के मामले में, सुलहकर्ता संयुक्त रूप से या अलग–अलग पक्षों से मिल सकते हैं।

सुलह की प्रक्रिया आम तौर पर उन दलों द्वारा बनाई जाती है जो अपने विवाद को पहले से ही स्थापित अंग, आयोग या एकल सुलहकर्ता को संदर्भित करने के लिए सहमत होते हैं, जो स्थायी आधार या तदर्थ आधार पर स्थापित किया जाता है। तीसरे पक्ष अपने आप पहल नहीं कर सकते। पक्षों द्वारा विवाद के लिए सुलहकर्ता नियुक्त किए जाते हैं। उन्हें अपने आधिकारिक कार्यों के आधार पर या अपनी व्यक्तिगत क्षमता में व्यक्तियों के रूप में नियुक्त किया जा सकता है।

सुलह को कुछ लोगों द्वारा जांच और मध्यस्थता के संयोजन के रूप में वर्णित किया जाता है। सुलहकर्ता विवाद के तथ्यों की जांच करता है और निबटान की शर्तों का सुझाव देता है। लेकिन सुलह जांच इस बात से अलग है कि बात का मुख्य उद्देश्य तथ्यों को सुलझाना है ताकि पक्षकारों को अपने विवाद को निबटाने के लिए अपने स्वयं के माध्यम से सक्षम किया जा सके, जबकि सुलह का मुख्य उद्देश्य एक विवाद के समाधान का प्रस्ताव करना और इस तरह के समाधान के लिए पार्टियों की स्वीकृति जीतना है। इसके अलावा, सुलह मध्यस्थता से अलग है कि यह मध्यस्थता की तुलना में अधिक औपचारिक और कम लचीली है। यदि एक मध्यस्थ का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया जाता है, तो वह नए प्रस्ताव पेश कर सकता है, जबकि एक सुलहकर्ता आमतौर पर एक ही रिपोर्ट पेश करता है।

जब विवाद के पक्षकार बातचीत से इसे हल करने में सक्षम नहीं होते हैं या वह बिंदु जहां वे राजनयिक संबंध तोड़ चुके हैं, लेकिन वे आश्वस्त हैं कि एक समझौता उनके लिए महत्वपूर्ण है, अच्छे कार्यालयों की तकनीक का उपयोग मददगार हो सकता है। अच्छे कार्यालयों का उपयोग केवल समझौते या दोनों विवादों की सहमति से किया जा सकता है। एक तीसरे पक्ष ने विवादों को एक साथ लाने का प्रयास किया ताकि उनकी बातचीत के माध्यम से उनके मतभेदों के लिए एक उपयुक्त समाधान खोजना संभव हो सके। इस संबंध में, तीसरे पक्ष का कार्य एक गो–वार्ता के रूप में कार्य करना है, बातचीत के लिए सहमति या फिर से शुरू करने के लिए पार्टियों के लिए एक उपयुक्त वातावरण बनाने या पुनर्स्थापित करने के प्रयास में संदेश और सुझावों को प्रसारित करना।

जब बातचीत शुरू होती है, तो अच्छे कार्यालयों के कार्य समाप्त हो जाते हैं। मध्यस्थता के विपरीत, अच्छे कार्यालयों की प्रक्रिया का एक सीमित कार्य है जो बस विवादों को एक साथ ला रहा है। मध्यस्थता में मध्यस्थ मध्यस्थों के बीच बातचीत में एक सक्रिय भाग लेता है और यहां तक कि विवादों को निबटाने के लिए सुझाव भी दे सकता है। अच्छे कार्यालयों की विधि में विवाद के लिए पक्षों के बीच बातचीत को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न प्रकार की कार्रवाई शामिल हैं। इसके अलावा,

मध्यस्थता या सुलह के मामले के विपरीत, अच्छे कार्यालयों के लाभार्थी संयुक्त रूप से विवादों के साथ नहीं मिलते हैं, लेकिन उनमें से प्रत्येक के साथ अलग–अलग होते हैं।

शायद ही कभी, अगर, विवादित पार्टियों के बीच संयुक्त बैठकों में विवाद होता है। आम तौर पर, अच्छे कार्यालयों के सदस्यों की भूमिका समाप्त हो जाती है जब पार्टियां बातचीत के लिए सहमत होती हैं, या बातचीत को फिर से शुरू करने के लिए। हालाँकि, पक्षकारों को वार्ता के दौरान उपस्थित रहने के लिए आमंत्रित किया जा सकता है। जैसा कि मध्यस्थता के मामले में, अच्छे कार्यालयों की पेशकश को विवाद के लिए या तो दोनों पक्षों द्वारा अस्वीकार किया जा सकता है।

टिप्पणी

मध्यस्थता, सुलह और अच्छे कार्यालयों के उपयोग का एक लंबा इतिहास रहा है। ये विधियां कई द्विपक्षीय और बहुपक्षीय संधियों का विषय रही हैं। हालांकि, राष्ट्र संघ की स्थापना के साथ, विवादों के शांतिपूर्ण निबटान के इन तरीकों के कार्यों को करने के लिए स्थायी अंगों की स्थापना की गई थी। इस संदर्भ में, संयुक्त राष्ट्र का चार्टर अनुच्छेद 33 (1) मध्यस्थता और सुलह को सूचीबद्ध करता है।

विशेष रूप से, संयुक्त राष्ट्र के व्यवहार में पद, मध्यस्थता, सुलह, और अच्छे कार्यालयों का उपयोग उनके बीच मौजूद अंतरों के लिए काफी ढीलेपन, लचीलेपन और कम संबंध के साथ किया गया है।

विवाद निबटान के अन्य तरीकों की तुलना में मध्यस्थता और सुलह दोनों के फायदे और नुकसान हैं। वे मध्यस्थता या न्यायिक निबटान से अधिक लचीले हैं। वे विवादों की इच्छा और तीसरे पक्ष की पहल के लिए अधिक जगह छोड़ते हैं। विवाद परिणाम के नियंत्रण में रहते हैं। उनकी कार्यवाही गुप्त रूप से आयोजित की जा सकती है। हालांकि, मध्यस्थता और सुलह के नुकसान हैं। उनकी कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है और विवादों की सहमति, सहयोग और सद्भावना के बिना प्रभावी हो सकती है। प्रस्तावित समझौता, विवादों पर किसी भी बाध्यकारी बल की सिफारिश से अधिक नहीं है।

विवाद निबटान के सहायक तरीके

विवाद निबटान के कूटनीतिक तरीकों का बड़ा नुकसान यह है कि उन पर पक्षकारों को उनके द्वारा सुझाए गए निबटान के प्रस्तावों को स्वीकार करने के लिए कोई विधिक बाध्यता नहीं है। इस प्रकार, विवाद निबटान के सहायक तरीके बेहतर हैं क्योंकि वे राजनयिक तरीकों के मामलों में केवल सिफारिशों के बजाय बाध्यकारी निर्णय जारी करते हैं। यह निर्णयों के अंत में दिए गए निर्णयों का बाध्यकारी बल है जो विवाद निबटान के अन्य तरीकों से इन तरीकों को अलग करता है।

विवाद निबटान के सहायक तरीकों में दो प्रकार की प्रक्रियाएं, मध्यस्थता और न्यायिक निबटान शामिल हैं। पंचाट और न्यायिक समझौता दो तरीके हैं जिनमें न्यायाधिकरणों के विधिक फैसलों के माध्यम से राज्यों के बीच मतभेदों का निर्धारण शामिल है। जबकि न्यायिक निबटान के मामले में निर्णय एक स्थापित अदालत द्वारा किया जाता है, स्थायी (जैसे कि अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय) या तदर्थ, मध्यस्थता के मामले में यह एकल मध्यस्थ या मध्यस्थ न्यायाधिकरण द्वारा किया जाता है। इन दोनों विधियों की प्रमुख विशेषता यह है कि एक न्यायिक निर्णय या एक अवार्ड पक्षकारों के लिए बाध्यकारी होता है और उन्हें विश्वास में लेना चाहिए।

टिप्पणी

यह लीग ऑफ नेशंस की स्थापना तक नहीं है कि मध्यस्थता और न्यायिक समझौता अलग हो गए। लीग की वाचा के तहत न्यायिक निबटान का अर्थ स्थायी न्यायालय (PCIJ) द्वारा निबटान था, जबकि मध्यस्थता का मतलब अन्य न्यायाधिकरणों द्वारा निबटान था। इसी अंतर को संयुक्त राष्ट्र के चार्टर द्वारा पूरा किया जाता है, लेकिन इंटरनेशनल कोर्ट ऑफ जस्टिस (ICJ) के साथ स्थायी न्याय के लिए अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय (PCIJ) को प्रतिस्थापित किया जाता है।

1899 के हेग कन्वेंशन में विवादों के शांतिपूर्ण निबटान के लिए मध्यस्थता को परिभाषित किया गया था क्योंकि उनकी पसंद के न्यायाधीशों द्वारा और कानून के सम्मान के आधार पर राज्यों के बीच मतभेदों के निबटान के रूप में 1907 हेग कन्वेंशन में भी यही परिभाषा दोहराई गई थी। मध्यस्थता की प्रक्रिया कुछ हद तक राजनयिक निबटान की प्रक्रियाओं से बाहर हो गई और एक विकसित अंतर्राष्ट्रीय विधिक आदेश की ओर एक अग्रिम का प्रतिनिधित्व किया।

मध्यस्थता को विवाद निबटान का सबसे प्रभावी और न्यायसंगत साधन माना जाता है। यह राजनयिक और न्यायिक प्रक्रियाओं दोनों के तत्वों को जोड़ती है। हालांकि, यह न्यायिक निबटान की तुलना में बहुत अधिक लचीला है। यह पक्षकारों को मध्यस्थ नियुक्त करने, न्यायाधिकरण की सीट को नामित करने, और उसके बाद होने वाली प्रक्रियाओं को निर्दिष्ट करने और न्यायाधिकरण द्वारा लागू किए जाने वाले कानून को चुनने के लिए विवादों का विकल्प देता है। इसके अलावा, मध्यस्थता की कार्यवाही को गोपनीय रखा जा सकता है।

विवाद के लिए पक्षों के समझौते के बिना मध्यस्थता शुरू नहीं की जा सकती। मध्यस्थता का एक समझौता एक विशेष विवाद या पक्षों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों की एक श्रृंखला को निबटाने के लिए संपन्न हो सकता है। यह मध्यस्थता की एक सामान्य संधि के रूप में हो सकता है।

मध्यस्थता समझौते में सामान्य पैटर्न के रूप में मध्यस्थों की नियुक्ति का संबंध है कि दोनों पक्षों में से प्रत्येक को एक मध्यस्थ या अधिक नियुक्त करना है और नियुक्त मध्यस्थों को मध्यस्थ को नियुक्त करना है, जिसे एक अंपायर के रूप में जाना जाता है। आमतौर पर, मध्यस्थ न्यायाधिकरण में तीन मध्यस्थ होते हैं, जो बहुमत के मत से निर्णय ले सकते हैं। पार्टियां अपने विवाद को एक एकल मध्यस्थ को संदर्भित करने के लिए सहमत हो सकती हैं, जो राज्य या सरकार का एक विदेशी प्रमुख या एक विशिष्ट व्यक्ति हो सकता है।

न्यायिक समझौता अंतर्राष्ट्रीय कानून के नियमों के अनुसार एक अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण द्वारा राज्यों के बीच विवाद का एक निबटारा है। न्यायाधिकरण का अंतर्राष्ट्रीय चरित्र इसके संगठन और अधिकार क्षेत्र दोनों में है। अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों में स्थायी न्यायाधिकरण शामिल हैं, जैसे अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय (ICJ), अंतर्राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल फॉर द लॉ ऑफ सी (ITLOS), यूरोपीय न्यायालय, मानवाधिकार का यूरोपीय न्यायालय और मानव–अमेरिकी न्यायालय अधिकारों और तदर्थ न्यायाधिकरण, जैसे लीबिया में संयुक्त राष्ट्र न्यायाधिकरण शामिल हैं।

ICJ सबसे महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण है, क्योंकि यह प्रतिष्ठा और अधिकार क्षेत्र दोनों है। यह संयुक्त राष्ट्र का प्रमुख न्यायिक अंग है। संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य न्यायालय के कानून के अनुसार वास्तविक पक्षकार हैं।

आईसीजे के न्यायाधीशों को संयुक्त राष्ट्र द्वारा नियुक्त किया जाता है, न कि किसी विवाद के पक्षकारों द्वारा। ICJ को अंतर्राष्ट्रीय कानून के नियमों और सिद्धांतों को लागू करना है, जो न्यायालय के कानून के अनुच्छेद 38 में लागू हैं। न्यायालय द्वारा लागू किए जाने वाले नियमों को निर्दिष्ट करने में पार्टियों के पास कोई विकल्प नहीं है। न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में एक संधि की व्याख्या, अंतर्राष्ट्रीय कानून के किसी भी प्रश्न, अंतर्राष्ट्रीय दायित्वों के उल्लंघन के किसी भी तथ्य के अस्तित्व और किसी के उल्लंघन के लिए किए जाने वाले पुनर्मूल्यांकन की प्रकृति या सीमा के बारे में राज्यों के बीच सभी विवाद शामिल हैं।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में अनुच्छेद 33 (1) में मध्यस्थता और न्यायिक निबटान को संदर्भित किया गया है, जिसमें शांतिपूर्ण निबटान के अन्य तरीकों के दो तरीके हैं जो राज्यों को अपने अंतर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान की तलाश में उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। यह अनुच्छेद 36 (3) में सुरक्षा परिषद को एक मार्गदर्शन भी प्रदान करता है, जिसमें यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि विधिक विवादों को एक सामान्य नियम के रूप में पार्टियों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में भेजा जाना चाहिए।

इस प्रावधान के बावजूद, चार्टर संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों पर किसी भी विवाद, यहां तक कि विधिक तक को अदालत में प्रस्तुत करने का दायित्व नहीं देता है। इसके अलावा, चार्टर प्रदान करता है कि इसमें कुछ भी संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों को अपने मतभेदों के समाधान को अन्य न्यायाधिकरणों को अस्तित्व में पहले से मौजूद समझौतों के आधार पर सौंपने से नहीं रोकता है या जो भविष्य में संपन्न हो सकते हैं।

धारा 3: विवाद निबटान के संस्थागत तरीके

विवाद निबटान के संस्थागत तरीकों में अंतर्राष्ट्रीय विवादों के निबटान के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का सहारा शामिल है। अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के निर्माण के साथ ये विधियां अस्तित्व में आई हैं। सबसे प्रतिष्ठित संगठन, जो अपने सदस्य राज्यों के बीच विवाद को निबटाने के लिए तंत्र प्रदान करते हैं, संयुक्त राष्ट्र और क्षेत्रीय संगठन हैं, जैसे कि यूरोपीय संघ, अमेरिकी राज्यों का संगठन, अरब लीग और अफ्रीकी संघ।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा विवाद का शांतिपूर्ण निबटान

अंतर्राष्ट्रीय विवादों का निबटारा संयुक्त राष्ट्र की सबसे महत्वपूर्ण भूमिकाओं में से एक है। संयुक्त राष्ट्र का चार्टर यह निर्धारित करता है कि यह संयुक्त राष्ट्र का काम है कि उसे शांति के माध्यम से लाया जाए और न्याय और अंतर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों के अनुरूप, अंतर्राष्ट्रीय विवादों या स्थितियों के समायोजन या निबटान के लिए जो उल्लंघन का कारण बन सकते हैं।

इसके लिए, चार्टर अंतर्राष्ट्रीय विवादों या स्थितियों के शांतिपूर्ण निबटान या समायोजन के लिए एक प्रणाली प्रदान करता है जिसके तहत इस मामले में संयुक्त राष्ट्र की व्यापक क्षमता स्थापित होती है, और संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों के संबंधित दायित्व लगाए जाते हैं।

टिप्पणी

चार्टर के अध्याय VI में विवादों के निबटारे के लिए संयुक्त राष्ट्र तंत्र शामिल है। अनुच्छेद 33 पार्टियों को एक विवाद के लिए बाध्य करता है, जिसकी निरंतरता अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के रखरखाव को खतरे में डालने की संभावना है, इस तरह के किसी भी शांत वाद द्वारा इस तरह के विवाद को निबटाने के लिए, या उनकी पसंद के किसी भी शांति के माध्यम से। जब पार्टियां अपने दायित्वों का पालन करने में विफल रहती हैं या उनके प्रयास सफल नहीं होते हैं, तो संयुक्त राष्ट्र विवाद पर विचार करने और मामलों पर अपनी सिफारिशें देने के लिए हस्तक्षेप करेगा। सुरक्षा परिषद को इस संबंध में प्राथमिक जिम्मेदारी दी जाती है।

यह संयुक्त राष्ट्र के किसी भी सदस्य के निमंत्रण पर, महासभा द्वारा आमंत्रण देने पर या किसी विवाद की पार्टी की शिकायत पर, या तो अपनी स्वयं की पहल पर हस्तक्षेप करने का हकदार है। सुरक्षा परिषद कार्रवाई के तीन पाठ्यक्रमों का पालन कर सकती है। सबसे पहले, यह अनुच्छेद 33 (1) में सूचीबद्ध किसी भी प्रशांत माध्यम से अपने विवाद को निबटाने के लिए पक्षकारों को एक विवाद पर बुला सकता है। दूसरा, यह पार्टियों को उपयुक्त प्रक्रियाओं या निबटान की विधि की सिफारिश कर सकता है। तीसरा, यह निबटान की शर्तों की सिफारिश कर सकता है, क्योंकि यह उपयुक्त पर विचार कर सकता है।

हालाँकि चार्टर के तहत अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए सुरक्षा परिषद को प्राथमिक भूमिका दी जाती है, लेकिन महासभा को ऐसा करने से बाहर नहीं किया जाता है। अनुच्छेद 11, 12 और 14 के तहत, महासभा किसी भी विवाद या स्थिति के संबंध में प्रक्रियाओं या समायोजन की प्रक्रियाओं, या निबटान की शर्तों के लिए सिफारिशें कर सकती है। सुरक्षा परिषद, संयुक्त राष्ट्र के किसी भी सदस्य या किसी भी राज्य पार्टी द्वारा इस तरह के विवाद के लिए विवादों या स्थितियों को महासभा के सामने लाया जा सकता है।

त्रीय संगठनों द्वारा विवाद का शांतिपूर्ण निबटान

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 33 (1) में किसी भी विवाद के लिए पक्षकारों की आवश्यकता होती है, जिसकी निरंतरता अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के रखरखाव को खतरे में डालने की संभावना है, सबसे पहले है– किसी भी शांत तरीके से समाधान।

चार्टर का अनुच्छेद 52 अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के रखरखाव से संबंधित ऐसे मामलों से निपटने के लिए क्षेत्रीय व्यवस्था या एजेंसियों की स्थापना के लिए संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों के अधिकार को मान्यता देता है। इस अनुच्छेद के अनुच्छेद 2 में उन सदस्यों की आवश्यकता होती है जो क्षेत्रीय व्यवस्थाओं या एजेंसियों के सदस्य होते हैं ताकि वे सुरक्षा परिषद् को संदर्भित करने से पहले ऐसी क्षेत्रीय व्यवस्थाओं के माध्यम से या ऐसी क्षेत्रीय एजेंसियों द्वारा स्थानीय विवादों के निबटारे के लिए हर संभव प्रयास कर सकें।

ऐसा लगता है कि अनुच्छेद 52 (2) द्वारा सदस्य राज्यों पर लगाया गया दायित्व अनुच्छेद 33 (1) के तहत उनके दायित्व के अनुरूप है। हालाँकि, अनुच्छेद 52 का अनुच्छेद 1 क्षेत्रीय व्यवस्थाओं और एजेंसियों के उपयोग के संबंध में दो स्पष्ट सीमाएँ लगाता है–

1. सबसे पहले, यह आवश्यक है कि क्षेत्रीय मामलों के लिए निपटाए गए मामले उचित हों।
2. दूसरा, यह आवश्यक है कि व्यवस्था या एजेंसियां और उनकी गतिविधियां संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और सिद्धांतों के अनुरूप हों।
3. इसके अलावा, एक तीसरा स्पष्ट सीमा अनुच्छेद 54 द्वारा लगाया जाता है जिसके लिए आवश्यक है कि सुरक्षा परिषद को हर समय क्षेत्रीय गतिविधियों के तहत या क्षेत्रीय एजेंसियों द्वारा या अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के रखरखाव के लिए की गई गतिविधियों से पूरी तरह से अवगत कराया जाए।

टिप्पणी

शांतिपूर्ण निबटान के लिए अन्य प्रक्रियाओं के उपयोग के संबंध में कोई समान स्पष्ट सीमाएं नहीं लगाई गई हैं।

अनुच्छेद 52 न केवल क्षेत्रीय व्यवस्था या एजेंसियों को वैध बनाने और सदस्य राज्यों पर एक दायित्व लागू करने तक सीमित है, बल्कि स्वयं सुरक्षा परिषद में एक कर्तव्य को लागू करके इस तरह के वैधता और दायित्व से परे है। इस अनुच्छेद के अनुच्छेद 3 में सुरक्षा परिषद को ऐसी क्षेत्रीय व्यवस्थाओं के माध्यम से या ऐसी क्षेत्रीय एजेंसियों द्वारा या तो संबंधित राज्यों की पहल पर या सुरक्षा परिषद के संदर्भ में स्थानीय विवादों के विकास को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

यह प्रावधान विवादों के प्रशांत निबटान से संबंधित चार्टर के सामान्य दृष्टिकोण के अनुरूप है, जिसके लिए पार्टियों को स्वयं अपनी पसंद के किसी भी प्रशांत उपाय द्वारा अपने विवाद का समाधान तलाशने की आवश्यकता है, और यह कि परिषद को पार्टियों को ऐसा करने के लिए हर अवसर देना चाहिए। यदि पार्टियों ने क्षेत्रीय व्यवस्था या एजेंसियों के माध्यम से समझौता करने के लिए कोई भी प्रयास करने से पहले सुरक्षा परिषद में अपने स्थानीय विवाद का उल्लेख किया है, तो परिषद का कर्तव्य है कि वह उन्हें उनके दायित्व की याद दिलाए या इस तरह के विवाद को अपनी पहल पर संदर्भित करे।

विवादों के शांतिपूर्ण निबटान के सिद्धांत और अंतर्राष्ट्रीय कानून के अन्य विशिष्ट सिद्धांतों के बीच के संबंध को मैत्रीपूर्ण घोषणा और मनीला घोषणा में इस प्रकार रेखांकित किया गया है–

1. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में बल के गैर–उपयोग के सिद्धांत।
2. राज्यों के आंतरिक मामलों या बाहरी मामलों में हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत।
3. समान अधिकारों और लोगों के आत्मनिर्णय के सिद्धांत।
4. राज्यों के संप्रभु समानता के सिद्धांत।
5. राज्यों की संप्रभुता, स्वतंत्रता और क्षेत्रीय अखंडता के विषय में अंतर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धांत।
6. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में अच्छा विश्वास।
7. न्याय और अंतर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धांत।

टिप्पणी

मतलब का मुफ्त विकल्प

यह संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 33 पैरा 1 में निर्धारित किया गया है और मैत्री घोषणा की धारा 1 पैरा 3 और 10 के मैत्रीपूर्ण संबंध घोषणा के संबंधित अनुभाग के पांचवें अनुच्छेद में दोहराया गया है। मैत्रीपूर्ण संबंध और मनीला घोषणा दोनों यह स्पष्ट करते हैं कि मौजूदा या भविष्य के विवादों के संबंध में स्वतंत्र रूप से समझौता करने या निबटान प्रक्रिया की स्वीकृति राज्यों की संप्रभु समानता के साथ असंगत नहीं मानी जाएगी।

चार्टर के अनुच्छेद 33 में सूचीबद्ध साधन हैं:

1. मोल भाव
2. मध्यस्थता
3. सुलह
4. पंचाट
5. न्यायिक समझौता
6. क्षेत्रीय व्यवस्था या एजेंसियों को रिपोर्ट करें
7. पार्टियों के अन्य शांत साधन, अपनी पसंद

मैत्रीपूर्ण संबंध घोषणा और मनीला घोषणा के तहत पार्टियों के लिए इस तरह के शांत साधनों पर सहमत होना है, जो परिस्थितियों और उनके विवादों की प्रकृति के लिए उपयुक्त हो सकता है।

निष्कर्ष

संक्षेप में, अंतर्राष्ट्रीय कानून युद्ध और हिंसा की संभावनाओं को दूर करने का इरादा रखता है और राजनीतिक, राजनयिक और न्यायिक आधारों के गुणों पर विवादों को हल करने में विश्वास करता है। युद्धों से बाहर निकलने की संभावनाओं से बचने के लिए यह कुछ निश्चित उपाय और साधन प्रदान करता है, जो विवादों को निबटाने के लिए सौहार्दपूर्ण साधन हैं। लेकिन अंतर्राष्ट्रीय कानून कुछ सामान्य मामलों या विवादों को अतिरिक्त सामान्य मामलों में निबटाने के लिए मजबूर करता है, जहां अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा खतरे में पड़ गई है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के साथ क्या अटूट रूप से जुड़े हुए हैं?

   (क) समझौते (ख) युद्ध

   (ग) रिश्ते–नाते (घ) विवाद

6. अंतर्राष्ट्रीय विवादों को निबटाने का सबसे पुराना, सबसे आम और सबसे सरल तरीका क्या है?

   (क) बातचीत (ख) चुप्पी

   (ग) युद्ध (घ) यात्राएं

5.5 राज्यों के मध्य मतभेद निबटाने हेतु युद्ध के अतिरिक्त उपाय

टिप्पणी

वर्तमान विश्व व्यवस्था, जैसा कि आज तक हम जानते हैं कि यह सदैव के लिए अस्तित्व में नहीं रही है। आज के समय और युग में राज्यों को बराबर (कम से कम कागज पर) माना जाता है। यद्यपि अत्यधिक लंबे समय से, राज्यों के हित शक्ति और क्षेत्र के लिए संघर्ष के इर्द–गिर्द घूमते रहते थे, जहां एक राज्य किसी भी समय किसी अन्य राज्य को हरण करने का निर्णय ले सकता था। सुरक्षा को देश की सीमा के संकटों से समीकृत किया गया और राष्ट्रों ने उत्पन्न होने वाले संभावित संघर्षों को हल करने के लिए शस्त्रों की खोज प्रारम्भ कर दी।

इस युग में, सैन्य सुरक्षा को सबसे अधिक महत्व दिया गया था। यद्यपि सुरक्षा के परिवृत्त धारणाएं समय के साथ–साथ केवल सैन्य सुरक्षा प्राप्त करने के राज्य–केंद्रित दृष्टिकोण से विकेंद्रित होकर सुरक्षा के अधिक सहकारी और सामूहिक रूप में विकसित हुई हैं। सुरक्षा का यह सामूहिक रूप इस अनुभूति के साथ दृष्टिगत हुआ कि, दोनों, राज्यों के साथ–साथ व्यक्तियों के हितों को भी एक साथ संबोधित करने की आवश्यकता है, क्योंकि, आज लोगों को जिन चिंताओं का सामना करना पड़ता है वे एक पड़ोसी राज्य द्वारा विश्व समापन आक्रमण के विपरीत दैनिक जीवन के मुद्दों से संबंधित हैं । 1994 की मानव विकास रिपोर्ट मानव सुरक्षा के इस नए रूप (केवल क्षेत्रीय सुरक्षा के विपरीत) का विस्तृत विवरण देती है, जोकि वैश्विक संसाधनों के एक समान विभाजन, राष्ट्रों के मध्य अंतर–निर्भरता और विभिन्न देशों के मध्य उपयोगी पत्राचार पर निर्भर करेगा।

विश्व व्यवस्था में इन परिवर्तनों, सुरक्षा के विभिन्न नए पहलुओं, राज्यों के मध्य समानता और परस्पर निर्भरता, के उपरांत भी अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में संघर्षों को पूर्ण रूप से समाप्त नहीं किया जा सकता है। यहीं पर संघर्षों के समाधान की दिशा में नए और विकसित तंत्र और रणनीतियों की आवश्यकता अनुभव की जा सकती है। वर्तमान तंत्र/विधियों को व्यापक रूप से दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1. शांतिपूर्ण समाधान (Pacific Settlement)
2. बाध्यकारी या प्रपीड़क उपाय (Coercive Methods)

इस अध्याय के अंतर्गत अध्ययन का केंद्र केवल बाध्यकारी या प्रपीड़क उपाय रहेगा।

बाध्यकारी या प्रपीड़क उपाय (Compulsive or Coercive Measures)

राज्यों के मध्य मतभेदों का समाधान करने के लिए शांतिपूर्ण रूप से भिन्न अन्य उपाय भी हैं जिनको कि बाध्यकारी या प्रपीड़क उपाय कहा जाता है। यह उपाय मतभेदों का समाधान करने के लिए राज्य पर दबाव या बल को सम्मिलित करते हैं। किंतु बाध्यकारी उपाय के प्रयोग का तात्पर्य सभी मामलों में सशस्त्र बलों के प्रयोग से नहीं है। जब अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में टकराव पैदा होता है, तो राज्यों को बल और हिंसा, जिसका उपयोग अतिवादी उपाय के रूप में किया जा सकता है, के विपरीत सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेदों के अनुसार शांतिपूर्ण तंत्र का उपयोग कर प्रशांत समाधान के तरीकों का

टिप्पणी

अनुसरण करना चाहिये। शांतिपूर्ण तरीकों को राजनीतिक और कूटनीतिक (गैर–बाध्यकारी) जैसे बातचीत, अच्छे कार्यालयों, मध्यस्थता या न्यायिक (बाध्यकारी) जैसे मध्यस्थता और पक्षपात (अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय से पहले) में विभाजित किया जा सकता है। जब ये विधियां विफल हो जाती हैं तो राज्य बाध्यकारी या प्रपीड़क उपाय अपनाने के लिए बाध्य हो सकते हैं। आम धारणा के विपरीत इस प्रकार के तरीकों में सदैव हिंसा या सशस्त्र प्रतिक्रिया का उपयोग सम्मिलित नहीं होता है।

बाध्यकारी या प्रपीड़क उपायों को भी दो श्रेणियों में उप–वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **बाध्यकारी या प्रपीड़क उपाय तथा युद्ध के पूर्ववर्ती (Coercive Methods & Predecessor of War)** : जब मतभेदों के समाधान के शांतिपूर्ण प्रयास विफल हो जाते हैं और वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं, तो राज्य बाध्यकारी किंतु अहिंसक तरीकों की ओर रुख कर सकते हैं। ये विधियां राज्य यांत्रिकी पर निर्भर होती हैं और इनका उद्देश्य मतभेदों को निबटाने के लिए मनोवैज्ञानिक विवशता या दबाव बनाना होता है। ये विधियाँ युद्ध की घोषणा करने से कुछ कम होती हैं और इसमें सम्मिलित होते हैं– (क) प्रतिकार, (ख) प्रतिशोध, (ग) व्यापार प्रतिषेध, (घ) शांतिपूर्ण नाकाबंदी, तथा (ङ) हस्तक्षेप।
2. **बाध्यकारी या प्रपीड़क उपाय तथा युद्ध के माध्यम से (Coercive Methods & through War)** : जब बाकी सभी उपाय विफल हो जाते हैं, तो विवाद को निबटाने के उद्देश्य से राज्य अंतिम उपाय युद्ध के रूप में बल के संगठित अनुप्रयोग को सम्मिलित कर सकता है। इस प्रकार के युद्ध अंतर्राष्ट्रीय मानकों (सीमित युद्ध) के अनुसार संदर्भ और संयम की कुछ शर्तों पर एक समझौते के साथ लड़े जा सकते हैं या बिना सीमाओं और परिसीमाओं (कुल युद्ध) के विनाशकारी रूप ले सकते हैं।

बाध्यकारी या प्रपीड़क उपाय तथा युद्ध के पूर्ववर्ती (Coercuve Methods & Predecessor of war)

ये विधियाँ प्रतिशोध की एक जटिल रणनीति बनाती हैं और जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है, इसमें विवादग्रस्त राज्यों के प्रति अमित्रतापूर्ण कार्य सम्मिलित होते हैं। इसमें नियोजित कुछ सामान्य तरीको में राजनयिकों का निष्कासन, संधियों का निलंबन, मान्यता को अस्वीकार करना आदि सम्मिलित होते हैं। सामान्यतः ये उन उपायों को सम्मिलित करते हैं जो युद्ध के समान प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के उपायों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है–

(क) प्रतिकार (Retortion) : प्रतिकार प्रकार का तकनीकी शब्द है। यह कुछ सीमा तक जैसे को तैसा के सिद्धांत पर आधारित है। जब एक राज्य द्वारा किए गए कार्य के समान दूसरे राज्यों द्वारा जो कार्य प्रतिकार किया जाता है तब इसे प्रतिकार कहा जाता है

प्रतिकार का उद्देश्य बदला लेना होता है। जो कार्य राज्य द्वारा प्रतिकार में किए जाते हैं वे अवैध नहीं माने जाते। प्रतिकार में किए गए कार्यों की अनुमति अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधीन निहित रहती है। किंतु यह अमैत्रीपूर्ण कार्य होता है। मतभेदों के

समाधान के जिन मामलों में प्रतिकार का प्रयोग किया जाता है वह कई प्रकार के हो सकते हैं। यदि किसी राज्य के किसी नागरिक के साथ किसी अन्य राज्य में कोई अनुचित व्यवहार किया जाता है तो वह राज्य भी उस राज्य के नागरिकों के साथ उसी प्रकार का व्यवहार कर सकता है। पुनः राज्य द्वारा अधिक सीमा शुल्क लगाए जाने पर उस राज्य के विरुद्ध अन्य राज्य द्वारा भी अधिक सीमा शुल्क लगाया जा सकता है। यदि एक राज्य अन्य राज्य के राजदूत को ग्राह्य व्यक्ति घोषित करता है तो वह राज्य में प्रतिकार में पहले वाले राज्य के राजदूत के संबंध में उसी तरह की घोषणा कर सकता है। जब दिसंबर 1992 में पाकिस्तानी उच्चायोग के दो पदाधिकारी भारत द्वारा ग्राह्य व्यक्ति घोषित किए गए थे तब पाकिस्तान ने भी भारत के तीन पदाधिकारियों को निष्कासित कर दिया था तथा उन्हें ग्राह्य व्यक्ति घोषित कर दिया था। इसी प्रकार जब भारत ने पाकिस्तानी राजनयिक नसीरुद्दीन अहमद तथा उसके उच्चायोग के कर्मचारी एम.ए. बाजवा को 1994 में जासूसी क्रियाकलापों में संलग्न रहने के कारण निष्कासित कर दिया था तब पाकिस्तान ने भी भारत के राजनयिक के निष्कासन के लिए यह कहते हुए आदेश पारित किया था कि उनका क्रियाकलाप उनकी प्रस्थिति से असंगत है।

टिप्पणी

प्रतिकार का उद्देश्य बदला लेना होता है। यह प्रतितोष सुनिश्चित करने के लिए प्रयुक्त नहीं किया जाता है। प्रतिकार के वैध प्रयोग को संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के प्रावधानों द्वारा कुछ सीमा तक प्रभावित किया गया है। प्रतिकार में, उन कार्यों को विधिपूर्वक नहीं किया जा सकता, जो अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को संकट उत्पन्न करने के लिए संभाव्य है। यदि कोई ऐसा कार्य किया जाता है तो उसको अवैध माना जाएगा।

(ख) प्रतिशोध (Reprisals) : प्रतिशोध शब्द प्रतितोष सुनिश्चित करने के उद्देश्य से राज्यों द्वारा किसी बाध्यकारी उपायों को सम्मिलित करता है। इस प्रकार प्रतिशोध का मुख्य उद्देश्य दोषपूर्ण कार्य के करने से अपचारी राज्य को रोकने या उसे आगे न करने या दोनों के लिए विवश करना होता है। यदि मतभेद राज्य के अन्य उचित या अवैध कार्य के कारण उत्पन्न होता है तो अन्य राज्य मतभेद का समाधान करने हेतु उस राज्य के विरुद्ध कोई बाध्यकारी उपाय कर सकता है। पहले प्रतिशोध केवल संपत्ति या व्यक्तियों के अधिग्रहण तक ही सीमित था किंतु बाद में इसमें अन्य प्रकारों को भी उसी प्रकार सम्मिलित कर लिया गया। यह बम वर्षा, राज्य के राज्य क्षेत्रों के अधिग्रहण, जवानों के अधिग्रहण, उसके नागरिकों की परिसंपत्तियों के अवरोधन तथा उससे संबंधित किसी प्रकार की संपत्ति के अधिग्रहण को सम्मिलित करता है। इस प्रकार, यह न केवल राज्य के विरुद्ध वरना उस राज्य के नागरिकों के विरुद्ध भी लागू किया जा सकता है। राज्य प्रतिशोध में कोई कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र होता है, जबकि इसे विधि पूर्ण बनाने के लिए कुछ शर्तों को पूर्ण करने की आवश्यकता होती है। प्रथम, प्रतिशोध में किए गए उपायों का समय सीमित होता है, इसका प्रयोग उसी समय किया जा सकता है जब किए गए अन्य समुचित उपाय असफल हो गए हों या इसका प्रयोग उस समय रुक जाता है जब राज्य को अपने दावे में सफलता प्राप्त हो जाती है। द्वितीय, प्रतिशोध केवल अपचारी राज्य तक ही सीमित रहता है। इसमें अन्य राज्यों के अधिकारों का उल्लंघन नहीं होना चाहिए। तृतीय, प्रतिशोध में किए गए उपाय समानुपातिक होने चाहिए।

टिप्पणी

नाउलीला मामला (Naulilaa Incident) इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। इस मामले में कुछ जर्मन अधिकारी सीमावर्ती घटना के दौरान मारे गए थे जिसका परिणाम जर्मनी द्वारा पुर्तगाल के राज्य पर व्यापक आक्रमण के रूप में हुआ था। इसमें पुर्तगाल तथा जर्मनी द्वारा बनाए गए विशेष विभाजक अधिकरण ने उन तीन मुख्य शर्तों को कथित किया था, जिनका प्रतिशोध को वैध बनाने के लिए उपस्थित होना अपेक्षित है– (1) जिस राज्य के विरुद्ध कार्यवाही की जाती है उसे सार्वजनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि का दोषी होना चाहिए। (2) प्रतिशोध के पहले प्रतिशोध प्राप्त करने का समुचित प्रयास किया गया हो तथा उसमें सफलता ना मिली हो। (3) प्रतिशोध के अधीन किए गए उपायों को अपराध के अनुपात में होना चाहिए।

इस मामले में अधिकरण ने निर्णय दिया कि जर्मनी द्वारा प्रयुक्त किया गया प्रतिशोध अंतर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन था, क्योंकि (1) पुर्तगाल ने अंतर्राष्ट्रीय विधि के विरुद्ध कार्य नहीं किया था क्योंकि तीन जर्मन वासियों की हत्या जानबूझकर नहीं की गई थी वरन यह आकस्मिक घटना थी, जो वास्तव में दुखद थी, (2) जर्मन वासियों ने सहायता लेने के पूर्व शांतिपूर्ण समाधान का प्रयास नहीं किया था, तथा (3) जर्मनी द्वारा प्रयुक्त बल अपराध के अनुपात में अत्यधिक था तथा पुर्तगाल के पदाधिकारियों के आचरण के अनुपात में नहीं था। इसमें सीमावर्ती घटना के दौरान कुछ जर्मन सैनिकों की गोलीबारी तथा पुर्तगाली राज्य क्षेत्र में व्यापक आक्रमण के मध्य अनुपात की स्पष्ट कमी थी। संयुक्त राष्ट्र ने प्रपीड़न की सहायता लेने के राज्य के अधिकार को विशेष रूप से रोक दिया है।

इराकी गुप्तचर मुख्यालय पर संयुक्त राज्य अमेरिका का आक्रमण (US attack on Iraqi Intelligence Headquarters)

संयुक्त राज्य वालों ने 1993 में बगदाद में इराक कम गुप्तचर मुख्यालय के विरुद्ध यूएसएसपेटरसन तथा यूएसएसचांसलर्सविले से लाल सागर तथा फारस की खाड़ी में तीन क्रूज प्रक्षेपास्त्रों को प्रक्षेपित किया। इस आक्रमण के परिणाम स्वरुप 8 व्यक्ति मारे गए तथा 1 दर्जन से अधिक व्यक्ति घायल हुए। संयुक्त राज्य ने ऐसा करने का निर्णय उस समय लिया जब उसे इस बात की पुष्टि हो गई कि पूर्व राष्ट्रपति जॉर्जबुश की हत्या करने का षड्यंत्र इराक द्वारा उस समय किया गया था जब वह अप्रैल 1993 में कुवैत के दौरे पर गए थे। इस आक्रमण की आलोचना इराक तथा अन्य कई राज्यों द्वारा की गई थी। इराक ने इस आक्रमण को अंतर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन कहा था। इस मामले को संयुक्त राज्य द्वारा सुरक्षा परिषद के समक्ष लाया गया किंतु सुरक्षा परिषद ने इस मामले में कोई संकल्प स्वीकार नहीं किया। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र ने आक्रमण की इस कार्यवाही को इस आधार पर उचित माना कि इराक द्वारा उसके पूर्व राष्ट्रपति की हत्या का प्रयास किया गया था, किंतु उसकी कार्यवाही को उचित नहीं कहा जा सकता। दूसरे राज्य की राज्य क्षेत्रीय अखंडता या राजनीतिक स्वतंत्रता के विरुद्ध किसी राज्य के द्वारा बल प्रयोग को संयुक्त राष्ट्र के अनुच्छेद 2 के परिच्छेद 4 के अधीन प्रतीक्षित किया गया है उचित माना कि राज्य द्वारा उसके पूर्व राष्ट्रपति की हत्या का प्रयास किया गया था। किंतु उसकी कार्यवाही को उचित नहीं कहा जा सकता। दूसरे राज्य की राज्य क्षेत्रीय अखंडता या राजनीतिक स्वतंत्रता के विरुद्ध किसी राज्य के द्वारा बल प्रयोग को संयुक्त राष्ट्र के अनुछेद 2 के परिच्छेद 4 के अधीन प्रतीक्षित किया

गया है। संयुक्त राष्ट्र को इराकी सरकार से मतभेद को हल करने के लिए दूसरे अन्य उपाय करने चाहिए थे। संयुक्त राज्य के आक्रमण की निंदा सुरक्षा परिषद द्वारा की जानी चाहिए थी, किंतु संभवत राजनीतिक कारणों से वह ऐसा करने में असफल रही।

प्रतिशोध में युद्ध के आशय का अभाव रहता है। अतः प्रतिशोध तथा युद्ध में भिन्नता होती है। प्रतिशोध को युद्ध से पृथक करने का प्राथमिक तथा मुख्य तत्व आशय ही होता है। प्रतिशोध में युद्ध का आशय नहीं रहता है किंतु यदि प्रतिशोध से पीड़ित राज्य युद्ध करने का निर्णय करता है तो युद्ध की संभावना सदैव रहती है। प्रतिकार प्रतिशोध में की गई कार्यवाही से भी भिन्न होता है। प्रतिकार का उद्देश्य अशिष्ट, मैत्रीपूर्ण या अनुचित कार्यों के लिए प्रत्येक कार्य हो सकता है, किंतु प्रतिशोध का उद्देश्य प्रतिशोध को सुनिश्चित करना होता है। प्रतिकार में की गई कार्यवाही अंतर्राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत अवैध नहीं होती, जबकि प्रतिशोध में की गई कार्यवाही अवैध होती है तथा न्याय प्राप्त करने के उद्देश्य से राज्य द्वारा अपवाद स्वरूप की जाती है। प्रतिशोध में राज्य विधि अपने हाथ में ले सकता है।

टिप्पणी

(ग) व्यापार प्रतिषेध (Embargo) : 'व्यापार प्रतिषेध' शब्द स्पेनिश मूल के शब्द 'एंबार्गो' का हिंदी अंतरण है। सामान्य रूप से इसका तात्पर्य निरुद्ध करने से है। किंतु अंतर्राष्ट्रीय विधि में इसका तकनीकी अर्थ है जिसका तात्पर्य बंदरगाह में जलयानो को निरुद्ध करने से है। अन्य राज्यों के जवानों तथा अन्य संपत्ति, जो किसी राज्य की अधिकारिता के अंतर्गत आती है तथा जो विदेशी राज्यों में जाने के लिए संभावित है, को विरोध करने के कृत्य को व्यापार प्रतिषेध कहा जाता है। राज्य द्वारा व्यापार प्रतिषेध अपने यान या किसी अन्य राज्य के यानों के संबंध में लागू किया जा सकता है। जब राज्य व्यापार प्रतिषेध के कार्य को अपने यान तक सीमित रखता है तो इसे ग्रह या शांतिपूर्ण व्यापार प्रतिषेध के रूप में जाना जाता है। ऐसा कार्य अन्य राज्य के साथ अपने व्यापार या आर्थिक संबंधों को सीमित करने या रोकने या समाप्त करने के लिए राज्य के पदाधिकारियों द्वारा निर्गत आदेश के अनुसार प्रारंभ किया जाता है। ऐसे व्यापार प्रतिषेध का उद्देश्य अन्य राज्य पर वित्तीय या आर्थिक दबाव बनाना होता है। यह राज्य का अधिकार होता है कि ऐसे उद्देश्यों के लिए इस प्रकार के उपाय करें। जब किसी राज्य के उन जवानों को रोक दिया जाता है, जिसने अंतर्राष्ट्रीय विधि का उल्लंघन किया है, तब ऐसे व्यापार प्रतिषेध को शत्रुता पूर्ण व्यापार प्रतिषेध कहा जाता है। ऐसे व्यापार प्रतिषेध का उद्देश्य मतभेद का समाधान करने के लिए अन्य राज्य को विवश करना होता है। ऐसा व्यापार प्रतिषेध प्रपीड़न का एक रूप होता है। यदि जलयान प्रतितोष को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से निरुद्ध किया जाता है तो व्यापार प्रतिषेध को प्रतिशोध के रूप में माना जाता है। किंतु यदि जलयान किसी अन्य कारण से निरुद्ध किया जाता है तो इसे प्रतिशोध नहीं माना जाता। यदि जलयान को राजनीतिक महत्व के समाचार को प्रसारित करने से रोकने के लिए निरुद्ध किया जाता है या युद्ध के दौरान युद्धरत राज्य आवश्यकता के कारण तटस्थ राज्य के जलयानो को निरुद्ध कर देते हैं तथा अभिग्रहण करते हैं तो यह व्यापार प्रतिषेध होगा।

वर्तमान समय में राज्य द्वारा व्यापार प्रतिषेध या तो व्यक्तिगत रूप से या संयुक्त राष्ट्र के प्राधिकार के अधीन सामूहिक रूप से लगाया जा सकता है। यदि राज्य द्वारा व्यापार प्रतिषेध लगाया जाता है तो इसको अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को संकट में नहीं डालना चाहिए। यदि व्यापार प्रतिषेध से अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को संकट

उत्पन्न होता है तो यह अवैध माना जाएगा। सामूहिक व्यापार प्रतिषेध अपकारी राज्य के विरुद्ध सुरक्षा परिषद के प्राधिकार के अधीन लगाया जा सकता है।

(घ) शांति पूर्ण नाकाबंदी (Pacific Blockade) : जब किसी राज्य द्वारा किसी अन्य राज्य के समुद्र तट को सभी राज्यों के जलयानों के प्रवेश तथा निकासी को निरुद्ध करने के आशय से अवरुद्ध किया जाता है, तो यह नाकाबंदी कहलाती है। यदि यह नाकाबंदी शांति काल के समय में की जाती है तो इसको शांतिपूर्ण नाकाबंदी के रूप में माना जाता है। शांतिपूर्ण नाकाबंदी हेतु आवश्यक अपेक्षाएं उन नाकाबंदियों के ही समान हैं जो युद्ध के समय प्रयुक्त होती हैं। इस प्रकार नाकाबंदी को घोषित एवं अधिसूचित होना आवश्यक है। नाकाबंदी को प्रभावी होना चाहिए। अधिकांश मामलों में शांतिपूर्ण नाकाबंदी का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय मामलों से संबंधित होता है। उदाहरणार्थ, छोटे राज्य की स्वतंत्रता का संरक्षण, युद्ध का निवारण किया जाना, ऐसी समितियों या अन्य बाध्यताओं का समुचित निष्पादन जिनमें नाकाबंदी कर्ता राज्य का स्वयं कुछ हित हो। नाकाबंदी को मतभेदों के समाधान के बाध्यकारी साधनों में से एक माना जाता है, क्योंकि इसमें आक्रमणकारी राज्य के तटों तक पहुंच को निरुद्ध करके वाणिज्य को अस्थाई रूप से निलंबित कर दिया जाता है। शांतिपूर्ण नाकाबंदी का सर्वप्रथम प्रयोग 1827 में किया गया था, जब ब्रिटिश, फ्रंसीसी तथा रूसी जलयानो ने यूनानी तट के उन भागों की नाकाबंदी कर दी थी जो टर्की सैनिकों द्वारा अधिग्रहित किया गया था। तब से राज्य द्वारा शांतिपूर्ण नाकाबंदी के करीब 20 मामलों में प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ 1837 में ग्रेट ब्रिटेन द्वारा न्यू ग्रेनाडा के विरुद्ध प्रयुक्त नाकाबंदी तथा निकारागुआ के विरुद्ध 1842 व 1844 तथा ब्राजील पोर्ट ऑफ रियो डी जेनेरियो के विरुद्ध 1862–1863 में की गई नाकेबंदियां हैं। फ्रांस ने भी पुर्तगाल के विरुद्ध वर्ष 1831 में, मेक्सिको के विरुद्ध 1838–1840 में तथा ग्रेट ब्रिटेन के साथ संयुक्त रूप से उरूग्वे एवं अर्जेंटीना के विरुद्ध नाकाबंदी का प्रयोग किया था। यह मतभेद के समाधान का वह उपाय है जो सामान्य रूप से शक्तिशाली राज्य द्वारा अपनाया जाता है। शांतिपूर्ण नाकाबंदी की वैधता के संबंध में न्यायविदों के विचारों में अंतर पाया जाता है। कुछ के अनुसार नाकाबंदी को शांति काल में राज्य द्वारा नहीं लगाया जा सकता क्योंकि यह शांति काल में समुद्र विधि के प्रतिकूल होती है। किंतु नाकाबंदी को अंतर्राष्ट्रीय विधि संस्थान द्वारा 1887 में स्वीकृत घोषणा द्वारा वेद माना गया था। 19वीं शताब्दी में शांतिपूर्ण नाकाबंदी का राज्यों द्वारा कई बार प्रयोग किया गया तथा राजनीतिक तथा विधिक अंतर्राष्ट्रीय मतभेदों के समाधान हेतु इस को मान्यता दी गई।

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के उपरांत शांतिपूर्ण नाकाबंदी का प्रयोग इस तथ्य की दृष्टि से अवैध हो गया है कि यह अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को संकट है। अन्य राज्य के सुरक्षाबलों द्वारा किसी राज्य के समुद्र तट की नाकाबंदी महासभा द्वारा स्वीकृत संकल्प के अनुच्छेद–3 के परिच्छेद (ग), जो आक्रमण को परिभाषित करता है, के अनुसार आक्रमण की श्रेणी में आता है। अतः नाकाबंदी मतभेदों के समाधान का अनुज्ञेय उपाय नहीं है। जब 1962 में संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा क्यूबा में नौसैनिक नाकाबंदी की गई जिसे संयुक्त राज्य अमेरिका ने क्यूबा की घेराबंदी कहा था, तब कई राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा इसकी तीव्र आलोचना की गई थी। सोवियत संघ रूस के प्रतिनिधि ने संयुक्त राज्य अमेरिका की संयुक्त राष्ट्र के चार्टर का उल्लंघन करने तथा युद्ध के संकट में अभिवृद्धि करने के लिए निंदा की थी। किंतु संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा की

गई नाकाबंदी या घेराबंदी शांतिपूर्ण नाकाबंदी के परंपरागत रूप से भिन्न थी। इस मामले में नाकाबंदी का उद्देश्य क्यूबा के राज्य क्षेत्र में प्रक्षेपास्त्र अड्डों की स्थापना तथा सुदृढ़ीकरण को रोकने हेतु सोवियत रूस द्वारा क्यूबा को कुछ हथियारों तथा उपकरणों की आपूर्ति को रोकना था। इसका उद्देश्य सभी राज्यों के जलयानों के प्रवेश तथा क्यूबा के सभी सामानों के प्रवेश को भी निरुद्ध करना नहीं था। इसके अतिरिक्त यह क्यूबा के जलयान पर नहीं लगाया गया था।

टिप्पणी

फौकलैण्ड विवाद 1982 में यूनाइटेड किंग्डम द्वारा अर्जेंटीना के तटों की नाकाबंदी, शांतिपूर्ण नाकाबंदी का अन्य उदाहरण है, जो प्रबल आलोचना का विषय बना था क्योंकि इसने अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा के लिए संकट उत्पन्न कर दिया था। इराक द्वारा कुवैत को मिला लेने के उपरांत 1990 में इराक में नौसैनिक नाकाबंदी के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के एक पक्षीय निर्णय की कई राज्यों द्वारा आलोचना की गई थी। संयुक्त राष्ट्र महा सचिव जेवियर पैरेज डी कुलर ने इसे संयुक्त राष्ट्र चार्टर का उल्लंघन बताया था। पुनः जब युगोस्लाविया (सर्बिया तथा माउंटेग्रो) द्वारा मार्च 1993 में डेन्यूब नदी में नाकाबंदी करने से डेन्यूब नदी में नौका चालन पूर्ण रुप से बंद हो गया तथा डेन्यूब – काला सागर यातायात में बाधा उत्पन्न हो गई, तब ऑस्ट्रिया ने इसका विरोध किया तथा सुरक्षा परिषद से इस स्थिति से निबटने हेतु आवश्यक उपाय करने हेतु अनुरोध किया था। क्योंकि नाकाबंदी ऑस्ट्रिया तथा नदी तट के अन्य राज्यों को अधिक आर्थिक क्षति पहुंचा रही थी।

वर्तमान समय में, जब नाकाबंदी एक राज्य द्वारा व्यक्तिगत रूप से की जाती है तब वह अवैध होती है, किंतु जब मतभेद का समाधान करने हेतु सुरक्षा परिषद के प्राधिकार के अधीन सामूहिक नाकाबंदी की जाती है तब वह वैध होती है। इराक के विरोध 1990 में सामूहिक नाकाबंदी सुरक्षा परिषद के प्राधिकार के अधीन की गई थी, जब सुरक्षा परिषद ने सदस्य राज्यों का आव्हान किया था जिन्होंने जलयानों के सामानों तथा गंतव्य के निरीक्षण करने तथा सत्यापन करने के लिए सभी आंतरिक तथा बाह्य सामुद्रिक जलयानों को निरुद्ध करने हेतु ऐसे उपायों, जो आवश्यक हों, का प्रयोग करने हेतु सामुद्रिक बलों को तैनात किया था।

(ङ) हस्तक्षेप (Intervention) : अन्य राज्य के मामले में किसी राज्य द्वारा हस्तक्षेप मतभेद के समाधान का उपाय है।

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के उपरांत राज्य को मतभेदों के समाधान हेतु बाध्यकारी उपायों को अपनाने से रोका गया है। जो उपाय अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को संकट पहुंचाने के लिए संभाव्य हैं वे विधि विरुद्ध हैं। अतः प्रतिशोध, व्यापार प्रतिषेध तथा नाकाबंदी तब तक विधि पूर्ण है जब तक यह अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को प्रभावित नहीं करते हैं। परंतु सामान्यतया ऐसे कार्य केवल उस राज्य तक सीमित नहीं होते जिस के विरुद्ध इन्हें किया जाता है। किंतु इनसे अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा के प्रभावित होने की संभावना रहती है, इन्हें प्रतिषिद्ध किया जाता है। जिस अनुज्ञेय प्रपीड़क कार्यवाही का प्रयोग राज्य कर सकता है वह केवल प्रतिकार है, जिसमें सामान्य रूप से अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा व्यवस्था प्रभावित नहीं होती किंतु यदि अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा प्रभावित होती है तो यह भी विधि विरुद्ध मानी जाएगी। जहां तक हस्तक्षेप का संबंध है यह विधि विरुद्ध तथा अन्यायोचित है।

संयुक्त सुरक्षा, संयुक्त राष्ट्र के ध्वज और सेना के अधीन एक संयुक्त कार्यवाही के रूप में संयुक्त राष्ट्र द्वारा लिया गया एक उपाय है, इस तरह के उपाय को अंतिम उपाय के रूप में माना जाता है और बल के उपयोग से पहले संयुक्त राष्ट्र को अन्य उपायों (जैसे आर्थिक, संचार और राजनयिक गतिविधियों में रुकावट) का प्रयोग करने का प्रयास करना चाहिए।

टिप्पणी

बाध्यकारी या प्रपीड़क उपाय तथा युद्ध के माध्यम से (Coercive Methods & through War)

किसी विवाद के लिए आवश्यक समाधान प्राप्त करने के लिए निश्चित स्थिति में बल के निष्ठुर उपयोग की आवश्यकता होती है, विस्तार के आधार पर, युद्ध के उपयोग और तीव्रता को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

सीमित युद्ध (Limited War)

सीमित युद्ध के मामलों में दोनों पक्ष बड़े पैमाने पर संयम का पालन करते हैं और मौन सहमति से केवल अपने उद्देश्यों की पूर्ति तक युद्ध में संलग्न रहते हैं। यदि युद्ध के कारण आवश्यक, राजनीतिक वार्ताओं के बाद राज्यों के मध्य संतुलन पुनःस्थापित किया जा सकता है और सामान्य संबंध पुनःस्थापित किया जा सकता है, तो ऐसी स्थिति सैद्धांतिक रूप से युद्ध के अंत का प्रतीक होती है।

इन मामलों में युद्ध के उद्देश्य एक सीमित लक्ष्य को प्राप्त करने के इर्द–गिर्द घूमते हैं, क्योंकि यह पूर्ण रूप से दूसरे राज्य की जीत या विनाश का विरोध करता है। अंतर्राष्ट्रीय प्रणाली कुछ संदर्भों और संयमों का पालन करती है, जिन्हें राज्यों के बीच संतुलन बनाए रखने की कोई संभावना होने पर पालन करने की आवश्यकता होती है।

संपूर्ण युद्ध (Total War)

मुख्य रूप से, इस तरह का युद्ध प्रकृति में सैद्धांतिक होता है और कुछ असाधारण मामलों (जैसे कि अमेरिका द्वारा हिरोशिमा और नागासाकी पर बमबारी) को छोड़कर व्यवहार में नहीं लाया गया है। तकनीक के आगमन और जैविक, रासायनिक और परमाणु हथियारों के रूप में डब्लूएमडी (सामूहिक विनाश के हथियार) सहित युद्ध में इसके उपयोग में काफी बदलाव आया है कि युद्ध कैसे लड़ा जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. वर्तमान तंत्र/विधियों को व्यापक रूप से कितनी श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है?

   (क) आठ (ख) दो

   (ग) छह (घ) तीन

8. प्रतिकार का उद्देश्य क्या होता है?

   (क) समझौता करना (ख) माफ करना

   (ग) बदला लेना (घ) गले लगना

5.6 युद्ध सम्बन्धी विधि, जल, थल व वायु युद्ध सम्बन्धी विधि, युद्ध बंदियों व अन्य बंदियों (बीमार तथा घायल) के साथ व्यवहार, नाकाबंदी, विनिषिद्ध माल, युद्ध अपराध

टिप्पणी

युद्ध की विधि

युद्ध के दौरान युद्धरत देशों से कुछ नियमों का पालन करने की अपेक्षा की जाती है।इस प्रकार युद्ध विधि में अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा प्रतिपादित वे सीमाएं शामिल हैं जिनके अंतर्गत शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए अपेक्षित बल का प्रयोग किया जा सकता है।

अभिसमय संख्या 4 में संलग्न हेग विनियमों में प्रावधान किया गया है कि शत्रु को क्षतिग्रस्त करने के लिए जो उपाय जो युद्धरत देशों के द्वारा अपनाए जाते हैं, वे असीमित नहीं है।इन नियमों को मानवता के हित में तथा बर्बरता तथा पाशविकता का निवारण करने के लिए बनाया गया है।

यद्यपि युद्ध के कुछ नियमों का प्रयोग राज्यों द्वारा प्राचीन काल से किया जा रहा है, किंतु युद्ध के अधिकतर नियमों का विकास मध्य काल में हुआ। 19वीं शताब्दी के अंत तक, जो नियम अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियम बन गए थे, उन्हें संधिगत नियमों में परिवर्तित किया जाने लगा।

अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग ने 1940 में विचार किया था कि युद्ध विधि का विषय संहिताकरण के लिए चुना जाए या नहीं। आयोग ने अभी तक युद्ध विधि के विषय को संहिताकरण के लिए उचित नहीं माना है। युद्ध विधि को व्यापक रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– 1. स्थल युद्ध विधि, 2. सामुद्रिक युद्ध विधि तथा 3. हवाई युद्ध विधि।

स्थल युद्ध विधि : स्थल युद्ध से संबंधित नियम 1907 के स्थल युद्ध विधि तथा हेग अभिसमय संख्या 6 में वर्णित हैं। यद्यपि जिनेवा अभिसमय 1864 में स्थल सेना के घायल सैनिक की स्थिति से संबंधित कुछ नियमों का प्रावधान किया गया था फिर भी हेग अभिसमय में उन्हें शामिल किए जाने के बाद ही मान्यता दी गई।

स्थल युद्ध के महत्वपूर्ण नियम निम्न हैं–

1. योधक तथा गैर योधक में भेद 1907 के हेग अभिसमय संख्या 7 के द्वारा किया गया है
2. सशस्त्र बलों के घायल और बीमार सदस्यों के साथ व्यवहार
3. युद्ध के समय सिविलियन व्यक्तियों से व्यवहार
4. युद्ध बंदी

सामुद्रिक युद्ध विधि : सशस्त्र संघर्ष में संलग्न पक्षकारों की नौसेनाओं द्वारा संचालित सैनिक कार्यवाही के लिए बनाई गई विधि को सामुद्रिक युद्ध विधि कहा जाता है।

समुद्री युद्ध का मुख्य लक्ष्य शत्रु की नौसेना को पराजित करना तथा शत्रु के समुद्र तटीय किलेबंदी और शत्रु के समुद्र तट पर सामुद्रिक तथा सैनिक संस्थापनों को नष्ट करना है।

टिप्पणी

युद्धमान राज्य को इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु असीमित शक्ति नहीं है। सामुद्रिक युद्ध के लिए विधि का निर्माण भी किया गया है। 19वीं शताब्दी के अंत तक सामुद्रिक युद्ध के संबंध में अधिकतर रुढ़िगत नियम वर्तमान थे। लेकिन रुढ़िगत नियमों का संधि गत नियमों में परिवर्तन का कार्य वर्तमान शताब्दी के प्रारंभ में शुरू हुआ। द्वितीय हेग सम्मेलन में 1907 में कई अभिसमयों का निर्माण किया गया, जो सामुद्रिक युद्ध के कुछ भागों के संबंध में प्रावधान करते थे। सामुद्रिक युद्ध विधि से संबंधित 1909 की लंदन घोषणा में भी नाकाबंदी तथा सैनिक विनिषिद्ध माल से संबंधित नियमों का निर्माण किया गया। सामुद्रिक युद्ध को युद्ध के समय वाणिज्यिक जलयानों से संबंधित पनडुब्बी कार्य नियमावली और फासिस्ट राज्यों की पनडुब्बियों के डकैती कार्यों तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय कार्यों से संघर्ष के उपायों पर नियान करार 1937 द्वारा विनियमित किया जाता था, बाद में जिनेवा सम्मेलन में समुद्र में सशस्त्र बलों के घायल, बीमार, क्षतिग्रस्त जलयान के सदस्यों की स्थितियों के सुधार के लिए 1949 में अभिसमय संख्या 2 को स्वीकार किया गया, जिसमें कुछ महत्वपूर्ण रुढ़िगत नियमों को संहिताबद्ध किया गया।

सामुद्रिक युद्ध की मुख्य विधियां निम्न प्रकार से हैं–

1. **शत्रु के जलयानों पर आक्रमण तथा उनका अभिग्रहण** : शत्रु के सभी सशस्त्र जलयानों तथा अन्य जलयानों पर युद्धमान देश द्वारा खुले समुद्र पर या किसी युद्धमान राज्यों के राज्य क्षेत्रीय समुद्र के अंतर्गत आक्रमण किया जा सकता है। जिस जलयान पर आक्रमण किया जाता है वह प्रतिआक्रमण द्वारा अपनी प्रतिरक्षा कर सकता है। युद्धमान राज्य को शत्रु के जलयान पर कब्जा प्राप्त करने का अधिकार है। जलयान का अभिग्रहण उस पर के सभी सामानों के अभिग्रहण को भी शामिल करता है।
2. **शत्रु के व्यापारिक जहाजों का विनाश** : शत्रु के व्यापारिक जहाज अर्थात शत्रु राज्य के व्यक्तियों के जलयान को उनके विनियोजित किए जाने से पहले, प्राइज न्यायालय द्वारा निर्णीत किया जाता है कि वे वास्तव में प्राइज हैं। वे तब तक बंदीकर्ता प्राधिकारी के अधीन बने रहते हैं, जब तक उनका न्याय निर्णयन प्राइज न्यायालय द्वारा नहीं कर लिया जाता। इस प्रकार पकड़े गए जलयान को न तो नष्ट किया जाना चाहिए और न ही उसका विनियोजन किया जाना चाहिए।
3. **समुद्र में सशस्त्र बलों के घायल, बीमार तथा क्षतिग्रस्त जलयान के सदस्यों के साथ व्यवहार** : समुद्र में सशस्त्र बलों के घायल, बीमार तथा क्षतिग्रस्त जलयान के सदस्यों की स्थिति में सुधार के लिए जिनेवा अभिसमय 1949 को स्वीकार किया गया था। इस अभिसमय के प्रावधान स्थल सशस्त्र संघर्ष के घायल तथा बीमार की स्थिति में सुधार के लिए अभिसमय के प्रावधानों के समान हैं।

हवाई युद्ध के नियम : हवाई युद्ध का तात्पर्य उस कार्यवाही से है, जो युद्धमान राज्यों के अंतरिक्ष में उड़ान भरने वाले किसी प्रकार के संयंत्र प्रयोग से संचालित होती है तथा जो उनके सशस्त्र बलों की कार्यवाही द्वारा स्थल लक्ष्य या सामुद्रिक लक्ष्य के विरुद्ध निर्दिष्ट है।

यद्यपि 1874 ब्रूसेल्स सम्मेलन में हवाई युद्ध से संबंधित कुछ नियम बनाए गए थे, फिर भी वे पर्याप्त नहीं थे। सर्वप्रथम, 1907 के हेग अभिसमय में व्यापक रूप से हवाई युद्ध के कुछ नियम बनाए गए थे। किसी भी साधन द्वारा, नगरों, गांव निवास स्थानों या भवनों पर आरक्षित हैं आक्रमण या बमबारी अनुच्छेद 25 के अधीन प्रतिषिद्ध है।

टिप्पणी

आयोग ने 1923 में प्रस्तावित नियमावली संहिता को प्रस्तुत किया, इनमें से कुछ नियम निम्न प्रकार हैं–

1. सिविलियन जनसंख्या को आतंकित करने, व्यक्तिगत संपत्ति को क्षति ग्रस्त करने या विनाश करने के उद्देश्य से हवाई बमबारी निषेध है।
2. अनुच्छेद 24 प्रावधान करता है कि हवाई बमबारी केवल तब वैध है जब वह उस लक्ष्य के प्रति निर्दिष्ट हो जिसको क्षतिग्रस्त या विनष्ट करना युद्धमान राज्य को स्पष्ट सैन्य लाभ प्रदान करे।

युद्ध बंदियों के साथ व्यवहार

अंतर्राष्ट्रीय विधि बंदियों के पकड़े जाने से पूर्व किए गए उनके शत्रुतापूर्ण कार्यों के लिए दंड से उनकी रक्षा करती है। उन्हें बंदी स्थिति के दौरान कई विशेष अधिकार प्रदान किए गए हैं। यदि एक बार युद्ध बंदी होने के कारण बंदी के दावे को मान्यता दे दी जाती है तो बंदी कर्ता राज्य अपनी राष्ट्रीय विधि या नीतियों, सिवा उनके जो अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा स्वीकृत हैं, को परिवर्तित करने के लिए स्वतंत्र नहीं है। वह कई प्रकार से बाध्य है तथा वह संरक्षण, चिकित्सीय देखरेख, खाद्य पदार्थ तथा अन्य सुविधाओं को प्रदान करने के लिए कुछ सकारात्मक कार्यों के प्रति वचनबद्ध हो जाता है। इस अधिमान्य परिस्थिति को प्रदान करने के लिए नैतिक तथा विधिक औचित्य इस तथ्य में निहित है कि युद्ध बंदी पकड़े जाने के पूर्व शत्रु राज्य के संबंध में उन्हीं कार्यों को कर रहे थे, जो उस प्रकार के थे, जिन्हें करने की बंदीकर्ता राज्य अपने प्रति निष्ठा धारण करने वाले या व्यक्त करने वाले व्यक्तियों से चाहता हो।

युद्ध बंदी से व्यवहार के संबंध में कुछ नियम हेग अभिसमय 1907 द्वारा अनुच्छेद 4 से 12 तक के अधीन निर्मित किए गए थे लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध से यह स्पष्ट हो गया कि ये नियम अपर्याप्त तथा अपूर्ण हैं।

जुलाई 1929 में 47 राज्यों के प्रतिनिधि जिनेवा में मिले और एक अभिसमय को स्वीकार किया गया, जिसे युद्ध बंदी जिनेवा अभिसमय 1929 कहा जाता है।

युद्ध में तथा सशस्त्र संघर्ष में पकड़े गए व्यक्तियों को युद्धबंदी कहा जाता है।

बंदियों की बंदी स्थिति का अंत दो प्रकार से किया जाता है– युद्ध के दौरान या युद्ध की समाप्ति के बाद।

अन्य घायल और बीमार सदस्यों के साथ व्यवहार

घायल सैनिकों के साथ सामान्य सैनिकों की तरह व्यवहार नहीं किया जाता है। मानवता के आधार पर उनके साथ विशेष व्यवहार किया जाता है। पहली बार घायल सैनिकों से संबंधित नियमों को 1884 में युद्ध क्षेत्र में घायल सैनिकों की दशा के सुधार के लिए अभिसमय निर्मित किया गया था।

टिप्पणी

द्वितीय विश्व युद्ध में 1929 जिनेवा अभिसमय के विस्तार तथा पुनरीक्षण की आवश्यकता महसूस की गई तब 12 अगस्त, 1949 को एक अभिसमय का निर्माण किया गया जिसे सामान्यतया युद्ध क्षेत्र में सेनाओं में घायल तथा बीमार की दशा सुधारने के लिए जिनेवा का अभिसमय संख्या 1 कहा जाता है।

यह अभिसमय उन बीमार तथा घायल व्यक्तियों के लिए सम्मान तथा उनके संरक्षण एवं देखभाल को व्यापक रूप से विनियमित करता है जो युद्ध क्षेत्र में सशस्त्र बल के सदस्य हैं या अभिसमय के प्रावधानों के अधीन उन्हें सम्मिलित किया जाता है।

नाकाबंदी

जब शत्रु के समुद्र तट को युद्धरत राज्य द्वारा इस प्रकार अनिरुद्ध कर दिया जाता है जिससे समुद्र तट से जलयान का कोई आवागमन न हो सके तब इस कार्यवाही को नाकाबंदी कहा जाता है।

नाकाबंदी सैनिकों द्वारा की जाती है। युद्ध की कार्रवाई है और इसे युद्ध के दौरान लागू किया जाता है। नाकाबंदी को सभी राष्ट्रों के जलयानों के लिए लागू किया जाता है। नाकाबंदी को शत्रु राज्य के समुद्री तट या समुद्र तट के किसी भाग में लागू किया जाता है।

नाकाबंदी की विधि का विस्तृत संहिताकरण 1908 –1909 के लंदन नौसेना सम्मेलन के दौरान किया गया था जिसमें लंदन घोषणा प्रस्तुत की गई थी। घोषणा में युद्ध के समय की नाकाबंदी पर 21 प्रावधान बनाए गए थे। यह घोषणा विद्यमान अंतर्राष्ट्रीय नाकाबंदी विधि के रूप में स्वीकार है।

विनिषिद्ध माल

युद्ध के समय युद्धरत राज्यों द्वारा शत्रु राज्य में कुछ माल के परिवहन को निषिद्ध घोषित कर दिया जाता है क्योंकि ऐसे मालों को शत्रु राज्य के पास पहुंचने से उनको सहायता मिलती है। युद्धरत राज्य द्वारा निषिद्ध घोषित किए गए माल को विनिषिद्ध माल कहा जाता है।

इस परिभाषा के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं अर्थात माल के प्रकार तथा उसके जाने का गंतव्य।

लंदन घोषणा 1909 के अनुसार माल को 3 वर्गों में विभाजित किया गया है– पूर्ण विनिषिद्ध माल, सशर्त विनिषिद्ध माल और अविनिषिद्ध माल।

माल की प्रकृति चाहे जैसी भी हो उसे भी विनिषिद्ध माल नहीं कहा जा सकता, यदि वह युद्धरत राज्य में प्रयोग के लिए नियत नहीं है।

युद्ध अपराध

युद्ध अपराध सैनिकों या अन्य व्यक्तियों द्वारा किए गए ऐसे शत्रुता पूर्ण या तत्समान कार्य है, जिन्हें पकड़ने पर शत्रु द्वारा दंडित किया जा सकता है। युद्ध अपराध युद्ध के कुछ नियमों का उल्लंघन है। यदि इन नियमों का उल्लंघन सैनिकों द्वारा या अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जाता है तो दंड किसी स्वतंत्र संस्था द्वारा नहीं बल्कि सामान्य रूप से विजेता राज्यों द्वारा दिया जाता है। यह महत्वपूर्ण है कि युद्ध के सभी नियमों का

उल्लंघन युद्ध अपराध नहीं होता, केवल कुछ ऐसे नियम है जिनके उल्लंघन को युद्ध अपराध कहा जाता है।

यूरोपीय एक्सेस शक्तियों के प्रमुख युद्ध अपराधियों के अभियोजन तथा दंड करार, 1945 से संलग्न चार्टर को अधिकरण चार्टर कहा जाता है, इसके अनुच्छेद 6 के परिच्छेद (ख) में विभिन्न युद्ध अपराधों का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार युद्ध अपराध युद्ध की विधियों का उल्लंघन है। ऐसा उल्लंघन हत्या, दुर्व्यवहार या दास श्रमिकों का या किन्ही अन्य प्रयोजनों के लिए अधिग्रहित राज्य क्षेत्र की सिविलियन जनसंख्या का निर्वासन या युद्ध बंदियों या समुद्र के संसाधनों पर आश्रित रहने वाले व्यक्तियों की हत्या या उनके साथ दुर्व्यवहार, बंधकों को मारना, सार्वजनिक या व्यक्तिगत संपत्ति को लूटना, शहरों, नगरों या गांव का अनियंत्रित विनाश या सैनिक आवश्यकता द्वारा आयोजित विध्वंस को शामिल करेगा किंतु इन्हीं तक सीमित नहीं रहेगा।इनमें जिन कृत्यों का उल्लेख युद्ध अपराध के रूप में किया गया है वे सर्वांगीण नहीं हैं।

टिप्पणी

जिन कृत्यों की निंदा मानव जाति द्वारा उनकी पाशविकता तथा अमानवीयता के कारण की जाती है, उन्हें युद्ध अपराध माना जा सकता है। उदाहरण के लिए जहरीली गैस का प्रयोग, घायल या समर्पण करने वाले सैनिकों को मारना, युद्ध क्षेत्र में शव के साथ अपमानजनक व्यवहार, बंधुओं को मारना, युद्ध बंदियों के साथ दर्व्यवहार, संग्रहालयों, अस्पतालों, गिरजाघर तथा विद्यालयों को नष्ट करना युद्ध अपराध माने जा सकते हैं। अन्य समान कृत्यों को भी युद्ध अपराध की श्रेणी में रखा जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

9. युद्ध के अधिकतर नियमों का विकास किस काल में हुआ?
   (क) प्राचीन काल में (ख) मध्यकाल में
   (ग) आरंभिक काल में (घ) युद्धकाल में
10. युद्ध विधि को व्यापक रूप से कितने वर्गों में विभाजित किया जा सकता है?
   (क) तीन (ख) चार
   (ग) दो (घ) पांच

5.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (ग)
4. (ग)
5. (घ)
6. (क)

7. (ख)
8. (ग)
9. (ख)
10. (क)

टिप्पणी

5.8 सारांश

1949 में अंतर्राष्ट्रीय आयोग द्वारा संहिताकरण के लिए चुने गए विषयों में संधि विधि को सम्मिलित किया गया। जब आयोग ने 1966 में संहिता करण का कार्य पूर्ण कर लिया, तब महासभा ने 1968 में अंतर्राष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा तैयार किए गए प्रारूप अनुच्छेद पर विचार करने हेतु संयुक्त राष्ट्र संधि विधि सम्मेलन आयोजित किया। सम्मेलन में संधि विधि पर वियना अभिसमय को स्वीकार किया गया। अभिसमय में उद्देशिका तथा 85 अनुच्छेद हैं तथा इसको 8 भागों में विभाजित किया गया है। अभिसमय 27 जनवरी, 1980 को प्रभाव में आया।

अभिसमय उन्हीं राज्यों के मध्य लागू होता है जो उसके पक्षकार बन गए हैं। जो राज्य अभिसमय के पक्षकार नहीं हैं उनके द्वारा बनाई गई सेधियां रूढ़िगत नियमों द्वारा अर्थात प्राचीन विधि से ही लागू होती हैं। वियना अभिसमय स्पष्ट प्रावधान करता है कि संधि का तात्पर्य राज्यों के मध्य लिखित रूप में की गई ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संविदा से है, जो अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा शासित होती है। इस प्रकार, राज्य तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के की गई संविदा अभिसमय के क्षेत्र अंतर्गत नहीं आती।

राज्यों के अलावा, अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठन भी संधि करने के लिए सक्षम होते हैं। इस प्रकार, संयुक्त राष्ट्र तथा उसके विशिष्ट अभिकरण अपने कार्यों को करने के लिए संधि कर सकते हैं। संयुक्त राष्ट्र ने सदस्य तथा गैर सदस्य राज्यों के साथ कई संविदा की हैं। किंतु अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा की गई संधि वियना अभिसमय के क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आती। ऐसी संधियां पृथक अभिसमय के अनुरूप शासित होती हैं , जिनको 1986 में अंगीकृत किया गया है।

अंतर्राष्ट्रीय आचरण के अंतर्गत वे अंतर्राष्ट्रीय संगठन आते हैं, जिनका अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान है। ये लगभग सार्वभौमिक प्रकृति के होते हैं, किंतु ये संगठन राज्यों का स्थान नहीं लेते तथा राज्यों को आदेश भी पारित नहीं करते। अतः इनको अंतर्राष्ट्रीय सरकार की प्रकृति का नहीं माना जा सकता। ये संगठन कुछ विशेष उद्देश्य के लिए राज्य द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संधियों या संविदा के आधार पर स्थापित किए जाते हैं। इनके अपने अंग होते हैं तथा इनके अधिकार तथा उत्तरदायित्व इनके सदस्यों के अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों से भिन्न होते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के अनुसार संगठन अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति होते हैं तथा अंतर्राष्ट्रीय अधिकारों व कर्तव्य को धारण करने में समर्थ होते हैं तथा इनमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दावा करके अपने अधिकारों को बनाए रखने की क्षमता होती है। इसके अतिरिक्त, किसी राष्ट्र द्वारा सशस्त्र टकराव में परमाणु हथियारों के उपयोग की वैधानिकता पर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा मांगे गए परामर्श हेतु अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने कहा कि अंतर्राष्ट्रीय संगठन अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय होते हैं जिसके द्वारा राज्यों

के विपरीत एक सामान्य क्षमता होती है। अंतर्राष्ट्रीय संगठन विशेषज्ञता के सिद्धांतों द्वारा शासित होते हैं। उन राज्यों द्वारा शक्ति प्रदान होते हैं जिन्होंने उसे शक्ति संयुक्त संगठित किया है जिसकी सीमाएं साझा हितों तक कार्य करने की होती हैं जिनके लिए संबंधित राज्यों के द्वारा उन्हें दायित्व सौंपा गया है।

विवाद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के साथ अटूट रूप से जुड़े हुए हैं। संख्या वृद्धि करते हुए, विवाद अब केवल मुख्यतः राज्यों के बीच ही नहीं बल्कि राज्यों और अन्य पार्टियों जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और अन्य गैर–राज्य प्रतिभागियों के बीच भी हैं और इन प्रतिभागियों के बीच पारस्परिक रूप से भी हैं। इस संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र का चार्टर (यूएन) एक प्रमुख भूमिका निभाता है, विशेषरूप से, राज्यों के बीच विवादों के बारे में। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2 (3) में कहा गया है कि सभी सदस्य राज्यों को अपने अंतर्राष्ट्रीय विवादों को शांति से इस तरह से निबटाना होगा कि अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा और न्याय, खतरे में न पड़ें। संयुक्त राष्ट्र महासभा के एक संकल्प में 1982 में इस दृष्टिकोण की फिर से पुष्टि की गई, जो कि अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण निबटान पर तथाकथित मनीला घोषणा है।

टिप्पणी

वर्तमान विश्व व्यवस्था, जैसा कि आज तक हम जानते हैं कि यह सदैव के लिए अस्तित्व में नहीं रही है। आज के समय और युग में राज्यों को बराबर (कम से कम कागज पर) माना जाता है। यद्यपि अत्यधिक लंबे समय से, राज्यों के हित शक्ति और क्षेत्र के लिए संघर्ष के इर्द–गिर्द घूमते रहते थे, जहां एक राज्य किसी भी समय किसी अन्य राज्य को हरण करने का निर्णय ले सकता था। सुरक्षा को देश की सीमा के संकटों से समीकृत किया गया और राष्ट्रों ने उत्पन्न होने वाले संभावित संघर्षों को हल करने के लिए शस्त्रों की खोज प्रारम्भ कर दी।

इस युग में, सैन्य सुरक्षा को सबसे अधिक महत्व दिया गया था। यद्यपि सुरक्षा के परिवृत्त धारणाएं समय के साथ–साथ केवल सैन्य सुरक्षा प्राप्त करने के राज्य–केंद्रित दृष्टिकोण से विकेंद्रित होकर सुरक्षा के अधिक सहकारी और सामूहिक रूप में विकसित हुई हैं। सुरक्षा का यह सामूहिक रूप इस अनुभूति के साथ दृष्टिगत हुआ कि, दोनों, राज्यों के साथ–साथ व्यक्तियों के हितों को भी एक साथ संबोधित करने की आवश्यकता है, क्योंकि, आज लोगों को जिन चिंताओं का सामना करना पड़ता है वे एक पड़ोसी राज्य द्वारा विश्व समापन आक्रमण के विपरीत दैनिक जीवन के मुद्दों से संबंधित हैं । 1994 की मानव विकास रिपोर्ट मानव सुरक्षा के इस नए रूप (केवल क्षेत्रीय सुरक्षा के विपरीत) का विस्तृत विवरण देती है, जोकि वैश्विक संसाधनों के एक समान विभाजन, राष्ट्रों के मध्य अंतर–निर्भरता और विभिन्न देशों के मध्य उपयोगी पत्राचार पर निर्भर करेगा।

5.9 मुख्य शब्दावली

- **संधि** : सुलह, समझौता।
- **अभिसमय** : समझौता।
- **आचरण** : व्यवहार, रवैया।
- **अंगीकरण** : स्वीकृति, सहमति।

- **कपट** : छल, बेईमानी।
- **त्रुटि** : गलती, भूल।
- **प्रतिकार** : प्रतिशेध, बदले की कार्यवाही।

टिप्पणी

5.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. संधि शब्दा का क्या तात्पर्य है?
2. संधियों को कोन–कोन से वर्गों में बांटा जा सकता है?
3. अंतर्राष्ट्रीय संगठन के मुख्य विधिक कार्य क्या हैं?
4. अंतर्राष्ट्रीय विवाद क्या है?
5. राज्यों के मध्य मतभेद निबटाने के लिए युद्ध के अतिरिक्त क्या उपाय हो सकते हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. संधियों के निर्माण की प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए।
2. संधियों के सिद्धांतों की विवेचना कीजिए।
3. अंतर्राष्ट्रीय आचरण के मुख्य तत्वों की समीक्षा कीजिए।
4. 1949 के जिनेवा सम्मेलन की व्याख्या कीजिए।
5. अंतर्राष्ट्रीय विवादों की अवधारणा तथा उनके समाधान का विश्लेषण कीजिए।
6. स्थल, सामुद्रिक तथा हवाई युद्ध विधियों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

5.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अन्तर्राष्ट्रीय विधि और मानवाधिकार–के.सी. जोशी, ईस्टर्न बुक कंपनी
2. Dr. S.K. Kapoor: Human Rights & International Law (Hindi)
3. R. Falk: International Law: A Contemporary Perspective
4. R.P. Anand: Law of the Sea,. Caracas and beyond (1978)
5. O.P. Malhotra: Law of industrial Disputes (1999)
6. Oppenheim: International Law (Volume I, Peace)
7. S. K. Kapoor: International Law
8. M.P. Tandon: International Law (English & Hindi)
9. Robertson, A.H.: Human Rights in the World
10. S.C. Khare: Human Rights in United Nations
11. D.D. Basu: Human Rights in Constitutional Law
12. Nagendra Singh: Protection of Human Rights.